ब्रह्मवैवर्त पुराण

द्वितीय खण्ड

(सरल भाषानुवाद सहित)

*

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,

२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के

प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

❊

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❊

❊

प्रथम संस्करण

१९७०

❊

मुद्रक :
बनवारीलाल गुप्त
विश्वभारती प्रेस
मथुरा

❊

मूल्य सात रुपया

भूमिका

"ब्रह्मवैवर्त पुराण" की कृष्ण चरित्र सम्बन्धी विशेषतायें प्रथम खंड की भूमिका में बतलादी गई हैं। इस दृष्टि से यह अधिकांश पुराणों में पृथक् ढंग का माना जा सकता है। इसको उस वैष्णव—सम्प्रदाय का मुख्य—ग्रन्थ भी कह सकते हैं जो राधा की उपासना को विशेष महत्त्व देते हैं और गोलोक वासी कृष्ण को समस्त देव शक्तियों का अधीश्वर मानते हैं। जैसा हम पहले भी प्रकट कह चुके हैं यह दृष्टिकोण एकांगी है। 'गोलोक' और उसमें निवास करने वाले परमात्मा स्थानीय कृष्ण का ऐसा वर्णन अन्य किसी पुराण में देखने को नहीं मिलता। 'हरिवंश' भी कृष्ण चरित्र प्रधान पुराण है और 'पद्म पुराण' में भी कृष्ण की महिमा लिखते हुए यहाँ तक कहा है—

अन्ये सर्वेऽवतारा: स्युः कृष्णस्य चरितं महत्।
भूभारक विनाशाय प्रादुर्भूतो रमापति ।।

तो भी इनमें न 'गोलोक' का उल्लेख है न राधा का। पर 'ब्रह्मवैवर्त' के लेखक ने राधा—कृष्ण के सम्बन्ध में ऐसी सर्वथा कथाएं भिन्न लिखी हैं, जिन पर अधिकांश धार्मिक व्यक्ति भी शीघ्र विश्वास करने को तैयार नहीं होते।

"ब्रह्मवैवर्त" की यह भिन्नता की प्रवृत्ति राधा तक ही सीमित नहीं है, वरन् अन्य कथाओं का भी उन्होंने बहुत रूपान्तर कर दिया है। श्रीकृष्ण को विष मिश्रित स्तनों का दूध पिलाने वाली पूतना की 'भागवत्' आदि पुराणों में निन्दा ही मिलती है, पर 'ब्रह्मवैवर्त' उसको पूर्व जन्म की राजा बलि की पुत्री बतलाता है और कहा है कि उसने भगवान् कृष्ण के प्रेमवश ही उनको दूध पिलाया था। जब भगवान् ने उसके प्राणों को खींच लिया तो वहीं पर गिर कर मर गई। तब नन्दजो ने ब्राह्मणों द्वारा विधिपूर्वक उसका अन्त्येष्ठि संस्कार कराया और उसके शव में से चन्दन, अगुरु और कस्तूरी की मनोहर गन्ध निकली—

ददाह देहे तस्याश्च नन्दः सानन्द पूर्वकम् ।
चन्दनागुरुकस्तूरी समं संप्राप्य सौरभम् ।।

कुब्जा के सम्बन्ध में कहा गया है कि जिस समय श्रीकृष्ण मथुरा को गये उस समय वह बहुत बुड्ढी और जर्जर शरीर वाली हो गई थी। उसने कृष्णजी को चन्दन लगाया और उनकी दृष्टि पड़ते ही वह अत्यन्त सुन्दर नवयुवती और बारह वर्ष की कन्या के समान होगई—

एवम् भूताञ्च मथुरां दृष्ट्वा कमल लोचनः ।
ददर्श पथि कुब्जांतां वृद्धामति जरातुराम् ।।
श्रीकृष्ण दृष्टिमात्रेण श्रीयुक्ता सावभूव ह ।
सहसाश्री समा रम्या रूपेण यौवनेन च ।।
वह्निशुद्धा सुवसना रत्नभूषण भूषिता ।
यथा द्वादश वर्षीया कन्या धन्या मनोहरा ।।

"श्री कृष्ण की दृष्टि पड़ते ही वह अत्यन्त वृद्धा कुब्जा लक्ष्मी देवी के समान रूप-यौवन सम्पन्न हो गई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रों तथा रत्न जटित आभूषणों से युक्त वह ऐसी धन्य और मनोहर लगने लगी जैसे कोई बारह वर्ष की कन्या हो।"

जाम्बवन्ती का उपाख्यान और भी अद्भुत है। लिखा है कि जब गणेश जी के पूजोत्सव में समस्त देवगण पधारे तो श्रीकृष्ण की सुन्दर छवि को देखकर पार्वतीजी का चित्त उनकी तरफ आकर्षित हो गया। इस भावना को समझ कर शिवजी ने उनके अपनी अभिलाषा पूर्ण करने को कहा। इस पर पहले तो पार्वती जी ने शिवजी की बात का प्रतिकार करके कहा कि मैंने तो आपको इतनी कठिन तपस्या करके प्राप्त किया है और आप मुझसे ऐसी बात कहते हैं मानों मेरा त्याग कर रहे हों। पर जब शिवजी ने उन्हें 'कृष्ण-तत्त्व' समझाया कि समस्त जगत में—तीनों लोक में जितने प्राणी—मनुष्य, देव, यक्ष,गन्धर्व, राक्षस स्त्री—पुरुष—बालक हैं, वे सब उन्हीं में से उत्पन्न होते हैं और उन्हीं में लय होजाते हैं। इसलिये उनके विषय में किसी प्रकार के पाप—पुण्य की कल्पना नहीं की जा सकती। इस पर देवी पार्वती ने अर्धांश से जाम्बवन्ती के रूप में जन्म

लिया और भगवान् कृष्ण की पटरानी बनीं। जब भगवान के गोलोक जाने का समय आया तो जाम्बवन्ती पुनः पार्वतीजी में ही प्रविष्ट होगई।

भगवान् कृष्ण के अन्तिम समय का वर्णन भी बहुत भिन्न रूप में किया गया है। समस्त पुराणों और इतिहासों में यदुवंश के नष्ट होने का कारण पारस्परिक गृह-कलह कही गई है। उस अवसर पर भगवान् कृष्ण द्वारका से प्रभास क्षेत्र में चले आये थे और वहीं उनके साथियों ने मदिरा के नशे में कलह करके एक दूसरे के प्राण हरण कर लिये। जब भगवान ने देखा कि सब वीरों का अन्त होगया और बलरामजी ने भी योग बल से देह त्याग कर दी, तो वे वन में एक वृक्ष के नीचे लेट गये। वहीं पर जरा नाम के बहेलिये ने हिरन के धोखे से बाण मारकर उनकी जीवन लीला का अन्त कर दिया।

श्रीमद्भागवत और अन्य पुराणों में भी वर्णित इस प्रसिद्ध कथा को "ब्रह्मवैवर्त' में बिल्कुल बदल दिया है। उसके अनुसार अंतिम समय में भगवान गोकुल वृन्दावन गये और वहाँ जाकर उन्होंने समस्त गोपों से भेंट की तथा राधाजी की विरह व्यथा शान्त की। वृन्दावन में उन्होंने गोपों को आश्वासन दिया—"हे गोपों के समुदाय! हे बन्धुओ! आप सब सुखपूर्वक रहते हुये स्थिर हो जाओ। इस परम पुण्य—स्थल वृन्दावन के निकुञ्जों में कृष्ण का प्रिया के साथ रमण तथा सुरम्य रास-मंडल और अधिष्ठान तब तक निरन्तर ही रहेगा, जब तक इस जगतीतल में चन्द्र और दिवाकर रहेंगे।"

उस अवसर पर शिव, ब्रह्म, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, कुवेर, वरुण, पवन आदि समस्त देवों ने भी वहां आकर भगवान की स्तुति की। तत्पश्चात् भगवान की मानवी लीला का अन्त किस प्रकार हुआ इस विषय में कुछ स्पष्ट न लिखकर इतना ही कहा गया है—

अथ तेषांच गोपाला ययुर्गोलोकमुत्तमम्।
पृथिवी कम्पिता भीता चलन्तः सप्तसागरः॥
हतश्रियं द्वारकाञ्च त्यक्त्वा च ब्रह्मशापतः।
मूर्ति कदम्ब मूलस्थां विवेश राधिकेश्वरः॥

"इसके अनन्तर गोपाल उत्तम 'गोलोक' को चले गये। इससे भूमि बहुत ही भीत और कम्पित होने लगी और सातों समुद्र चलायमान हो गये। ब्रह्मशाप के कारण श्रीहत द्वारकापुरी को त्याग कर राधिकेश्वर भगवान श्रीकृष्ण कदम्ब मूल में स्थित मूर्ति में प्रवेश कर गये।" व्याध के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा है कि "उसे अपने लोक में उत्तम स्थान दिया।

इस प्रकार 'ब्रह्मवैवर्त' का कथा भाग दूसरे पुराणों से बहुत भिन्न और निराला है। जैसा हम अन्यत्र भी लिख चुके हैं पुराणों में लिखी कथायें इतिहास और पुरातत्त्व की कसौटी पर नहीं कसी जातीं, वरन् उनका मुख्य उद्देश्य लोगों को उच्च आदर्शों तथा सत्कर्मों की शिक्षा देना होता है, फिर भी लोक प्रसिद्ध और सर्वमान्य कथाओं में इतना अधिक अन्तर करना ठीक नहीं। इससे सामान्य लोगों में भ्रम और विवाद की उत्पत्ति होती है और कितने ही लोग सभी प्राचीन कथाओं को पूर्णतः असत्य मानने लग जाते हैं। कई अध्ययन शील विद्वान् तो ऐसी ही बातों के कारण गोकुल के कृष्ण तथा द्वारका के कृष्ण को ही दो भिन्न व्यक्ति कहने में संकोच नहीं करते। ऐसी दशा में सर्वथा नई और जिनका कहीं जिक्र भी नहीं मिलता, ऐसी कथायें पुराणों की मान्यता की दृष्टि से हानिकर ही हो सकती हैं।

हमने इस तथ्य को दृष्टि गोचर रख कर 'ब्रह्मवैवर्त' के इस संस्करण में से मुख्यतः उन्हीं बातों को कम किया है जिनमें उपरोक्त प्रकार की त्रुटि जान पड़ती थी। हमारा उद्देश्य पाठकों को ऐसी पौराणिक सामग्री उपलब्ध कराना है, जिससे वे सत्शिक्षाएँ ग्रहण कर सकें और प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा-भाव की वृद्धि हो। हमारा विश्वास है कि इस दृष्टि से यह ग्रंथ पाठकों को अवश्य उपादेय जान पड़ेगा।

—सम्पादक

विषय-सूची

(द्वितीय खण्ड)

॥ ॐ ॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण

(द्वितीय खण्ड)

५८—श्रीकृष्णपादपद्मप्राप्तिसोपानम् ।

श्रुतं प्रथमतो ब्रह्मन् ब्रह्मखण्डं मनोहरम् ।
ब्रह्मणो वदनाम्भोजात् परमाद्भुतमेव च ॥१
ततस्तद्वचनात्तूर्णं समागत्य तवान्तिकम् ।
श्रुत प्रकृतिखण्डञ्च सुधाखण्डात् परं वरम् ॥२
ततो गणपतेः खण्डमखण्डजन्मखण्डनम् ।
न मे तृप्तं मनो लोलं विशिष्टं श्रोतुमिच्छति ॥३
श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च जन्मादिखण्डनं नृणाम् ।
प्रदीपं सर्वतत्त्वानां कर्मघ्नंहरिभक्तिदम् ॥४
सद्यो वैराग्यजनकं भवरागनिकृन्तनम् ।
कारणं मुक्तबीजानां भवाब्धितारणं परम् ॥५
कर्मोपभोगरोगाणां खण्डने च रसायनम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम् ॥६
जीवनं वैष्णवानाञ्च जगतां पावनं परम् ।
वद विस्तरशो भक्तं शिष्यं मां शरणागतम् ॥७

इस अध्याय में श्री कृष्ण पाद पद्म प्राप्ति के सोपान का वर्णन किया गया है। नारद देवर्षि ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपके द्वारा वर्णित ब्रह्म-खण्ड का मैंने श्रवण कर लिया है जो कि अत्यन्त मनोहर था। यह ब्रह्मा के मुख कमल से परम अद्भुत निकल कर आपके पास आया

था। इसके अनन्तर सुधाखण्ड से भी श्रेष्ठ प्रकृति खण्ड का श्रवण किया था। इसके पश्चात् अखण्ड जन्मों के खण्डन करने वाला गणपति खण्ड का श्रवण किया था। यह सब इतना श्रवण करने के बाद भी मेरे मन की पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है। अभी भी कुछ विशेष श्रवण करने के लिये मेरा मन अत्यन्त चंचल हो रहा है ॥१-३॥ श्री कृष्ण के जन्म का खण्ड मनुष्यों के जन्म-मरण आदि सब का खण्डन कर देने वाला है। यह सम्पूर्ण तत्वों को दिखा देने वाला प्रदीप है—कर्मों के नाश करने वाला तथा हरि की भक्ति के प्रदान करने वाला होता है ॥४॥ इस खण्ड के श्रवण से तुरन्त ही वैराग्य की उत्पत्ति हो जाया करती है और यह इस संसार के राग को दूर करने वाला है। यह खण्ड मुक्ति के बीजों का कारण स्वरूप है तथा संसार रूपी सागर से पार कर देने वाला है ॥५॥ कर्मों के उपभोग के लिये होने वाले रोगों के खण्डन करने में यह परम रसायन है तथा श्री कृष्ण के चरण कमलों की प्राप्ति करने के लिये सोपान (सीढ़ी) के समान कारण है ॥६॥ यह वैष्णवों का जीवन है और जगतों का परम पावन अर्थात् पवित्र करने वाला है। आप इसे शरण में प्राप्त हुए शिष्य मुझको विस्तार के साथ बताने की कृपा करें ॥७॥

केन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् ।
सर्वांशैरक एवेशः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥८

युगे कुत्र कुतो हेतोः कुत्र वाविर्बभूवह ।
वसुदेवोऽस्य जनकः कोवा कावा च देवकी ॥९

वंशः कस्य कुले जन्म मायया सुविडम्बनम् ।
किञ्चकार समाख्यातं केन रूपेण वाहरिः ॥१०

जगाम गोकुलं कंसभयेन सूतिकागृहात् ।
कथं कंसात् कीटतुल्यात् भयेशस्य भयं मुने ॥११

हरिर्वा गोपवेषेण गोकुले किञ्चकारह ।
कुतो गोपाङ्गनासार्द्धं विजहार जगत्पतिः ॥१२

का का गोपाङ्गना के वा गोपाला बालरूपिणः।
का वा यशोदा को नन्दः किं वा पुण्यञ्चकारह ॥१३

कथं राधा पुण्यवती देवी गोलोकवासिनी।
व्रजे वा व्रजकन्या सा बभूव प्रेयसी हरेः ॥१४

भगवान् श्री कृष्ण से किसने प्रार्थना की थी कि वह इस महीतल में आये थे। वह एक ही ईश स्वयं परिपूर्णतम सर्वांशों से होते हैं ॥८॥ यह किस युग में किस हेतु से कहाँ पर आविर्भूत हुए थे? इनका पिता वसुदेव कौन थे और इनकी माता देवकी कौन थी? ॥९॥ इनका जन्म किस कुल में हुआ था? इन्होंने अपनी माया के द्वारा क्या सुविडम्बना की थी। यह श्री हरि किस रूप से समाख्यात हुए थे? ॥१०॥ यह सूतिका गृह से कंस राजा के भय से भीत होकर गोकुल चले गये थे। हे मुने! यह समझ में नहीं बैठता है कि भय के स्वामी को कीट के तुल्य कंस से कैसे और क्यों भय उत्पन्न हो गया था ॥११॥ हरि ने गोकुल में पहुँच कर एक गोपाल के वेष में रहते हुए क्या किया था? जगत् के स्वामी ने गोपों की अंगनाओं के साथ कैसे विहार किया था? वे गोपाङ्गनाऐं तथा बालकों के रूप में रहने वाले गोपाल कौन-कौन थे? यशोदा और नन्द कौन थे और इन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया था कि इनके पुत्र रूप में श्री हरि हुए थे? ॥१२-१३॥ हरि की परम प्रेयसी श्री राधा परम पुण्यवती देवी गोलोक धाम के निवास करने वाली थी वह ब्रज में एक ब्रज कन्या क्यों हुई थी इसका क्या कारण है? ॥१४॥

कथं गोप्यो दुराराध्यं सम्प्रापुरीश्वरं परम्।
कथं ताश्च परित्यज्य जगाम मथुरां पुनः ॥१५

भारावतारणं कृत्वा किं विधाय जगाम सः।
कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तनम् ॥१६

सुदुर्लभां हरिकथां तरणिं भवतारणे।
निषेव्य भोगनिगड़क्लेशछेदनकर्त्तनीम् ॥१७

पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखामिव ।
पुंसां श्रुतवतां कोटिजन्मकिल्विषनाशिनीम् ॥१८
मुक्ति कर्णसुधारम्यां सोकसागरनाशिनीम् ।
मह्यं भक्ताय शिष्याय ज्ञानं देहिकृपानिधे ॥१९
तपोजपमहादानपृथिवीतीर्थदर्शनात् ।
श्रुतिपाठादनशनाद् व्रतदेवार्च्चनादपि ॥२०
दीक्षया सर्वयज्ञेषु यत् फलं लभते नरः ।
षोड़शीं ज्ञानदानस्य कलां नार्हति तत् फलम् ॥२१
पित्राहं प्रेषितो ज्ञानादानाय तव सन्निधम् ।
सुधासमुद्रं संप्राप्य न को वा पातुमिच्छति ॥२२

इन गोपियों ने दुराराध्य परम ईश्वर को कैसे प्राप्त किया था और फिर उन सब का त्याग करके वह मथुरा क्यों चले गये थे ? ॥१५॥ भूमि का कौन सा भार उतार कर वे यहां से चले गये थे ? हे महा भाग ! इस पुण्य श्रवण और पुण्य कीर्त्तन को आप बताने की कृपा करें ॥१६॥ यह श्री हरि की कथा अत्यन्त दुर्लभ है और इस संसार रूपी सागर के तारण करने में नौका के समान है । इसके सेवन से भोगों के कठिन बन्धन से जो क्लेश होता है उसे काटने के लिए कैंची तुल्य है ॥१७॥ यह हरि की कथा पाप रूपी ईंधन के जलाने में जलती हुई अग्नि की शिखा के समान है । जो पुरुष इसका श्रवण करने वाले हैं उनके करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करने वाली है ॥१८॥ यह श्रवण करने वाले लोगों के कानों के लिये अमृत के तुल्य सुन्दर है और शोक के समुद्र नाश करने वाली मुक्ति है । हे कृपा की निधि ! परम भक्त एवं शिष्य मुझे कृपा करके ज्ञान का प्रदान करिये ॥१९॥ तपस्या-जय महादान-पृथिवी के तीर्थों के दर्शन-वेद का पाठ- अनशन-व्रत-देवों का अर्चन और सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षा से जो भी कुछ फल मनुष्य प्राप्त करता है वह ज्ञान के दान की सोलहवीं कला के समान नहीं हो सकता है ॥२०-२१॥ मुझे मेरे पूज्य पिताजी ने आपके समीप में ज्ञान का आदान करने के लिये भेजा है । सुधा के सागर को प्राप्त

करके कौन ऐसा है जो उसका पान करने की इच्छा नहीं करता है ? अर्थात् कोई भी नहीं होता है ॥२२॥

मया ज्ञातोऽसि धन्यस्त्वं पुण्यराशिः सुमूर्त्तिमान् ।
करोषि भ्रमणं लोकान् पावितुं कुलपावन ॥२३
जनानां हृदयं सद्यः सुव्यक्तं वचनेन वै ।
शिष्ये कलत्रे कन्यायां दौहित्रे वान्धवेऽपि च ॥२४
पुत्रे पौत्रेच वचसि प्रतापे यशसि श्रियाम् ।
बुद्धौवारिणि विद्यायां ज्ञायते हृदयंनृणाम् ॥२५
जीवन्मुक्तोऽसि पूतस्त्वं शुद्धभक्तोगदाभृतः ।
पुनासिपादरजसासर्वाधारां वसुन्धराम् ॥२६
पुनासि लोकान् सर्वांश्च स्वयं विग्रहदर्शनात् ।
सुमङ्गला हरिकथा तेन तां श्रोतुमिच्छसि ॥२७
यत्र कृष्णकथाः सन्ति तत्रैव सर्वदेवताः ।
ऋषयो मुनयश्चैव तीर्थानि निखिलानि च ॥२८

नारायण ने कहा—मैंने आपको अच्छी तरह से जान लिया है। आप धन्य हैं तथा मूर्त्तिमान् पुण्य के समूह हैं। हे कुलपावन ! आप तो समस्त लोकों को पावन करने के लिये ही लोकों में भ्रमण किया करते हैं ॥२३॥ मनुष्यों के हृदय की पहिचान उनके वचनों के द्वारा तुरन्त ही सुव्यक्त हो जाया करती है। शिष्य में-कलत्र में-कन्या में धेवते में-बान्धव में-पुत्र-पौत्र में-वचन में-प्रताप में-यश में- श्री में-बुद्धि वारि में और विद्या में मनुष्यों के हृदय का ज्ञान किया जाता है ॥२४-२५॥ आप तो जीवन्मुक्त अर्थात् जीवित दशा में ही मुक्त हैं और आप पवित्र तथा गदा धारी के शुद्ध भक्त हैं। आप अपने चरणों की धूलि से सबकी आधार स्वरूपा इस भूमि को पवित्र किया करते हैं ॥२६॥ आप स्वयं अपने शरीर का दर्शन देकर उससे सब लोकों को पवित्र किया करते हैं। यह श्री हरि की कथा परम सुमंगलों के स्वरूप वाली है इसी हेतु से उसे तुम सुनना चाहते हो। जिस स्थान में श्री कृष्ण की कथा होती

हैं वहां पर ही समस्त देवता-ऋषि-मुनि और सम्पूर्ण तीर्थ निराजमान रहा करते हैं ॥२७-२८॥

कथाः श्रुत्वा तथान्ते ते यान्ति सन्तो निरापदम् ।
भवन्ति तानि तीर्थानि येषु कृष्णकथाः शुभाः ॥२९
रतिः कृष्णकथायाञ्च यस्याश्रुपुलकोद्गमः ।
मनो निमग्नं तत्रैवसभक्तः कथितो बुधैः ॥३०
पुत्रदारादिकं सर्वं जानाति यो हरेरिव ।
आत्मना मनसावाचासभक्तः कथितो बुधैः ॥३१
दयास्तिसर्वजीवेषु सर्वं कृष्णमयं जगत् ।
यो जानातिमहाज्ञानी सभक्तो वैष्णवोत्तमः ॥३२
निर्ज्जने तीर्थसम्पर्केनिःसङ्गा ये मुदान्विताः ।
ध्यायन्तेचरणाम्भोजंश्रीहरेस्तेचवैष्णवाः ॥३३
शश्वद्ये नाम गायन्ति गुणंमन्त्रंजपन्तिच ।
कुर्वन्तिश्रवणंगाथावदन्ति तेऽतिवैष्णवाः ॥३४
लब्ध्वा मिष्टानि वस्तूनि प्रदातुं हरये मुदा ।
तूर्णं यस्य मनो हृष्टं सभक्तो ज्ञानिनां वरः ॥३५
यन्मनो हरिपादाब्जे स्वप्ने ज्ञानं दिवानिशम् ।
पूर्वकर्म्मोपभोगश्च बहिर्भुङ्क्ते स वैष्णवः ॥३६

कथा का श्रवण कर अन्त में वे निरापद होते हुए जाया करते हैं जिनमें शुभ श्री कृष्ण की कथा रहती है वे तीर्थ रूप ही होते हैं ॥२९॥ जिसकी कृष्ण की कथा में रति हो और उसका श्रवण कर पुलकों का (रोमों) उद्गम हो जाता है तथा उसी में उनका मन निमग्न होता है उसी को बुधगण के द्वारा भक्त कहा जाता है ॥३०॥ जो अपने पुत्र और स्त्री आदि सभी परिजनों को हरि की ही भाँति जानता है और आत्मा-मन तथा वाणी से ऐसा समझता है वह ही बुधजनों के द्वारा हरि का सच्चा भक्त कहा जाता है ॥३१॥ जिसके हृदय में समस्त जीवों के प्रति दया का भाव होता है और जो इस सम्पूर्ण जगतीतल को कृष्णमय ही देखता है वह महाज्ञानी-वैष्णवों में परम श्रेष्ठ भक्त होता

है ।।३२।। किसी एकान्त निर्जन स्थान में अथवा किसी तीर्थ स्थान में आसक्ति से रहित होकर परमानन्द से युक्त होते हुए श्री हरि के चरण कमल का ध्यान किया करते हैं वे ही सच्चे वैष्णव होते हैं ।।३३।। जो निरन्तर भगवान् के नाम का गान किया करते हैं तथा श्री हरि के गुण और मन्त्र का जप करते हैं। उनकी पवित्र एवं शुभ गाथा का श्रवण करते हैं या उसे अपने मुख से कहते हैं वे ही वस्तुतः वैष्णव होते हैं ।।३४।। जो मिष्ट वस्तुओं को प्राप्त कर प्रसन्नता से हरि के लिये उन्हें समर्पित करने को जिनका शीघ्र ही मन हृष्ट होता है वह ऐसा भक्त ज्ञानियों में परम श्रेष्ठ माना जाता है ।।३५।। जिसका मन स्वप्न में श्री हरि के चरण कमल में संलग्न रहा करता है और रात दिन जिन्हें ज्ञान रहता है तथा अपने पूर्वजन्मों में किये हुए कर्मों के उपभोग को बाहिर भोगा करते हैं वे ही परमवैष्णव होते हैं ।।३६।।

५९—श्रीदामा-राधाकलहवर्णनम्

येन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् ।
यं यं विधाय भूमौ स जगामस्वालयं विभुः ।।१
भारावतरणोपायं दुष्टानाञ्च वधोद्यमम् ।
सर्वं ते कथयिष्यामि सुविचार्य्य विधानतः ।।२
अधुना गोपवेशश्च गोकुलागमनं हरे ।
राधा गोपालिका येन निबोध कथयामि ते ।।३
शङ्खचूड़वधे पूर्वं संक्षेपात् कथितं श्रुतम् ।
अधुना तत् सुविस्तार्य्यं निबोधकथयामिते ।।४
श्रीदाम्नः कलहश्चैव बभूव राधया सह ।
श्रीदामा शङ्खचूड़श्च शापात्तस्या बभूवह ।।५
राधां शशाप श्रीदामा याहि योनिञ्च मानवीम् ।
व्रजे व्रजाङ्गना भूत्वा विचरस्व च भूतले ।।६
भीता श्रीदामशापात् सा श्रीकृष्णं समुवाच ह ।

गोपीरूपं भविष्यामि श्रीदामा मां शशापह ।
किमुपायं करिष्यामि वद मां भयभञ्जन ।।७

इस अध्याय में श्रीदामा और राधा के कलह का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा—जिसके द्वारा प्रार्थित होकर श्रीकृष्ण इस मही-तल में आये थे और इस भूतल में जो-जो करके वह विभु पुनः अपने धाम को चले गये थे । भूमि के भार के हटाने का उपाय तथा दुष्टों के वध करने का उद्यम जो भी कुछ उन्होंने यहाँ किया था वह सम्पूर्ण विचार कर विधि पूर्वक तुमको बताऊंगा ।।१-२।। इस समय हरि के गोप का वेष और हरि का गोकुल में आगमन तथा जिस कारण से राधा गोपालिका हुई थी वह सम्पूर्ण तुम से कहता हूं उसे आप भली भाँति समझलो ।।३।। शंखचूड़ के वध में मैंने पहिले संक्षेप से कह दिया था जिसको आपने सुन ही लिया है । अब मैं उसे सुविस्तृत रूप से कहता हूँ उसे तुम समझलो ।।४।। श्रीदामा का कलह राधा के साथ हुआ था । वही श्रीदामा फिर श्रीराधा के शाप से शंखचूड़ हुआ था ।।५।। राधा ने श्रीदामा को शाप दे दिया था कि तू मानव की योनि में जाकर जन्म ग्रहण करले । श्रीदामा ने भी राधा को शाप दे दिया था कि तुम व्रज में ब्रजांगना होकर भूतल में विचरण करो ।।६।। श्रीदामा के शाप से भयभीत होकर राधा श्रीकृष्ण से बोली । मैं गोपी के स्वरूप होऊंगी-ऐसा श्रीदामा ने मुझको शाप दे दिया है । हे भयों के भंजन करने वाले ! मुझे आप कृपाकर बताइये अब मैं क्या उपाय करूंगी ।।७।।

त्वया विना कथमहं धरिष्यामि स्वजीवनम् ।
क्षणेन मे युगशतंकालंनाथ त्वयाविना ।।८
चक्षुर्निमेषविरहाद्भवेद्दग्धं मनो मम ।
शरत्पार्वणचन्द्राभ सुधापूर्णाननं तव ।।९
तव दास्यं विनानाथ न जीवामिक्षणंविभो ।
कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वाबोधयामाससुन्दरीम् ।।१०
वक्षसि प्रेयसीं कृत्वा चकार निर्भयाश्वताम् ।
महीतलं गमिष्यामि वाराहे च वरानने ।।११

मया सार्द्धं भूगमनं जन्मतेऽपि निरूपितम् ।
व्रजं गत्वा व्रजे देवि विहरिष्यामिकानने ।।१२
मम प्राणाधिकात्वञ्च भयंकिन्ते मयि स्थिते ।
तामित्युक्त्वाहरिस्तत्रविररामजगत्पतिः ।।१३
अतो हेतोर्जगन्नाथो जगाम नन्दगोकुलम् ।
किंवा तस्य भयं कस्माद्भयान्तकारकस्य च ।।१४
मायाभयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम् ।
विजहार तया सार्द्धं गोपवेषंविधाय सः ।।१५
सह गोपाङ्गनाभिश्च प्रतिज्ञापालनाय च ।
ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णःसमागत्यमहीतलम् ।।१६
भारावतारणं कृत्वा जगाम स्वालयं विभुः ।।१७

हे नाथ ! आपके बिना मैं अपना जीवन कैसे धारण करूंगी । आपके बिना तो एक क्षण मात्र का समय भी मुझे सौ युग के समान व्यतीत होता है ।।८।। चक्षु के निमेष मात्र के आप के विरह से मेरा मन दग्ध हो जाया करता है । हे शरत्काल के पूर्ण चन्द्र की आभा के तुल्य आभा वाले ! सुधा से परिपूर्ण आपके मुख के दर्शन के बिना मैं कैसे जीवित रहूँगी ? ।।९।। आपके मुख चन्द्र का मैं अपने नेत्र रूपी चकोरों के द्वारा अहर्निश पान किया करती हूँ । हे नाथ ! मेरे आप ही आत्मा मन और प्राण हैं, मैं तो केवल देह वाली ही हूँ । हे नाथ ! हे विभो ! आपके हास्य के अभाव में मैं एक क्षण भी नहीं जीवित रहती हूँ । कृष्ण ने श्रीराधा के इस वचन का श्रवण कर उनको समझाया था ।।१०।। उस समय उस अपनी प्रेयसी राधा को अपने वक्षः स्थल में लगा कर उसको पहिले भयरहित किया था । और फिर कृष्ण ने कहा—हे वरानने ! वराह में मैं महीतल में जाऊंगा ।।११।। हे देवि ! मेरे ही साथ वराह कल्प में आपका भी भूतल में गमन और जन्म निरूपित किया है । व्रज में जाकर वहां ब्रज के कानन कुञ्ज में विहार करूंगा ।।१२।। इसी हेतु से जगत्नाथ नन्द के गोकुल में गये थे । उन भय के भी अन्त करने वाले को क्या भय हो सकता है और किससे हो सकता है ? ।।१३-१४।।

माया के भय का छल दिखा कर ही वे राधिका के समीप में चले गये थे और वहाँ उनने गोपका वेष धारण कर राधा के साथ ब्रज में स्वच्छन्दता से विहार किया था। ब्रह्मा के द्वारा प्रार्थित कृष्ण ने भूतल में आकर प्रतिज्ञा के पालन करने के लिये गोपांगनाओं के साथ भी विहार किया था ॥१५-१६॥ भाराबतरण करके विभु स्वधाम को चले गये थे ॥१७॥

६०—नारीणां रक्षकनिरूपणम्

केन वा प्रार्थितः कृष्णो महीञ्च केन हेतुना ।
आजगाम जगन्नाथो वद वेदविदांवरः ॥१
पुरा वराहकल्पे सा भाराक्रान्ता वसुन्धरा ।
भृशं बभूव शोकार्त्ता ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥२
सुरैश्चासुरसन्तप्तैर्भृशमुद्विग्नमानसैः ।
सार्द्धं तैस्तां दुर्गमाञ्च जगाम वेधसः सभाम् ॥३
ददर्श तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।
ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सिद्धेन्द्रैः सेवितं मुदा ॥४
अप्सरोगणनृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ।
गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं श्रुतवन्तं मनोहरम् ॥५
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ।
भक्त्यानन्दाश्रुपूर्णं तं पुलकाङ्कितविग्रहम् ॥६
भक्त्या सा त्रिदशैः सार्द्धं प्रणम्य चतुराननम् ।
सर्वं निवेदनञ्चक्रे दैत्यभारादिकं मुने !॥
साश्रुपूर्णा सपुलका तुष्टाव च रुरोद च ॥७

इस अध्याय में नारियों के रक्षक का निरूपण किया जाता है। नारद ने कहा—कृष्ण से किसने प्रार्थना की थी ? हे वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ ! किस हेतु से जगन्नाथ भूतल में आये थे ? यह बताइये । नारायण ने कहा—पहिले वराह कल्प में यह भूतल दुष्टों के द्वारा किये गये पापा-

चारों के भार से एकदम आक्रान्त होगई थी। यह अत्यन्त शोक से उत्पीड़ित होकर ब्रह्माजी के शरण में गई थी ॥१-२॥ उस पृथ्वी के साथ असुरों के द्वारा अत्यन्त सन्तप्त एवं उद्विग्न मन वाले देव भी थे। उन सब के साथ वह ब्रह्मा की उस दुर्गम सभा में पहुँची थी ॥३॥ वहाँ पर ब्रह्म तेज से ज्वलन्त स्वरूप वाले देवों के ईश को उस सभा में संस्थित उसने देखा था जो वहां अनेक ऋषीन्द्र, मुनीन्द्र और सिद्धेन्द्रों के द्वारा आनन्द के साथ वन्दित एवं सेवित विराजमान थे ॥४॥ वहाँ पर अप्सराओं का नृत्य हो रहा था और गन्धर्वों के द्वारा संगीत हो रहा था। ब्रह्मा नृत्य और मनोरम संगीत को सानन्द देख व सुनते हुए मन्दस्मित कर रहे थे ॥५॥ ब्रह्माजी 'कृष्ण'—इन दो अक्षरों का जाप कर रहे थे जोकि साक्षात् परम ब्रह्म का शुभ नाम है और भक्ति के भावावेश से आनन्द के अश्रु उनके नेत्रों में झलक रहे थे तथा आनन्दातिरेक के कारण उनका शरीर पुलकित हो रहा था ॥६॥ ऐसे ब्रह्माजी का दर्शन प्राप्तकर भूमि ने देवों के साथ चतुरानन को भक्ति पूर्वक प्रणाम किया था और हे मुने! दैत्यों के द्वारा जो महान् भार से उसे उत्पीडन हो रहा था वह सब उनसे उसने निवेदन किया था। उस समय वह भूमि अपना दुःख निवेदन करती हुई आँखों में आँसू भरलाई थी—उसका शरीर रोमाञ्चित हो गया ब्रह्मा जी का स्तवन कर रोपड़ी थी ॥७॥

तामुवाच जगद्धाता कथं स्तौषि च रोदिषि ॥८

कथमागमनं भद्रे वद भद्रं भविष्यति।
सुस्थिरा भव कल्याणि भयं किन्ते मयिस्थिते ॥९

आश्वास्य पृथिवीं ब्रह्मा देवान् पप्रच्छ सादरम्।
कथमागमनंदेवायुष्माकं ममसन्निधिम् ॥१०

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा देवा ऊचुः प्रजापतिम्।
भाराक्रान्ता च वसुधा दैत्यग्रस्ता वयं प्रभो ॥११

त्वमेव जगतां स्रष्टा शीघ्रं नो निष्कृतिं कुरु।
गतिस्त्वमस्या भोब्रह्मन् निर्वृतिं कर्त्तुमर्हसि ॥१२

पीडिता येन भारेण पृथिवीयं पितामह ।
वयं तेनैव दुखार्त्तास्तद्भारहरणं कुरु ।।१३

देवानां वचनं श्रुत्वा पप्रच्छ तां जगद्विधिः ।
दूरीकृत्य भयं वत्से सुखंतिष्ठममान्तिके ।।१४

उस भूमि से ब्रह्माजी ने कहा—हे पृथिव ! तू क्यों मेरी स्तुति कर रही है और क्यों रुदन करती है ? ।।८।। हे भद्रे ! यहां तेरा आगमन कैसे हुआ—यह बताओ । तेरा कल्याण होगा । हे कल्याणि ! सुस्थिर हो जाओ, मेरे विद्यमान होते हुए तुझे क्यों इतना भय हो रहा है ? ।।९।। ब्रह्मा ने इस तरह पृथ्वी का आश्वासन करके फिर देवताओं से आदर के साथ पूछा था—हे देवगण ! मेरी सन्निधि में आपका आगमन किस कारण से इस समय हुआ है ? ।।१०।। ब्रह्मा जी के इन वचनों को सुनकर देवों ने प्रजापति से कहा—हे प्रभो यह पृथ्वी तो भार से दबी हुई है और हम दैत्यों से ग्रस्त हो रहे हैं ।।११।। हे ब्रह्मन् ! आप ही सृजन करने वाले हैं । आप हमारे दुःखों की शीघ्र ही निष्कृति करने की कृपा करें । आप ही इस बिचारी भूमि के उद्धारक हैं । हे प्रभो ! अब आप निवृ ति करने के योग्य होते हैं ।।१२।। हे पितामह ! जिस भार के कारण यह पृथ्वी उत्पीड़ित हो रही है हम लोग भी उसी से दुःखार्त्त हो रहे हैं । अतएव इसके भार का हरण आप करने की कृपा करें ।।१३।। देवों के इन वचनों का श्रवण कर जगत् के विधाता ने उस पृथ्वी से कहा—हे वत्से ! भय को दूर हटाकर तू मेरे पास सुखपूर्वक रह जा ।।१४।।

केषां भारमशक्ता त्वं सोढु पद्मविलोचने ।
अपनेष्यामि तं भद्रे भद्रं ते भविता ध्रुवम् ।।१५

तस्य सा वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्वपीड़नम् ।
पीड़िता येन येनैवं प्रसन्नवदनेक्षणा ।।१६

श्रृणुतातप्रवक्ष्यामिस्वकीयां मानसीं व्यथाम् ।
विनाबन्धुंसविश्वासं नाहंकथितुमुत्सहे ।।१७

स्त्रीजातिरबला शश्वद्रक्षणीया स्वबन्धुभिः ।
जनकस्वामिपुत्रैश्च गर्हितान्यैश्चनिश्चितम् ॥१८
त्वया सृष्टा जगत्तात न लज्जा कथितुं मम ।
येषां भारैः पीडिताहं श्रूयतां कथयामिते ॥१९
कृष्णभक्तिविहीना ये ये च तद्भक्तिनिन्दकाः ।
येषां महापातकिनामशक्ताभारवाहने ॥२०
स्वधर्म्माचारहीना ये नित्यकृत्यविवर्जिताः ।
श्राद्धहीनाश्च वेदेषु तेषां भारेणपीडिता ॥२१

ब्रह्माने कहा—हे पद्म के तुल्य नेत्रों वाली ! तू किनका भार सहन करने में अशक्त हो रही है ? मैं उस भार को दूर कर दूंगा । भद्रे ! तेरा निश्चय ही कल्याण होगा ॥१५॥ उस पृथ्वी ने उस ब्रह्मा के बचन को सुनकर फिर अपनी जो पीड़ा थी वह सब उनको सुनादी थी कि वह प्रसन्नत मुख और नेत्रों वाली पृथिवी जिस-जिस के द्वारा सताई जा रही थी ॥१६॥ पृथ्वी ने कहा—हे तात ! आप सुनिये, मैं अब अपनी हार्दिक व्यथा आपको बताती हूँ । मैं विश्वास युक्त किसी बन्धु के बिना कुछ भी कहने का साहस नहीं कर रही हूँ ॥१७॥ स्त्री जाति अबला हुआ करती है । यह सर्वदा अपने बन्धुओं के द्वारा ही निरन्तर रक्षा करने के योग्य हुआ करती है । जो अपने पिता और स्वामी के पुत्रों के द्वारा गर्हित होती है वह अन्यों के द्वारा तो निश्चित रूप से ही गर्हित हो जाया करती है ॥१८॥ हे तात ! आपने ही मेरा सृजन किया है अतः आप मेरे जनक हैं । आप से कहने में मुझे कुछ भी लज्जा नहीं है । जिनके भार से मैं पीड़ित हो रही हूँ उसे आप श्रवण करिये , मैं आप से निवेदन करती हूँ ॥१९॥ जो जो कृष्ण की भक्ति से विहीन हैं और उनके भक्तों की निन्दा करने वाले हैं । उन महा पातकियों के बोझ को मैं वहन करने मैं असमर्थ हो रही हूं ॥२०॥ जो अपने धर्म के आचारों से रहित हैं और नित्य कृत्यों के नहीं करने वाले हैं तथा श्रद्धा से हीन हैं और वेदों के नहीं मानने वाले हैं उन दुष्टों के भार से मैं अत्यन्त सताई हुई हूँ ॥२१॥

पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः ।
ये न कुर्वन्ति तेषाञ्च न शक्ता भारवाहने ॥२२
ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यविहीनकाः ।
निन्दकागुरुदेवानां तेषां भारेण पीड़िता ।।२३
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ।
विश्वासघ्नः स्थाप्यहारी तेषां भारेण पीड़िता ।।२४
कल्याणयुक्तनामानि हरेर्नामैकमङ्गलम् ।
कुर्वन्ति विक्रय ये वै तेषां भारेण पीड़िता ।।२५
जीवघाती गुरुद्रोही ग्रामयाजी च लुब्धकः ।
शवदाही शूद्रभोजी तेषां भारेण पीड़िता ।।२६
पूजायज्ञोपवासानां व्रतानां नियमस्य च ।
येये मूढ़ा निहन्तारस्तेषां भारेण पीड़िता ।।२७
सदा द्विषन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् ।
हरिहरिकथाभक्तितेषां भारेण पीड़िता ।।२८
शङ्खचूड़स्य भारेण पीड़िताऽहं यथा विधे ।
ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेणपरिपीड़िता ।।२९
इत्येवं कथितं सर्वमनाथायाः निवेदनम् ।
त्वया यदि सनाथाहं प्रतीकारं कुरु प्रभो ।।३०

जो लोग माता-पिता-गुरु-स्त्री–पुत्र और पोष्य के पोषण को नहीं किया करते हैं उनके भार के वहन करने में मैं अशक्त हूँ ।।२२।। हे तात ! जो मिथ्या वाद करने वाले हैं और दया तथा सत्य से विहीन होते हैं एवं गुरु तथा देवताओं की निन्दा करने वाले हैं उनका बोझ मैं सहन नहीं कर सकती हूँ और पीड़ा का अनुभव करती हूँ ।।२३।। जो मित्रों के साथ द्रोह करने वाले हैं–अपने साथ किये हुए उपकार को नहीं मानने वाले हैं तथा झूठी गवाही देने वाले हैं और विश्वास का घात किया करते हैं-स्थापन करने के योग्य का हरण करने वाले हैं उनके भार से मैं पीड़ित हूं ।।२४।। कल्याण से युक्त नामों को तथा एक मंगल स्वरूप हरि के नाम का जो विक्रय करते हैं उनके भार से मैं

महा पीड़ित हूँ ॥२५॥ जीवों के घात करने वाले—गुरु से द्रोह करने वाले—लुब्धक-शव का दाह कराने वाले—शूद्र के यहां भोजन करने वाले जो लोग हैं उसके इन युक्त कुकृत्यों के कारण मैं उनके भार से पीड़ित हो रही हूं ॥२६॥ पूजा, यज्ञ, उपवास, व्रत, नियम इनके जो हनन करने वाले हैं उनके भार से भी मैं सताई हुई हो रही हूँ ॥२७॥ जो पापी सदा ही गो, विप्र, सुर, और वैष्णवों से द्वेष किया करते हैं और हरि की कथा तथा हरि की भक्ति से द्वेष रखते हैं उनके भार से भी मैं पीड़ित रहती हूँ ॥२८॥ हे विधे ! जैसी मैं शंखचूड़ के भार से पीड़ित हूँ वैसे ही उससे भी अत्यधिक दैत्यों के भार से मैं पीड़ित हो रही हूं ॥२९॥ हे प्रभो ! यही मुझ अनाथा का सब निवेदन है जो मैंने आपसे कह दिया है। यदि आप मुझे अपने द्वारा सनाथा बनाना चाहते हैं तो इस मेरे उत्पीड़न का प्रतीकार करिये तभी मैं नाथ वाली हो सकूंगी ॥३०॥

इत्येवमुक्त्वा वसुधा रुरोद च मुहुर्मुहुः ।
ब्रह्मा तद्रोदनं दृष्ट्वा तामुवाच कृपानिधिः ।
भारं तवापनेष्यामि दस्यूनामप्युपायतः ॥३१
उपायतोऽपि कार्य्याणि सिद्धन्त्येव वसुन्धरे ।
कालेन भारहरणं करिष्यति मदीश्वरः ॥३२
ब्रह्मा पृथ्वीं समाश्वास्य देवताभिस्तया सह ।
जगाम जगतां धाता कैलासं शङ्करालयम् ॥३३
गत्वा तमाश्रमं रम्यं ददर्श शङ्करं विधिः ।
वसन्तमक्षयवटमूले च सरितस्तटे ॥३४
व्याघ्रचर्म्मपरीधानं दक्षकन्यास्थिभूषणम् ।
त्रिशूलपट्टिशधरं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥३५
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तस्थावग्रे स धूर्जटेः ।
पृथिव्या सुरसंघैश्च सार्द्धं प्रणतकन्धरैः ॥३६
उत्तस्थौ शङ्करः शीघ्रं भक्त्या दृष्ट्वा जगद्गुरुम् ।
ननाम मूर्ध्ना सम्प्रीत्या लब्धवानाशिषं ततः ॥३७

प्रणेमुर्देवताः सर्वाः शङ्करं चन्द्रशेखरम् ।
प्रणनाम धरा भक्त्या चाशिषं युयुजे हरः ॥३८
वृत्तान्तं कथयामास पार्वतीशं प्रजापतिः ।
श्रुत्वा नतमुखस्तूर्णं शङ्करो भक्तवत्सलः ॥३९
भक्तापायं समाकर्ण्य पार्वतीपरमेश्वरौ ।
बभूवतुस्तौ दुःखार्त्तौ बोधयामास तौ विधिः ॥४०
ततो ब्रह्मा महेशश्च सुरसंघान् वसुन्धराम् ।
गृहं प्रस्थापयामास समाश्वास्य प्रयत्नतः ॥४१
ततो देवेश्वरौ तूर्णमागत्य धर्म्ममन्दिरम् ।
सह तेन समालोच्य प्रजग्मुर्भवनं हरे ॥४२

इस प्रकार से पृथ्वी ने कहकर वह बार-बार रुदन करने लगी थी। कृपा के निधि ब्रह्माजी ने उसका रुदन देखकर उससे कहा था कि मैं दस्युओं के द्वारा होने वाला तेरा भार उपाय से दूर कर दूंगा ॥३१॥ हे वसुन्धरे ! सभी कार्य अवश्य सिद्ध ही होते हैं। मेरे प्रभु समय आने पर तेरे सम्पूर्ण भार का अपनयन कर देंगे ॥३२॥ ब्रह्माजी ने इस तरह से पृथ्वी का समाश्वासन कर दिया था और फिर उस भूमि और देवों के साथ वे जगतों के धाता शंकर के निवास स्थान कैलास गये थे ॥३३॥ ब्रह्मा ने वहां रम्य आश्रम में पहुच कर शिव का दर्शन किया था जो कि नदी के तट पर अक्षय वट के मूल में संस्थित थे ॥३४॥ भगवान् शिव भोलानाथ व्याघ्र के चर्म का परिधान किये हुए थे और दक्ष कन्या सती के अस्थियों का भूषण धारण कर रक्खा था-त्रिशूल तथा पट्टिश नाम वाले आयुध धारण किये हुए थे। आपके पांच मुख थे और तीन नेत्रों से समन्वित आप का वपु था ॥३५॥ इस प्रकार की शोभा से सम्पन्न शिव के सामने इसी बीच में ब्रह्मा जी पृथिवी और देवों के साथ वहाँ खड़े हुए थे। उस समय समस्त देवता नीचे की ओर अपना शिर झुका रहे थे ॥३६॥ जब शंकर ने जगत् के गुरु ब्रह्माजी को देखा तो वे भक्ति पूर्वक शीघ्र खड़े होगये थे और उनको मस्तक झुका कर प्रणाम किया तथा उनसे आशीर्वाद ग्रहण किया था ॥३७॥ फिर सभी देवों ने

शंकर को प्रणाम किया था और पृथिवी ने भक्ति भाव से शंकर को प्रणाम करके आर्शीवाद प्राप्त किया था।३८।प्रजापति ने पार्वती के स्वामी से सब वृत्तान्त कह सुनाया था। यह सुनकर भक्तों पर प्रेम करने वाले शिव शीघ्र ही नतमस्तक हो गये थे अर्थात् उन्होंने अपना मस्तक नीचे को झुका लिया था ।।३९।। पार्वती और परमेश्वर दोनों ने भक्तों के इस विघ्न को सुन कर वे दोनों ही स्वयं बड़े दुःखित हुए थे और विधाता ने उन दोनों को समझाया था ।।४०।। इसके अनन्तर ब्रह्मा और शंकर दोनों ने देवों के समुदाय को तथा वसुन्धरा को समाश्वासन देकर उन के गृह को प्रयत्न पूर्वक भेज दिया था ।।४१।। इसके पश्चात् देव और ईश्वर दोनों शीघ्र धर्म मन्दिर में आकर उसके साथ विचार करके फिर हरि के भवन में गये थे ।।४२।।

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम् ।
वयं यस्य कलाभेदाः कलांशकलया सुराः ।।४३
मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानुषाश्च चराचराः ।
कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन ।।४४
त्वामक्षयमक्षरं वा राममव्यक्तमीश्वरम् ।
अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम् ।।४५
अणिमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम् ।
सिद्धिज्ञंसिद्धिदंसिद्धिरूपं क स्तोतुमीश्वरः ।।४६
वेदेऽनिरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः ।
वेदेऽनिर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुञ्च कः क्षमः ।।४७
यस्य सम्भावनीयं यद्गुणरूपं निरञ्जनम् ।
तदतिरिक्तञ्च स्तवनं किमहं स्तौमि निर्गुणम् ।।४८
ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं षट्श्लोकोक्तं महामुने ।
पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाञ्छितञ्च लभेन्नरः ।।४९

ब्रह्मा ने कहा—मैं सबके ईश्वर-कमला के पति-अच्युत एवं परम शान्त स्वरूप वालों के चरणों में प्रणाम करता हूं जिसके कला के भेद हम है और कला की भी अंश कला से ये समस्त देवता हुए हैं ।।४३।।

सम्पूर्ण मनुगण—मुनीन्द्र वर्ग-मनुष्यों के समुदाय सभी हे निरञ्जन ! आप से ही कला के कलांश की कला से ही समुत्पन्न हुए हैं ।।४४।। शंकर ने कहा—आप अक्षय-अक्षर-अव्यक्त हैं अथवा राम-ईश्वर हैं। आप अनादि-आदि-आनन्द के रूप वाले और सबके स्वरूप वाले हैं। आप अणिमा आदि सिद्धियों के कारण तथा सभी के कारण रूप हैं। आप सिद्धियों के ज्ञाता-सिद्धियों के प्रदान करने वाले एवं सिद्धि के ही रूप वाले हैं ऐसे आप का स्तवन करने में कौन समर्थ है अर्थात् किसी की शक्ति नहीं है जो आपकी स्तुति कर सके ।।४५-४६।। धर्म ने कहा—वेद में जिसका ठीक निरूपण नहीं किया गया है वह वस्तु विलक्षण पुरुषों के द्वारा वर्णन करने के योग्य होती है किन्तु जो वेद में भी अनिर्वचनीय है उसे निर्वचन करने कौन की क्षमता है ? अर्थात् किसी की भी नहीं है ।।४७।। जिसका जो सम्भावना करने के योग्य जो गुण और रूप है उससे अतिरिक्त निरञ्जन तथा निर्गुण का मैं क्या स्तवन करूं ? ।।४८।। हे महामुने ! ब्रह्मा आदि का उक्त यह छै श्लोकों का स्तोत्र है। इसका पाठ करके मनुष्य दुःखों से मुक्त हो जाता है और अपना अभीष्ट प्राप्त किया करता है ।।४९।।

देवानां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच हरिःस्वयम् ।
गोलोकंयातयूयञ्चयामि पश्चात्श्रियासह ।५०
नरनारायणौ तौ द्वौ श्वेतद्वीपनिवासिनौ ।
एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देवीसरस्वती ।।५१
अनन्तो मम माया च कार्त्तिकेयो गणाधिपः ।
सा सावित्री वेदमाता पश्चाद् यास्यति निश्चितम् ।।५२
तत्राहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभी राधया सह ।
तत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः ।।५३
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासकृत् ।
ममैवान्ये कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयःस्मृताः ।।५४
कलाकलांशकलया सुरासुरनरादयः ।
गोलोकं यात यूयञ्च कार्य्यसिद्धिर्भविष्यति ।।५५

वयं पश्चाद्गमिष्यामः सर्वेषामिष्टसिद्धये ।
इत्युक्तेव सभामध्ये विरराम हरिः स्वयम् ॥५६

इस प्रकार से देवों का स्तवन सुनकर हरि ने स्वयं उनसे कहा था कि आप सब गोलोक धाम में जाओ पीछे से मैं भी लक्ष्मी को साथ लेकर वहाँ आता हूं ॥५०॥ वे दोनों नर और नारायण श्वेत द्वीप के निवास करने वाले हैं। ये गोलोक को जांयगे तथा देवी सरस्वती भी जायगी ॥५१॥ अनन्त-मेरी माया-स्वामि कार्त्तिकेय-गणों के स्वामी गणेश-वह वेदों की माता सावित्री ये सभी पीछे से वहाँ जांयगे और निश्चत रूप से पहुचेंगे ॥५२॥ वहां पर छै भुजा वाला कृष्ण गोपियों और राधा के साथ और कमला से युक्त होकर सुनन्द आदि से आवृत होकर पहुँचूंगा ॥५३॥ नारायण और मैं कृष्ण जो श्वेत द्वीप में निवास करने वाले हैं–ये सब मेरे ही ब्रह्मा आदि देव गण तथा अन्य कला के रूप हैं। ॥५४॥ सुर-असुर और नर आदि सब कला के कलांश की कला स्वरूप हैं। आप सब गोलोक में चलिये। कार्य की सिद्धि हो जायगी ॥५५॥ हम पीछे से जांयगे जिससे सब के अभीष्टों की सिद्धि हो जावेगी। सभा के मध्य में इतना ही कहकर हरि ने स्वयं विराम ग्रहण कर लिया था ॥५६॥

६१–ब्रह्मादिकृत-लक्ष्मीनारायणस्तोत्रम् ।

ध्यात्वा स्तुत्वा च तिष्ठन्तो देवास्ते तेजसः पुरः ।
ददृशुस्तेजसो मध्ये शरीरं कमनीयकम् ॥१
तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको
भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे ।
भवनमरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन
सुदृढसुपरिपक्वां देहि भक्तिञ्च दास्यम् ॥२
भवजलधिनिमग्नं चित्तमीनो मदीयो
भ्रमति सततमस्मिन् घोरसंसारकूपे ।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूपमपनय
तव भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥३

तव निजजन सार्द्धं सङ्गमो मे सदैव
भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्णखङ्ग ।
तव चरणसरोजस्थानदानैकहेतुर्जनुषि
जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥४
इत्येवं स्तवनं कृत्वा परिपूर्णैकमानसाः ।
कामपूरस्य पुरतस्तस्थुस्ते राधिकापतेः ॥५
सुराणां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच कृपानिधिः ।
हितं तथ्यञ्च वचनं स्मेराननसरोरुहः ॥६

इस अध्याय में ब्रह्मादि के द्वारा किया हुआ लक्ष्मी नारायण के स्तोत्र का वर्णन किया जाता है। ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन् ! आपके चरण रूपी सरोज में मेरा मन रूपी भौंरा प्रेम और भक्ति से निरन्तर भ्रमण करता रहे। हे ईश ! शान्ति की औषध के द्वारा भवन (जन्म) और मरण के रोग से रक्षा करो और परम सुदृढ एवं पादार विन्द में परिपक्व अपनी भक्ति तथा दास्य प्रदान करो ॥१-२॥ श्री शंकर ने कहा—हे भगवन् ! यह मेरा मन रूपी मीन इस संसार रूपी सागर में निमग्न हो रहा है और निरन्तर ही इस घोर संसार के कूए में चक्कर खाया करता है। अत्यन्त बुरा जो सृष्टि एवं सहार रूपी विषय है उसको हटा दो और अपने चरण रूपी कमल की भक्ति प्रदान करो ॥३॥ धर्म्म ने कहा—हे भगवन् ! आपके जो अपने परम सेवक भक्त हैं उनके ही साथ सदा ही मेरा संगम होवे जो कि विषयों के छेदन करने में तीक्ष्ण खङ्ग के समान हैं। यह आपके भक्त जन का साथ आपके चरण कमल के स्थान को देने का मुख्य कारण है। मैं तो यही चाहता हूँ कि प्रत्येक जन्म में अपने पादार विन्द में भक्ति भाव होने का दान मुझे प्रदान करें ॥४॥ नारायण ने कहा—परिपूर्ण एक मन बाले उन ने इस प्रकार से भगवान् की स्तुति करके वे सब काम-नाओं को पूर्ण करने वाले राधिका के पति के आगे स्थित हो गये थे। ॥५॥ देवों का स्तवन श्रवण करके कृपा के निधि स्मित युक्त मुख कमल वाले श्री हरि परम हित और तथ्य वचन उनसे कहने लगे थे॥६॥

स्वागतं स्वागतं तुभ्यं मदीये हि पुरेऽधुना ।
शिवाश्रयाणां कुशलं प्रष्टुं युक्तमसाम्प्रतम् ॥७
निश्चिन्ता भवतात्रैव का चिन्ता वो मयि स्थिते ।
स्थितोऽहं सर्वजीवेषु प्रत्यक्षोऽहं स्तवेन वै ।
युष्माकं यदभिप्रायं सर्वं जानामि निश्चितम् ॥८
शुभाशुभञ्च यत् कर्म काले खलु भविष्यति ।
महत् क्षुद्रञ्चयत् कर्म्मसर्वं कालकृतंसुरा ॥६
स्वस्वकाले च तरवः फलिनः पुष्पिणः सदा ।
परिपक्वफलाः काले कालेऽपक्वफलान्विताः ॥१०
सुखं दुःखं विपत् सम्पत् शोकश्चिन्ता शुभाशुभम् ।
स्वकर्म्मफलनिष्ठञ्च सर्वं काले ह्युपस्थितम् ॥११
न हि कस्य प्रियः को वा विप्रियो वा जगत्त्रये ।
काले कार्य्यवशात् सर्वे भवन्त्येवाप्रिया। प्रियाः ॥१२

श्री भगवान् ने कहा—आप सब लोगों का इस समय जो मेरे इस पुर में समागमन हुआ है उसका मैं बार-बार स्वागत करता हूं। आप सभी लोग मंगल के आश्रय वाले हैं अतएव आप से कुशल प्रश्न करना तो युक्त नहीं प्रतीत होता है ॥७॥ आप लोग वहां पर ही चिन्ता से रहित होकर स्थित रहें मेरे विद्यमान होते हुए आपको कोई भी चिन्ता नहीं होनी चाहिए। मैं तो समस्त जीवों में स्थित रहता हूं। स्तवन होने से ही वहां पर ही प्रत्यक्ष हो जाया करता हूं। आप लोगों का जो भी हार्दिक अभिप्राय है उस सबको निश्चित रूप से मैं जानता हूं ॥८॥ शुभ और अशुभ जो भी कर्म होता है वह काल आने पर निश्चय हुआ करेगा। हे देवगण! कर्म चाहे बड़ा हो या क्षुद्र हो वह सभी कर्म काल कृत हुआ करता है ॥६॥ अपने-अपने समय पर ही वृक्ष पुष्प तथा फल वाले हुआ करते हैं। समय पर ही वे अपरिपक्व फल से युक्त तथा परिपक्व फलों से समन्वित होते हैं। ॥१०॥ इसी तरह सुख-दुःख-सम्पत्ति-विपत्ति-शोक-चिन्ता शुभ और अशुभ अपने कर्म के फल में ही रहने वाले होते हैं और सब काल के आने पर उपस्थित हुआ

करते हैं ॥११॥ इस त्रिभुवन में न तो कोई किसी का प्रिय है और न कोई किसी का विप्रिय होता है। काल-काल पर सभी कार्य वश होने के कारण से प्रिय और अप्रिय हुआ करते हैं ॥१२॥

राजानो मनवः वृथ्व्यां दृष्टा युष्माभिरत्र वै ।
स्वकर्म्मफलपाकेन सर्वं कालवशङ्गताः ॥१३
युष्माकमधुनाचैव गोलोके यत्क्षणं गतम् ।
पृथिव्यां तत्क्षणेनैव सप्तमन्वन्तरं गतम् ॥१४
इन्द्राः सप्त गतास्तत्र देवेन्द्रश्चाष्टमोऽधुना ।
कालचक्रं भ्रमत्येवं मदीयञ्च दिवानिशम् ॥१५
इन्द्राश्च मनवो भूपाः सर्वे कालवशङ्गताः ।
कीर्त्तिःपृथिवी पुण्यमघं कथामात्रावशेषितम् ॥१६
अधुनापि च राजानो दुष्टाश्च हरिनिन्दकाः ।
बभूवुर्बहवो भूमौ महाबलपराक्रमाः ॥१७
सर्वे यास्यन्ति कालेन ग्रासं कालान्तकस्य च ।१८
उपस्थितोऽपि कालोऽयं वातो वाति निरन्तरम् ।
वह्निर्दहति सूर्य्यश्च तपत्येव ममाज्ञया ॥१९
व्याधयः सन्ति देहेषु मृत्युश्चरति जन्तुषु ।
वर्षन्त्येते जलधराः सर्वे देवा ममाज्ञया ॥२०

आप लोगों ने देखा है कि राजा लोग और मनुगण पृथ्वी में अपने कर्मों के फलों के पाक से हुआ करते हैं क्योंकि सभी तो काल के वशङ्गत रहा करते हैं ॥१३॥ आप लोग इस गोलोक धाम में इस समय ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि एक ही क्षण व्यतीत हुआ है किन्तु पृथिवी में इसी यहाँ के क्षणमात्र के काल में सात मन्वन्तर व्यतीत हो गये हैं ॥१४॥ इतने समय में ही सात इन्द्र हो गये हैं और इस समय में वहाँ यह आठवाँ देवेन्द्र वहाँ पर स्थित है। इस तरह से यह मेरा काल चक्र रात दिन भ्रमण करता रहता है ॥१५॥ इन्द्र-मनु और राजा लोग सभी काल के वश में रहने वाले होते हैं। केवल उनकी कीर्त्ति-पृथ्वी-पुण्य-पाप और कहानी मात्र ही शेष रह जाया करती हैं ॥१६॥ इस

समय में भी राजा लोग बड़े दुष्ट और हरि की निन्दा करने वाले हैं और महान् बल तथा पराक्रम वाले भूमि में हुए थे ॥१७॥ ये सभी समय आने पर कालान्तक के ग्रास हो जाँयगे। अर्थात् काल के मुख में जाकर नष्ट हो जाँयगे ॥१८॥ यह काल भी उपस्थित है और वायु निरन्तर वहन करता है-अग्नि दहन करता है और सूर्य मेरी आज्ञा से तपता रहता है ॥१९॥ व्याधियाँ शरीरों में विचरण किया करती हैं और जन्तुओं में मृत्यु घूमता रहता है। ये जलधर वर्षा किया करते हैं। ये सभी मेरी आज्ञा से देवगण भी अपना २ काम किया करते हैं ॥२०॥

ब्रह्मण्यनिष्ठा विप्राश्च तपोनिष्ठास्तपोधनाः।
ब्रह्मर्षयो ब्रह्मनिष्ठा योगनिष्ठाश्च योगिनः ॥२१
ते सर्वे मद्भयाद्भीताः स्वधर्म्मकर्म्मतत्पराः।
मद्भक्ताश्चैव निःशङ्काः कर्म्मनिर्मूलकारकाः ॥२२
देवाः कालस्य कालोऽहं विधाता धातुरेव च।
संहारकर्त्तुः संहर्त्ता पातुः पाता परात्परः ॥२३
ममाज्ञयाऽयं संहर्त्ता नाम्ना तेन हरः स्मृतः।
त्वं विश्वसृक् सृष्टिहेतोः पाता धर्म्मस्य रक्षणात् ॥२४
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वेषामहमीश्वरः।
स्वकर्म्मफलदाताहं कर्म्मनिर्मूलकारकः ॥२५
अहं यान् संहरिष्यामि कस्तेषामपि रक्षिता।
यानहं पालयिष्यामि तेषां हन्ता न कोऽपि च ॥२६
सर्वेषामपि संहर्त्ता स्रष्टा पाताहमेव च।
नाहं शक्तश्च भक्तानां संहारे नित्यदेहिनाम् ॥२७

ये जो विप्र हैं जिनकी निष्ठा परम ब्रह्मण्य होती है और ये तपस्वी लोग तपस्या में अपनी पूर्ण निष्ठा रखते हैं—ब्रह्मर्षि लोग ब्रह्म निष्ठ—योगी लोग योग में निष्ठा रखने वाले रहा करते हैं ये सभी मेरे भय से भीत होकर ही अपने-अपने धर्म तथा कर्म में तत्पर रहा करते हैं। सबका तात्पर्य यही है कि सभी मेरे भय के कारण ही अपने-अपने कर्मों

में सदा संलग्न रहा करते हैं अगर कोई निर्भय है तो वे केवल मेरे भक्त गण ही हैं जिन्होंने कर्मों का निर्मूलन कर दिया है ॥२१-२२॥ हे देवताओ ! मैं काल का भी काल और धाता का भी विधाता हूँ। जो संहार के करने वाला है उसका भी संहारक एवं पालन करने वाले का पालन करने वाला पर से भी पर मैं ही हूं ॥२३॥ मेरे ही आदेश से यह संहार के करने वाले हैं जिनको नाम से हर कहा गया है। आप विश्व का सृजन करने वाले हैं धर्म की रक्षा करने से सृष्टि के पाता हैं। ॥२४॥ ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्रतम तृण पर्यन्त सबका मैं ही एक ईश्वर हूँ। सबके किये हुए कर्मों के फलों को देने वाला तथा कर्मों के निर्मूलन करने वाला भी मैं ही हूँ ॥२५॥ मैं जिनका संहार करूंगा उनकी रक्षा करने वाला अन्य कौन है ? अर्थात् कोई भी समर्थ रक्षक नहीं है। जिनका पालन-रक्षण मैं करूंगा उनका हनन करने वाला भी कोई नहीं हो सकता है ॥२६॥ सर्व का सृजन-पालन और संहरण करने वाला एक मात्र मैं ही हूँ। मैं मेरे नित्य देह धारी भक्तों का संहार करने में मैं भी समर्थ नहीं हूँ ॥२७॥

तदाऽचिरं तेनश्यन्तियथा वह्नौतृणानि च।
न कोऽपि रक्षितातेषां मयि हन्तर्य्युपस्थिते ॥२८

यास्यामि पृथिवीं देवा यात यूयं स्वमालयम्।
यूयं चैवांशरूपेण शीघ्रं गच्छत भूतलम् ॥२९
इत्युक्त्वा जगतां नाथो गोपानाहूय गोपिकाः।
उवाच मधुरं सत्यं वाक्यं तत्समयोचितम् ॥३०

गोपा गोप्यश्च शृणुत नन्दव्रजं परम्।
वृषभानुगृहं क्षिप्रं गच्छ त्वमपि राधिके ॥३१
वृषभानुप्रिया साध्वी नाम्ना गोपीकलावती।
सुबलस्य सुता सा च कमलांशसमुद्भवा ॥३२
पितॄणां मानसी कन्या धन्या मान्या च योषिताम्।
पुरा दुर्वाससः शापाज्जन्म तस्या व्रजे गृहे ॥३३

तस्यां लभस्व त्वं जन्म शीघ्रं नन्दव्रजं व्रज ।
त्वामहं बालरूपेण गृह्णामि कमलानने ।।३४
त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम् ।
न किञ्चिदावयोर्भिन्नमेकाङ्गः सर्वदेव हि ।।३५

जो लोग मेरे भक्तों से द्वेष करने वाले तथा ब्राह्मण-गौ-ऋतु और देवों को सताते हैं या उनकी निश्चित रूप से हिंसा किया करते हैं तो वे शीघ्र अग्नि में तृण की भांति नष्ट हो जायेंगे। मेरे हनन करने वाले के उपस्थित होने पर फिर उनका कोई भी रक्षा करने वाला नहीं हो सकता है ।।२८।। मैं स्वयं पृथिवी में जाऊंगा। हे देवगण ! आप लोग अपने निवास स्थान को जाओ और आप सब अपने अंश रूप से शीघ्र भूतल में जाओ ।।२६।। इतना यह कहकर जगत् के नाथ ने गोपों और गोपिकाओं को बुलाकर उनसे उस समय के उचित-सत्य एवं मधुर वचन कहा ।।३०।। हे गोपो ! गोपियो ! मेरी आज्ञा का श्रवण कर आप लोग परम श्रेष्ठ नन्द व्रज में चले जाओ। हे राधिके ! आप भी वृषभानु के घर में जाकर जन्म ग्रहण करो। वृषभानु की प्रिया बहुत ही साध्वी है और उसका शुभ नाम गोपी कलावती है। वह सुबल की कन्या है और वहाँ कमला के अंश से समुत्पन्न हुई है ।।३१-३२।। वह पितृ गया की मानसी कन्या है जो स्त्रियों में परम धन्य तथा मान्य है। पहिले दुर्वासा के शाप से उसका ब्रज के गृह में जन्म हुआ है ।।३४।। आप शीघ्र नन्द ब्रज में जाकर उसमें जन्म ग्रहण करो। हे कमलानने ! तुमको मैं बालरूप से ग्रहण करूंगा। हे राधे ! आप मेरी प्राणों से भी अधिक प्यारी है और मैं भी आपका प्राणाधिक प्रिय हूँ। हम दोनों में कुछ भी भिन्नता नहीं है। सर्वदा ही हम तुम दोनों का एकांग ही है अर्थात् एक ही रूप है ।।३५।।

श्रुत्वैवं राधिका तत्र रुरोद प्रेमविह्वला ।
पपौ चक्षुश्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं हरेर्मुने ।।३६
जनुर्लभत गोपाश्च गोप्यश्च पृथिवीतले ।
गोपानामुत्तमानाञ्च मन्दिरे मन्दिरे शुभे ।।३७

एतस्मिन्नन्तरे सर्वे ददृशू रथमुत्तमम् ।
मणिरत्नेन्द्रसारेण हीरकेण विभूषितम् ॥३८
श्वेतचामरलक्षेण शोभित दर्पणायुतैः ।
सूक्ष्मकाशायवस्त्रेण वह्निशुद्धेन भूषितम् ॥३६
सद्रत्नकलसानाञ्च सहस्रेण सुशोभितम् ।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥४०
पार्षदप्रवरैर्युक्तं शतकुम्भमयं शुभम् ।
तेजः स्वरूपमतुलं शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥४१
तत्रस्थं पुरुषं श्यामसुन्दरं कमनीयकम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥४२
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥४३

गोलोक विहारी श्रीकृष्ण के इन वचनों का श्रवण कर वहाँ पर राधिका प्रेम से अत्यन्त विह्वल होकर रुदन करने लगी थी। हे मुने ! वह श्री राधिका अपने नेत्र रूपी चकारों के द्वारा श्री हरि के मुख रूपी चन्द्र का पान करने लगी थी अर्थात् एकटक होकर मुख देख रही थी ॥३६॥ फिर गोपों ने और गोपियों ने पृथ्वी तल में ब्रज भूमि में उत्तम गोपों के शुभ मन्दिर-मन्दिर में जन्म ग्रहण किया था ॥३७॥ इसी बीच में सबने वहाँ एक परम उत्तम रथ को देखा था जो कीमती मणियों और अति श्रेष्ठ रत्नों तथा हीरों से विशेष रुप से निर्मित किया हुआ था ॥३८॥ उस परम विभूषित रथ में लाखों श्वेत चमर और सहस्रों दर्पणों की शोभा हो रही थी तथा सूक्ष्म काषाय वस्त्र से, जोकि वह्नि के तुल्य शुद्ध था, वह रथ विभूषित था ॥३६॥ उस रथ में सद्रत्नों के विरचित सहस्रों कलश लगे हुये थे और पारिजात की पुष्प मालाओं से वह सुशोभित होरहा था ॥४०॥ उस रथ के साथ श्रेष्ठ पार्षद थे तथा वह सुवर्ण से परिपूर्ण अतुल तेज का स्वरूप और सौ सूर्यों की प्रभा के समान प्रभा वाला था ॥४१॥ उस सुन्दरतम रथ में कमनीय स्वरूप वाले श्याम सुन्दर पुरुष विराजमान थे जो शंख, चक्र,

गदा और पद्म को हाथों में धारण किये हुए तथा पीताम्बर पहिने हुए थे ॥४२॥ वह महा पुरुष किरीट—कुण्डल और बनमाला से समलंकृत थे उनका सुन्दर शरीर चन्दन-अगुरु, कस्तूरी-कुंकुम के द्रव से चर्चित हो रहा था ॥४३॥

देवीं तद्वामतो रम्यां शुक्लवर्णां मनोहराम् ।
वेणुवीणाग्रन्थहस्तां भक्तानुग्रहकातराम् ॥४४
विद्याधिष्ठातृदेवीश्च ज्ञानरूपां सरस्वतीम् ॥४५
अपरां दक्षिणे रम्यां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां सस्मितां सुमनोहराम् ॥४६
अवरुह्य रथात्तूर्णं सस्त्रीकः सह पार्षदैः ।
जगाम च सभां रम्यां गोपगोपीसमन्विताम् ॥४७
देवा गोपाश्च गोप्यश्चोत्तस्थुः प्राञ्जलयो मुदा ।
सामवेदोक्तस्तोत्रेणकृतेनचसुरर्षिभिः ॥४८
गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे ।
दृष्ट्वा च परमाश्चर्य्यंते सर्वे विस्मयं ययुः ॥४९

उस रथ में विराजमान महादिव्य पुरुष के वाम भाग में परम रम्य-शुक्ल वर्ण वाली- वेणु, वीणा और ग्रन्थ हाथों में धारण करने वाली तथा अपने भक्तों पर अनुग्रह करने में अत्यन्त आतुर होने वाली मनोहर देवी विराजित हो रही थी ॥४४॥ यह विद्या की अधिष्ठात्री देवी-ज्ञान के स्वरूप वाली सरस्वती थी ॥४५॥ इस महादिव्य पुरुष के दक्षिण भाग में दूसरी देवी विराजमान थी जो परम रम्य—शरत्काल के चन्द्र के तुल्य प्रभा वाली थी। इनके शरीर का वर्ण तपे हुए सुवर्ण के समान था और यह मन्दस्मित से युक्त अत्यन्त मनोहर थीं ॥४६॥ यह महान् दिव्य पुरुष रथ से सपत्नीक एवं पार्षदों के साथ उतर कर उस गोप और गोपियों से समन्वित रम्य सभा में गये थे ॥४७॥ वहां उनको आते हुए देखकर समस्त देवता—गोप और गोपियाँ उठकर खड़े होगये थे। और बड़े ही हर्ष के साथ हाथ जोड़े हुए सब ने सामवेद में कहे हुए स्तोत्र से उनकी स्तुति की थी ॥४८॥ वह नारायण देव जाकर श्री कृष्ण के

शरीर में विलीन हो गये थे । यह देखकर सबको परम आश्चर्य हुआ था ॥४६॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भमयाद्रथात् ।
अवरुह्य स्वयं विष्णुः पाता च जगतां पतिः ॥५०
आजगाम चतुर्बाहुः वनमालाविभूषितः ।
पीताम्बरधरः श्रीमान् सस्मितः सुमनोसरः ।
सर्वालङ्कारशोभाढ्यः सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥५१
उत्तस्थुस्ते च तं दृष्ट्वा तुष्टवुः प्रणता मुने ।
स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेश्वर विग्रहे ॥५२
ते दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं विस्मयं परमं ययुः ।
संविलीने हरेरङ्गे श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥५३
एतस्मिन्नन्तरे तूर्णपाजगाम त्वरान्वितः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशो नाम्नासङ्कर्षणः स्मृतः ।
सहस्रशीर्षा पुरुषः शतसूर्य्यसमप्रभः ॥५४
आगतं तुष्टुवुः सर्वे दृष्ट्वा तं विष्णुविग्रहम् ।
स चागत्य नतस्कन्धस्तुष्टावराधिकेश्वरम् ।
सहस्रमूर्द्धभिर्भक्त्या प्रणनाम च नारद ॥५५
आवाञ्च धमपुत्रौ द्वौ नरनारायणाभिधौ ।
लीनोऽहं कृष्णपादाब्जे बभूव फाल्गुनो वरः ॥५६
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च तस्थुरेकत्र तत्र वै ॥५७

इसी बीच में वहाँ सुवर्ण मय रथ से उतर कर जगतों के स्वामी एवं पालन करने वाले विष्णु स्वयं वहाँ पर आये थे जिनकी चार भुजाऐं थीं और वे वन माला से समलंकृत थे। विष्णु भगवान् भी पीताम्बर धारी थे। श्री से सम्पन्न यह मन्द हास्य से युक्त एवं अत्यन्त मनोहर थे। यह समस्त सुन्दर अलंकारों से विभूषित और करोड़ों सूर्यों की प्रभा के तुल्य प्रभा वाले थे ॥५०-५१॥ इनको देखकर हे मुने! सब खड़े हो गये और प्रणत होकर सब ने इनकी स्तुति की थी। वह भी श्री राधिका के स्वामी श्रीकृष्ण में वहाँ आकर विलीन हो गये थे

।।५२।। उन सब ने इस महान् आश्चर्य पूर्ण घटना को देखकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त किया था। जब कि ये दोनों महा पुरुष श्वेत द्वीप के निवास करने वाले हरि अंग में विलीन होगये थे ।।५३।। इसी अनन्तर में शुद्ध स्फटिक मणि के समान पुरुष नाम से जो संकर्षण कहे जाते हैं, त्वरा से युक्त होते हुए वहाँ आये थे। यह पुरुष सहस्र शिर वाले तथा सूर्यों के तुल्य प्रभा वाले थे ।।५४।। आये हुए विष्णु के विग्रह वाले उनको देखकर सब ने वहां उनका स्तवन किया था। उसने वहाँ आकर अपना कन्धा झुकाकर श्री राधिकेश्वर की स्तुति की थी। हे नारद! सहस्र शिरों के द्वारा भक्ति पूर्वक उस पुरुष ने राधिकेश्वर को प्रणाम किया था ।।५५।। उन्होंने कहा—हम दोनों धर्म के पुत्र हैं और नर तथा नारायण नामों वाले हैं। मैं कृष्ण के चरण कमल में लीन होगया था और श्रेष्ठ फाल्गुन हुआ था ।।५६।। वहाँ पर ब्रह्मा-ईश-शेष और धर्म एक स्थान पर स्थित हो गये थे ।।५७।।

एतस्मिन्नन्तरे देवा ददृशू रथमुत्तमम्।
स्वर्णसारविकारञ्च नानारत्नपरिच्छदम् ।।५८

मणीन्द्रसारसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम्।
श्वेतचामरसंयुक्तं भूषितं दर्पणायुतैः ।।५९

सद्रत्नसारकलससमूहेन विराजितम्।
पारिजातिप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ।।६०

सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोयायि मनोरमम्।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोषकरं परम् ।।६१

मुक्तामाणिक्यवज्राणां समूहेन समुज्ज्वलम्।
चित्रपुत्तलिकापुष्पसरःकाननचित्रितम् ।।६२

देवानां दानवानाञ्च रथानां प्रवरं मुने।
यत्नेन शङ्करप्रीत्या निर्मितं विश्वकर्म्मणा ।।६३

पञ्चाशद्योजनोद्ध्वंञ्च चतुर्योजनविस्तृतम्।
रतितल्पसमायुक्तैः शोभितं शतमन्दिरैः ।।६४

इसी बीच में देवों ने एक उत्तम रथ को देखा था। जो सुवर्ण के सार से बना हुआ था और अनेक प्रकार के रत्नों के परिच्छेद से युक्त था ॥५८॥ यह रथ उत्तम मणियों से युक्त था और वह्नि के समान शुद्ध वस्त्र से अन्वित था। यह रथ श्वेत चमरों से भूषित और सहस्रों दर्पणों से समलंकृत था ॥५९॥ इस सुन्दर रथ में सद्रत्नों के कलशों के समूह लगे हुए थे और पारिजात के पुष्पों की बनी हुई मालाओं के समूह से यह रथ सुशोभित हो रहा था ॥६०॥ यह रथ सहस्र चक्रों से युक्त था इस की गति का वेग मन के तुल्य शीघ्रगामी था। यह बहुत ही मनोरम था। इस रथ की प्रभा जो थी वह ग्रीष्म काल में मध्याह्न काल के सूर्य की प्रभा को भी पराजित कर देने वाली थी ॥६१॥ यह रथ मुक्ता-माणिक्य और वज्रों (हीरों) के समूह से बहुत ही समुज्ज्वल था। इस में चित्रकारी बहुत सुन्दर हो रही थी जिसमें पुतली-पुष्प-सर और कानन चित्रित हो रहे थे ॥६२॥ हे मुने ! यह रथ देवों-दैत्यों और दानवों के सम्पूर्ण रथों में सर्व श्रेष्ठ रथ था जिसको शंकर की प्रीति से विश्व कर्मा ने बड़े ही यत्न के साथ निर्मित्त किया था ॥६३॥ यह रथ पचास योजन ऊंचा और चार योजन विस्तार वाला था। इसमें रति की शय्या थी और यह सैकड़ों मन्दिरों से भी शोभा वाला था ॥६४॥

तत्रस्थां ददृशुर्देवीं रत्नालङ्कारभूषिताम् ।
प्रदग्धस्वर्णसाराणां प्रभामोषकरद्युतिम् ।
तेजःस्वरूपामतुलां मूलप्रकृतिमीश्वरम् ॥६५
सहस्रभुजसंयुक्तां नानायुधसमन्विताम् ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम् ॥३६
गण्डस्थलकपोलाभ्यां सद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलाम् ।
रत्नेन्द्रसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥६७
वह्निशुद्धांशुकानातिज्वलितेन समुज्ज्वलाम् ।
सिंहपृष्ठसमारूढां सुताभ्यां सहितां मुदा ॥६८
अवरुह्य रथात्तूर्णं श्रीकृष्णं प्रणनाम च ।
सुताभ्यां सह सा देवी समुवास वरासने ॥६९

गणेशः कार्त्तिकेयश्च नत्वा कृष्णं परात्परम् ।
ननाम शङ्कर धर्म्ममनन्तं कमलोद्भवम् ॥७०
उत्तस्थुरारात्ते देवा दृष्ट्वा तौ त्रिदशेश्वरौ ।
आशिषञ्च ददुर्देवा वासयामासुः सन्निधौ ।
ताभ्यां सह सदालापं चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥७१

उस परम दिव्य एवं अत्यन्त सुरम्य रथ में विराजमान देवी को सब ने देखा था जो देवी रत्नों के अलंकारों से विभूषित थी। उसकी द्युति तपे हुए उत्तम सुवर्ण की प्रभा को भी पराजित करने वाली थी। यह देवी तेज के स्वरूप वाली-अनुपम-मूल प्रकृति ईश्वरी थी ॥६५॥ यह अनेक प्रकार के उत्तम आयुधों से युक्त सहस्र भुजाओं वाली थी। इसका मुख कमल मन्द हास्य से परम प्रसन्नता से पूर्ण था और यह भक्तों पर अनुकम्पा करने के लिये अत्यन्त कातर हो रही थी ॥६६॥ इसके गण्ड स्थल एवं कपोल भाग अच्छे रत्नों के निर्मित कुण्डलों से उज्ज्वल हो रहे थे। यह देवी श्रेष्ठ रत्नों के द्वारा विरचित मञ्जीरों की ध्वनि से रञ्जित हो रही थी ॥६७॥ अग्नि के समान परम शुद्ध एवं दीप्यमान वस्त्र से समुज्ज्वल-सिंह के पृष्ठ पर संस्थित तथा दोनों अपने पुत्रों के सहित यह देवी रथ से शीघ्र उतर कर श्रीकृष्ण के समीप गई और उनकोप्रणाम कर अपने पुत्रों के सहित वहां एक श्रेष्ठ आसन पर संस्थित होगई थीं ॥६८-६९॥ इसके अनन्तर स्वामि कार्त्तिकेय और गणनाथ गणेश ने परात्पर श्रीकृष्ण को प्रणाम किया था और शंकर-धर्म-अनन्त और ब्रह्माजी को भी प्रणाम किया था ॥७०॥ उस समय समीप में स्थित सब देवता उठकर खड़े हो गये थे और उन दोनों देवों को आशीर्वाद देकर अपने समीप में उन्हें बिठा लिया था। फिर उन दोनों के साथ हे नारद ! देवों ने प्रसन्नता से पूर्ण होकर सदा लाप करना आरम्भ कर दिया था ७१॥

तस्थुर्देवाः सभामध्ये देवी च पुरतो हरेः ।
गोपागोप्यश्च बहुशो बभूवुर्विस्मयाकुलाः ॥७२

उवाच कमलां कृष्णःस्मेराननसरोरुहः ।
त्वं गच्छ भीष्मकगृह नानारत्नसमन्वितम् ॥७३
वैदर्भ्या उदरे जन्म लभ देवि सनातनि ।
तव पाणि ग्रहीष्यामि गत्व हं कुण्डिनं सति ॥७४
ता देव्यः पार्वतींदृष्ट्वासमुत्थाप्यत्वरान्विताः ।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम् ॥७५
विप्रेन्द्र पार्वती लक्ष्मीर्वागधिष्ठातृदेवता। ।
तस्थुरेकासने तत्र सम्भाष्य च यथोचितम् ॥७६
ताश्च सम्भाषयामासुः सम्प्रीत्या गोपकन्यकाः ।
ऊषुर्गोपालिकाः काश्चिन्मुदा तासाञ्च सन्निधौ ॥७७

इसके उपरान्त सभा के मध्य में हरि के सामने समस्त देवता और वह देवी संस्थित हो गये थे। उस समय अधिकतर गोपी और सब विस्मय से आकुल होगये थे ॥७२॥ मन्दस्मित से युक्त मुख कमल से बोले—हे देवि ! तुम भीष्मक के गृह में जाओ जो नाना रत्नों से समन्वित है ॥७३॥ हे देवि ! वहां तू वैदर्भी के उदर में जन्म ग्रहण कर । हे सनातनि ! हे सति मैं कुण्डित पुर में जाकर तेरा पाणिग्रहण करूंगा ॥७४॥ उन देवियों ने पार्वती को देखकर शीघ्रता से युक्त होकर उनको उठाकर रम्य रत्नों के सिंहासन पर ईश्वरी को विराजमान कराया था ॥७५॥ हे विप्रेन्द्र ! वहाँ एक ही आसन पर यथोचित सम्भाषण करके पार्वती-लक्ष्मी और वाणी की अधिष्ठात्री देवता सरस्वती ने अपनी स्थिति की थी ॥७६॥ उनसे गोपों की कन्याओं ने बड़ी प्रीति से सम्भाषण किया था । उन में कुछ गोपालिका उनकी सन्निधि में आनन्द पूर्वक बैठ गई थीं ॥७७॥

श्रीकृष्णः पार्वतीं तत्र समुवाच जगत्पतिः ।
देवि त्वमंशरूपेण व्रज नन्दव्रजं शुभे ॥७८
उदरे च यशोदायाः कल्याणि नन्दरेतसा ।
लभ जन्म महामाये सृष्टिसंहारकारिणि ॥७९

ग्रामे ग्रामे च पूजां ते कारयिष्यामि भूतले ।
कृत्स्ने महीतले भक्त्या नगरेषु वनेषु च ॥८०
तत्राधिष्ठातृदेवीं त्वां पूजयिष्यन्ति मानवाः ।
द्रव्यैर्नानाविधैर्दिव्यैर्बलिभिश्चमुदान्विताः ॥८१
तव भूस्पर्शमात्रेण सूतिकामन्दिरेशिवे ।
पिता मां तत्र संस्थाप्य त्वामादाय गमिष्यति ॥८२
कंसदर्शनमात्रेणागमिष्यसि शिवान्तिकम् ।
भारावतारणं कृत्वा गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ॥८३

जगत् के स्वामी श्रीकृष्ण वहां पर पार्वती से बोले—हे देवि ! हे शुभे ! आप भी अंश रूप से नन्द व्रज में जाओ ॥७८॥ हे कल्याणि आप नन्द के वीर्य से यशोदा के उदर में हे महामाये ! हे सृष्टि के संहार के करने वाली ! जन्म ग्रहण करो ॥७९॥ मैं आपकी पूजा प्रत्येक ग्राम में करा दूंगा । बड़ी भक्ति के साथ सम्पूर्ण भूतल में नगरों में और वनों में सर्वत्र आपकी पूजा होगी ॥८०॥ वहाँ पर मनुष्य अधिष्ठात्री देवी आपको अनेक प्रकार के द्रव्यों से और बलियों के द्वारा प्रसन्नता के साथ पूजेंगे ॥८१॥ हे शिवे ! आपके भूमि के स्पर्श मात्र से सूतिका मन्दिर में पिता मुझको वहां संस्थापित कर तुमको लेकर आयेंगे ॥८२॥ फिर कंस का दर्शन भर करके आप शिव के समीप में आजायँगी । मैं भी भूमि के भार को उतार कर अपने आश्रम को चला जाऊँगा ॥८३॥

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णमुवाच च षड़ाननम् ।
अंशरूपेण वत्स त्वं गमिष्यसि महीतलम् ॥८४
जाम्बवत्याश्च गर्भे च लभ जन्म सुरेश्वर ।
अंशेन देवताः सर्वा गच्छन्तु धरणीतलम् ॥८५
भारहारं करिष्यामि वसुधायाश्च निश्चितम् ॥८६
इत्युक्त्वा राधिकानाथस्तस्थौ सिंहासने वरे ।
तस्थुर्देवाश्च देव्यश्च गोपागोप्यश्चनारद ॥८७
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समुत्तस्थौ हरेः पुरः ।
पुटाञ्जलिर्जगन्नाथमुवाच विनयान्वितः ॥८८

अवधानं कुरु विभो किङ्करस्य निवेदने ।
आज्ञां कुरु महाभाग कस्य कुत्र स्थलं भुवि ।।८६
भर्ता पातोद्धारकर्ता सेवकानां प्रभुः सदा ।
स भृत्यः सर्वदा भक्त ईश्वराज्ञां करोति यः ।।६०
के देवाः केन रूपेण देव्यश्च कलया कया ।
कुत्र कस्याभिधेयश्च विषयश्च महीतले ।।६१
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जगत्पतिः ।
यस्य यत्रावकाशञ्च कथयामि विधानतः ।।६२

यह कहकर श्री हरि शीघ्र ही षड़ानन से बोले—हे वत्स ! तुम महीतल में अंश रूप से जाओगे ।।८४।। वहाँ हे सुरेश्वर ! तुम जाम्बवती के गर्भ में जन्म प्राप्त करो । समस्त देवगण भी अपने २ अंश से धरणी तल में जावें ।।८५।। मैं निश्चय ही अब पृथिवी के भार का हरण करूंगा ।।८६।। इतना कह कर राधिका के नाथ श्रेष्ठ सिंहासन पर स्थित होगये थे । हे नारद ! देवगण-देवियां-गोप और गोपियां भी सब बैठ गये थे ।।८७।। इसी अन्तर में ब्रह्मा हरि के आगे उठकर खड़े हुए थे और हाथ जोड़कर विनय से युक्त होकर बोले-।।८८।। ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! इस सेवक के निवेदन पर ध्यान देने की कृपा करें । हे महाभाग ! भूमि में किस का किस स्थल में रहना होगा ? आप तो प्रभु हैं और सदा भरण करने वाले और सेवकों के उद्धार करने वाले हैं और वह भक्त सर्वदा आपका भृत्य है जो ईश्वर की आज्ञा का पूर्ण पालन किया करता है ।।८६-६०।। कौन से देवता किस रूप से और देवियां किस कला से कहाँ पर महीतल में किस नाम वाला विषय (देश) इन का होगा ।।६१।। ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर जगत्पति ने उत्तर दिया था कि जिसका जहाँ पर अवकाश है उसे मैं विधान के साथ बताता हूँ ।।६२।।

कामदेवो रौक्मिणेयो रती मायावतीसती ।
शम्बरस्यगृहे या च छायारूपेणसंस्थिता ।।६३

त्वं तस्य पुत्रो भविता नाम्नानिरुद्ध एव च ।
भारती शोणितपुरे बाणपुत्री भविष्यति ।।९४
अनन्तो देवकीगर्भाद्रोहिणेयो जगत्पतिः।
मायया गर्भसङ्कर्षान्नाम्ना सङ्कर्षणः स्मृतः ।।९५
कालिन्दी सूर्य्यतनया गङ्गांशेन महीतले ।
अर्द्धांशेनैव तुलसी लक्ष्मणा राजकन्यका ।।९६
सावित्री वेदमाता च नाम्ना नाग्नजिती सती ।
वसुन्धरा सत्यभामा शैव्या देवी सरस्वती ।।९७
रोहिणी मित्रविन्दा च भविताराजकन्यका ।
सूर्य्यपत्नीरत्नमालाकलया च जगद्गुरोः ।।९८

श्रीकृष्ण ने कहा—कामदेव रौक्मणेय है और रती मायावती सती है जो छाया रूप से शम्बर के घर में संस्थित है ।।९३।। तुम उसके पुत्र होओगे जिसका नाम अनिरुद्ध होगा । शोणित पुर में बाण की पुत्री भारती होगी ।।९४।। अनन्त देवकी के गर्भ से रोहिणेय अर्थात् रोहिणी के पुत्र होंगे जगत्पति माया से गर्भ के संकर्षण इस नाम से कहे गये हैं ।।९५।। सूर्य की तनया कालिन्दी गङ्गा के अंश से महीतल में होगी और आधे अंश से तुलसी राजकन्या लक्ष्मणा होगी ।।९६।। सावित्री वेदों की माता नाग्नजिती के नाम वाली सती होगी-वसुन्धरा सत्यभामा होगी और सरस्वती देवी शैव्या होंगी ।।९७।। रोहिणी और मित्रविन्दा जगत् के गुरु की कला से सूर्य पत्नी रत्न माला राज कन्याऐं हो-वेंगी ।।९८।।

स्वाहांशेन सुशीला च रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो नव ।
दुर्गार्द्धांशा जाम्बवती महिषीणां दश स्मृताः ।।९९
अर्द्धांशेन शैलपुत्री यातु जाम्बवतो गृहम् ।
कैलासे शङ्कराज्ञा च बभूव पार्वतीं प्रति ।।१००
कैलाशगामिनंविष्णुंश्वेतद्वीपनिवासिनम् ।
आलिङ्गनंदेहिकान्ते नास्ति दोषोममाज्ञया ।।१०१

कथं शिवाज्ञा तां देवीं बभूव राधिकापते ।
विष्णोःसम्भाषणे पूर्वं श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥१०२
पुरा गणेशं द्रष्टुं च प्रजग्मुः सर्वदेवताः ।
श्वेतद्वीपात् स्वयं विष्णुर्जगाम शङ्करस्तवात् ॥१०३
दृष्ट्वा गणेशं मुदितः समुवास सुखासने ।
सुखेन ददृशुः सर्वे त्रैलोक्यमोहनं वपुः ॥१०४
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं वरम् ।
सुन्दरं श्यामरूपञ्च नवयौवनसंयुतम् ॥१०५
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् ।
रत्नालङ्कारशोभाढ्यं स्मेराननसरोरुहम् ॥१०६
रत्नसिंहासनस्थञ्च पार्षदैः परिवेष्टितम् ।
वन्दितञ्च सुरैः सर्वैः शिवेन पूजितं स्तुतम् ॥१०७

स्वाहा के अंश से सुशील रुक्मिणी आदि जो स्त्रियाँ होंगी तथा दुर्गा के अर्द्ध अंश से जाम्बवती होगी इस तरह दश महिषी कही गई हैं ॥९९॥ शैल पुत्री आधे अंश से जाम्बवान् के घर में जावें। कैलास में पार्वती को शंकर की आज्ञा होगई थी ॥१००॥ कैलास के गामी श्वेत द्वीप निवासी विष्णु को हे देवि ! अपना आलिंगन दो। हे कान्ते ! मेरी आज्ञा से इसमें कोई भी दोष नहीं है–यह शिव की आज्ञा हुई थी ॥१०१॥ ब्रह्मा ने कहा—हे राधिकापते ! उस देवी को यह शिव की आज्ञा कैसे हुई थी पहिले जब तक श्वेत द्वीप निवासी विष्णु का कोई सम्भाषण ही नहीं हुआ था ? ॥१०२॥ श्री कृष्ण ने कहा—पहिले गणेश का दर्शन करने के लिये सभी देवता वहाँ गये थे। श्वेत द्वीप से शंकर के स्तवन से स्वयं विष्णु भी गये थे ॥१०३॥ गणेश को देखकर परम हर्षित होकर सुखासने स्थित होगये थे। वहाँ सब ने सुख पूर्वक त्रैलोक्य के मोहन कर देने वाले शरीर को देखा था ॥१०४॥ श्री कृष्ण कुण्डलों को धारण करने वाले तथा किरीट मस्तक पर पहिने हुए थे। पीताम्बर का इनका परिधान था। परम श्रेष्ठ एवं सुन्दर तम श्याम स्वरूप था और नवीन यौवन से समन्वित थे ॥१०५॥ इनके शरीर में

चन्दन अगुरु कस्तूरी कुंकुम का द्रव लगा हुआ था। श्री कृष्ण उस समय में रत्नों के आभूषणों से समलंकृत और मन्द मुसकान से युक्त आपका मुख कमल था। वहाँ रत्नों के सिंहासन पर जब ये विराजमान थे तो पार्षदों के द्वारा सेवित हो रहे थे। समस्त देवगण के द्वारा बन्दित एवं शिव के द्वारा स्तुत थे ॥१०६-१०७॥

तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं प्रसन्नवदनेक्षणा।
मुखमाच्छादयामास वाससा व्रीड़या सती ॥१०८
अतीवसुन्दरं रूपं दर्शं दर्शं पुनः पुनः।
ददर्श मुखमाच्छाद्य निमेषरहिता सती ॥१०९
परमाद्भुतवेशञ्च सस्मिता वक्रचक्षुषा।
सुखसागरसंमग्ना बभूव पुलकाञ्चिता ॥११०
क्षणं ददर्श पञ्चास्यं शुभ्रवर्णं त्रिलोचनम्।
त्रिशूलपरिघधरं कन्दर्पकोटिसुन्दरम् ॥१११
क्षण ददर्श श्यामं तमेकास्यञ्च द्विलोचनम्।
चतुर्भुजं पीतवस्त्रं वनमालाविभूषितम् ॥११२

उस समय प्रसन्न वदन और नेत्रों वाली पार्वती ने उनका दर्शन किया तो दर्शन किया तो सती को लज्जा उत्पन्न हो गई थी और उस ने वस्त्र से आपने मुख को ढक लिया था॥१०८॥सती ने निमेष रहित होकर श्याम सुन्दर के अत्यन्त सुन्दर रूप को बार-बार मुख ढांककर देखा था ॥ १०९॥ श्याम सुन्दर के परम अद्भुत वेष को मन्द मुस्कान वाली सती ने वक्र नेत्र से देखकर वह रोमाञ्चित होकर सुख के समुद्र में निमग्न होगई थी ॥११०॥ फिर एक क्षण के लिए शुभ्र वर्ण वाले तथा पाँच मुखों से युक्त-तीन नेत्र धारी—त्रिशूल और पट्टिश आयुधों वाले करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर को देखा था और पुनः एक क्षण में उन एक मुख वाले द्विलोचन—चतुर्भुज—पीतवस्त्रधारी-वन माला से भूषित श्याम सुन्दर को देखा था ॥१११-११२॥

एकं ब्रह्ममूर्त्तिभेदमभेदं वा निरूपितम्।
दृष्ट्वा बभूव सा माया सकामा विष्णुमायया ॥११३

मदंशाश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
ताभ्यामौत्कर्षपाताच्च श्रेष्ठः सत्वगुणात्मकः ॥११४
दृष्ट्वा तं पार्वती भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहा ।
मनसा पूजयामास परमात्मानमीश्वरम् ॥११५
दुर्गान्तराभिप्रायञ्च बुबुधे शङ्करः स्वयम् ।
सर्वान्तरात्मा भगवानन्तर्यामी जगत्पतिः ॥११६
दुर्गाञ्च निर्ज्जनोभूय तामुवाच हरः स्वयम् ।
बोधयामास विविधं हितं तथ्यमखण्डितम् ॥११७
निवेदनं मदीयञ्च निबोध शैलकन्यके ।
शृङ्गारं देहि भद्रं ते हरये परमात्मने ॥११८
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ब्रह्मैकञ्च सनातनम् ।
देवको भेदरहितो विषयान्मूर्त्तिभेदकः ॥११९
सर्वेषां प्रकृतिर्ह्येका माता त्वं सर्वरूपिणी ।
स्वयम्भुवश्च वाणीत्वं लक्ष्मीर्नारायणोरसि ॥१२०
मम वक्षसि दुर्गात्वं निबोधाध्यात्मकं सति ।
शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच सुरेश्वरी ॥१२१

उस सती ने उन दोनों को एक ही ब्रह्मा की मूर्ति बिना भेद वाली-तथा भिन्न रूप में स्थित निरूपित किया था और वह देखकर माया से सकाम होगई थी ॥११३॥ ये तीनों देव मेरे ही अंश हैं और ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वर इन नाम वाले हुए हैं । उन दोनों में उत्कर्ष के पात से सत्व गुणात्मक परम श्रेष्ठ हैं ।।११४।। पार्वती उनको देखकर भक्ति से रोमाञ्चित शरीर वाली होगई थी और उसने मन से परमात्मा ईश्वर का अर्चन किया था ॥११५॥ शंकर ने स्वयं दुर्गा के अन्तराभि-प्राय को समझ लिया था क्योंकि वे तो सभी के अन्तर्यामी सब की अन्त-रात्मा जगत् के स्वामी थे ॥११६॥ फिर दुर्गा से एकान्त में ले जाकर हर ने स्वयं कहा था और अनेक प्रकार का अखण्डित हित और तथ्य जो था उसे समझा दिया था ॥११७॥ शंकर ने कहा—हे शैलकन्य हे मेरे इस निवेदन को समझलो । तुम परमात्मा हरि के लिये अपना

भद्र श्रृंगार देदो। मैं—ब्रह्मा और विष्णु एक ही सनातन ब्रह्म हैं। ये तीनों देव भेद से रहित हैं केवल विभिन्न विषय होने के कारण ही मूर्ति का भेद है ॥ ११८-११९ ॥ इन सब की माता प्रकृति आप ही हैं जो कि सर्व रूप वाली हैं। स्वयम्भू की वाणी (सरस्वती) आप ही और नारायण के उर में स्थित लक्ष्मी भी तुम ही हो। हे सति! मेरे वक्षः स्थल में आप ही दुर्गा के रूप में हैं। आप अपने आध्यात्मक स्वरूप को समझलो। शिव के इस वचन को सुनकर सुरेश्वरी उनसे बोली—॥१२०—१२१॥

दीनबन्धो कृपासिन्धोतव मामकृपा कथम्।
सुचिरंतपसालब्धो नाथस्त्वंजगतां मया ॥१२२
मादृशीं किङ्करींनाथ न परित्यक्तुमर्हसि।
अयोग्यमीदृशं वाक्यं मां मा वद महेश्वर ॥१२३
तव वाक्यं महादेव पालयिष्यामि सर्वथा।
देहान्तरे जन्मलब्ध्वा भजिष्यामिहरिहर ॥१२४
इत्येवं वचनं श्रुत्वा विरराम महेश्वरः।
उच्चैर्जहासाभयदः पार्वत्यै चाभयं ददौ ॥१२५
तत्प्रतिज्ञापालनाय पार्वती जाम्बवद्गृहे।
लभिष्यति जनुर्धातर्नाम्ना जाम्बवती सती ॥१२६
श्रृणु नाथ प्रवक्ष्यामि किङ्करीवचनं प्रभो।
प्राणा दहन्ति सततमान्दोलयति मे मनः ॥१२७
चक्षुर्निमीलनङ्कर्त्तुमशक्ता तव दर्शने।
त्वया विना कथं नाथ यास्यामि धरणीतलम् ॥१२८
कतिकालान्तरं बन्धो मेलनं मे त्वया सह।
प्राणेश्वर ब्रूहि सत्यं भविष्यत्येव गोकुले ॥१२९
तवदेहार्द्धभागेनकेनवाहं विनिर्मिता।
इदमेवावयोर्भेदो नास्त्यतस्त्वयि मे मनः ॥१३०
ममात्ममानसःप्राणांस्त्वयिसंस्थाप्यकेनवा।
तवात्ममानसःप्राणामयिवासंस्थिताअपि ॥१३१

इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्रैव सुरसंसदि ।
भूयोभूयो रुरोदोच्चैर्धृत्वा तच्चरणाम्बुजे ॥१३२

श्री पार्वती ने कहा—हे दीनों के बन्धो ! हे कृपा के सागर ! आप की मेरे ऊपर यह अकृपा क्यों हुई है ? मैंने तो बहुत काल तक तपस्या करके आपको प्राप्त किया है । हे नाथ ! मुझ जैसी सेविका का आप अब त्याग करने के योग्य नहीं होते हैं । हे महेश्वर ! आप इस अयोग्य ऐसे बचन को मुझसे मत कहो ॥१२३॥ हें महादेव ! मैं आपके आज्ञा वचन को सर्व प्रकार से पालन करूंगी । हे हर ! मैं दूसरे देह में जन्म ग्रहण करके हरि का सेवन कर लूंगी ॥१२४॥ इस पार्वती के वचन का श्रवण कर महेश्वर ने फिर कुछ भी नहीं कहा और वह अभय देने वाले बहुत जोर से हंस पड़े थे तथा पार्वती को अभय का दान दिया था ॥१२५॥ उस प्रतिज्ञा के पालन करने के लिये ही पार्वती फिर जाम्बवान के घर में जन्म ग्रहण करेंगी तथा सती जाम्बवती नाम वाली होंगी ॥१२६॥ राधिका ने कहा—हे प्रभो ! हे नाथ ! किंकरी वचन को कहती है । मेरे प्राण निरन्तर दाह करते हैं और मेरा मन निरन्तर आन्दोलित कर रहा है । मैं तो आपके दर्शन में चक्षुओं का निमीलन करने में भी असमर्थ रहा करती हूँ ॥१२७॥ हे नाथ ! मैं आपके बिना धारणी तल में कैसे जाऊंगी ? ॥१२८॥ हे बन्धो ! कितने काल के पश्चात् मेरा आपके साथ वहाँ मिलना होगा ? हे प्राणों के ईश्वर ! आप गोकुल में कब आयेंगे—यह मुझे सत्य २ बता देने की कृपा करें ॥१२९॥ आपके देह के किस अर्ध भाग से मैं विनिर्मित हुई हूं । इसलिये हम दोनों का कोई भेद नहीं हैं । अतएव मेरा मन आप में ही संलग्न रहता है ॥१३०॥ मेरे आत्मा-मन और प्राण किस ने आप में संस्थापित किये हैं और आपके आत्मा—मन और मुझ में किसने संस्थापित किये हैं ? ॥१३१॥ इतना कहकर वह देवी वहाँ पर ही देवों की सभा में ऊंचे स्वर से फूट २ कर रोगई थीं । इसने अपने आपको श्री हरि के चरण कमलों में रखकर बार-बार रुदन किया था ॥१३२॥

आध्यात्मिकंपरंयोगंशोकच्छेदनकर्त्तनम् ।
शृणुदेविप्रवक्ष्यामि योगीन्द्राणाञ्च दुर्लभम् ॥१३३

आधाराधेययोःसर्वंब्रह्माण्डं पश्य सुन्दरि ।
आधारव्यतिरेकेण नास्त्याधेयस्यसम्भवः ॥१३४

फलाधारश्च पुष्पश्च पुष्पाधारश्चपल्लवम् ।
स्कन्धश्च पल्लवाधारः स्कन्धाधारस्तरुःस्वयम् ॥१३५

वृक्षाधारोऽप्यङ्कुरश्च बीजशक्तिसमन्वितः ।
अष्टिरेवाङ्कुराधारश्चाष्ट्याधारो वसुन्धरा ॥१३६

शेषोवसुन्धराधारः शेषाधारो हि कच्छपः ।
वायुश्च कच्छपाधारो वाय्वाधारोऽहमेवच ॥१३७
ममाधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि शाश्वतम् ।
त्वञ्च शक्तिसमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥१३८
त्वं शरीरस्वरूपासि त्रिगुणाधाररूपिणी ।
तवात्माहं निरीहश्च चेष्टावांश्च त्वया सह ॥१३९
पुरुषाद्वीर्य्यमुत्पन्नं वीर्य्यात् सन्ततिरेव च ।
तयोराधाररूपा च कामिनी प्रकृतेः कला ॥१४०

श्री कृष्ण ने कहा—हे देवि ! योगीन्द्रों का आध्यात्मिक पर योग शोक के छेदन और कर्त्तन करने वाला अति दुर्लभ होता है। उसे आप श्रवण करो मैं बतलाता हूं ॥१३३॥ हे सुन्दरि ! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आधार और आधेय वाला है—ऐसा ही आप इसे देखिये। आधार के विना कभी भी आधेय सम्भव नहीं हुआ करता है ॥१३४॥ फलों का आधार पुष्प होते हैं और पुष्पों के आधार पल्लव हैं, स्कन्ध का आधार तरु स्वयं ही होता है ॥१३५॥ वृक्ष का आधार अंकुर है जो कि बीज की शक्ति से समन्वित होता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि ही अंकुर के आधार वाली है और इसका आधार यह वसुन्धरा है॥१३६॥शेष इस भूमि का आधार होता है तथा शेष का आधार कच्छप है। वायु कूर्म का आधार है, और उस वायु का आधार मैं स्वयं हूँ ॥१३७॥ अब मेरे

आधार के स्वरूप वाली हे राधे ! आप ही हैं। मैं निरन्तर आप में ही स्थित रहा करता हूँ। आप शक्ति के समुदाय स्वरूप वाली मूल प्रकृति ईश्वरी हैं ॥१३८॥ आप त्रिगुणाधार के रूप वाली शरीर स्वरूपा हैं। मैं निरीह आपकी आत्मा हूँ और आपके साथ ही होकर मैं चेष्टा वाला होता हूँ अन्यथा निश्चेष्ट हूँ ॥१३९॥ पुरुष से वीर्य उत्पन्न होता है और उस वीर्य से सन्तति होती है। उन दोनों की आधार रूप वाली प्रकृति की कला कामिनी ही हुआ करती है ॥१४०॥

विना देहेन कुत्रात्मा क्व शरीरंविनात्मना ।
प्राधान्यञ्च द्वयोर्देविविना द्वाभ्यांकुतोभवः ॥१४१
न कुत्राप्यावयोर्भेदो राधे संसारजीवयोः ।
यत्रात्मा तत्र देहश्च न भेदो विनयेन किम् ॥१४२
यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने ।
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः ॥१४३
त्यजाश्रुमोक्षणं राधे भ्रान्तिञ्च निष्फलां सति ।
विहाय शङ्कां निःशङ्कं वृषभानुगृहं व्रज ॥१४४
कलावत्याश्च जठरे मासान् नव सुन्दरी ।
वायुना पूरयित्वा च गर्भं रोधय मायया ॥१४५
दशमे समनुप्राप्ते त्वमाविर्भव भूतले ।
आत्मरूपं परित्यज्य शिशुरूपं विधाय च ॥१४६
वायुनिःसरणे काले कलावत्याः समीपतः ।
भूमौ विवसनीभूय पतित्वा रोदिषिध्रुवम् ॥१४७
अयोनिसम्भवा त्वञ्च भविता गोकुले सहित ।
अयोनिसम्भवोऽहञ्च नावयोर्गर्भसंस्थितिः ॥१४८

विना इस शरीर के आत्मा कहाँ स्थित रहेगी और आत्मा के बिना यह शरीर भी स्थिर नहीं रह सकता है। हे देवि ! दोनों की ही प्रधानता होती है। विना इन दोनों के जन्म ही कैसे हो सकता है ॥१४१॥ हे राधे ! संसार और जीव का हम दोनों का कहीं भी कोई भेद नहीं है फिर विनय से क्या है ? ॥१४२॥ जिस तरह दूध में धवलता है और

अग्नि में दाह की शक्ति है–भूमि में गन्ध–जल में शीतलता है वैसे ही तुम में मेरी स्थिति है ॥१४३॥ हे राधे ! इन अश्रुओं के पात करने का आप त्याग कर देवें । हे सति ! आपकी यह भ्रान्ति बिल्कुल ही निष्फल है । अब आप शंका का त्याग कर वृषभानु के घर में जाकर जन्म ग्रहण करें ॥१४४॥ हे सुन्दरि ! कलावती के उदर में नौ मास तक माया के द्वारा उसको पूरित करके गर्भ का रोधन करदो ॥१४५॥ जब दशम मास हो जावे तब भूतल में आप आविर्भूत हो जाना । वहाँ इस अपने आत्म स्वरूप का त्याग करके एक छोटासा शिशु का स्वरूप धारण कर लेना ॥१४६॥ गर्भ में स्थित जो वायु है उसके निकलने के समय में आप वहीं पर कलावती के समीप में भूमि में वस्त्र रहित हो कर अपना पतन कर निश्चित छोटे शिशु की भाँति रुदन करने लग जाना ॥१४७॥ आप तो अयोनि सम्भव हैं । हे सति ! और मैं भी किसी की योनि के द्वारा जन्म ग्रहण करने वाला नहीं हूँ–मैं वहाँ गोकुल में होऊंगा । हम और आप दोनों ही की गर्भ में अर्थात् किसी के उदर में संस्थिति नहीं होती है ॥१४८॥

भूमिष्ठमात्रा तातो मां गोकुलं प्रापयिष्यति ।
तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्वाकंसभयंछलम् ॥१४९

यशोदामन्दिरे माञ्च सानन्दं नन्दनन्दनम् ।
नित्यंद्रक्ष्यसिकल्याणि समाश्लेषणपूर्वकम् ॥ ५०

स्मृतिस्ते भविता काले मम राधिके ।
स्वच्छन्द विहरिष्यामि नित्यं वृन्दावने वने ॥१५१

त्रि:सप्तशपकोटिभिर्गोपिभिर्गोकुलं व्रज ।
त्रयस्त्रिशद्वयस्याभि: सुशीलादिभिरेव च ॥१५२

संस्थाप्य संख्यारहिता गोपीर्गोलोक एव च ।
समाश्वास्य प्रबोधैश्च मितया च सुधागिरा ॥१५३

अहमसंख्यान् गोपालान् संस्थाप्यात्रैव राधिके ।
वसुदेवाश्रयं पश्चाद् यास्यामि मथुरां पुरीम् ॥१५४

केवल भूमि में स्थित होते ही मुझे पिता गोकुल में पहुँचा देंगे। मैं वहां तुम्हारे ही लिये कंस के भय का छल कर के जाऊंगा ॥१४९॥ हे कल्याणि ! वहाँ यशोदा के मन्दिर में नन्द के नन्दन मुझको नित्य ही आनन्द पूर्वक आप देखा करोगी और समाश्लेषण का सुख प्राप्त करती रहोगी ॥१५०॥ हे राधिके ! मेरे वरदान से उस समय में भी आपको पूर्ण स्मृति बनी रहेगी। मैं वहां वृन्दावन के वन में स्वच्छन्दता पूर्वक नित्य विहार करूंगा ॥१५१॥ आप तीन सौ करोड़ गोपियों के साथ गोकुल में जाओ और तेतीस परम सुशील समवयस्क सहेलियों के साथ वहां जन्म ग्रहण करो ॥१५२॥ गोलोक में संख्या रहित गोपियों को संस्थापित करके अमृत तुल्य मित वाणी के द्वारा और प्रबोधों के द्वारा उन सब को समाश्वासन करके व्रज में जाना ॥१५३॥ हे राधिके ! मैं असंख्य गोपों को यहां संस्थापित करके पीछे मथुरापुरी में वसुदेव के घर में जाऊंगा ॥१५४॥

वर्षाणां शतकं पूर्णं त्वद्विच्छेदो मया सह ।
श्रीदामशापजन्येन कर्मभोगेन सुन्दरि ! ॥१५५
भविष्यत्येव मम च मथुरागमन ततः ॥१५६
तत्र भारावतरणं पित्रोर्बन्धनमोक्षणम् ।
मालाकारतन्तुवायकुब्जिकानाञ्च मोक्षणम् ॥१५७
घातयित्वा च यवन मुचकुन्दस्य मोक्षणम् ।
द्वारकायाश्च निर्माणं राजसूयस्य दर्शनम् ॥१५८
उद्वाह राजकन्यानां सहस्राणाञ्च षोड़श ।
दशाधिकशतस्यापि शत्रूणां दमनन्तथा ॥१५९
मित्रोपकरणञ्चैव वाराणस्याश्च दाहनम् ।
हरस्य जृम्भणं तत्र बाणस्य भुजकर्त्तनम् ॥१६०
पारिजातस्य हरणं यद् यत् चर्मान्यदेव च ।
गमनं तीर्थयात्रायां मुनिसङ्घप्रदर्शनम् ॥१६१
सम्भाषणञ्च बन्धूनां यज्ञसम्पादनं पितुः ।
शुभक्षणे पुनस्तत्र त्वया सार्द्धं प्रदर्शनम् ॥१६२

करिष्यामि च तत्रैव गोपिकानाञ्च दर्शनम् ।
तुभ्यमाध्यात्मिकं दत्त्वा पुनः सत्यं त्वया सह ॥१६३

दिवानिशमविच्छेदो मया सार्द्धं मतः परम् ।
भविष्यति त्वया सार्द्धं पुनरागमनं व्रजे ॥१६४

कान्ते विच्छेदसमये वर्षाणां शतके सति ।
नित्यं संमीलनं स्वप्ने भविष्यति त्वयासह ॥१६५

गतस्य द्वारकां त्वत्तो मम नारायणांशस्य(णस्यच) ।
शतवर्षान्तरे साध्यान्येतान्येव सुनिश्चितम् ॥१६६

हे सुन्दरि ! मेरे साथ आपका यह विरह सौ वर्ष तक पूर्ण होगा यह वियोग श्रीदामा के शाप से उत्पन्न होगा जोकि कर्मों का ही एक भोग के कारण से होने वाला है ॥१५५॥ मेरा वहाँ से मथुरा को गमन होगा और व्रज का त्याग करके मथुरा मुझे अपने जन्म के उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये मथुरा जाना ही होगा ॥१५६॥ वहाँ पर भूमि के भार का अवतरण और माता-पिता को बन्धन से मोक्ष करना होगा । माली तन्तुवाय और कुब्जा आदि का मोक्ष करना होगा ॥१५७॥ यवन को मार कर मुचकुन्द का मोक्ष-द्वारकापुरी निर्माण-राजसूय यज्ञ का दर्शन वहां जाकर करूंगा ॥१५८॥ सोलह सहस्र राज कन्याओं के साथ विवाह एक सौ दश की संख्या वाले शत्रुओं का दमन करूंगा ॥१५६॥ मित्रों का उपकरण (भलाई करना)—वाराण का दाहन—हर का जृम्भण और वाण की भुजाओं का कर्तन करूंगा ॥१६०॥ परिजात वृक्ष का हरण तीर्थ यात्रा में गमन-मुनि समूह का दर्शन तथा अन्य जो जो भी कर्म हैं उन सबको भूतल में करूंगा ॥१६१॥ बन्धुगण के साथ सम्भाषण—पिता के यज्ञ का सम्पादन और फिर तुम्हारे साथ वहाँ पर प्रदर्शन तथा गोपिकाओं का दर्शन और तुल्य आध्यात्मिक ज्ञान देकर फिर तेरे साथ मैं रहूंगा ॥१६२-१६३॥ इससे आगे तेरे साथ अहर्निश अविच्छेद होगा और तेरे साथ फिर व्रज में आगमन होगा ॥१६४॥ हे कान्ते ! सौ वर्षों के विच्छेद के समय होने पर फिर तुम्हारे साथ नित्य ही स्वप्न में संमीलन

होगा ॥१६५॥ तुझ से द्वारका को गये हुए मेरे नारायण के अंश का सौ वर्षो के अन्तर में ये ही सुनिश्चित साध्य हैं ॥१६६॥

भविष्यति पुनस्तत्र वने वासस्त्वया सह ।
पुना पित्रोश्च गोपीनां शोकसम्मार्जनंपरम् ॥१६७
कृत्वा भारावतरणं पुनरागमनं मम ।
त्वया सहापि गोलोकं गोपैर्गोपीभिरेव च ॥१६८
मम नारायणांशस्य वाण्याच पद्मया सह ।
वैकुण्ठगमनं राधे नित्यस्य परमात्मनः ॥१६९
श्वेतद्वीपे धर्म्मगेतमंशानाञ्च भविष्यति ।
देवानाञ्चैव देवीनामंशा यास्यन्ति चाक्षयम् ।
पुनः संस्थितिरत्रैव गोलोके मे त्वया सह ॥१७०

इसके अनन्तर पुनः तुम्हारे साथ वहाँ वन में वास होगा और फिर माता-पिता का तथा गोपियों का शोक संमार्जन होगा । इस तरह से भार का अपहरण करके फिर तुम्हारे साथ और गोप-गोपियों के साथ इसी गोलोक में मेरा आगमन होगा ॥१६७–१६८॥ नारायण के अंश मेरा वाणी और पद्मा के साथ हे राधे ! नित्य परमात्मा का वैकुण्ठ में गमन होगा ॥१६९॥ श्वेत द्वीप में धर्म के गृह में अंशों का गमन होगा देवों के अंश और देवियों के अंश अक्षय को जायँगे । इसके पश्चात् तुम्हारे साथ मेरी संस्थिति इसी गोलोक में होगी ॥१७०-१७१॥

६२—श्रीकृष्णजन्मपूर्वोपक्रमवर्णनम्

तस्यातिरिक्तं कृष्णस्य महत्पुण्यकरं परम् ।
वद जन्म महाभाग जन्ममृत्युजरापहम् ॥१
वसुदेवः कस्य पुत्रः कस्य कन्या च देवकी ।
कोवा वसुदेवकी वा विवाहञ्च तयोर्वद ॥१
कथं जघान कंसस्तत्पुत्रषट्कं सुदारुणः ।
कस्मिन् दिने हरेर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तद्वद ॥३

कश्यपो वसुदेवश्च देवमाता च देवकी ।
पूर्वपुण्यफलेनैव प्रापतुः श्रीहरिं सुतम् ।।४

देवमीढान्मारिषायां वसुदेवो महानभूत् ।
यस्योद्भवे देवसङ्घो वादयामास दुन्दुभिम् ।।५

आनकश्च महाहृष्टो श्रीहरेर्जनकश्च तम् ।
सन्तः पुरातनास्तेन वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ।।६

आहुकस्य सुतः श्रीमान् यदुवंशसमुद्भवः ।
देवको ज्ञानसिन्धुश्च तस्य कन्या च देवकी ।।७

इस अध्याय में श्रीकृष्ण के जन्म के पूर्व उपक्रम का वर्णन किया जाता है । नारद ने कहा—हे महाभाग ! उन श्री कृष्ण के महान् पुण्य के करने वाले तथा जन्म मृत्यु और जरा के हरण करने वाले परम जन्म के विषय में वर्णन कीजिए ।।१।। वसुदेव किसका पुत्र था और देवकी किसकी कन्या थी ? उन दोनों वसुदेव और देवकी का विवाद कैसे हुआ था—इसे बताने की कृपा करें ।।२।। कंस ने उनके छै पुत्रों को क्यों मार दिया था क्योंकि वह कंस राजा परम कठोर एवं दारुण था ! किस दिन में हरि का जन्म हुआ था—यह मेरे श्रवण करने की अत्यन्त उत्कट लालसा है । आप इसे बताइये ।।३।। नारायण ने कहा—वसुदेव कश्यप ऋषि थे और देवकी देवों की जननी थी । इन दोनों ने अपने पूर्व पुण्यों के प्रभाव से ही श्री हरि को अपना पुत्र प्राप्त किया था ।।४।। देवमीढ से मारिषा में महान् वसुदेव ने जन्म ग्रहण किया था जिसके जन्म के समय में देवों के समूह ने दुन्दुभि बजाई थी ।।५।। उस समय में आनक महान् प्रसन्न हुआ था । इसीलिये श्री हरि के पिता को पुराने सन्त पुरुष आनक दुन्दुभि कहते हैं ।।६।। यदु के वंश में होने वाला आहुक का पुत्र श्रीमान् देवकथा जो बहुत बड़ा ज्ञान का सागर था उसकी कन्या देवकी हुई थी ।।७।।

गर्गो यदुकुलाचार्य्यः सम्बन्धं वसुना सह ।
देवक्याः कारयामास विधिवच्च यथोचितम् ।।८

महासम्भृतसम्भारौ वसुदेवाय सुक्षणे ।
उद्वाहे देवकीं तस्मै देवकः प्रददौ किल ॥६

अश्वानाञ्च सहस्राणि स्वर्णपात्राणि नारद ।
सालंकृतानां दासीनां शतानि सुन्दराणि च ॥१०

नानाविधानि द्रव्याणि रत्नानि विविधानि च ।
मणिश्रेष्ठाथि वज्राणि रत्नपात्राणि नारद ॥११

सद्रत्नभूषितां कन्यां शतचन्द्रसमप्रभाम् ।
त्रैलोक्यमोहिनीं धन्यां मान्यां श्रेष्ठाञ्च योषिताम् ॥१२

तां गृहीत्वा रथे कृत्वा प्रस्थानमकरोत्तदा ॥१३
कंसो हृष्टः सहचरो भगिन्युद्वाहकर्म्मणि ।
तस्मा रथसमीपेचागच्छत्कंसोऽपि तत्क्षणात् ॥१४

यदुकुल के आचार्य गर्ग ने देवकी का वसुदेव के साथ संबन्ध विधि के साथ यथोचित रीति से कराया था ।।८।। अच्छी शुभ लग्न में महान् सम्भारों से संयुत होकर देवक ने वसुदेव के लिये अपनी पुत्री देवकी को दिया था ।।९।। हे नारद ! हजारों घोड़े और सुवर्ण के पात्र तथा अच्छी तरह से अलंकृत एवं सुन्दर सैकड़ों दासियां दी थीं ।।१०।। हे नारद ! अनेक तरह के द्रव्य—विविध रत्न—मणियों में श्रेष्ठ हीरे और रत्नों के पात्र दिये थे ।।११।। वह देवकी अच्छे रत्नों के आभरणों से भूषित थी—वह सौ चन्द्रों की प्रभा के समान प्रभावाली थी—त्रैलोक्य को अपने रूप लावण्य से मोहित करने वाली-धन्या-मान्या और स्त्रियों में परम श्रेष्ठ थी ।।१२।। ऐसी उस देवकी को ग्रहण करके रथ में बिठाकर वसुदेव ने प्रस्थान किया था ।।१३।। उस समय सहचर कंस अपनी बहिन के काम में परम हर्षित हो रहा था। वह कंस उस समय में वहाँ उसके रथ के ही समीप में आगया था ।।१४।।

कसं संबोध्य गगने वाग् बभूवाशरीरिणी ।
कथं हृष्टोऽसिराजेन्द्रः श्रृणु सत्यवचोहितम् ।
देवक्या अष्टमो गर्भो मृत्युहेतुस्तवैव हि ॥१५

श्रुत्वैवं देवकींकंसः खड्गहस्तो महाबलः ।
दैववाक्याद्भयात् कोपात् पापिष्ठो हन्तुमुद्यतः ॥१६
तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा वसुदेवः सुपण्डितः ।
बोधयामास नीतिज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः ॥१७
राजनीतिं न जानासि शृणुमेवचनं हितम् ।
यशस्करञ्च दोषघ्नं शास्त्रोक्तं समयोचितम् ॥१८
अस्या एवाष्टमात् गर्भात् मृत्युश्चेत् तव भूमिप ।
इमां हत्वा हि दुष्कीर्त्ति करोषि नरकं च किम् ॥१९
वधे च क्षुद्रजन्तूनां हिंसकानाञ्च पण्डितः ।
कार्षापणं समुत्सृज्य मृत्युकालेप्रमुच्यते ॥२०
अहिंसकानां क्षुद्राणांवधे शतगुणं ध्रुवम् ।
प्रायश्चितं मृत्युकाले कथितं पद्मयोनिना ॥२१

उसी समय में कंस को को सम्बोधित करके आकाश वाणी ने कहा था—हे राजेन्द्र! तू इस समय में क्यों प्रसन्न हो रहा है ? तेरे हित के—सत्य वचन श्रवण कर—देवकी का आठवां गर्भ तेरे ही मृत्यु का हेतु होगा ॥१५॥ इस प्रकार से आकाश वाणी के वचनों के द्वारा देवकी को सुन कर महान् बलवान् कंस ने हाथ में खंग ले लिया था। वह देवों के वचन से क्रोध से उसे मारने को तयार हो गया था ॥१६॥ उसे देवकी के मार देने के लिये उद्यत देखकर महान् पण्डित वसुदेव ने जो कि नीति शास्त्र के महान् पण्डित और नीति के ज्ञाता थे उसे समझाया था ॥१७॥ वसुदेव ने कहा—हे राजेन्द्र! आप राजनीति को नहीं जानते हैं इसलिये मेरे हितप्रद वचनों का श्रवण करो। ये वचन आपके यश के करने वाले—दोषों के नाशक-शास्त्रोक्त और समयोचित हैं ॥१८॥ हे राजन्! इस देवकी के आठवें गर्भ से ही यदि आपकी मृत्यु निश्चत है तो इस बिचारी को मार कर क्यों अपनी अपकीर्त्ति और नरक कर रहे हैं ? ॥१९॥ क्षुद्र जन्तुओं के और हिंसकों के वध में पण्डित कार्षापण का दान देकर मृत्युकाल में प्रमुक्त हो जाते हैं ॥२०॥ जो अहिंसक क्षुद्र जीव हैं उनके वध करने पर सौ गुना ज्ञान

करने से उस पाप का प्रायश्चित पद्म योनि ने बताया है जो कि मृत्युकाल में कर देना चाहिए ॥२१॥

वधे विशिष्टजन्तूनां पश्वादीनाञ्च कामतः ।
ततः शतगुणं पापं निश्चितं मनुरब्रवीत् ।
नराणां म्लेच्छजातीनां बधे शतगुणं ततः ॥ २
म्लेच्छानाञ्च शतानाञ्च यत् पापंलभते वधे ।
सच्छूद्रकस्य च वधेतत् पापंलभतेपुमान् ॥२३
सच्छूद्राणां शतानाञ्च यत् पापं लभते वधे ।
तत्पापं लभते नूनं गोवधेनैव निश्चितम् ॥२४
गवां दशगुणंपापं ब्राह्मणस्य वधे भवेत् ।
विप्रहत्यासमं पापं स्त्रीवधे लभते नरः ॥२५
विशेषतो हिं भगिनी पोष्या या शरणागता ।
स्त्रीहत्याशतपापञ्च भवेत् तस्या वधेनृप ॥२६
तपोजपञ्च दानञ्च पूजनं तीर्थदर्शनम् ।
विप्राणां भोजनं होमं स्वर्गार्थं कुरुते नरः ॥२७
जलबुद्बुदवत् सर्वं स्वप्नवद् भयदं भवम् ।
पश्यन्ति सततं सन्तो धर्म्मं कुर्वन्ति यत्नतः ॥२८

जो विशिष्ट जन्तु है तथा पशु आदि हैं उनका स्वेच्छया वध करने पर उससे सौ गुना पाप होता है—ऐसा महर्षि मनु ने कहा है । मनुष्यों का जो म्लेच्छ जाति वाले हैं उनका पाप उससे सौ गुना अधिक होता है ॥२२॥ सौ म्लेच्छों के मारने में जो पाप होता है वह अच्छे किसी एक शूद्र के वध कर देने पर पाप मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥२३॥ सौ अच्छे शूद्रों के वध करने में जो पाप होता है उतना ही पाप निश्चित रूप से एक गाय के वध कर देने में होता है ॥२४॥ गायों के वध से दश गुना पाप एक ब्राह्मण के वध करने में होता है और विप्र हत्या के समान ही एक स्त्री के वध करने का पाप हुआ करता है ॥२५॥ विशेष करके स्त्री अपनी भगिनी हो जो पोषण करने के योग्य और शरण में आई हुई हो उसके वध में हे नृप ! सौ स्त्रियों

के मार देने के समान पाप मनुष्य को हुआ करता है ॥२६॥ मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति के लिये जप-तप-दान—पूजन-तीर्थाटन-विप्रों का भोजन होम ये सब किया करता है ॥२७॥ यह समस्त सांसारिक वैभव जल के बुदबुदे के समान है—स्वप्न की भाँति है और भय देने वाला है। इसको सन्त पुरुष निरन्तर देखा करते हैं और अच्छी तरह समझते हैं। वे प्रयत्न पूर्वक सदा धर्म किया करते हैं ॥२८॥

भग्नीं(भगिनीं) च त्यज धर्मिष्ठ स्ववंशपद्मभास्कर ।
बुधाः कतिविधाः सन्ति सभायां पृच्छ तान् नृप ॥२६
अस्याश्चैवाष्टमे गर्भे यदपत्यं भवेन्मम ।
बन्धो तुभ्यं प्रदास्यामि तेन मे किं प्रयोजनम् ॥३०
अथवा यान्यपत्यानिभवन्ति ज्ञानिनांवर ।
तानिसर्वाणिदास्यामि त्वत्तोनैकोवरःप्रियः ॥३१
भगिनीं त्यज राजेन्द्र कन्यातुल्यां प्रियां तव ।
मिष्टान्नपानदानेन वर्द्धितामनुजां सदा ॥३२
वसुदेववचः श्रुत्वा तत्याज भगिनीं नृपः ।
वसुदेवः प्रियां नीत्वा जगाम निजमन्दिरम् ॥३३
क्रमादपत्यषट्कञ्च यद् यद्भूतञ्च नारद ।
ददौ तस्मै वसुः सत्यात् स जघान क्रमेण तान् ॥३४
देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया ।
रोहिणीजठरे माया तमाकृष्य ररक्ष च ॥३५

हे धर्मिष्ठ ! आप तो अपने वंश रूपी पद्म के विकसित करने में दिवाकर के समान हैं। आप इस समय अपनी भगिनी को छोड़ दीजिए। हे नृप ! आपकी सभा में तो कितने ही प्रकार के महान् मनीषी हैं उनसे जाकर तो एक बार आप पूछ लीजिए कि क्या कर्त्तव्य है ॥२६॥ इसके आठवें गर्भ में जो भी मेरा बालक होगा हे बन्धो ! मैं उसे आपको दे दूंगा। उससे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं होगा ॥३०॥ हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! अथवा इससे जितनी भी मेरी सन्ततियाँ होंगी उन सबको मैं आपको दे दूंगा। तुमसे अधिक मेरा कोई भी श्रेष्ठ प्रिय नहीं

है ॥३१॥ हे राजेन्द्र ! आप अपनी भगिनी को छोड़ दीजिए। यह तो आपकी कन्या के समान है। इस छोटी बहिन को तो आपने सदा मिष्टान्नपान देकर इतनी बड़ी किया है ॥३२॥ इस तरह के वसुदेव के वचनों को सुनकर राजा कंस ने अपनी भगिनी को छोड़ दिया था। वसुदेव फिर अपनी प्रिया देवकी को ले जाकर अपने मन्दिर में चले गये थे ॥३३॥ इसके अनन्तर हे नारद ! क्रम से उसके छै पुत्र हुए थे और वसुदेव ने सत्य का पालन करते हुए वे सब कंस को दे दिये थे और उसने उन सबका क्रम से हनन कर दिया था ॥३४॥ देवकी के सातवें गर्भ में कंस ने भय से रक्षा देदी थी। माया ने उस गर्भ को आकृष्ट करके रोहिणी के जठर में उसकी रक्षा की थी ॥३५॥

रक्षकाः कथयामासुर्गर्भस्रावो बभूव ह।
तस्माद् बभूव भगवन्नाम्ना सङ्कर्षणःप्रभुः ॥३६
तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो बभूव ह ॥३७
गते च नवमे मासि दशमे समुपस्थिते।
दृष्टिं ददौ च गर्भे स भगवान् सर्वदर्शनः ॥३८
स्वयं रूपवती देवी सर्वासां योषितां वरा।
बभूव दर्शनात् सद्यः सुन्दरी सा चतुर्गुणा ॥३९
ददर्श देवकीं कंसः प्रफुल्लवदनेक्षणाम्।
तेजसा प्रज्वलन्तीञ्च मात्तामिव दिशोदश ॥४०
ज्योतिषां संहृतिंचैव यथा मूर्त्तिमतीमिव।
दृष्ट्वा तामसुरेन्द्रश्च विस्मयं परमं ययौ ॥४१
अस्माद्गर्भादपत्यंच मृत्युबीजं ममैव च।
इत्येवमुक्त्वा कंसश्च चक्रे रक्षां प्रयत्नतः।
देवकीं वसुदेवंच सप्तद्वारे ररक्ष च ॥४२

जो रक्षक वहाँ नियुक्त थे उन्होंने कंस से आकर कह दिया था कि गर्भ का स्राव हो गया है। इसी कारण से वह भगवान् संकर्षण इस शुभ नाम से प्रभु प्रसिद्ध हुए थे ॥३६॥ इसके पश्चात् उस देवकी के आठवाँ गर्भ वायु से पूर्ण हुआ था ॥३७॥ नौ मास बीत जाने पर

जब दशम मास उपस्थित हुआ तो सर्व दर्शन भगवान् ने उस गर्भ में अपनी दृष्टि डाली थी ॥३८॥ उस समय में स्वयं पहिले ही से रूप वाली वह देवी थी और समस्त स्त्रियों में परम श्रेष्ठ थी फिर भगवान् की दृष्टि के पास से वह चौगुनी सुन्दरी हो गई थी ॥३९॥ कंस ने देवकी को देखा था कि वह प्रफुल्ल मुख और लोचनों वाली थी। वह अपने तेज से जाज्वल्यमान हो रही थी और दशों दिशाओं को माया की भाँति जला सी रही थी ॥४०॥ कंस ने उसे देखा वह मानों ज्योतियों का समूह जैसी थी जो कि एक मूर्तिमती वहाँ स्थित हो रही थी। इस प्रकार की उस देवकी को देखकर असुरों का राजा कंस को बड़ा भारी विस्मय हुआ था। उसने उस समय मन में सोचा कि इस गर्भ से जो बच्चा होगा वह निश्चय ही मेरी मृत्यु का बीज है। ऐसा कह कर उस कंस ने प्रयत्न पूर्वक उसकी रक्षा की व्यवस्था कर दी थी। देवकी और वसुदेव दोनों को उसने सात द्वारों में बन्द कर सुरक्षित कर दिया था ॥४१-४२॥

पूर्णे च दशमे मासि गर्भः पूर्णो बभूवह।
बभूव सा चलस्पन्दा जड़रूपा च नारद ॥४३
गर्भे च वायुना पूर्णे निर्लिप्तो भगवान् स्वयम्।
हृत्पद्मदेशे देवक्या ह्यधिष्ठानं चकारह ॥४४
सा विश्वम्भरगर्भा च मन्दिराभ्यन्तरे सती।
श्वासजड़रूपा च क्लेशयुक्ता बभूव ह ॥४५
उवास च क्षणं देवी क्षुणमुत्थाय तिष्ठति।
क्षणं व्रजति पादैकं क्षणं स्वपिति तत्र वै ॥४६
दृष्ट्वा च देवकीं शीघ्रं वसुदेवो महामनाः।
प्रसूतिसमयं दृष्ट्वा सस्मार हरिमीश्वरम् ॥४७
रत्नप्रदीपसंयुक्तमन्दिरे सुमनोहरे।
स्थापयामास खड्गं च लौहं तोयं हुताशनम् ॥४८
मन्त्रज्ञंच नरंचैव बन्धुपत्नीर्भयाकुलः।
विद्वांसं ब्राह्मणंचैव ततोबन्धूंश्च सादरम् ॥४९

जब दशवाँ मास समाप्त हो गया तो वह उसका गर्भ पूर्ण हो गया था। हे नारद ! वह उस समय चल स्पन्दा और जड़ रूप वाली हो गई थी ॥४३॥ वायु से पूर्ण गर्भ में भगवान् स्वयं निर्लिप्त थे। उन्होंने देवकी के हृदय रूपी कमल के भाग में अपना अधिष्ठान किया था ॥४४॥ वह विश्वम्भर को गर्भ में रखने वाली सती उस मन्दिर के अन्दर जड़ रूप वाली रहती थी और क्लेश से युक्त थी ॥४५॥ वह देवी एक क्षण में बैठ जाती थी फिर एक क्षण में उठकर खड़ी होती थी—क्षण भर में जाती थी और क्षण में ही सो जाया करती थी ॥४६॥ महान् मन वाले वसुदेव ने ऐसी स्थित में रहने वाली देवकी को देख कर यह समझ लिया था कि अब शीघ्र ही प्रसव का समय उपस्थित होने वाला है। उस समय वसुदेव ने श्री हरि का स्मरण किया था ॥४७॥ रत्नों के प्रदीप से संयुक्त सु मनोहर मन्दिर में खङ्ग—लोह-जल और अग्नि की स्थापना की थी ॥४८॥ भयाकुल होते हुए वसुदेव ने मन्त्र-नर-बन्धु की पत्नियां और विद्वान ब्राह्मण तथा बन्धुओं को आदर के सहित वहाँ संस्थित किया था ॥४९॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्यां रात्रौ द्विप्रहरेगते ।
व्याप्तंच गगनं मेघैः क्षणद्युतिसमन्वितैः ॥५०

ववुश्च वायवश्श्रेष्ठा ययुर्निद्रांच रक्षकाः ।
अचेष्टिताश्च शयने मृता इव विचेतनाः ॥५१

एतस्मिन्नन्तरे तत्रचाजग्मुस्त्रिदशेश्वराः ।
तुष्टुवुर्धर्म्मब्रह्मेशा गर्भस्थं परमेश्वरम् ॥५२

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एवच ।
ज्योतिःस्वरूपोह्यनघःसगुणोनिर्गुणोमहान् ॥५३

भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरङ्कुशः ।
स्वेच्छामयश्च सर्वेशः सर्वः सर्वगुणाश्रयः ॥५४

सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च ।
निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रवः ॥५५

निरुपाधिश्च निर्लिप्तोनिरीहो निधनान्तकः ।
स्वात्मारामः पूर्णकामोनिर्दोषो नित्यएवच ॥५६
सुभगो दुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः ।
वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः ॥५७
इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः ।
हर्षाश्रुलोचनाः सर्वेववर्षुः कुसुमानि च ॥५८
द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
दृढां भक्ति हरेर्दास्यं लभते वांच्छितं फलम् ॥५९

इसी बीच में उस रात्रि में दो पहर व्यतीत हो जाने पर समस्त आकाश मण्डल विद्युत् से युक्त मेघों से व्याप्त हो गया था ॥५०॥ श्रेष्ठ वायु बहने लगी थी और जो वहाँ रक्षक थे वे सब निद्रा को प्राप्त हो गये थे । वे शयन में अत्यधिक निश्चेष्ट हो गये थे जैसे बिना चेतना वाले मृत जैसे हों ॥५१॥ इसी अन्तर में वहाँ पर देवगण आगये थे । धर्म-ब्रह्मा और ईश आदि सब ने गर्भ में स्थित परमेश्वर की स्तुति की थी ॥५२॥ देवों ने कहा—हे भगवन् ! आप इस जगत् के जन्म देने वाले हैं और स्वयं अयोनि हैं । आप अनन्त-अव्यय-ज्योतिः स्वरूप-अनघ-सगुण-निर्गुण और महान् हैं । आप निराकार और निरंकुश होते हुए भी भक्तों के अनुरोध से आकार वाले हुआ करते हैं । आप स्वेच्छा से परिपूर्ण-सब के ईश-सर्व और समस्त गुणों के आश्रय हैं ॥५३-५४॥ आप सुख-दुःख के देने वाले-दुर्ग और दुर्जनों का अन्त कर देने वाले हैं । आप निर्व्यूह-सबके आधार-निशंक एवं निरूप द्रव हैं ॥५५॥ आप बिना उपाधि वाले-निर्लिप्त-निरीह-निधन के भी अन्त कर देने वाले हैं । आप स्वात्मा में ही रमण करने वाले-पूर्ण काम-दोषों से रहित और नित्य हैं ॥५६॥ आप सुभग-दुर्भग-वाग्मी-दुराराध्य-दुरत्यय-वेदों के हेतु-वेद-वेदों के अंग-वेदों के ज्ञाता और विभु हैं ॥५७॥ इतना कह कर देवों ने बार-बार प्रणाम किया था । सब ने हर्षातिरेक नेत्रों से अश्रुपात करते हुए आकाश मण्डल से पुष्पों की वृष्टि की थी ॥५८॥ इन भगवन् के बयालीस शुभ नामों को जो देवों ने स्तवन में

कहे थे, जो कोई प्रातःकाल में उठकर पाठ करता है वह दृढ भक्ति- हरि का दास्य और वाञ्छित फल प्राप्त किया करता है ।।५६।।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः ।
बभूव जलवृष्टिश्च निश्चेष्टा मथुरा पुरी ।
घोरान्धकारनिविड़ा बभूव यामिनी मुने ।।६०
गते सप्तमुहूर्ते तु चाष्टमे समुपस्थिते ।।६१
वेदातिरिक्ते दुर्ज्ञेये सर्वोत्कृष्टे शुभेक्षणे ।
शुभग्रहैर्दृष्टलग्नेऽप्यदृष्टे चाशुभग्रहैः ।।६२
अर्द्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ ।
जयन्तीयोगयुक्ते च चार्द्धचन्द्रोदये मुने ।।६३
दृष्ट्वा दृष्ट्वा क्षणं लग्नं भीताः सूर्य्यादयस्तथा ।
गमने क्रममुल्लङ्घ्य जग्मुर्मीनं शुभाशुभाः ।।६४
सुप्रसन्ना ग्रहाः सर्वं बभूवुस्मत्र संस्थिताः ।
एकादशस्थास्ते प्रीत्या मुहूर्तं धातुराज्ञया ।।६५

नारायण ने कहा—इस तरह से भगवान् का स्तवन करके वे सब देवता अपने निवास स्थान को चले गये थे । फिर घोर जल की वृष्टि हुई थी जिससे सम्पूर्ण मथुरापुरी चेष्टा हीन हो गई थी । हे मुने ! वह रात्रि घोर अन्धकार से एक दम निविड़ हो गई थी ।।६०।। सात मुहूर्त के व्यतीत हो जाने पर और अष्टम मुहूर्त के सम्प्राप्त होने पर वेदातिरिक्त-दुर्ज्ञेय—सबसे उत्कृष्ट शुभ क्षण के आजाने पर जो कि शुभ ग्रहों के द्वारा लग्न दृष्ट था और अशुभ ग्रहों से अदृष्ट था, आधी रात में-रोहिणी नक्षत्र में-अष्टमी तिथि में जयन्ती के योग से युक्त अर्ध चन्द्र के उदय होने का समय उपस्थित हो गया था ।।६१-६३।। उस समय लग्न को देख—देखकर सूर्य आदि ग्रह सब बड़े भयभीत हो रहे थे । वे सब गमन में क्रम का उल्लंघन करके शुभाशुभ मीन को चले गये थे ।।६४।। वहाँ पर स्थित होकर सभी ग्रह सुप्रसन्न थे और वहाँ संस्थित हो गये थे । धाता की आज्ञा से मुहूर्त भर प्रीति से एकादश ग्रह में स्थित हो गये थे ।।६५।।

ववर्षुश्च जलधरा ववुर्वाता: सुशीतला: ।
सुप्रसन्ना च पृथिवी प्रसन्नाश्च दिशो दश ।।६६
ऋषयो मनवश्चैव यक्षगन्धर्वकिन्नरा: ।
देवा देव्यश्च मुदिता ननृतुश्चाप्सरोगणा: ।।६७
जगुर्गन्धर्वपतयो विद्याधर्यश्च नारद ।
सुखेन सुस्रुवुर्नद्यो जज्वलुश्चाग्नयो मुदा ।।६८
नेदुर्दुन्दुभय:स्वर्गे चानकाश्च मनोरमा: ।
प्रफुल्लपारिजातानां पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ।।६९
जगाम सूतिकागेहं नारीरूपं विधाय भू: ।
जयशब्द: शंखशब्दो हरिशब्दो बभूव ह ।।७०
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पपात देवकी सती ।
नि:ससार च वायुश्च देवकीजठरात्तत: ।।७१
तत्रैव भगवान् कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च ।
हृत्पद्मकोषाद् देवक्या हरिराविर्बभूव ह ।।७२

उस सुसमय में मेघ वर्षा कर रहे थे-वायु सुशीतल होकर वहन कर रहा था-पृथिवी बहुत ही प्रसन्न हो रही थी और दशों दिशाऐं प्रसन्न थीं ।।६६।। ऋषि-मुनि-मनु-यक्ष-गन्धर्व-किन्नर-देव और देवियाँ सभी आनन्दित हो रहे थे और अप्सराऐं नृत्य कर रहीं थीं ।।६७।। गन्धर्व-पति लोग गान कर रहे थे हे नारद ! विद्याधरी गायन कर रहीं थीं और नदियाँ सुख से बह रही थीं तथा अग्नि आनन्द से ज्वलित हो रही थीं ।।६८।। स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजाई जा रही थीं और सुन्दर आनक बज रहे थे । विकसित पारिजातों के पुष्पों की वृष्टि हो रही थी ।।६९।। उस समय भूमि नारी का स्वरूप धारण करके सूतिका गृह में गई थी । उस शुभ समय में सर्वत्र जय शब्द और शंख ध्वनि और हरि शब्द का उच्चारण हो रहा था ।।७०।। इसी समय में वहाँ पर सती देवकी लेट गई थी और देवकी के उदर से वायु निकल पड़ी थी ।।७१।। वहां पर ही भगवान् कृष्ण ने दिव्य रूप धारण करके देवकी के हृत्पद्म कोष से हरि आविर्भूत हो गये थे ।।७२।।

अतीवकमनीयञ्च शरीरं सुमनोहरम् ।
द्विभुजं मुरलीहस्तं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥७३
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।
मणिरत्नेन्द्रसाराणां भूषणैश्च विभूषितम् ॥७४
नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससः ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्च्चितम् ॥७५
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं विम्बाधरमनोहरम् ।
मयूरपुच्छचूड़ञ्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥७६
त्रिभङ्गवक्रमध्यञ्च वनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्सवक्षसं चारुकौस्तुभेन विराजितम् ।
किशोरवयसं शान्तं कान्तं ब्रह्मेशयोः परम् ॥७७
ददर्श वसुदेवश्च देवकीपुरतो मुने ।
तुष्टाव परया भक्त्या विस्मयं परमं ययौ ॥७८
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रास्यकन्धरः ।
अश्रुपूर्णः सपुलको देवक्या च स्त्रिया सह ॥७९

उस समय उस दिव्य शिशु रूपधारी भगवान् श्री हरि का स्वरूप अत्यन्त ही सुन्दर था-सर्वाङ्ग परम मनोहर था । उनके दो भुजाऐं थीं–मुरली हाथ में थी और मकर की आवृति वाले कुण्डल देदीपमान हो रहे थे ॥७३॥ मन्द हास्य से युक्त प्रसन्न उनका मुख था तथा भक्तों पर अनुकम्पा करने के लिये अतीव आतुर थे । श्री कृष्ण का वपु श्रेष्ठ मणि और रत्नों से बने हुए भूषणों से समलंकृत था ॥७४॥ नूतन मेघों के तुल्य श्याम वर्ण था और पीताम्बर से विभूषित थे । चन्दन-अगुरु-कस्तूरी–कुकुंम के द्रव से उनका सर्वांग चर्चित था ॥७५॥ शरत्पूर्णिमा के सोम के समान मुख था । विम्बफल के तुल्य श्री कृष्ण के मनोहर अधर थे । मोर की पंख जूड़ा में संलग्न थी और उत्तम रत्नों से निर्मित मुकुट की प्रभा से समुज्ज्वल मस्तक था ॥७६॥ त्रिभंग वक्र मध्य भाग वाले थे तथा वनमाला से विभूषित थे । उनके वक्ष:स्थल में श्रीवत्स का चिह्न था तथा सुन्दर कौस्तुभ मणि से शोभायमान थे ।

किशोर अवस्था वाले परम शान्त और ब्रह्मा तथा ईश के परम कान्त थे ॥७७॥ हे मुने ! ऐसे श्रीहरि को वसुदेव ने देवकी के सामने देखा था और फिर अत्यन्त भक्ति के भाव से उनका वसुदेव ने स्तवन किया था। ऐसे परम अद्भुत स्वरूप का दर्शन करके वसुदेव को अत्यधिक आश्चर्य हुआ था ॥७८॥ इसके अनन्तर वसुदेव अपनी अञ्जलिपुट को बाँधकर अर्थात् हाथ जोड़ने वाले होकर भक्ति की भावना से नीचे की ओर कन्धरा वाले हो गये थे। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की झड़ी लग रही थी तथा समस्त शरीर रोमाञ्चित हो गया था। वे वसुदेव अपनी पत्नी देवकी को साथ में लेकर श्रीहरि से प्रार्थना करने लगे थे ॥७८-७९॥

श्रीमन्तमिन्द्रियातीतमक्षरं निर्गुणं विभुम् ।
ध्यानासाध्यञ्च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम् ॥८०
स्वेच्छामयं सवरूप स्वेच्छारूपधरं परम् ।
निर्लिप्तं परमं ब्रह्म बीजरूपं सनातनम् ॥८१
स्थूलात् स्थूलतरं व्याप्तमतिसूक्ष्ममदर्शनम् ।
स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम् ॥८२
शरीरवन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम् ।
प्रकृतिं प्रकृतीशञ्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥८३
सर्वेशं सर्वरूपञ्च सर्वान्तकरमव्ययम् ।
सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभो ॥८४

वसुदेव ने कहा—हे भगवन् ! आपकी मैं क्या स्तुति करूं। आप तो श्रीमान्-इन्द्रियों की पहुँच से भी परे हैं। आपका स्वरूप अक्षर-निर्गुण-विभु-ध्यान से न साधना के योग्य-सबके परमात्मा और ईश्वर हैं ॥८०॥ आप स्वेच्छामय-सबके रूप वाले-अपनी ही इच्छा से रूप धारण करने वाले-पर-निर्लिप्त-परमब्रह्म-बीज रूप वाले तथा सनातन हैं ॥८१॥ हे भगवन् ! आप स्थूल से भी स्थूल और सूक्ष्म-अदर्शन एवं व्याप्त हैं। आप सबके शरीरों में संस्थित-सबके साक्षी रूप वाले और स्वयं अदृश्य हैं ॥८२॥ आप शरीर धारी-सगुण तथा बिना शरीर वाले गुणों के उत्कट हैं। आप स्वयं प्रकृति के रूप वाले और प्रकृति के ईश

हैं। आपका स्वरूप प्राकृत भी है और आप प्रकृति से भी पर हैं ॥८३॥ हे भगवन् ! आप सबके स्वामी और सबके स्वरूप वाले हैं—सबके अन्त करने वाले तथा अव्यय हैं। आप सबके आधार और स्वयं बिना आधार वाले हैं ? आप निर्व्यूह हैं। हे विभो ! मैं किस प्रकार से आपका स्तवन करने में समर्थ होऊं ? ॥८४॥

अनन्तः स्तवनेऽशक्तोऽशक्ता देवी सरस्वती ।
यं स्तोतुमसमर्थश्चपञ्चवक्त्रःषड़ाननः ॥८५
चतुर्मुखो वेदकर्त्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा ।
गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥८६
ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः ।
स्वप्ने तेषामदृश्यश्च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते ॥८७
श्रुतयः स्तवनेऽशक्ताः किं स्तुवन्ति विपश्चितः ।
विहायैवं शरीरञ्च बालो भवितुमर्हसि ॥८८
वसुदेवकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
भक्तिदास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ॥८९
विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम् ।
संकटं निस्तरेत् तूर्णं शत्रुभीत्याःप्रमुच्यते ॥९०

आपकी स्तुति करने में शेष अशक्त हैं और साक्षात् वागधिष्ठात्री देवी सरस्वती भी असमर्थ हैं। आप ऐसे हैं कि जिनका स्तवन करने में पञ्च व वञ्च शिव और षडानन स्वामि कार्त्तिकेय भी असमर्थ हैं ॥८५॥ चार मुखों वाले वेदों के निर्माता ब्रह्मा भी सदा आपकी स्तुति करने में अशक्त होते हैं। योगीन्द्रों के गुरु गणेश भी आपका स्तवन करने में कभी समर्थ नहीं होते हैं। अन्य ऋषिगण-देव वर्ग-मुनीन्द्र मण्डल-मनुगण और मानव जो हैं उनको तो आप स्वप्न में भी दृश्य नहीं हुआ करते हैं वे आपकी क्या स्तुति कर सकते हैं ॥८६॥ श्रुतियाँ जब आपकी स्तुति करने में क्षमता नहीं रखती हैं तो विचारे विद्वान क्या स्तवन कर सकते हैं। आप अब इस दिव्य शरीर का त्याग करके बाल स्वरूप वाले होने के योग्य होते हैं ॥८८॥ इस वसुदेव के द्वारा

किये हुये स्तोत्र को जो तीनों समयों में पढ़ता है वह भक्ति और दास्य श्रीकृष्ण के चरण कमल में अवश्य ही प्राप्त करता है ॥८९॥ इस स्तोत्र का पाठ करने वाला पुरुष श्रीहरि का दास विशेषता से युक्त पुत्र की प्राप्ति किया करता है जो कि सभी सद्गुणों से समन्वित होता है। इस स्तोत्र के पढ़ने वाला संकटों से निस्तारा पा जाता है और शीघ्र ही उसकी शत्रु से होने वाली भीति (भय) छूट जाया करती है ॥९०॥

वसुदेववचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् ।
प्रसन्नवदनः श्रीमान् भक्तानुग्रहकातरः ॥९१
तपसाञ्च फलेनैव पुत्रोऽहं तव साम्प्रतम् ।
वरं वृणुष्व भद्रन्ते भविष्यति न संशयः ॥९२
पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः ।
पत्न्यासहतपस्विन्यातपसाराधितस्त्वया ॥९३
पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा माञ्च वृतो वरः ।
मया दत्तो वरस्तुभ्य मत्समो भविता सुतः ॥९४
दत्त्वा तुभ्यं वरं तात मनसालोच्य चिन्तितम् ।
मत्समो नास्ति भुवने पुत्रोऽहं तेन हेतुना ॥९५
तपसाञ्च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम् ।
सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता ॥९६
अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवः पिता मम ।
देवकी देवमातेयमदितेरंशसम्भवा ॥९७
त्वत्तोऽदित्यां वामनोऽहं पुत्रस्तेंऽशेन सम्भवः ।
अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसः फलात् ॥९८

नारायण ने कहा—वसुदेव के इस वचन को सुन कर श्रीहरि स्वयं उससे बोले जिनका मुख एक दम प्रसन्न था और श्री की शोभा से सम्पन्न तथा भक्तों पर अनुग्रह करने में आतुर थे। श्रीकृष्ण ने कहा—आपकी तपस्याओं के फल से ही मैं पुत्रत्व के रूप में अब प्राप्त हुआ हूँ। तुम जो भी चाहो मुझ से वरदान माँग लो। आपका कल्याण होगा—इसमें तो कुछ भी संशय नहीं है ॥९१-९२॥ पहिले तपस्वियों

में परम श्रेष्ठ सुन्दर तप करने वाले आप प्रजापति थे। आपने अपनी तपस्विनी पत्नी के सहित तपस्या के द्वारा मेरी आराधना की थी ॥६३॥ वहाँ पर मेरा दर्शन करके आपने मेरा जैसा ही पुत्र प्राप्त करने का वरदान माँगा था। मैंने वरदान तुमको दे दिया था कि मेरा जैसा ही पुत्र होगा ॥६४॥ वरदान मैं दे चुका था किन्तु हे तात! फिर मैंने मन में विचार किया था और सोचा तो कि मेरा जैसा भुवन में अन्य कोई नहीं है। उसी हेतु से अब मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ ॥६५॥ तपों के प्रभाव से तुम स्वयं कश्यप सुतपा और देवमाता यह अदिति पतिव्रता है। इस समय कश्यप का अंश मेरे पिता आप वसुदेव हुए हैं और अदिति के अंश से होने वाली देवमाता यह देवकी हुई हैं ॥६७॥ तुम से अदिति में मैं वामन पुत्र अंश से जन्मा था। किन्तु इस समय तो तप के फल से मैं पूर्ण ही आपका पुत्र हो गया हूं ॥६८॥

मांवात्वं पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन वा पुनः।
मां प्राप्तोऽसि महाप्राज्ञजीवन्मुक्तोभविष्यसि ॥६६
यशोदाभवनं शीघ्रं मां गृहीत्वा व्रजं व्रज।
संस्थाप्यतत्रमांतात मायामादाय स्थापय ॥१००
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र बालरूपो बभूव ह।
नग्नं भूमौ शयानश्च ददर्श श्यामलं सुतम् ॥१०१
दृष्ट्वा स बालकं तत्र मोहितो विष्णुमायया।
किंवा कूटश्च तन्द्रायामपूर्वं सूतिकागृहे ॥१०२
इत्युक्त्वा वसुदेवश्च समालोच्य स्त्रिया सह।
गृहीत्वा बालकं क्रोड़े जगाम नन्दगोकुलम् ॥१०३
गत्वा नन्दव्रजं शीघ्रं विवेश सूतिकागृहम्।
ददर्श शयने न्यस्तां यशोदां निद्रयान्विताम्।
निद्रान्वितश्च नन्दञ्च सर्वं तत्र गृहे स्थितम् ॥१०४

अब तुम मुझको चाहे पुत्र भाव से अथवा ब्रह्म भाव से समझें किन्तु हे महाप्राज्ञ! अब आप मुझको प्राप्त हो गये हो और जीवन्मुक्त हो जाओगे ॥६६॥ इस समय तुम मुझको अति शीघ्र व्रज में यशोदा के

घर में ले चलो। वहां मुझको संस्थापित कर हे तात ! माया को लाकर यहाँ स्थापित कर दो ॥१००॥ इतना वसुदेव से कह कर श्रीहरि उसी समय बाल रूप वाले हो गये थे। फिर वसुदेव ने नग्न भूमि में लेटे हुए श्यामल सुत को देखा था ॥१०१॥ उस बालक को वहाँ देख कर वह विष्णु की माया से मोहित हो गये थे। सूतिका गृह में तन्द्रा में वह कूटोक्ति (गूढ वचन) थी, यह कह कर वसुदेव ने अपनी पत्नी के साथ विचार किया और गोद में उस बालक को लेकर नन्द के गोकुल को चले गये थे ॥१०२-१०३॥ नन्द-ब्रज में जाकर वसुदेव ने सूतिका गृह में शीघ्र प्रवेश किया था और नन्द भी निद्रा से युक्त थे और सभी जो वहाँ घर में थे निद्रित हो रहे थे ॥१०४॥

ददर्श बालिकां नग्नां तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां पश्यन्तीं गृहशेखरम् ॥१०५
तां दृष्ट्वा वसुदेवश्च विस्मयं परमं ययौ ॥१०६

संस्थाप्य तत्र पुत्रञ्च कन्यामादाय सत्वरम् ।
जगाम मथुरां त्रस्तः स्वकान्तासूतिकागृहम् ॥१०७
स्थापयामास तत्रैव महामायाञ्चबालिकाम् ।
रोरुद्यमानां तामेव दृष्ट्वा त्रस्ता च देवकी ॥१०८

रोदनेनैवसाबाला बोधयामास रक्षकान् ।
उत्थाय रक्षकाः शीघ्रं जगृहुर्बालिकां तदा ॥१०९
गृहीत्वा बालिकां ते च प्रजग्मुः कंससन्निधिम् ।
जगाम देवकी पश्चात् वसुदेवश्च शोकतः ॥११०

दृष्ट्वा च बालिकां कंसो नातिहृष्टो महामुने।
रोरुद्यमानां कल्याणीं तद्दया न बभूव ह ॥१११
तां गृहीत्वा च पाषाणे हन्तुं यान्तं सुदारुणम् ।
ऊचतुर्वसुदेवश्च देवकी परमादरम् ॥११२

भो भो कंस नृपश्रेष्ठ नीतिशास्त्रविशारद ।
निबोध वाक्यं सत्यञ्च नीतियुक्तं मनोहरम् ॥११३

हत्वावयोः पुत्रषट्कं दया ते नास्ति बान्धव।
अधुना चाष्टमे गर्भे बालिकामबलां मम ॥११४
हत्वा किं ते महैश्वर्य्यं भविष्यति महीतले।
स्त्रीमेव हन्तुमबला किं क्षमा रणमूर्द्धनि ॥११५
इत्येवमुक्त्वा तं वसुर्देवकी च सभातले।
रुरोद पुरतस्तत्र कंसस्य च दुरात्मनः ॥११६
कंसस्तयोर्वचः श्रुत्वा तामुवाच सुदारुणः।
शृणु वाक्यं मदीयञ्चनि बोधबोधयामि ते ॥११७

वसुदेव ने उसे देख कर अत्यन्त आश्चर्य किया था क्यों कि वहाँ उसने एक नग्न बालिका को देखा था जो तपे हुए स्वर्ग के समान कान्ति वाली थी और जिसका मुख मन्द हास्य से युक्त था तथा वह गृहशेखर को देख रही थी ॥१०५-१०६॥ वसुदेव ने पुत्र को वहाँ रख कर और कन्या को लेकर शीघ्र ही मथुरा को प्रस्थान किया था और डरते हुए अपनी कान्ता के सूतिका गृह में आ गये थे ॥१०७॥ वहाँ आकर महा माया बालिका को स्थापित कर दिया था। उसे बार२ रुदन करती हुई को देख कर देवकी बहुत त्रस्त हुई थी ॥१०८॥ अपने रोदन के द्वारा ही उस बालिका ने रक्षकों को जगा दिया था। रक्षक शीघ्र ही उठे और उन्होंने उसी समय उस बालिका को ले लिया था ॥१०९॥ वे उस बालिका को ग्रहण करके कंस के समीप में पहुँचे गये थे। उनके पीछे देवकी और वसुदेव भी शोक विवश होकर वहाँ गये थे ॥११०॥ हे महामुने! उस बालिका को देख कर अति प्रसन्न नहीं हुआ था। वह उस समय रो रही थी किन्तु उस कल्याणी के प्रति उसको दया नहीं हुई थी। कंस ने उस कन्या को लेकर पाषाण पर मारने के लिये जाते हुए अत्यन्त दारुण कंस से वसुदेव और देवकी आदर के साथ बोले—॥१११-११२॥ हे कंस! हे नृपों में श्रेष्ठ! हे नीति शास्त्र के महा पण्डित! सत्य और नीति से युक्त वाक्य को जो अति सुन्दर है समझ लो ॥११३॥ हे बान्धव! आपने हमारे छँ पुत्रों को मार दिया है अभी भी आपको दया नहीं होती है। अब तो

आठवें गर्भ में यह विचारी एक बालिका मेरी अबला ही शेष है। इसे भी मार कर इस महीतल में तेरा क्या महान् ऐश्वर्य हो जायगा। श्री को ही हनन करने को रण में अबला क्या क्षम है। इतना कह कर वसुदेव और देवकी उस सभा में उस दुरात्मा कंस के आगे वहाँ रोने लगे थे ॥११४-११६॥ कंस ने उन दोनों के वचन को सुन कर अत्यन्त दारुण ने उससे कहा—मेरा वाक्य सुनो और समझो-मैं तुमको समझाता हूँ ॥११७॥

तृणेन पर्वतं हन्तुं शक्तो धाता च दैवतः।
कीटेन सिंहशार्दूल मशकेन गजं तथा ॥११८
शिशुना च महावीरं महान्तं क्षुद्रजन्तुभिः।
मूषिकेण च मार्जारं मण्डूकेन भुजङ्गमम् ॥११९
एवं जन्येन जनकं भक्ष्येणैव च भक्षकम्।
वह्निना च जलं नष्टं वह्निशुष्कतृणेन च ॥१२०
पीताः सप्त समुद्राश्च द्विजेनैकेन जह्नुना।
धातुर्गतिर्विचित्रा च दुर्ज्ञेया भुवनत्रये ॥१२१
दैवेन बालिका नष्टुं मां समर्था भविष्यति।
बालिकाञ्च वधिष्यामि नात्र कालविचारणा ॥१२२
इत्येवमुक्त्वा कंसश्च गृहीत्वा बालिकां तदा।
हन्तुमारब्धवान् कंसस्तमुवाच वसुस्तदा।
वृथा हिंसितवान् राजन् देहि बालां कृपानिधे ॥१२३
स तच्छ्रुत्वा विचारज्ञःकंसस्तुष्टो महामुने।
संबोधयन्ती तत्रैववाग्बभूवाशरीरिणी ॥१२४

कंस ने कहा—धाता और दैवत एक तिनके के द्वारा विशाल पर्वत का हनन करने में समर्थ होता है। तथा एक क्षुद्र कीट के द्वारा सिंह शार्दूल को और मच्छर के द्वारा हाथी का हनन वह कर सकता है ॥११८॥ बहुत छोटे शिशु से महान् बलवान का, क्षुद्र जन्तु से महान् का, मूषिक से मार्जार का और मण्डूक के द्वारा सर्प का हनन भी करने में देव की शक्ति होती है ॥११९॥ जन्य के द्वारा जनक का-भक्ष्य के

द्वारा भक्षण करने वाले का घात हो सकता है। वह्नि के द्वारा जल नष्ट हो जाता है और शुष्क तृण से अग्नि का शमन हो सकता है। सातों समुद्र एक जह्नु द्विज ने पी लिये थे। धाता की बड़ी विचित्र गति है जो कि तीनों भुवनों में दुर्ज्ञेय होती है ॥१२०-१२१॥ दैव के द्वारा यह एक छोटी सी बालिका भी मुझको नष्ट करने में समर्थ हो जायगी। मैं तो इस बालिका का वध करूंगा ही इसमें कुछ भी विचार नहीं करना है ॥१२२॥ यह कह कर कंस ने उसी समय में बालिका को मारना आरम्भ कर दिया था। कंस से उस समय वसुदेव ने कहा—हे राजन्! यह बालिका मुझे देदो। हे कृपानिधे! आपने सभी बालकों को अब तक वृथा ही मार दिया था ॥१२३॥ यह सुन कर हे महामुने! विचारज्ञ कंस कुछ तुष्ट हुआ था कि उसी समय वहां आकाशवाणी हुई थी जिसने कंस को सम्बोधित करके कहा था ॥१२४॥

हे कंस हंसि कां मूढ़ न विज्ञाय विधेर्गतिम्।
कुत्रचित्ते निहन्तास्ति काले व्यक्तो भविष्यति ॥१२५
श्रुत्वैवं दैववाणीश्च तत्याज बालिकां नृपः ॥१२६
वसुदेवो देवकी च तामादाय मुदान्वितः।
जग्मतुःस्वगृहंतौ च कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि ॥१२७
मृतामिव पुनः प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्।
सा परा भगिनी विप्र कृष्णस्य परमात्मनः।
एकानंशेन विख्याता पार्वत्यंशसमुद्भवा ॥१२८
वसुस्तां द्वारकायान्तु रुक्मिण्युद्वाहकर्मणि।
ददौ दुर्वाससे भक्त्या शङ्करांशायभक्तितः ॥१२९
एवं निगदितं सर्वं कृष्णजन्मानुकीर्त्तनम्।
जन्ममृत्युजराविघ्नं सुखदं पुण्यदं मुने ॥१३०

हे कंस! हे मूढ! विधाता की गति को न जान कर तू किसको मार रहा है? तेरा मारने वाला तो कहीं पर विद्यमान है जो समय आ जाने पर व्यक्त हो जायगा ॥१२५॥ इस तरह की देव वाणी को श्रवण कर कंस ने बालिका को मारने से छोड़ दिया था ॥१२६॥

फिर वसुदेव और देवकी दोनों उसे लेकर आये थे और प्रसन्न होकर वे दोनों अपने घर चले गये थे। उन्होंने उस कन्या को वक्षःस्थल में लगा लिया था और मरी हुई के समान उसे पुनः प्राप्त कर ब्राह्मणों को बहुत धन दान में दिया था। हे विप्र ! वह कृष्ण की परमात्मा की परा भगिनी थी जो एकानंश से पार्वती के अंश से उत्पन्न होने वाली विख्यात हुई थी ॥१२७-१२८॥ वसुदेव ने उसको द्वारका में रुक्मिणी के विवाह में शंकर के अंश दुर्वासा को भक्ति से दे दिया था ॥१२९॥ हे मुने ! इस प्रकार से हमने श्रीकृष्ण भगवान् के जन्म का सम्पूर्ण अनुकीर्त्तन बता दिया है। यह श्रीकृष्ण का जन्म का वृतान्त जन्म-मृत्यु जरा का नाशक-सुख देने वाला तथा पुण्य प्रदान करने वाला है ॥१३०॥

६३—यशोदानन्दयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तकथनम्।

संस्थाप्य गोकुलेकृष्णं यशोदामन्दिरेवसुः।
जगाम स्वगृहनन्दःकिं चकारसुतोत्सवम् ॥१

किं चकार हरिस्तत्र कतिवर्षस्थितिर्विभोः।
बालक्रीड़नकं तस्य वर्णय क्रमशः प्रभो ॥२

पुरा कृता या प्रतिज्ञा गोलोके राधया सह।
तत् कृतं केन विधिना प्रतिज्ञापालनं वने ॥३

कीदृग् वृन्दावनं रासमण्डलं किंविधंवद।
रासक्रीड़ां जलक्रीड़ां संव्यस्य वर्णय प्रभो ॥४

नन्दस्तपः किं चकार यशोदा चाथ रोहिणी।
हरेः पूर्वञ्च हलिनः कुत्र जन्म बभूवह ॥५
पीयूषखण्डमाख्यानमपूर्वं श्रीहरेः स्मृतम्।
विशेषतः कविमुखे काव्यं नूत्नं पदे पदे ॥६
स्वरासमण्डलक्रीड़ां वर्णयस्व त्वमेव च।
परोक्षवर्णनं काव्यं प्रशस्तं दृश्यवर्णनम् ॥७

इस अध्याय में यशोदा और नन्द के पूर्व जन्म के वृतान्त का कथन है। नारद ने कहा—वसुदेव गोकुल में यशोदा के मन्दिर में कृष्ण को संस्थापित करके अपने घर को वापिस लौट कर चले गये थे फिर नन्द ने उस पुत्र के जन्म का क्या कोई महोत्सव मनाया था ? ।।१।। वहाँ पर हरि ने क्या लीलाऐं की थीं और उस ब्रज में उस विभु परमेश्वर की कितने वर्ष तक स्थिति रही थी ? हे प्रभो ! ब्रज में जो उनकी बाल-क्रीड़ायें हुईं थीं उनका क्रम से वर्णन करने की कृपा करें ।।२।। पहिले गोकुल में जो राधा के साथ प्रतिज्ञा की थी वह उस वन में किस प्रकार से प्रतिज्ञा का पालन गोलोक विहारी ने किया था ? ।।३।। वह वृन्दावन किस प्रकार का है और श्रीकृष्ण का रास मण्डल कैसा है यह भी बतलाइये। हे प्रभो ! ब्रज की रास क्रीड़ा और जल केलि का भली भाँति विस्तृत रूप से वर्णन करिये ।।४।। नन्द ने ऐसा क्या तप किया था और यशोदा तथा रोहिणी ने क्या पुण्य कार्य किया था ? हरि के पूर्व हलधर का कहाँ जन्म हुआ था ।।५।। श्रीहरि का पीयूष खण्ड आख्यान कहा गया है। विशेष करके कवि के मुख में प्रत्येक पद में एक नवीनता हो जाती है ।।६।। आप ही अपने रासमण्डल की क्रीड़ा को वर्णन करें। दृश्य वर्णन का परोक्ष वर्णन काव्य अधिक प्रशस्त होता है ।।७।।

श्रीकृष्णो भगवान् साक्षाद् योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।
यो यस्यांशः स तु जनस्तस्यैव सुखतः सुखी ।।८
त्वयैव वर्णितौ पादौ विलीनौ तु युवां हरे ।
साक्षाद् गोलोकनाथांशस्त्वमेव तत्समा महान् ।।९
ब्रह्मेशशेषविघ्नेशाः कूर्मो धर्मोऽयमेव च ।
नरश्च कार्त्तिकेयश्च श्रीकृष्णांशा वयं नव ।।१०
अहो गोलोकनाथस्य महिमा केन वर्ण्यते ।
यं स्वयं नो विजानीमो न वेदाः किं विपश्चितः ।।११
शूकरो वामनः कल्की बौद्धः कपिलमीनकौ ।
एतेचांशाःकलाश्चान्ये सन्त्येव कतिधा मुने ।।१२

पूर्णो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपविराट्विभुः ।
परिपूर्णतमः कृष्णो वैकुण्ठे गोकुले स्वयम् ॥१३

वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूपभेदाच्चतुर्भुजः ।
गोलोकेगोकुले राधाकान्तोऽयं द्विभुजःस्वयम् ॥१४

अस्यैव तेजो नित्यञ्च चित्ते कुर्वन्ति योगिनः ।
भक्ताःपादाम्बुजंतेजः कुतस्तेजस्विनंविना ॥१५

श्रीकृष्ण भगवान् साक्षात् हैं और योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु हैं। जो जिसका अंश है वह तो उसी का जन है और उसी के सुख से वह सुखी होता है ॥८॥ हे हरे ! आपने ही तुम दोनों के पाद विलीन हुए वर्णन किये हैं। आप भी साक्षात् गोलोक के नाथ के अंश हैं अतएव उसी के समान ही महान् हैं ॥९॥ नारायण ने कहा—हम तो श्रीकृष्ण के ही अंश हैं उनमें ब्रह्मा–शिव-शेष-गणेश–कूर्म-धर्म-नर और यह तथा कार्त्तिकेय हैं ॥१०॥ अहो ! गोलोक के नाथ की महिमा किस के द्वारा वर्णन की जा सकती है जिसको हम स्वयं भी नहीं जानते हैं और वेद भी नहीं जान पाते हैं तो विद्वान अन्य क्या जान सकते हैं ? ॥११॥ हे मुने ! शूकर-वामन-कल्की-बौद्ध-कपिल-मीन ये अंश हैं और अन्य कितने ही प्रकार के कला हैं ॥१२॥ नृसिंह–राम पूर्ण हैं और श्वेत द्वीप विराट् प्रभु भी पूर्ण हैं। श्रीकृष्ण वैकुण्ठ और गोकुल में स्वयं परिपूर्णतम हैं ॥१३॥ वैकुण्ठ में कमला के कान्त रूप के भेद होने से चार भुजा वाले हैं। गोलोक और गोकुल में यह राधाकान्त हैं जो स्वयं दो भुजाओं वाले हैं ॥१४॥ इसी के ही नित्य तेज को योगीगण चित्त में किया करते हैं। भक्त लोग इनके पादाम्बुज को चित्त में करते हैं। तेजस्वी के बिना तेज कहाँ हो सकता है ॥१५॥

शृणु विप्र वर्णयामि यशोदानन्दयोस्तपः ।
रोहिण्याश्च यतो हेतोर्ददृशुस्ते हरेर्मुखम् ॥१६

वसूनां प्रवरो नन्दो नाम्ना द्रोणस्तपोधनः ।
तस्यापत्नीधरासाध्वीयशोदासा तपस्विनी ॥१७

रोहिणी सर्पमाता च कद्रुश्च सर्पकारिणी ।
एतेषां जन्मचरितं निबोध कथयामि ते ।।१८
एकदा च धराद्रोणौ पर्वते गन्धमादने ।
पुण्यदे भारते वर्षे गौतमाश्रमसन्निधौ ।।१९
चक्रतुश्च तपस्तत्र वर्षाणामयुतं मुने ।
कृष्णस्य दर्शनार्थश्च निर्जने सुप्रभातटे ।
न ददर्श हरिं द्रोणो धरा चैव तपस्विनी ।।२०
कृत्वाऽग्निकुण्डं वैराग्यात् प्रवेष्टुं समुपस्थितौ ।।२१

हे विप्र ! अब आप श्रवण करिये, मैं यशोदा और नन्द के तप के विषय में वर्णन करता हूँ जिस हेतु से उन्होंने रोहिणी से हरि का मुख देखा था ।।१६।। जो यहाँ व्रज में नन्द नाम से प्रसिद्ध हैं यह वसुओं में श्रेष्ठ द्रोण तपोधन था । उसकी पत्नी धरा थी जो तपस्विनी ब्रज में यशोदा हुई हैं ।।१७।। रोहिणी सर्पों की माता सर्पों को समुत्पन्न करने वाली कद्रू थी । इनके जन्मों का चरित मैं कहता हूँ, आप उसे समझ लो ।।१८।। एक समय में धरा और द्रोण दोनों पति पत्नी पुण्य प्रद भारत में गन्ध मादन नामक पर्वत पर गौतम ऋषि के आश्रम के समीप में तपस्या कर रहे थे और वह तप हे मुने ! वहां दश सहस्र वर्ष तक किया था । उस निर्जन सुप्रभा के तट पर यह तपस्या श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त करने के लिये किया था । किन्तु द्रोण और धरा दोनों ने ही हरि का दर्शन प्राप्त नहीं किया था ।।१९-२०।। तब इन दोनों को बड़ी ही विरक्ति हो गई थी और ये अग्नि कुण्ड बना कर उसमें प्रवेश करने को उद्यत हो गये थे ।।२१।।

तौ मर्त्तुकामौ दृष्ट्वा च वागबभूवाशरीरिणी ।
द्रक्ष्यथःश्रीहरिं पृथ्व्यां गोकुले पुत्ररूपिणम् ।।२२
जन्मान्तरे वसुश्रेष्ठ दुर्दर्शं योगिनां विभुम् ।
ध्यानासाध्यश्च विदुषां ब्रह्मादीनश्चवन्दितम् ।।२३
श्रुत्वैवं तद्धराद्रोणौ जग्मतुः स्वालयं सुखात् ।
लब्ध्वातुभारतेजन्म दृष्टं ताभ्यां हरेर्मुखम् ।।२४

रहस्यं गोपनीयञ्च सर्वं निगदितं मुने ।
अधुना बलदेवस्य जन्माख्यानं मुने शृणु ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य सहस्रशिरसः प्रभोः ॥२५

रोहिणी वसुदेवस्य भार्य्यारत्नञ्च प्रेयसी ॥२६

जगाम गोकुलं साध्वी वसुदेवाज्ञया मुने ।
सङ्कर्षणस्य रक्षार्थं कंसभीता पलायिता ॥२७

देवक्याः सप्तमं गर्भं माया कृष्णाज्ञया तदा ।
रोहिण्या जठरे तत्र स्थापयामास गोकुले ।
संस्थाप्य च तवा गर्भं कैलाशं सा जगाम ह ॥२८

उन दोनों को मरने की इच्छा वाले देख कर आकाश वाणी हुई थी—तुम दोनों हरि को पृथ्वी में गोकुल में पुत्र के रूप में दर्शन करोगे ॥२२॥ हे वसुश्रेष्ठ ! जैसे तुम दूसरे जन्म में पुत्र के रूप में प्राप्त करोगे वह विभु योगियों को दुर्दश है—विद्वानों के ध्यान में भी साधन के योग्य नहीं है और ब्रह्मादि के द्वारा वन्दित है ॥२३॥ इस अशरीर वाणी के वचन को सुनकर धरा और द्रोण अपने घर को चले गये थे और उनको महान् सुख हुआ था । उन्होंने भारत में जन्म का लाभ कर श्रीहरि के मुख का दर्शन किया था ॥२४॥ हे मुने ! मैंने सम्पूर्ण रहस्य और गोपनीय विषय तुमको बता दिया है। अब हे मुने ! सहस्र शिर वाले अनन्त, प्रभु और अप्रमेय बलदेव के जन्म का आख्यान श्रवण करो ॥२५॥ रोहिणी वसुदेवजी परम प्रिय भार्याओं में रत्न के समान श्रेष्ठ पत्नी थी ॥२६॥ हे मुने ! यह साध्वी वसुदेव की आज्ञा से गोकुल चली गई थी । यह वहाँ संकर्षण की रक्षा ही के लिये कंस से भयभीत होकर व्रज में भाग गई थी ॥२७॥ देवकी का सातवाँ गर्भ जो था उसे माया ने श्रीकृष्ण की आज्ञा से वहाँ रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया था । उस गर्भ को गोकुल वासिनी रोहिणी के पेट में रखकर वह माया देवी कैलाश को चली गई थी ॥२८॥

दिनान्तरे कतिपये रोहिणी नन्दमन्दिरे ॥२९

सुषाव पुत्रं कृष्णांशं तप्तरौप्याभमीश्वरम् ।
ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥३०
तस्यैव जन्ममात्रेण देवाः प्रमुदिरे तदा ।
स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुरानका मुरजादयः ।
जयशब्दं शङ्खशब्द चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥३१
नन्दो हृष्टो ब्राह्मणेभ्यो धनं बहुविधं ददौ ।
चिच्छेद नाड़ीं धात्री च स्नापयामास बालकम् ॥३२
जयशब्दं जगुर्गोप्यः सर्वाभरणभूषिताः ।
परपुत्रोत्सवं नन्दश्चकार परमादरात् ॥३३
ददौ यशोदा गोपीभ्यो ब्राह्मणीभ्यो धनं मुदा ।
नानाविधानि द्रव्याणि सिन्दूरतैलमेवच ॥३४
इत्येवं कथितं वत्स यशोदानन्दयोस्तपः ।
जन्माख्यानञ्च हलिनो रोहिणी चरितं तथा ॥३५

कतिपय दिनों के अन्तर में नन्द के घर में रोहिणी ने पुत्र का प्रसव किया था जो कि कृष्ण का अंश और तपे हुए रौप्य (चाँदी) के समान आभा वाला था । यह ईश्वर मन्द हास्य से युक्त—प्रसन्न मुख और ब्रह्म तेज के द्वारा देदीप्यमान थे ॥२६-३०॥ उनके जन्म से ही उस समय देवता बहुत प्रसन्न हुए थे । उन्होंने स्वर्ग में दुन्दुभि—आनक और मुरज आदि अनेक वाद्य बजवाये थे ॥३१॥ देवगण अत्यन्त हर्षित होकर जय-जय कार करने लगे और शंखों की ध्वनि की थी । नन्द भी बहुत प्रसन्न हुए और ब्राह्मणों को बहुत प्रकार का धन उन्होंने दान में दे दिया था । धात्री ने जाल का विच्छेद करके बालक को स्नान कराया था ॥३२॥ समस्त आभूषणों से समलंकृत होकर गोपियों ने जयकार का गायन किया था । नन्द ने दूसरे के पुत्र का उत्सव परम आदर से किया था ॥३३॥ यशोदा ने गोपियों को और विप्रों को प्रसन्नता से धन दिया था । उसने अनेक तरह के द्रव्य—सिन्दूर और तैल दिया था ॥३४॥ हे वत्स ! यह हमने यशोदा और नन्द के तप को बता दिया है । मैंने हलधर के जन्म का आख्यान और रोहिणी का चरित भी बता दिया है॥३५॥

अधुना वाञ्छनीयन्ते नन्दपुत्रोत्सवं शृणु ।
सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युजरापहम् ॥३६
मङ्गलं कृष्णचरितं वैष्णवानाञ्च जीवनम् ।
सर्वाशुभविनाशञ्च भक्तिदास्यप्रदं हरेः ॥३७
वसुदेवश्च श्रीकृष्णं संस्थाप्यनन्दमन्दिरे ।
गृहीत्वा बालिकां हृष्टो जगाम निजमन्दिरम् ॥३८
कथितं चरितं तस्याः श्रुतं यत् सुखदं मुने ।
अधुना गोकुले कृष्णचरितं शृणु मङ्गलम् ॥३९
वसुदेवे गृहे याते यशोदा नन्द एव च ।
मङ्गले सूतिकागारे जयागारे जयान्विते ॥४०
ददर्श पुत्रं भूमिष्ठं नवीननीरदप्रभम् ।
अतीव सुन्दरं नग्नं पश्यन्त गृहशेखरम् ॥४१
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
रुदन्तञ्च हसन्तञ्च रेणुसंयुक्तविग्रहम् ।
हस्तद्वयं भुविन्यस्तं प्रेमवन्तं पदाम्बुजम् ॥४२

अब सम्भवतः आपकी इच्छा का विषय नन्द का पुत्र जन्म—उत्सव है, उसी का श्रवण करो। यह नन्दोत्सव का आख्यान सुख प्रद—मोक्ष प्रद—सार स्वरूप और जन्म तथा मृत्यु और जरा का अपहरण करने वाला है ॥३६॥ श्रीकृष्ण का चरित मङ्गल स्वरूप है और वैष्णवों का तो यह जीवन ही है इससे सम्पूर्ण अशुभों का विनाश होता है और हरि की भक्ति तथा दास्य पद की प्राप्ति हुआ करती है ॥३७॥ वसुदेव तो श्रीकृष्ण को नन्द के घर में संस्थापित कर उलटे पांव प्रसन्न होते हुए अपने घर चले गये थे ॥३८॥ हे मुने! उसका चरित मैंने कह दिया है जिसको कि तुमने सुन लिया है और उससे सुख भी प्राप्त किया है। अब गोकुल में श्रीकृष्ण के चरित का श्रवण करो जो कि परम मंगल स्वरूप वाला है ॥३९॥ वसुदेव के अपने घर पर चले जाने के बाद यशोदा और नन्द ने जय के आगार—जय से समन्वित परम मंगलमय सूतिका गृह में भूमि में लेटे हुए नवीन मेघ के समान प्रभा वाले—अतीव

सुन्दर—नग्न और गृह शेखर को देखने वाले पुत्र को देखा था ॥४०-४१॥ उस समय श्रीकृष्ण शरत्पूर्णिमा के चन्द्र के तुल्य मुख वाले—नील कमल के तुल्य नेत्रों से युक्त—रुदन तथा हास्य करने वाले एवं धूलि से समन्वित शरीर वाले थे। इनके दोनों हाथ भूमि में न्यस्त थे और श्रेयवान् पादाम्बुज थे ॥४२॥

दृष्ट्वा नन्दः स्त्रिया सार्द्धं हरिं हृष्टो बभूव ह ॥४३
धात्री तं स्नापयामास शीततोयेन बालकम् ।
चिच्छेद नाड़ीं बालस्य हर्षाद् गोप्यो जयं जगुः ।४४
आजग्मुर्गोपिकाः सर्वा बृहत्श्रोण्यश्चलत्कुचाः ।
बालिकाश्च वयःस्थाश्च विप्रपत्न्यश्च सूतिकाम् ॥४५
आशिषं युयुजुः सर्वा ददृशुर्बालक मुदा ।
क्रोड़े चक्रुः प्रशंसन्त्य ऊषुस्तत्र च काश्चन ॥४६
नन्दः सचैलःस्नात्वा च धृत्वा धौते च वाससी ।
पारम्पर्य्यविधिं तत्र चकार हृष्टमानसः ॥४७
ब्राह्मणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् ।
वाद्यानि वादयामास वन्दिभ्यश्च ददुर्धनम् ॥४८
रक्षितुं सूतिकागारं योजयामास ब्राह्मणान् ।
तत्र मन्त्रज्ञमनुजान् स्थविरान् गोपिकागणान् ॥४९

नन्द अपनी पत्नी के साथ हरि को देख कर बहुत ही हर्षित हुए थे। उसी समय धात्री ने शीतल जल से बालक को स्नान कराया था। बालक का नालच्छेदन किया था और हर्षातिरेक से "नन्द के आनन्द भये जय कन्हैयालाल की" ऐसे गायन गोपियों ने किये थे ॥४३-४४॥ उस समय व्रज के कोने-कोने से समस्त गोपाङ्गनाऐं आईं थीं जिनके वृहत् श्रोणी स्थल थे और चलने में कुचों का चालन हो रहा था। उनमें बालिकाऐं और युवतियाँ तथा प्रौढा सभी तरह की थीं। विप्रों की पत्नियां भी आशीष देने के लिये सूतिका गृह में आईं थीं ॥४५॥ सभी ने बालक को देखा था और प्रसन्न होकर आशीष दिया था। उनमें से कुछ तो वहाँ पर ही बैठ गईं थीं तथा बालक को अपनी गोद में लेकर

प्रशंसा कर रहीं थीं ॥४६॥ नन्द ने वस्त्रों के सहित स्नान करके धौत नूतन वस्त्र धारण किये थे। हृष्ट मन वाले नन्द ने वहाँ पर फिर परम्परा की विधि का पूर्णतया पालन किया था ॥४७॥ नन्द ने ब्राह्मणों को भोजन कराया और मङ्गल कराया था। अनेक वाद्यों को बजवाया तथा वन्दियों को धन दिया था ॥४८॥ सूतिकागार की रक्षा के लिये ब्राह्मणों को योजित किया था और वहां पर मन्त्रों के ज्ञाता मनुष्यों को—वृद्धों को और गोपिकायों को नियुक्त किया था ॥४९॥

वेदांश्च पाठयामास हरेर्नामैकमङ्गलम् ।
भक्त्या च ब्राह्मणद्वारा पूजयामास देवताः ॥५०
सस्मिता विप्रपत्न्याश्चवयस्थाःस्थविरावराः ।
बालिकाबालकयुताआजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ।
तेभ्योऽपि प्रददौ रत्नं धनानि विविधानि च ॥५१
गोपालिकाश्च वृद्धाश्च रत्नालङ्कारभूषिताः ।
सस्मिताः शीघ्रगामिन्य आजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ।
बहुवस्त्राणि रौप्याणि गोसहस्राणि ादरम् ॥५२
नानाविधाश्च गणका ज्योतिः शास्त्रविशारदाः ।
वाक्सिद्धाः पुस्तककराः आजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ॥५३
नन्दस्तेभ्यो नमस्कृत्य चकार विनयं मुदा ।
आशिषं युयुजुः सर्वे ददृशुर्बालकं परम् ॥५४
एवं संभृतसम्भारो बभूव व्रजपुङ्गवः ।
गणकैः कारयामास यद्भविष्यं शुभाशुभम् ॥५५
एवं ववर्द्ध बालश्च शुक्लपक्षे यथा शशी ।
नन्दालये हली चैव भुङ्क्ते मातुः पयोधरम् ॥५६
तदा च रोहिणी हृष्टा तत्र पुत्रोत्सवे मुदा ।
तैलसिन्दूरताम्बूलं धनं ताभ्यो ददौ मुने ॥५७
दत्त्वाशिषश्च शिरसि ताश्च ते स्वालयं ययुः ।
यशोदारोहिणीनन्दास्तस्थुर्गेहेमुदान्विता ॥५८

नन्द ने वेदों का पाठ कराया था और परम मंगल हरि नाम का

संकीर्त्तन कराया था। ब्राह्मणों के द्वारा भक्ति की भावना से देवताओं का पूजन कराया था ॥५०॥ ब्राह्मणों की पत्नियाँ—युवतियाँ और वृद्धाऐं-बालिका तया बालक से युक्त सब प्रसन्नता से खिल खिलाती हुईं नन्द के गृह में आईं थीं उन सबके लिये नन्द ने विविध दान और रत्न दिये थे ॥५१॥ गोपालिका और वृद्धाऐं रत्नों को निर्मित आभरणों से समलंकृत होकर स्मित करती हुईं शीघ्रता से गमन करने वाली नन्द के मन्दिर में आगईं थीं। उन सबको नन्द ने बहुत से मूल्यवान् वस्त्र रौप्य—सहस्रों गौऐं आदर के साथ दी थीं ॥५२॥ वहाँ उस समय हर्षोल्लास के इस पुत्रोत्सव के महान् पुण्यमय सुख पूर्ण अवसर पर अनेक गणक जो ज्योतिष शास्त्र के महान् पण्डित थे आये थे, जिनकी वाणी में ही सिद्धियाँ थीं तथा जो अपने हाथों में पुस्तकें लिये हुए थे वे नन्द के भवन में आ गये थे ॥५३॥ नन्द ने उनको नमस्कार बड़ी प्रसन्नता के साथ विनती की थी। सबने बालक को देखा और शुभाशीष दी थी ॥५४॥ व्रज पुंगव इस प्रकार से सम्भारों से सम्भृत हो गये थे और उस समय उसने गणकों के द्वारा शुभ-अशुभ जो भविष्य था उसे उनसे कराया था ॥५५॥ इस प्रकार से वह बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ने लगा। नन्द के घर में हलधर ने भी माता के पयोधर का भोग किया था ॥५६॥ उस समय में उस पुत्र के उत्सव में प्रसन्नता से रोहिणी परम प्रसन्न हुई थी। हे मुने! उनके लिये तैल-सिन्दूर और ताम्बूल तथा धन दिया था ॥५७॥ उस बालक के शिर पर आशीष देकर वे सब अपने गृह को चले गये थे। इसके अनन्तर यशोदा-रोहिणी और नन्द सब घर में प्रसन्नता से युक्त होकर स्थित हो गये थे ॥५८॥

६४—पूतना मोक्ष वर्णन

अथ कंसः सभामध्ये स्वर्णसिंहासनस्थितः।
शुश्राव वाचं गगने सूनृतामशरीरिणीम् ॥१
किं करोषि महामूढ़ चिन्तां स्वश्रेयसःकुरु।
जातःकालो धरण्यांते तिष्ठोपाये नराधिप ॥२

नन्दाय तनयं दत्त्वा वसुदेवस्तवान्तकम् ।
कन्यामादाय तुभ्यञ्च दत्त्वा संमाययास्थितः ॥३

मायांशा कन्यकेयञ्च वासुदेवः स्वयं हरिः ।
तव हन्ता गोकुले च वर्द्धते नन्दमन्दिरे ।
देवकी सप्तमो गर्भो वर्द्धते नन्दमन्दिरे ॥४

देवकी सप्तमो गर्भो न सुस्राव मृतं सुतम् ।
स्थापयामास माया त रोहिणीजठरे किल ।
तत्र जातश्च शेषांशो बलदेवो महाबलः ॥५

गोकुले तौ च वर्द्धते कालौ ते नन्दमन्दिरे ॥६
श्रुत्वा तद्वचनं राजा बभूव नतकन्धरः ।
चिन्तामवाप सहसा तत्याजाहारमुन्मनाः ॥७

इस अध्याय में पूतना के मोक्ष का वर्णन किया है । नारायण ने कहा—इसके पश्चात् कस ने सभा के बीच में सोने के सिंहासन पर स्थित होकर उसने आकाश में परम सत्य बिना शरीर वाली वाणी का श्रवण किया था ॥१॥ आकाश वाणी ने कहा था—हे मूर्ख ! क्या कर रहा है ? अपने कल्याण की चिन्ता कर हे राजन् ! अब भूमि में तेरा काल उत्पन्न हो गया है। कुछ उपाय कर ॥२॥ वसुदेव ने नन्द को अपना पुत्र देकर वहाँ से वह कन्या लाकर तुझे दे दी थी । वह भी माया में संस्थित है ॥३॥ वह कन्या भी माया का एक अंश ही है । वासुदेव अर्थात् वसुदेव का पुत्र तो स्वयं परिपूर्ण हरि ही हैं । वही तेरे हनन करने वाले हैं जो इस समय गोकुल में नन्द के घर पालित हो रहे हैं ॥४॥ देवकी का सातवाँ गर्भ मृत होकर स्राव वाला नहीं हुआ था । अर्थात् मृत सुत नहीं हुआ था । माया ने ही उसे रोहिणी के उदर में स्थापित कर दिया था । वहां व्रज में वह शेष का अंश महान् बलवान् समुत्पन्न हो गया है जिसका शुभ नाम बलदेव है ॥५॥ वे दोनों इस समय गोकुल में नन्द के मन्दिर में बढ़कर बड़े हो रहे हैं। वे दोनों ही तेरे काल हैं ॥६॥ राजा ने उस आकाश वाणी को सुनकर अपनी गरदन

नीचे की ओर झुका ली थी, और सहसा चिन्ता को प्राप्त होकर उसने अपना आहार त्याग दिया था तथा एकदम उदास हो गया था ।।७।।

पूतनाञ्च समानीय प्राणेभ्यः प्रेयसीं सतीम् ।
उवाच भगिनीं राजा सभामध्ये च नीतिवित् ।।८
पूतने गोकुल गच्छ कार्य्यार्थं नन्दमन्दिरे ।
विषाक्तञ्च स्तनं कृत्वा शिशवे देहि सत्वरम् ।।९
त्वं मनोयायिनी वत्से मायाशास्त्रविशारदा ।
मायामानुषरूपंच विधाय व्रज योगिनी ।।१०
दुर्वाससो महामन्त्रं प्राप्य सर्वत्रगामिनी ।
सर्वरूपं विधातुं त्वं शक्ताऽसि सुप्रतिष्ठिते ।।११
इत्युक्त्वा तां महाराजस्तस्थौ संसदि नारद ।
जगाम पूतना कंसं प्रणम्य कामचारिणी ।।१२

उस राजा कंस ने पूतना को बुलवाया था जो उसको प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। उस अपनी बहिन से राजा कंस ने सभा के मध्य में ही कहा था क्योंकि वह नीति शास्त्र का बड़ा विद्वान् था ।।८।। कंस ने कहा—हे पूतने ! तू अब गोकुल में नन्द के गृह में चली जा और वहां अपना विषाक्त स्तन उस शिशु को शीघ्र ही पिला देना ।।९।। हे वत्से ! तू तो अपने मन के अनुसार गमन करने वाली है और माया के शास्त्र की महा पण्डिता है। तू माया से मनुष्य का स्वरूप धारण कर योगिनी हो व्रज में चली जा ।।१०।। तूने तो दुर्वासा ऋषि से महा मन्त्र प्राप्त किया है जिससे तू सर्वत्र गमन करने वाली शक्ति से समन्वित है। हे सुप्रतिष्ठिते ! तेरे अन्दर तो सबके रूप धारण करने की अद्भुत शक्ति भी विद्यमान है ।।११।। हे नारद ! कंस ने पूतना से यह कह कर फिर वह महाराज वहाँ स्थित हो गया था और पूतना कंस को प्रणाम करके स्वेच्छा से गमन करने की शक्ति वाली वह वहाँ से चली गई थी ।।१२।।

तप्तकांचनवर्णाभा नानालङ्कारभूषिता ।
बिभ्रती कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ।।१३

कस्तूरीबिन्दुना युक्तं सिन्दूरं बिभ्रती मुदा।
मञ्जीररशनाभ्यांच कलशब्दं प्रकुर्वती ॥१४
संप्राप्य गोष्ठं ददर्श नन्दालयं मनोहरम्।
परिखाभिर्गभीराभिर्दुर्लंघ्याभिश्च वेष्टितम् ॥१५
रचितं प्रस्तरैर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्म्मणा।
इन्द्रनीलैर्मरकतैः पद्मरागैश्च भूषितम् ॥१६
सुवर्णकलशैर्दिव्यैश्चित्रितैः शेखरोज्ज्वलैः।
प्राकारैर्गगनस्पर्शैश्चतुर्द्वारसमन्वितैः ॥१७
युक्तं लोहकपाटैश्च द्वारपालसमन्वितैः।
वेष्टितं सुन्दरं रम्यं सुन्दरीगणवेष्टितम् ॥१८
मुक्तामाणिक्यपरशैः पूर्णं रत्नादिभिर्धनैः।
स्वर्णपात्रघटाकीर्णं गवां कोटिभिरन्वितम् ॥१९
भरणीयैः किङ्करैश्च गोपलक्षैः समन्वितम्।
दासीनांच सहस्रैश्च कर्मव्यग्रैः समन्वितम् ॥२०
प्रविवेशाश्रमंसाध्वी सस्मिता सुमनोहरा।
दृष्ट्वा तां प्रविशन्तीं च गोप्यस्ताबहुमेनिरे ॥२१
किंवा पद्मालयादुर्गा कृष्णं द्रष्टुं समागता।
प्रणेमुर्गोपिका गोपाः पप्रच्छुः कुशलंचताम्।
ददौ सिंहासनं पाद्यं वासयामास तत्र वै ॥२२

पूतना ने अपना सुन्दर स्वरूप बनाया था वह तपे हुए सुवर्ण के समान वर्ण वाली हो गई थी—अनेक अलंकारों से उसने आपको समलंकृत किया था—मालती के पुष्पों की माला से युक्त उसने अपनी कवरी (चूड़ा) का भार बनाया था ॥१३॥ वह पूतना कस्तूरी के विन्दु से युक्त हुई और उसने सिन्दूर मस्तक में लगा लिया था। वह करधनी और नूपुरों के परम मधुर शब्द करती हुई वहाँ से चल दी थी ॥१४॥ पूतना गोकुल में पहुँच कर उसने अतीव सुन्दर नन्द के भवन को देखा था। वह नन्द गृह गम्भीर परिखाओं से जिनका पार करना अत्यन्त कठिन था, चारों ओर से वेष्टित था ॥१५॥ वह नन्द का भवन दिव्य

पत्थरों से विश्वकर्मा के द्वारा बनाया हुआ था। उसमें इन्द्रनील-मरकत और पद्मराग मणियों का जड़ाव हो रहा था जिससे वह अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ।।१६।। उस नन्द भवन के शिखरों पर परम उज्ज्वल दिव्य एवं चित्रित सुवर्ण के कलश लगे हुए थे। बहुत ही ऊंचे गगन का स्पर्श करने वाले उसके प्राकार (चारों ओर के परकोटे) थे जिनमें चार महाद्वार बने हुए थे ।।१७।। उन द्वारों पर लोहे के सुदृढ़ किवाड़ (फाटक) लगे हुए थे जिन द्वारों पर द्वारपाल स्थित हो रहे थे। वहाँ परम सुन्दरियों का समूह चारों ओर रहता था और वह नन्द का भवन बहुत ही सुरम्य बना हुआ था ।।१८।। वह मुक्ता—माणक्य आदि रत्न और धन से परिपूर्ण था। वहाँ सुवर्ण के पात्र एवं घट सब ओर रक्खे हुए थे तथा करोड़ों गौऐं रहती थीं ।।१९।। वहाँ नन्द भवन में बहुत से सेवा करने वाले किंकर थे और लाखों ही गोपालों से वह भरा हुआ था, सहस्रों दासियाँ अपने२ कर्मों में व्यस्त हो रहीं थीं-ऐसा वह महान् समृद्धि से परिपूर्ण नन्द भवन था ।।२०।। उस आश्रम में मन्द मुस्कान से युक्त परम सुन्दरी तथा साध्वी बन कर पूतना ने प्रवेश किया था। प्रवेश करके अन्दर आती हुई उसे देख कर गोपियों ने उसका बड़ा समादर किया था ।।२१।। उन सबने सोचा था कि या तो लक्ष्मी अथवा दुर्गा कृष्ण के दर्शन करने के लिये स्वयं इस रूप में आई हुई हैं। वहाँ उस समय सभी गोप और गोपांगनाओं ने उसको प्रणाम करके उससे कुशल सम्वाद पूछा था। उसको बैठने के लिये सिंहासन दिया और पद्म समर्पित किया था ।।२२।।

पप्रच्छ कुशलं सा च गोपानां बालकस्य च।
उवास सस्मिता साध्वी पाद्यं जग्राह सादरम् ।।२३

तामूचुर्गोपिकाः सर्वाः का त्वमोश्वरि साम्प्रतम्।
वासस्ते कुत्र किन्नाम किं वात्र कर्म्म तद्वद ।।२४

तासांच वचनं श्रुत्वा साप्युवाच मनोहरम्।
मथुरावासिनीगोपी साम्प्रतं विप्रकामिनीं ।।२५

श्रुतं वाचिकवक्त्रेण तत्त्वं मङ्गलसूचकम् ।
बभूव स्थविरे काले नन्दपुत्रो महानिति ।।२६
श्रुत्वागताहं तं द्रष्टुमाशिषं कर्त्तुमीप्सितम् ।
पुत्रमानय तं दृष्ट्वा यानि कृत्वा तदाशिषम् ।।२७
ब्राह्मणीवचनं श्रुत्वा यशोदा हृष्टमानसा ।
प्रणमय्य सुतं क्रोड़े ददौ ब्राह्मणयोषिते ।।२८
कृत्वा क्रोड़े शिशुं साध्वी चुचुम्ब च पुनः पुनः ।
स्तनं ददौ सुखासीना हरिं पुण्यवती सती ।।२९

उसने भी संस्थित होकर उन सब गोप-गोपियों से कुशल सम्वाद पूछा था और बालक के विषय में मङ्गल प्रश्न किया था। वह स्मित से युक्त साध्वी वहाँ बैठ गई और उसने आदर के साथ पाद्य ग्रहण किया था ।।२३।। उससे सभी गोपिकाओं ने पूछा था—हे ईश्वरी ! आप इस समय कहाँ से आई हैं और कौन हैं ? आपका निवास स्थान कहाँ है तथा आपका शुभ नाम क्या है ? यहाँ किस कर्म के सम्पादन करने के लिए आपका शुभ आगमन हुआ है ? ।।२४।। उन सबके वचनों को श्रवण कर वह अति सुन्दर बचन बोली थी—मैं मथुरा के निवास करने वाली गोपी हूँ। इस समय विप्र पत्नी हूँ। मैंने एक वाचिक के मुख से एक परम मङ्गल तत्त्व का श्रवण किया था कि वृद्धावस्था में नन्द के एक महान् पुत्र उत्पन्न हुआ है ।।२५-२६।। यह श्रवण कर उसका दर्शन करने के लिए ही मैं यहाँ आई हूँ कि अपना आशीष भी दे आऊँगी। आप उस पुत्र को यहाँ ले आओ तो मैं उसको शुभ आशीष देकर चली जाऊँ ।।२७।। ब्राह्मणी के इस वचन को सुनकर प्रसन्न चित्त वाली यशोदा ने बालक से प्रणाम कराके उसके गोद में अपने पुत्र बालकृष्ण को उस ब्राह्मणी को दे दिया था ।।२८।। उस साध्वी ने उसे गोद में लेकर बार २ उसका चुम्बन किया था और फिर उस परम पुण्य वाली सती ने अपना स्तन सुख से बैठकर बालक को दे दिया था ।।२९।।

अहोऽद्भुतोऽयं बालस्ते सुन्दरो गोपसुन्दरि ।
गुणैर्नारायणसमो बालोऽयमित्युवाच ह ।।३०

कृष्णोविषस्तनं पीत्वा जहास वक्षसि स्थितः ।
तस्याः प्राणैः सह षपौ विषक्षीरंसुधामिव ।।३१
तत्याज बालकं साध्वी प्राणांस्त्यक्त्वा पपात ह ।
विकृताकारवदना चोत्तानवदना मुने ।।३२
स्थूलदेहं परित्यज्य सूक्ष्मदेहं विवेश सा ।
आरुरोह रथं शीघ्रं रत्नसारविनिर्म्मितम् ।।३३
पार्षदप्रवरैर्दिव्यैर्वेष्टितं सुमनोहरैः ।
श्वेतचामरलक्षेण वेष्टितं लक्षदर्पणैः ।।३४
वह्निशौचेन वस्त्रेण सूक्ष्मेण शोभितं वरम् ।
नानाचित्रविचित्रैश्च सद्रत्नकलसैर्युतम् ।।३५
सुन्दरं शतचक्रञ्च ज्वलितं रत्नतेजसा ।
पार्षदास्तां रथे कृत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ।।३६
दृष्ट्वा तमद्भुतं गोपिकाञ्चापि विस्मिताः ।
कंसः श्रुत्वा च तत् सर्वं विस्मितश्च बभूव ह ।।३७

वह कहती जारही थी कि हे सोप सुन्दरी ! तेरा यह बालक तो अत्यन्त सुन्दर एवं महान् अद्भुत है । यह तो अपने गुणों से साक्षात्-नारायण के ही समान है-यह यशोदा से उस पूतना ने कहा था ।।३०।। श्रीकृष्ण को उसके विषाक्त स्तन को पीकर हँसी आ गई थी और उसके वक्षःस्थल पर स्थित होकर उनने उस विष से युक्त उसके दूध को अमृत की भाँति पूतना के प्राणों के सहित पी लिया था ।।३१।। उस साध्वी ने अपने प्राणों का त्याग कर बालक को भी त्याग दिया था और वह भूमि पर गिर पड़ी थी । हे मुने ! उस मृत्यु के समय में विकृत आकार और मुख वाली होगई थी और उसका मुख उत्तान होगया था ।।३२।। इस स्थूल देह का परित्याग करके उसने सुक्ष्म देह में प्रवेश किया था । वह रत्नों के सुरथ में शीघ्र ही समारूढ होगई थी ।।३३।। उस रथ में दिव्य एवं सुन्दर पार्षदों से वह समन्वित थी—श्वेत चमर और लाखों दर्पणों से वह विमान संयुत था ।।३४।। वह्नि के समान शुद्ध एवं सूक्ष्म वस्त्र से शोभायुक्त तथा अनेक चित्र- विचित्र रत्नों के कलशों से वह रथ विभूषित

था ॥३५॥ उस रथ में रत्नों के तेज से परम सुन्दर २ सौ चक्र ज्वलित हो रहे थे। पार्षदों ने उस पूतना नाम धारिणी महिला को उस रथ में विराजमान किया था और फिर वे उत्तम गोलोक धाम में चले गये थे ॥३६॥ इस अद्भुत कृत्य को देखकर समस्त गोप और गोपियाँ अत्यन्त विस्मय में भर गये थे। जब कंस ने यह सब हाल सुना तो वह भी परम विस्मित हो गया था ॥३७॥

यशोदाबालकं नीत्वा क्रोडे कृत्वा स्तनं ददौ ।
मङ्गलं कारयामास विप्रद्वारा शिशोर्मुने ॥३८
ददाह देहं तस्याश्च नन्दः सानन्दपूर्वकम् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीसमं संप्राप्य सौरभम् ॥३९
सा वा का राक्षसीरूपा कथं पुण्यवती सती ।
केन पुण्येन तं दृष्ट्वा जगाम कृष्णमन्दिरम् ॥४०
बलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम् ।
बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार तम् ॥४१
मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सदृशो मम ।
भवेद् यदि स्तनं दत्त्वा करोमि तञ्च वक्षसि ॥४२
हरिस्तन्मानसं ज्ञात्वा पपौजन्मान्तरे स्तनम् ।
ददौ मातृगतिं तस्यै कामपूरःकृपानिधिः ॥४३
दत्त्वा विषस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने ।
भक्त्या मातृगतिं प्राप कं भजामि विना हरिम् ॥४४
इत्येवं कथितं विप्र श्रीकृष्णगुणवर्णनम् ।
पदे पदे सुमधुरं प्रवरं कथयामि ते ॥४५

यशोदा ने फिर बालक को पूतना के मृत शरीर से उठा लिया और अपनी गोद में बिठाकर उसे स्तन का पान कराया था। हे मुने! इसके अनन्तर उसने ब्राह्मणों के द्वारा इस अशुभ घटना के निवारणार्थ मङ्गल कराया था जिससे बालक का कल्याण होवे ॥३८॥ फिर नन्द ने उसके मृत देह का आनन्द पूर्वक दाह करा दिया था। उसके शव के दाह होने से चन्दन-अगुरु और कस्तूरी के तुल्य परम दिव्य सौरभ निकला था ॥३९॥

नारद ने कहा—वह राक्षसी के रूप में रहने वाली कौन पुण्य वाली सती थी ? उसका कौनसा ऐसा महान् पुण्य का उदय हुआ था कि वह कृष्ण का दर्शन प्राप्त करके गोलोक धाम में चली गई थी ? ॥४०॥ नारायण ने कहा—राजा बलि के यज्ञ में बलि की जो कन्या रत्नमाला नाम वाली थी उसने छोटा सा वामन का स्वरूप देखकर उसमें उसका पुत्र के तुल्य स्नेह उत्पन्न हो गया था ॥४१॥ उसने अपने मनमें ऐसी भावना उस समय करली थी कि तू मेरे पुत्र के सदृश है और ऐसा ही यदि तू मेरा पुत्र होता तो मैं तुझे नित्य अपना स्तन गोद में बिठाकर पिला देती ॥४२॥ हरि ने उसके मन के भाव को समझ लिया और दूसरे जन्म में उसका स्तन पान किया था। कामनाओं के पूर्ण करने वाले कृपा के निधि हरि ने वही गति उसको प्रदान कर दी थी जोकि माता को दी जाने वाली थी। हे मुने ! राक्षसी पूतना ने विषाक्त स्तन का पान कराके भी कैसी उत्तम गति का लाभ किया था जो बड़े बड़ों को दुर्लभ है ॥४३॥ ऐसे परम दयालु श्रीहरि के बिना अन्य किसका भजन किया जावे ? अर्थात् एक मात्र हरि ही परम सेव्य एवं कल्याण करने वाले हैं उन्हीं का भक्ति से भजन करना चाहिए ॥४४॥ हे प्रिय ! यह श्रीकृष्ण के गुण-गण का वर्णन तुमको सुना दिया है जो पद-पद में अत्यन्त मधुर और श्रेष्ठ है जिसे मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥४५॥

६५—श्रीकृष्ण बाल लीला निरूपणम्

एकदा गोकुले साध्वी यशोदानन्दगेहिनी ।
गृहकर्म्मणि संसक्ता कृत्वा बालं स्ववक्षसि ॥१
वात्यारूपं तृणावर्त्तमागच्छन्तश्च गोकुले ।
श्रीहरिर्म्मनसा ज्ञात्वा भारयुक्तो बभूव ह ॥२
भाराक्रान्ता यशोदा च तत्याज बालकं तदा ।
शयनं कारयित्वा च जगाम यमुनां मुने ॥३
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वात्यारूपधरोऽसुरः ।
आदाय तं भ्रामयित्वा गत्वा च शतयोजनम् ॥४

बभञ्ज वृक्षशाखाश्च ह्यन्धीभूतञ्च गोकुलम् ।
चकार सद्यो मायावी पुनस्तत्र पपात ह ॥५
असुरोऽपि हरिस्पर्शाज्जगाम हरिमन्दिरम् ।
सुन्दरं रथमारुह्य कृत्वा कर्म्मक्षयं स्वकम् ॥६
पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा शापाद् दुर्वाससोऽसुरः ।
श्रीकृष्णचरणस्पर्शाद् गोकुलं स जगाम ह ॥७

इस अध्याय में श्री कृष्ण की बाल लीला का निरूपण किया जाता है । श्री नारायण ने कहा—एक समय में नन्द की पत्नी यशोदा जोकि परम साध्वी थी, बालक को अपने वक्षः स्थल से लगा कर घर के काम—काज में संलग्न हो रही थी ॥१॥ श्री हरि ने मनमें समझ लिया था कि वात्या (तूफान) के रूप को धारण कर तृणावर्त्त गोकुल में आरहा है अत एव वह इस समय अत्यन्त भार से युक्त हो गये थे ॥२॥ जब यशोदा श्रीकृष्ण के भार से आक्रान्त हो गई थीं तो उसने हरि को गोद से नीचे उतार कर शयन करा दिया था और फिर हे मुने ! वह यमुना की ओर चली गुईं थीं ॥३॥ इसी बीच में अन्धड़के स्वरूप वाला वह असुर तृणा वर्त्त वहाँ आगया था और श्रीकृष्ण को लेकर सौ योजन पर जाकर भ्रमित कराया था ॥४॥ उस ने समस्त वृक्षों की शाखाओं को तोड़ दिया था और सम्पूर्ण गोकुल उसके द्वारा अन्धी भूत होगया था । इसके पश्चात् तुरन्त ही वह मायावी वहाँ पर गिर पड़ा था ॥५॥ वह असुर भी हरि के स्पर्श से हरि के पवित्र धाम को चला गया था और उसके लिये भी एक सुन्दर रथ आया था जिस पर वह समारूढ़ होकर अपने समस्त कर्मों का क्षय करके गोलोक को चला गया था ॥६॥ यह पाण्डय देश में उत्पन्न होने वाला एक राजा था जो दुर्वासा ऋषि के शाप से असुर योनि में पैदा हो गया था । अब श्री कृष्ण के चरण के स्पर्श से वह गो लोक में चला गया था ॥७॥

वात्यारूपे गते गोपा गोप्यश्च भयविह्वलाः ।
न दृष्ट्वा बालकं तत्र शयानं शयने मुने ॥८

सर्वे निजघ्नुः स्वं वक्षःस्थलं शोकाकुलाभयात् ।
केचिन्मूर्च्छामवापुश्च रुरुदुश्चापि केचन ॥९
अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुर्बालकं व्रजे ।
धूलिधूषरसर्वाङ्गं पुष्पोद्यानान्तरस्थितम् ॥१०
बाह्यैकदेशे सरसस्तीरे नीरसमन्विते ।
पश्यन्तं गगनं शश्वद् वदन्तं भयकातरम् ॥११
गृहीत्वा बालकं नन्दः कृत्वा वक्षसि सत्वरम् ।
दर्शं दर्शं मुखं तस्य रुरोद च शुचान्वितः ॥१२
यशोदा रोहिणी शीघ्रं दृष्ट्वा बालं रुरोद च ।
कृत्वा वक्षसि तद्वक्त्रं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥१३
मङ्गलं कारयामास स्नापयामास बालकम् ।
स्तनं ददौ यशोदा च प्रसन्नवदनेक्षणा ॥१४

हे मुने ! वात्या रूप वाले के चले जाने पर शय्या में शयन करने वाले बालक को न देखकर गोपियाँ और गोप बहुत अधिक भय से विह्वल हो गये थे ॥८॥ सब लोग शोक से आकुल हो कर भय से अपना वक्षः स्थल पीटने लगे थे। उनमें से मूर्च्छित हो गये थे और कुछ रो रहे थे। ॥९॥ खोज करते हुए उन्होंने व्रज में पुष्पोधान के अन्दर स्थिति धूलि से धूसर शरीर वाले बालक को देखा था ॥१०॥ वहाँ वह बालक बाहिरी एक भाग में जल से युक्त सरोवर के तट पर आकाश को ओर देख रहा था तथा भय से कातर होकर निरन्तर बोल रहा था ॥११॥ ऐसे उस बालक को नन्द ने उठाकर शीघ्र अपने हृदय से लगा लिया था। नन्द बार-बार उसका मुख देख-देख कर चिन्तित होते हुए रो पड़े थे ॥१२॥ यशोदा और रोहिणी भी शीघ्र ही बालक को देख कर रो गईं थीं। उन्होंने उसको अपने वक्षः स्थल में लगा कर उसके मुख का बार-बार चुम्बन किया था ॥१३॥ फिर बालक को स्नान कराया और मङ्गल कराया था। प्रसन्न मुख और विकसित नेत्रों वाली यशोदा ने अपना स्तन पिलाया था ॥१४॥

एकदा मन्दिरे नन्दपत्नी सानन्दपूर्वकम् ।
कृत्वा वक्षसि गोविन्दं क्षुधितञ्चस्तनं ददौ ॥१५
एतस्मिन्नन्तरेगोप्यआजग्मुर्नन्दमन्दिरम् ।
स्थविराश्चवयस्याश्चबालिकाबालकान्विताः ॥१६
अतृप्तं बालकं शीघ्रं संन्यस्य शयने सती ।
प्रणनाम समुत्थाय कर्म्मण्यौत्थानिके मुदा ॥१७
तैलसिन्दूरताम्बूलं ददौ ताभ्यो मुदान्विता ।
मिष्टवस्तूनि वस्त्राणि भूषणानि च गोपिका ॥१८
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो रुरोद क्षुधितस्तदा ।
प्रेरयित्वा तु चरणं मायेशो मायया विभुः ॥१९
पपात चरणं तस्य प्रवीणे शकटे मुने ।
विश्वम्भरपदाघातात्तच्च चर्णं बभूव ह ॥२०
बभञ्ज शकटं पेतुर्भग्नकाष्टानि तत्र वै ।
पपात दधि दुग्धञ्च नवनीतं घृतं मधु ॥२१
दृष्ट्वाश्चर्यं गोपिकाश्च दुद्रुवुर्बालकं भयात् ।
ददृशुभग्नशकटमिन्धनाभ्यन्तरे शिशुम् ॥२२

नारायण ने कहा—एक वार नन्द की पत्नी अपने ही भवन में आनन्द के साथ भूखे गोविन्द को गोद में बिठाकर स्तन दे रही थी ।१५। इसी बीच में कुछ गोपियाँ नन्द के भवन में आगई थीं उनमें कुछ वृद्धा थीं और कुछ युवतियाँ थीं । जिनके साथ बालक बालिकाऐं भी थीं । ॥१६॥ उस समय तक वाल कृष्ण दुग्ध पान से तृप्त नहीं हो पाये थे किन्तु उसी स्थिति में उस बालक को सती यशोदा शय्या पर लिटाकर उठ खड़ी हुई और औत्थात्तिक कर्म में आनन्द के साथ उसने सब को प्रणाम किया था ॥१७॥ हर्ष से समन्वित होकर उसने उन सब को तैल —सिन्दूर और ताम्बूल दिया था । तथा मिष्ट वस्तुऐं—वस्त्र और भूषण भी दिये थे ॥१८॥ इस बीच में क्षुधा से पीड़ित होकर कृष्ण उस समय रोने लगे थे । माया के ईश विभु ने माया के द्वारा अपने चरण को चला कर उसे इतना लम्बा कर दिया कि हे मुने ! प्रवीण शकट पर जाकर

गिरा था। वह शकट विश्व के भरण करने वाले के पद के आघात से चूर्ण होगया था ॥१९-२०॥ वह शकट तो भग्न होगया था और भग्न हुए उसके काष्ठ वहाँ इधर-उधर गिरे कि वहाँ पर रखे हुए दही—दूध—घृत और मधु तथा नवनीत सब फैल गये थे ॥२१॥ गोपियों ने इस आश्चर्य को देखकर भय से उस बालक को दौड़कर ले लिया था क्यों कि उन्होंने टूटे हुए शकट के ईंधन के अन्दर बालक को देखा था ॥२२॥

भग्नभाण्डसमूहञ्च पतितं बहुगोरसम् ।
प्रेरयित्वा तु काष्ठानि जग्राह बालकं भिया ॥२३
मायारक्षितसर्वाङ्गं रुदितं क्षुधितं क्षुधा ।
स्तनं ददौ यशोदा तं रुरोद च भृशं शुचा ॥२४
पप्रच्छुर्बालिकान् गोपा बभञ्ज शकटं कथम् ।
किञ्चिद्धेतुं न पश्यामि सहसेति किमद्भुतम् ॥२५
इत्यूचुर्बालकाः सर्वे गोपाः शृणुत तद्वचः ।
श्रीकृष्णस्यपदाघाताद्बभञ्जशकटंध्रुवम्॥२६
श्रुत्वा तद्वचनं गोपा गोप्यश्च जहसुर्मुदा ।
न हि जग्मुः प्रतीतिञ्च मिथ्येत्यूचुर्व्रजे प्रजाः ॥
शिशोः स्वस्त्ययनं तूर्णं चक्रुर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥२७

भग्न हुए काष्ठों के समूह और गिरे हुए बहुत से गोरस को हटा कर भय से बालक को ले लिया था ॥२३॥ माया से समस्त रक्षित अङ्गों वाले—रोते हुए तथा भूखे उस बालक को उठाकर अपने स्तन का पान कराया था और शोच से रोने लगीं थीं ॥२४॥ लोगों ने बालकों से पूछा था कि यह शकट कैसे टूट गया था। इसके भग्न होने के कोई भी कारण नहीं दिखाई देते है। सहसा यह कैसे भग्न होगया—यह बड़ी ही अद्भुत घटना है ॥२५॥ तब सब बालकों ने कहा—हे गोपो ! सुनो—यह शकट श्री कृष्ण के पद के आघात से निश्चय ही भग्न हुआ है ॥२६॥ बालकों के इन वचनों को श्रवण कर गोप और गोपियाँ आनन्द से सब हँस गये थे। उन्होंने इस बात का कोई विश्वास ही नहीं किया था। व्रज में सभी प्रजाजन यही कहते थे कि यह बिलकुल झूठ है—ऐसा होही नहीं सकता

हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने इस महान् अरिष्ट से रक्षा प्राप्त करने पर शिशु का स्वस्त्ययन शीघ्र ही किया था ॥२७॥

अपरं कृष्णमाहात्म्यं शृणु किञ्चिन्महामुने ।
विघ्ननिघ्नं पापहरं महापुण्यकरं परम् ॥२८
एकदा नन्दपत्नी सा कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि ।
स्वर्णसिंहासनस्थाचक्षुधितंस्तनं ददौ ॥२९
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्रेन्द्रैकः समागतः ।
वृतः शिष्यसमूहैश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥३०
प्रजपन् परमं ब्रह्म शुद्धस्फटिकमालया ।
दण्डी छत्री शुक्लवासा दन्तपङ्क्तिविराजितः ॥३१
ज्योतिर्ग्रन्थो मूर्त्तिमांश्च वेदवेदाङ्गपारगः ॥३१
परिबिभ्रज्जटाभारं तप्तकाञ्चनसन्निभम् ।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यो गौराङ्गः पद्मलोचनः ॥३२
योगीन्द्रो धूर्जटेः शिष्यः शुद्धभक्तो गदाभृतः ।
व्याख्यामुद्राकरः श्रीमान् शिष्यानध्यापयन् मुदा ॥३३
वेदव्याख्यां कतिविधां प्रकुर्वन्नवलीलया ।
एकीभूय चतुर्वेदतेजसा मूर्त्तिमानिव ॥३४
साक्षात् सरस्वतीकण्ठः सिद्धान्तैकविशारदः ।
ध्यानैकनिष्ठः श्रीकृष्णपादाम्भोजे दिवानिशम् ॥३५

श्री नारायण ने कहा— हे महामुने ! अब एक दूसरा श्री कृष्ण के माहात्म्य का श्रवण करो जो विघ्नों का नाशक है पापों का हरण करने वाला है और परम महान् पुण्य का करने वाला है ॥२८॥ एक बार नन्द की पत्नी कृष्ण को अपनी गोद में लेकर सुवर्ण के सिंहासन पर संस्थित होती हुई क्षुधा से पीड़ित बाल कृष्ण को स्तन का दूध पिला रही थी ॥२९॥ इसी अन्त में वहाँ एक ब्राह्मण देव आगये थे जिनके साथ शिष्यों का एक समुदाय था और वे स्वयं ब्रह्म तेज से देदीप्यमान हो रहे थे ॥३०॥ उनके हाथ में एक स्फटिक की माला थी जिससे परम ब्रह्म का जाप कर रहे थे। दण्ड उनके पास था—एक छत्र भी था तथा शुक्ल वस्त्र

धारी दाँतों की पङ्क्ति से परम सुशोभित थे। उनको देखकर ऐसा मालूम होता था कि वे मूर्त्तिमान ज्योतिष शास्त्र का ग्रन्थ ही थे तथा वेद और वेदों के समस्त अङ्गों के पारगामी थी ॥३१॥ उनके मस्तक पर जटा जूट का भार था तथा उनका वर्ण तपे हुए सुवर्ण के समान था। उनका मुख शरत्पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के सदृश था—गौर अङ्ग वाले थे और कमल तुल्य लोचनों से युक्त थे ॥३२॥ यह शिव के शिष्य योगीन्द्र थे तथा गदाधारी के परम शुद्ध भक्त थे। यह श्रीमान् व्याख्या करने की मुद्रा में संस्थित होकर हर्ष के साथ अपने शिष्यों का अध्यापन करने वाले थे ॥३३॥ वेदों की कितनी ही प्रकार की लीला से ही व्याख्या करने वाले थे मानों चारों वेदों के तेज ही एकत्रित होकर मूर्त्तिमान पुरुष हो ॥३४॥ सिद्धान्तों के एक ही विशारद साक्षात् सरस्वती के ही कण्ठ वाले थे। वह ब्राह्मणेन्द्र श्रीकृष्ण के चरण कमल को ध्यान में रात-दिन एक निष्ठ थे ॥३५॥

जीवन्मुक्तो हि सिद्धेशः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
तं दृष्ट्वा सा समुत्तस्थौ यशोदा प्रणनाम च ॥३६
पाद्यं गां मधुपर्कञ्च स्वर्णसिंहासनं ददौ।
बालकं वन्दयामास मुनीन्द्रं सस्मितं मुदा ॥३७
मुनिश्च मनसा चक्रे प्रणामशतकं हरिम्।
आशिषं प्रददौ प्रीत्या वेदमन्त्रोपयोगिकम् ॥३८
प्रणनाम च शिष्यांश्च ते तां युयुजुराशिषम्।
शिष्यान् पाद्यादिकं भक्त्या प्रददौ च पृथक् पृथक् ॥३९
सशिष्योऽङ्घ्री च प्रक्षाल्य समुवाससुखासने।
समुद्यता गतिं प्रष्टुं पुटाञ्जलियता सती ॥४०
स्वक्रोड़े बालकं कृत्वा भक्तिनम्रास्यकन्धरा।
स्वात्मारामं मङ्गलञ्च प्रष्टुं यद्यपि न क्षमा ॥४१
तथापि भवतो नाम शिवं पृच्छामि साम्प्रतम्।
अबला बुद्धिहीना या दोषं क्षन्तुं सदार्हसि ॥
मूढ़स्य सततं दोषक्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥४२

वह जीवित दशा में ही मुक्त जैसे थे—सिद्धों के ईश—सभी कुछ के ज्ञाता तथा सब को देखने वाले थे। वह यशोदा उनको देख कर उठ कर खड़ी हो गई थी और उसने उन विप्र देव को प्रणाम किया था ॥३६॥ यशोदा ने उनको पाद्य—गौ—मधुपर्क और सुवर्ण का सिंहासन संस्थित होने के लिये समर्पित किया था। स्मित से युक्त मुनीन्द्र को बड़े ही हर्ष के साथ यशोदा ने उस अपने बालक से भी वन्दना कराई थी ॥३७॥ उस मुनि ने मन से हरि को सैकड़ों बार प्रणाम किया था और प्रेम के साथ वेद मन्त्रों के उपयोगिक आशीर्वाद दिया था ॥३८॥ यशोदा ने उनके जो साथ में आये हुए शिष्य थे उनको भी प्रणाम किया था और उन्होंने उनको आशीर्वाद दिया था। समस्त शिष्यों को यशोदा ने पृथक्–पृथक् भक्ति पूर्वक पाद्य आदि समर्पित किया था ॥३९॥ उस ब्रह्मर्षि ने शिष्यों के सहित अपने चरणों को प्रक्षालित करके सुखा सन पर अपनी संस्थिति की थी। इसके वह सती यशोदा पुराञ्जलि से संयुत होकर उनके आगमन को पूछने के लिये समुद्यत हुई थी ॥४०॥ यशोदा अपनी गोद में बालक को लेकर भक्ति-भाव से नम कन्धरा वाली हो गइ थी। हाथ जोड़ कर कहने लगी—हे ब्रह्मदेव ! यद्यपि आप तो अपनी आत्मा में रमण करने वाले हैं मैं आपसे आपका यद्यपि मङ्गल प्रश्न करने में असमर्थ हूँ ॥४१॥ तो भी अब मैं आपके शुभ नाम को पूछना चाहती हूँ। जो अबला होती है वह बुद्धि हीन होती हैं अतएव आप मेरे दोष को क्षमा कर देने के योग्य हैं। मूढ़ के दोषों को साधु पुरुष सर्वदा क्षमा कर दिया करते हैं ॥४२॥

इत्येवमुक्त्वा नन्दस्त्री भक्त्या तस्थौ मुनेः पुरः।
चरं प्रस्थापयामास नन्दमानयितुं सती ॥४३

यशोदावचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः।
जहसुः शिष्यसंघाश्च भासयन्तो दिशो दश ॥४४

हितं तथ्यं नीतियुक्तं महत्प्रीतकरं परम्।
तामुवाच मुदा युक्तः शुद्धबुद्धिर्महामुनिः ॥४५

सुधामयं ते वचनं लौकिकं समयोचितम् ।
यस्य यत्र कुले जन्म स एव तादृशो भवेत् ॥४६
सर्वेषां गोपपद्मानां गिरिभानुश्च भास्करः ।
पत्नी पद्मासमा तस्य नाम्ना पद्मावती सती ॥४७
तस्याः कन्या यशोदा त्वं यशोवर्द्धनकारिणी ॥४८
नन्दो यस्त्वञ्चयाभद्रे वालोऽयं येन वागतः ।
जानामिनिर्जनेसर्वंवक्ष्यामि नन्दसन्निधिम् ॥४९
गर्गोहं यदुवंशानां चिरकालंपुरोहितः ।
प्रस्थापितोऽहं वसुनां नान्यसाध्येच कर्म्मणि ॥५०

यह कह कर नन्द की पत्नी भक्ति भाव से मुनि के सामने बैठ गई थी और उस सती ने एक सेवक को नन्द के बुलवाने को भेज दिया था ॥४३॥ यशोदा के इन वचनों को श्रवण कर मुनि श्रेष्ठ हँस पड़े थे । जो शिष्यों के समूह थे वे भी दशों दिशाओं को मार्जित करते हुए हँस गये थे ॥४४॥ फिर शुद्धबुद्धि वाले मुन महामुनि ने हर्ष से युक्त होकर उस यशोदा से हित–तथ्य–नीति से युक्त और महान् प्रिय वचन कहे थे ॥४५॥ श्री गर्ग ने कहा—आपके वचन सुधा पूर्ण–लौकिक और समय के उचित हैं । जिसका जहाँ जिस कुल में जन्म होता है वह ही उस प्रकार का हुआ करता है ॥४६॥ समस्त गोप रूपी पद्मों का गिरि भानु सूर्य था अर्थात् गोपों में भास्कर के तुल्य था । उसकी पत्नी पद्मा के समान थी जिसका नाम पद्मावती सती था ॥४७॥ यशोदा तू उसकी कन्या है जो यश के बढ़ाने वाली है ॥४८॥ हे भद्रे ! जो नन्द है और जो तू है और जिस कारण से यह बालक आया है–यह मैं सब जानता हूँ । इस वृत्त को निर्जन स्थल में नन्द के ही समीप में बताऊँगा ॥४९॥ मैं गर्ग हूँ जो यादवों का बहुत प्राचीन समय से पुरोहित रहा हूँ । अन्य किसी के द्वारा न किये जाने के योग्य कर्म के लिये वसु के द्वारा मैं यहाँ भेजा गया हूँ ॥५०॥

एतस्मिन्नन्तरे नन्दः श्रुतमात्रं जगामह ।
ननाम दण्डवद् भूमौ मूर्ध्ना तं मुनिपुङ्गवम् ॥

शिष्यान्ननाम मूर्ध्ना च ते तं ययुजुराशिषम् ।।५१
समुत्थायासनात् पूर्णं यसोदां नन्दमेव च ।
गृहीत्वाभ्यन्तरं रम्यं जगाम विदुषां वरः ।।५२
गर्गो नन्दो यशोदा च सपुत्रा समुदान्विता ।
गर्ग उवाच तौ वाक्यं निगूढं निर्जने मुने ।।५३
अयि नन्द प्रवक्ष्यामि वचनं ते शुभावहम् ।
प्रस्थापितोऽहं वसुना येन तच्छ्रूयतामिति ।।५४
वसुना सूतिकागारे शिशुः प्रत्यर्पणीकृतः ।
पुत्रोऽयं वसुदेवस्य ज्येष्ठश्च तस्य च ध्रुवम् ।।
कन्या ते तेन नीता च मथुरां कंसभीरुणा ।।५५

इसी अनन्तर में नन्द श्रवण भाव से ही वहाँ आ गये थे। नन्द ने मुनियों में परम श्रेष्ठ को भूमि में पतित होकर दण्डवत् मस्तक से प्रणाम किया था। इसके अनन्तर शिष्यों को भी मस्तक से प्रणाम किया और उन्होंने उनको आशीष दिया था ।।५१।। फिर विद्वानों में श्रेष्ठ गर्ग मुनि ने शीघ्र आसन से नन्द और यशोदा को उठा कर गृह के भीतरी परम रम्य भाग में ले गये थे ।।५२।। हे मुने! वहाँ गर्ग और यशोदा-नन्द पुत्रों के सहित थे जो कि परम हर्ष युक्त हो रहे थे। उस एकान्त स्थान में गर्ग मुनि ने उन दोनों से परम निगूढ वाक्य कहा था ।।५३।। श्री गर्ग बोले—हे नन्द! मैं आपको परम शुभ वचन कहता हूँ कि जिस कारण से मैं वसु के द्वारा यहाँ प्रस्थापित किया गया हूँ उसको अब आप श्रवण करो ।।५४।। वसुदेव ने यह पुत्र सूतिका गृह में आपको अर्पित किया है यह वस्तुतः वसुदेव का पुत्र है और इससे बड़ा है वह भी उसी वसुदेव का पुत्र निश्चित रूप से है। कंस से डरे हुए उसने आपकी कन्या को ले लिया था ।।५५।।

अस्यान्नप्राशनायाहं नामानुकरणाय च ।
गूढ़ेन प्रेषितस्तेन तस्योद्योगं कुरु व्रजे ।।५६
पूर्णब्रह्मस्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम् ।
आगत्य भारहरणं कर्त्ता धात्राच सेवितः ।।५७

गोलोकनाथोभगवान्श्रीकृष्णो राधिकापतिः ।
नारायणो यो वैकुण्ठेकमलाकान्तएवच ॥५८
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाताविष्णुश्च सोऽप्यजः ।
कपिलोऽन्ये तदंशाश्च नरनारायणावृषी ॥५९
सर्वेषां तेजसां राशिर्मूर्त्तिमानागतः किमु ।
स वसुं दर्शयित्वा च शिशुरूपो बभूवः ह ॥६०
साम्प्रतं सूतिकागारादाजगाम तवालयम् ।
अयोनिसम्भवश्चायमाविर्भूतो महीतले ॥६१

मैं इस समय इसका नाम करण और अन्न प्राशन संस्कार कराने के लिये ही उस वसुदेव के द्वारा यह छिप कर भेजा गया हूँ। अब आप व्रज में उसके करने का उद्योग करिये ॥५६॥ यह आपका शिशु जो है वह पूर्ण ब्रह्म का स्वरूप है। यह अपनी माया से ही इस भूमि में आया है। ब्रह्मा के द्वारा बहुत सेवा करने के कारण इस भूतल के भार का हरण करने के लिये इसने जन्म धारण किया है ॥५७॥ गोलोक का स्वामी राधिका का पति श्री कृष्ण—कमला का स्वामी वैकुण्ठ में नारायण-श्वेत द्वीप में निवास करते हुए विश्व का पालक विष्णु जो कि अजन्मा हैं—कपिल और अन्य उसके अंश तथा नर-नारायण ऋषि इन सबके तेजों का समूह मूर्तिमान् होकर विभु यहाँ आया है। उसने अपना सत्य एवं दिव्य रूप आरम्भ में ही वसुदेव को दिखा दिया फिर वह अन्त में शिशु के रूप में हो गये थे ॥५८-६०॥ इस समय यह सूतिकागार से ही यह आपके घर में आ गया है। यह तो अयोनि जन्म वाला है और इस महीतल में प्रकट हुआ है ॥६१॥

वायुपूर्णं मातृगर्भं कृत्वा च मायया हरिः ।
आविर्भूय वसुं मूर्त्ति दर्शयित्वा जगाम ह ॥६२
युगे युगे वर्णभेदो नामभेदोऽस्य वल्लव ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥६३
शुक्लवर्णः सत्ययुगे सुतव्रस्तेजसावृतः ।
त्रेतायां रक्तवर्णोऽयं पीतोऽयं द्वापरे विभुः ॥६४

कृष्णवर्णः कलौ श्रीमान् तेजसां राशिरेव च ।
परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः ।।६५
ब्रह्मणो वाचकः कोऽयमृकारो ऽनन्तवाचकः ।
शिवस्यवाचकःषश्च णकारो धर्मवाचकः ।।६८
अकारो विष्णोर्वचनः श्वेतद्वीपनिवासिनः ।
नरनारायणार्थस्य विसर्गो वाचकः स्मृतः ।।६७
सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्त्तिस्वरूपकः ।
सर्वाधारः सर्वबीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ।।६८
कृषिर्निर्वाणवचनो णकारो मोक्ष एव च ।
अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ।।६९
कृषिर्निश्चेष्टवचनो णकारो भक्तिवाचकः ।
अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ।।७०

हरि ने अपनी माता का गर्भ वायु से पूर्ण माया के द्वारा कर दिया था जिससे सबको गर्भ बालक से युक्त दिखाई देवे । जब प्रसव का समय आया था वह वायु निकल गई और आप स्वयं प्रकट हो गये थे । जिस समय आप आविर्भूति हुए थे उस समय वसुदेव को अपना दिव्य दर्शन दिया था और फिर वह रूप अन्तर्हित हो गया था ।।६२।। हे वल्लव ! इनके वर्ण और नाम का युग-युग में भेद होता है । कभी शुक्लवर्ण होता है जैसे आदि युग में था—कभी पीत और किसी युग में रक्त वर्ण होता है । इस समय इनका वर्ण कृष्ण है ।।६३।। सत्य युग में शुक्ल वर्ण था जो अत्यन्त सुतीव्र और तेज से आवृत था । त्रेता युग में रक्त वर्ण था—द्वापर में यही विभु पीत वर्ण वाला था ।।६४।। इस कलियुग में यही श्रीमान् तेजों का समूह स्वरूप कृष्ण वर्ण वाले होकर प्रकट हुए हैं । यह परिपूर्ण-तम साक्षात् ब्रह्म हैं इससे यह कृष्ण कहे गये हैं ।।६५।। ककार अर्थात् 'क'—यह ब्रह्म का वाचक है । ऋकार अर्थात् 'ऋण' यह अनन्त अर्थ का वाचक होता है । "ष"—यह शिव का वाचक है और णकार धर्म के अर्थ का वाचक होता है ।।६६।। अकार श्वेत द्वीप के निवास करने वाले विष्णु का वाचक होता है । नर नारायण के अर्थ का वाचक इसके

साथ रहने वाले विसर्ग होते हैं—ऐसा कहा गया है तब "कृष्णः"—यह शब्द निष्पन्न हुआ है ।।६७।। यह सभी तेजों का समूह है और समस्त मूर्त्तियों का एक ही स्वरूप है । यह सभी का आधार है—सबका बीज रूप है इसीलिये यह कृष्ण इस शुभ नाम से कहा गया है ।।६८-६९।। कृषि निर्वाण का वचन है और साकार भक्ति का वाचक है । आकार दातृ अर्थ को बताने वाला है इससे 'कृष्ण' शुभ नाम कहा गया है ।।७०।।

पुराषङ्करवक्त्रेण नाम्नोऽस्य महिमा श्रुतः ।
गुणनामप्रभावञ्च किञ्चिज्जानातिमद्गुरुः ।।७१
ब्रह्मानन्तश्च धर्म्मश्च सुर्षिर्मनुमानवाः ।
वेदाः सन्तो न जानन्ति महिम्नः षोड़शीं कलाम् ।।७२
इत्येवं कथितो नन्द महिमा ते सुतस्य च ।
यथामति यथाज्ञानं गुरुवक्त्रान्मया श्रुतम् ।।७३
कृष्णःपीताम्बरः कंसध्वंसी च विष्टरश्रवाः ।
देवकीनन्दनः श्रीशोयशोदानन्दनो हरिः ।।७४
सनातनोऽच्युतो विष्णुः सर्वेशः सर्वरूपधृक् ।
सर्वाधारः सर्वगतिः सर्वकारणकारणम् ।।७५
राधाबन्धूराधिकात्माराधिकाजीवनः स्वयम् ।
राधिकासहचारी च राधामानसपूरकः ।।७६
नामान्येतानि कृष्णस्य श्रुतानि साम्प्रतं व्रज ।
जन्ममृत्युहराण्येव रक्ष नन्द शुभक्षणे ।।७७

पहिले शङ्कर के मुख से इस नाम की महिमा श्रवण की गई थी । इनके गुणों का कुछ प्रभाव मेरे गुरु जानते हैं ।।७१।। ब्रह्मा—अनन्त—धर्म-सुर्षि-मनु मानव—वेद और सन्तगण इनकी महिमा का सोलहवाँ भाग भी नहीं जानते हैं ।।७२।। हे नन्द ! इस प्रकार से मैंने तुम्हारे पुत्र की महिमा बता दी है । जैसी मेरी बुद्धि थी और जितना भी मुझ में ज्ञान था मैंने कह दिया है मैंने भी यह महिमा अपने गुरु के मुख से ही सुनी थी ।।७३।। इसके नाम कृष्ण—पीताम्बर—कंसध्वंसी—विष्टरश्रवा

देवकी नन्दन—श्रीयशोदानन्दन—हरि—सनातन—अच्युत—विष्णु—सर्वेश—सर्व रूप धारण करने वाला—सर्वाधार—सर्वगति–सब कारणों का भी कारण—राधा बन्धु—राधिकात्मा—राधिकाजीवन–राधिका-सहचारी और राधा मानस पूरक इतने इस कृष्ण के नाम व्रज में इस समय श्रुत होंगे। हे नन्द! हे शुभेक्षणे! इसकी रक्षा करो। ये सभी शुभ नाम संसार के जन्म-मरण के क्लेशों का हरण करने वाले हैं ॥७४—७७॥

कृतं निरूपितं नाम्नां कनिष्ठस्य यथा श्रुतम्।
ज्येष्टस्य हलिनो नाम्नः सङ्केतं शृणु मे मुखात् ॥७८
गर्भसंकर्षणादेव नाम्ना संकर्षणः स्मृतः ॥७९
नास्त्यन्तोऽस्यैव वेदेषुतेनानन्त इतिस्मृतः।
बलदेवो बलोद्रेकाद्धली च हलधारणात् ॥८०
शितिवासा नीलवासान् मुषली मुषलायुधात्।
रेवत्यासह सम्भोगाद्रेवतीरमणःस्वयम्।
रोहिणीगर्भवासाच्च रोहिणेयो महामतिः ॥८१
इत्येवं ज्येष्ठपुत्रस्य श्रुतं नाम निवेदितम्।
यास्याम्यहं गृहं नन्द सुखं तिष्ठ स्वमन्दिरे ॥८२
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा नन्दः स्तब्धो बभूव ह।
निश्चेष्टा नन्दपत्नी च जहास बालकः स्वयम् ॥८३

कनिष्ठ सुत के शुभ नामों का निरूपण तो मैंने कर दिया है जैसा कि श्रुत है। अब ज्येष्ठ सुत के शुभ नामों को मेरे मुख से श्रवण करो ॥७८॥ गर्भ के संकर्षण होने के कारण से ही इस हलधर का नाम एक सङ्कर्षण पड़ गया है ॥ ७९॥ इसका अन्त वेदों में भी नहीं पाया गया है इसलिये दूसरा इसका एक अनन्त यह भी नाम कहा गया है। इसमें बल की अधिकता होने से ही इसका शुभ नाम बली बलदेव है। यह हल को ही अपना एक अमोघ आयुध रखते हैं अतएव इसका नाम हली या हलधर होता है ॥८०॥ नील वस्त्र के धारण करने शितिवासा तथा

मुषल के धारण करने के कारण इसका एक मुषली भी होता है। रेवती पत्नी के साथ सम्भोग करने से रेवती रमण यह नाम भी कहा गया है ॥८१॥ सती रोहिणी के गर्भ में वास करने से इस महती मति वाले का शुभ नाम रोहिणेय है। इस प्रकार से आपके ज्येष्ठ पुत्र के नामकरण मैंने बता दिये हैं जो कि श्रुत होते हैं। हे नन्द ! अब हम जायँगे। आप सुख पूर्वक निवास करें और इन दोनों पुत्रों का वात्सल्य सुख अपने भवन में प्राप्त करें ॥८२॥ ब्राह्मण के इस वचन को श्रवण कर नन्द स्तब्ध हो गये थे और नन्द की पत्नी यशोदा चेष्टाहीन हो गई थी किन्तु बालक स्वयं हँस उठा था ॥८३॥

एकदा नन्दपत्नी च स्नानार्थं यमुनां ययौ ।
गव्यपूर्णं गृहं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ।।८४
दधिदुग्धाज्यतक्रञ्च नवनीतं मनोरमम् ।
गृहस्थितञ्च यत्किञ्चिच्चखाद मधुसूदनः ।।८५
मधु हैयङ्गवीनं यत्स्वस्तिकंशकटस्थितम् ।
भुक्त्वा पीत्वांशुकैर्वक्त्रसंस्कारंकर्त्तुमुद्यतम् ।।८६
ददर्श बालकं गोपी स्नात्वागत्य स्वमन्दिरम् ।
गव्यशून्यं भग्नभाण्डं मध्वादिरिक्तभाजनम् ।।८७
दृष्ट्वा पप्रच्छ बालांश्च अहो कर्मेदमद्भुतम् ।
यूयं वदत सत्यञ्च कृतं केन सुदारुणम् ।।८८
यशोदावचनं श्रुत्वा सर्वमूचुश्च बालकाः ।
चखाद सत्यं बालस्ते नास्मभ्यं दत्तमेव च ।।८९
बालानां वचनं श्रुत्वा चुकोप नन्दगेहिनी ।
वेत्रं गृहीत्वा दुद्राव रक्तपङ्कजलोचना ।।९०
पलायमानं गोविन्दं गृहीतुं न शशाक ह ।
ध्यानासाध्यं शिवादीनांदुरापमपियोगिनाम् ।।९१

श्री नारायण ने कहा—एक बार नन्द की पत्नी स्नान करने के लिये यमुना पर गई थी। गव्य अर्थात् गोरस से परिपूर्ण घर को देख कर मधुसूदन को हँसी आई थी ।।८४।। मधुसूदन ने घर में स्थित जितना भी

दधि-दुग्ध-घृत-तक्र और सुन्दर नवनीत था उस सबका स्वाद लिया था ॥८५॥ जो स्वास्तिक शकट स्थित मधु हैमङ्गवीन था उसे खा-पीकर वस्त्रों के द्वारा वस्त्र संस्कार करने के लिये मधुसूदन उद्यत हो रहे थे ॥८६॥ इतने ही बीच में स्नान करके आने वाली गोपी ने अपने घर में पहुँच कर बालक को देख लिया था तथा वहाँ फूटे हुए पात्र और मधु आदि से खाली बरतन को देखा था ॥८७॥ यह देख कर उसने बालकों से पूछा—अहो ! यह क्या अद्भुत कर्म हुआ है ? तुम लोग सत्य२ बताओ यह दारुण कर्म किसने किया है ? ॥८८॥ यशोदा के इस वचन को सुनकर सभी बालकों ने कहा—यह सब तुम्हारे ही बालक ने चक्खा है हमको तो उसने कुछ दिया भी नहीं है ॥८९॥ बालकों के इस उत्तर को सुन कर नन्द की पत्नी बहुत क्रोधित हुई थीं और वह रक्त कमल के समान लाल२ आँखें करके हाथ में बेंत लेकर पीछे दौड़ी थीं ॥९०॥ भागते हुए गोविन्द को वह पकड़ न सकीं थीं जो कि शिव आदि के ध्यान में भी असाध्य है और बड़े योगियों को दुष्प्राप्य है उस श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिये यशोदा दौड़ लगा रही थीं ॥९१॥

यशोदा भ्रमणं कृत्वा विश्रान्ता घर्मसंयुता ।
तस्थौ कोपपरीतात्माशुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥९२
विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालुः पुरुषोत्तमः ।
सन्तस्थौ पुरतो मातुःसस्मितोजगदीश्वरः ॥९३
करे धृत्वा च तं देवी समानीयं स्वमालयम् ।
बध्वा वस्त्रेण वृक्षे च तताड़ मधुसूदनम् ॥९४
बध्वा कृष्णं यशोदा सा जगाम स्वालयं प्रति ।
हरिस्तस्थौ वृक्षमूलेजगतां पतिरीश्वरः ॥९५
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण सहसा तत्र नारद ।
पपात वृक्षः शैलाभः शब्दं कृत्वा भयानकम् ॥९६
सुवेशः पुरुषो दिव्यो वृक्षादाविर्बभूव ह ।
दिव्यस्यन्दनमारुह्य जगाम स्वालयं पुरः ॥९७

प्रणम्य जगतीनाथं शातकुम्भपरिच्छदम् ।
किशोरः सस्मितो गौरो रत्नालङ्कारभूषितः ॥९८

यशोदा ने पर्याप्त चक्कर लगा लिये तो वह धर्म से संयुत होकर थक गई थीं और क्रोध में भरी हुई बैठ गई थी। उस समय यशोदा के कण्ठ-ओष्ठ और तालु परिश्रम के कारण सूख गये थे ॥९२॥ कृपालु पुरुषोत्तम ने जब देखा कि माता थक गई हैं तो वह जगदीश्वर मुस्कराते हुए माता के सामने आकर खड़े हो गये के ॥९३॥ उस यशोदा ने हाथ से गोविन्द को पकड़ लिया और फिर वह अपने घर में उसे ले आई थीं। वहाँ वस्त्र से वृक्ष में बाँध कर यशोदा ने मधुसूदन को ताड़ना दी थी ॥९४॥ इसके अनन्तर कृष्ण को वहीं पर बंधा हुआ छोड़ कर स्वयं अपने मन्दिर में चली गई थीं। वह समस्त जगतों का स्वामी ईश्वर वहीं पर वृक्ष के मूल में स्थित हो रहे थे ॥९५॥ हे नारद! श्री कृष्ण के स्पर्श मात्र के होने से वह पर्वत के तुल्य वृक्ष भयानक ध्वनि करके सहसा गिर पड़ा था ॥९६॥ उस वृक्ष से एक सुन्दर वेश-भूषा वाला दिव्य पुरुष प्रकट हुआ था और वह दिव्य रथ पर विराजमान होकर अपने आलय को चला गया था ॥९७॥ जैसे ही वृक्ष से वह आविर्भूत हुआ था उसी समय उसने शात कुम्भ परिच्छद अर्थात् पीताम्बरधारी जगत् के नाथ को प्रणाम किया था। यह पुरुष किशोर अवस्था से युक्त-गौरवर्ण वाला-मन्द स्मित से समुन्वित और रत्नालङ्कारों से विभूषित था ॥९८॥

सा वृक्षपतनं दृष्ट्वा भिया त्रस्ता व्रजेश्वरी ।
क्रोड़े चकार बालं तं रुदन्तं श्यामसुन्दरम् ॥९९
आजग्मुर्गोकुलस्थाश्च गोपा गोप्यश्च तद्गृहम् ।
यशोदां भर्त्सयामासुः शान्तिं चक्रुः शिशोर्मुदा ॥१००
अत्यन्तस्थविरे काले तनयोऽयं बभूव ह ।
धनं धान्यञ्च रत्नं वा तत्सर्वं पुत्रहेतुकम् ॥१०१
सुमतिर्नास्ति ते सत्यं ज्ञातं नन्दव्रजेश्वरि ।
न भक्षितं यत्पुत्रेण तत् सर्वं निष्फलं भुवि ॥१०२

पुत्रं बद्ध्वा गव्यहेतोर्वृक्षमूले च निष्ठुरे।
गृहकर्मणि व्यग्रायां दैवाद् वृक्षः पपात ह ।।१०३
वृक्षस्य पतनाद्गोपीभाग्याद् बालोऽपि जीवितः।
प्रनष्टे बालके मूढ़े वस्तूनां किं प्रयोजनम् ।।१०४
आशिषं युयुजुर्विप्रा वन्दिनश्च शुभावहाम्।
द्विजेन कारयामासुर्नामसंकीर्त्तनं हरेः ।।१०५

उस वृजेश्वरी ने जैसे ही वृक्ष का पतन देखा था वैसे ही वह भय से त्रस्त हो गई थी और तुरन्त वहां आकर उसने रुदन करते हुए बालक श्री श्याम सुन्दर को अपनी गोद में लगा लिया था ।।९९।। उस समय से गोकुल में जो भी गोप और गोपियाँ थीं वे सब यशोदा के घर में आ गये थे। सभी ने वृक्ष से बन्धन करने के विषय में यशोदा को फटकार दीं और प्रसन्नता से शिशु को शान्ति प्रदान की थी ।।१०।। सबने यशोदा से कहा—अत्यन्त वृद्धावस्था में यह पुत्र तुम्हारे हुआ है। धन-धान्य-रत्न आदि सभी पुत्र के लिये ही तो होता है। अथवा इन सबके होने का यही पुत्र कारण है ।।१०१।। हे नन्द वृजेश्वरी ! अब हमने समझ लिया है कि तुमको सचमुच सुमति नहीं है। पुत्र ने जो नहीं खाया है वह सब निष्फल भूमि में गया है। हे निष्ठुरे ! इस गोरस के ही कारण से तुमने पुत्ररत्न को वृक्ष के मूल से बांध दिया था और फिर आप गृहकार्य में व्यस्त होगई थी—दैवयोग से ही ऐसा था कि यह वृक्ष गिर गया था ।।१०२-१०३।। वृक्ष के गिरने से गोपी के भाग्य से ही यह बालक जीवित बच गया है। हे मूढ़े ! यदि बालक प्रनष्ट हो जाता तो इन समस्त वस्तुओं का क्या प्रयोजन होता ? अर्थात् ये सग निष्प्रयोजन ही होतीं ।।१०४।। ब्राह्मणों ने बालक को आशीर्वाद दिया था और वन्दियों ने भी शुभा वह कामनाऐं की थीं। इसके पश्चात् विप्रों के द्वारा हरि-नामों का सङ्कीर्त्तन कराया था।।१०५।।

एवं कृत्वा जनाः सर्वे प्रययुर्निजमन्दिरम्।
उवाच पत्नीं नन्दश्च रक्तपंकजलोचनः ।।१०६
यास्यामि तीर्थमद्यैव कण्ठे कृत्वा तु बालकम्।
अथवा त्वं गृहाद्गच्छ त्वया मे किं प्रयोजनम् ।।१०७

शतकूपाधिका वापी शतवापीसमं सरः ।
सरःशताधिको यज्ञः पुत्रो यज्ञशताधिकः ॥१०८
तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम् ।
सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र इहैव च परत्र च ॥
पुत्रादपि परो बन्धुर्न भूतो न भविष्यति ॥१०९
एवमुक्त्वा स्वभार्याञ्च तस्थौ नन्दः स्वमन्दिरे ।
यशोदा रोहिणीचैव नियुक्ते गृहकर्मणि ॥११०

इस प्रकार से सब कर्म करके सभी लोग अपने घर चले गये थे। इसके उपरान्त रक्त-कमल के समान नेत्र वाले नन्द अपनी पत्नी से बोले—नन्द ने कहा—मैं अपने इस बालक को गले से लगाकर आज ही तीर्थ में जाता हूँ अथवा तुम मेरे इस घर से चली जाओ मुझे तुमसे अब कोई भी प्रयोजन नहीं है ॥१०७॥ सौ कूपों के निर्माण से अधिक एक वापी का निर्माण पुण्य देने वाला होता है। सौ बावड़िओं के समान एक सर की रचना मानी जाती है। सौ सरों से भी अधिक एक यज्ञ होता है और पुत्र सौ यज्ञों से भी अधिक बताया गया है ॥१०८॥ तप-दान से होने वाला पुण्य तो जन्मान्तर में ही सुख प्रद होता है किन्तु सत्पुत्र तो यहाँ पर ही तथा परलोक में भी सर्वत्र सुखप्रद होता है। पुत्र से पर बन्धु न आज तक कभी हुआ और न भविष्य में होगा ॥१०९॥ नन्द ने इस तरह अपनी भार्या को भर्त्सनामय तथा बोधपूर्ण वचन कहे और फिर वह अपने मन्दिर में स्थित होगये थे। यशोदा और रोहिणी गृहकर्म में नियुक्त होगईं थीं ॥११०॥

६६—राधाकृष्ण विवाह वर्णन

एकदा कृष्णसहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ ।
तत्रोपवनभाण्डीरे चारयामास गोधनम् ॥१
सरःसुस्वादुतोयञ्च पाययामास तत् पशौ ।
उवास वृक्षमूले च बालं कृत्वा स्ववक्षसि ॥२
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो मायामानुषविग्रहः ।
चकार मायया कस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने ॥३

मेघावृतं नभो दृष्ट्वा श्यामलं काननान्तरम् ।
झञ्झावातं महाशब्दं वज्रशब्दञ्च दारुणम् ।।४
वृष्टिधारामतिस्थूलां कम्पनांश्च पादपान् ।
दृष्ट्वैवं पतितस्कन्धान्नन्दो भयमवाप ह ।।५
कथं यास्यामि गोवत्सान् विहाय स्वाश्रमं वत ।
गृहं यदि न यास्यामि भविता बालकस्य किम् ।।६
एवं नन्दे प्रवदति रुरोद श्रीहरिस्तदा ।
पयोभिया हरिश्चैव पितुः कण्ठं दधार सः ।।७

इस अध्याय में राधा कृष्ण के विवाह का वर्णन है । नारायण ने कहा—एक बार नन्द कृष्ण को साथ में लेकर वृन्दावन गये थे । वहाँ पर भाण्डीर तपोवन में गोधन को चराया था ।।१।। वहाँ पर सरोवर का स्वादयुक्त जल गौओं को पिलाया था और स्वयं भी उसे पीया था । उस बालक को गोद में बिठाकर एक वृक्ष के मूल में नन्द स्थित हो गये थे ।।२।। हे मुने ! इसी बीच में माया से ही मनुष देह धारण करने वाले कृष्ण ने अकस्मात् आकाश मण्डल को मेघों से एकदम आच्छन्न माया के द्वारा कर दिया था ।।३।। उस समय आकाश को मेघों से घिरा हुआ-श्यामलवन का मध्य भाग,झञ्झावात(अन्धड़)जिसकी महान् भयङ्कर ध्वनि होरही थी तथा दारुण बिजली की कड़कध्वनि देखकर तथा साथ ही अत्यन्त स्थुल वृष्टि की धारा—काँपते हुए वृक्ष-समूह जिनके कि स्कन्ध टूट-टूट कर गिररहे थे इनसब अचानक होने वाले उत्पातों को दृष्टिगत कर नन्द को बड़ा भारी भय हुआ था।४-५.उस समय नन्द ने मन में विचार किया कि गोवत्सों को छोड़ कर मैं अपने घर कैसे जाऊंगा ? और यदि मैं घर नहीं जाता हूँ तो इस बालक की रक्षा कैसे होगी ।।६।। इस तरह का विचार नन्द मन में कर ही रहे थे कि श्रीहरि उसी समय रो पड़े थे । पानी के भय से हरि पिता के कण्ठ से चिपट गये थे ।।७।।

दृष्ट्वा तां निर्जने नन्दो विस्मयं परमं ययौ ।
चन्द्रकोटिप्रभामुष्टां भासयन्तीं दिशो दश ।।८
ननाम तां साश्रुनेत्रो भक्तिनम्रात्मकन्धरः ।

जानामि त्वां गर्गमुखात् पद्माधिकप्रियां हरे: ।।९
जानामीमंमहाविष्णो:परंनिर्गुणमच्युतम् ।
तथापि मोहितोऽहञ्च मानवो विष्णुमायया ।।१०
गृहाण प्राणनाथञ्च गच्छ भद्रे यथासुखम् ।
पश्चाद्दास्यसि मत्पुत्रं कृत्वापूर्णमनोरथम् ।।११
इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया ।
जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं मुखात् ।।१२

इसी बीच में राधा वहाँ पर राजहंस—खञ्जन और जञ्जन के तुल्य गमन करती हुई कृष्ण की सन्निधि में आगयी थी । उस निर्जन में उसको देखकर नन्द को बड़ा भारी विस्मय हुआ था । वह करोड़ों चन्द्रों की प्रभा को भी पराजित करने वाली थी और अपनी दीप्ति से दशों दिशाओं को भाषित कर रही थी ।।८।। नेत्रों में आँसू छलकाते हुए तथा भक्तिभाव कन्धरा को झुका कर नन्द ने उस राधा को प्रणाम किया था । और कहा—मैं अगर्गाचार्य के मुख से श्रवण करके आपको हरि की पद्मा से भी अधिक प्रिया को भली भाँति जानता हूँ ।।९।। मैं इस महाविष्णु-परम-निर्गुण और अच्युत् को भी जानता हूँ तो भी विष्णु की माया के द्वारा मैं मानव मोहित होरहा हूँ ।।१०।। हे भद्रे ! इस प्राणनाथ को ग्रहण करो और यथासुख हो जाओ । अपना मनोरथ सफल करके फिर यह मेरा पुत्र मुझे दे देना ।।११।। यह कह कर नन्द ने भय के कारण उस रोते हुए बालक को देदिया था । हँसती हुई राधाने बालक का ग्रहण करलिया।।१२।

उवाच नन्दं सा यत्नान्नप्रकाश्यं रहस्यकम् ।
अहं दृष्ट्वा त्वयानन्दकतिजन्मफलोदयात् ।।१३
प्राज्ञस्त्वं गर्गवचनात्सर्वं जानासि कारणम् ।
अकथ्यमावयोर्गोप्यं चरित्रं गोकुले व्रज ।।१४
वरं वृणु व्रजेश त्वं यत्ते मनसि वाञ्छितम् ।
ददामि लीलया तुभ्यं देवानामपिदुर्लभम् ।।१५
राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच व्रजेश्वरः ।
युवयोश्चणेरभक्ति देहि नान्यत्र मे स्पृहा ।।१६

युवयोः सन्निधौ वासं दास्यसि त्वं सुदुर्लभम् ।
आवाभ्यां देहि जगतामम्बिके परमेश्वरि ॥१७
श्रुत्वा नन्दस्य वचनमुवाच परमेश्वरी ।
दास्यामि दास्यमतुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते ॥१८
आवयोश्चरणाम्भोजे युवयोश्च दिवानिशम् ।
प्रफुल्लहृदये शश्वत् स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा ॥१९
मायायुवाञ्च प्रच्छन्नौ न करिष्यति मद्वरात् ।
गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवीं तनुम् ॥२०

उस राधा ने नन्द से कहा—यह रहस्य यत्नपूर्वक गुप्त ही रखना और इसका कभी भी प्रकाश नहीं करना चाहिए। न मालूम कितने ही जन्मों के पुण्यों के फलों के उदय होने से आज आपने मेरा दर्शन कर लिया है ॥१३॥ आप पण्डित हैं। आपने गर्ग मुनि के वचन से सभी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है। हम दोनों का जो यह परम गोपनीय चरित्र है वह कहने के योग्य नहीं है अब आप गोकुल जाओ ॥१४॥ हे व्रजेश ! अब तुम्हारे मन में जो भी कुछ अभीष्ट हो वह वरदान मुझसे प्राप्त कर लो। मैं इस समय लीला से ही उसे दे दूँगी जोकि देवों को भी दुर्लभ वस्तु है ॥१५॥ राधिका के उस वचन को सुन कर वृजेश्वर नन्द उससे बोले—मुझे आप अपने दोनों चरणों की भक्ति प्रदान करदो—इसके अतिरिक्त अन्य मेरी कुछ भी स्पृहा नहीं है ॥१६॥हे परमेश्वरि ! हे अम्बिके ! आप तो मेरा निवास अपने दोनों की युगल जोड़ी के समीप में ही प्रदान करदो—यही बड़ा दुर्लभ है। हे देवि ! आप तो सम्पूर्ण जगत् की जननी हैं। हम दोनों का ही चरण सन्निधि में निवास प्रदान करे ॥१७॥ परमेश्वरी राधा ने नन्द के वचनों को सुनकर कहा—मैं आपको अपना अतुल दास्य दूंगी। इस समय आपकी भक्ति हम दोनों के चरण कमलों में अहर्निश होवे और परम प्रफुल्ल हृदय में सुदुर्लभ स्मृति भी होवैगी। ॥१९॥ आप दोनों को मेरे वरदान से माया प्रच्छन्न नहीं करेगी। अन्तिम काल में इस मानवी शरीर का त्याग करके आप दोनों गोलोक धाम में निवास प्राप्त करेंगे ॥२०॥

एवमुक्त्वा तु सानन्दंकृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि ।
दूर निनायश्रीकृष्णंबाहुभ्याञ्चयथेप्सितम् ।
कृत्वा वक्षसि तं कामात् श्लेषं श्लेषं चुचुम्ब च ॥२१
पुलकांकितसर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम् ॥२२
एतस्मिन्नंतरे राधा मायासद्रत्नमण्डपम् ।
ददर्श रत्नकलशशतेन च समन्वितम् ॥२३
नानाविचित्रचित्राढ्य चित्रकाननशोभितम् ।
सिन्दूराकारमणिभिः स्तम्भसंघैर्विराजितम् ॥२४
सुधामधुभ्यां पूर्णानि रत्नकुम्भानि नारद ।
पुरुषं कमनीयञ्च किशोरश्यामसुन्दरम् ॥२५
कोटिकन्दर्पलीलाभं चन्दनेन विभूषितम् ।
शयनं पुष्पशय्यायां सस्मितं सुमनोहरम् ॥२६
पीतवस्त्रपरीधानं प्रसन्नवदनेक्षणम् ।
मणीन्द्रसारनिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम् ॥२७
सद्ररत्नसारनिर्माणकेयूरवलयान्वितम् ।
मणीन्द्रकुण्डलाभ्याञ्च गण्डस्थलविराजितम् ॥२८
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ।
शरत्पार्वणचन्द्रास्यप्रभामुष्टमुखोज्ज्वलम् ॥२९

राधा ने इस प्रकार से नन्द से कह कर कृष्ण को आनन्द के सहित अपने वक्षः स्थल में लगा लिया और बाहुओं से अपनी इच्छानुसार दूर लेगई थी। वहाँ बार २ श्लेष और स्नेह चुम्बन किया था ॥२१॥ उस समय राधा का सम्पूर्ण अङ्ग पुलकित हो गया था और उसने रास मण्डल का स्मरण किया था ॥२२॥ इस अन्तर में वहाँ पर राधा देवी ने सैकड़ों रत्न कलशों से युक्त माया निर्मित रत्नों का विराचित एक मण्डप वहां देखा था ॥२३॥ वह मण्डप अनेक प्रकार के विचित्र चित्रों से युक्त और अद्भुत कानन से शोभा समन्वित था वहां पर सिन्दूराकार मणियों के निर्मित बहुत से स्तम्भों का समूह था जिनकी अत्यन्त शोभा होरही थी, ॥२४॥ हे नारद ! वे रत्न विनिर्मित कलश सुधा-मधु से परिपूर्ण थे।

राधा ने देखा था कि वहां उस मण्डप में परम रमणीय किशोर अवस्था से युक्त श्याम सुन्दर पुरुष है जो करोड़ों कामदेवों के तुल्य अनुपम आत्मा से युक्त और चन्दन से विभूषित है। वह श्याम सुन्दर एक पुण्यों की शय्या पर मनोरम मुस्कान से युक्त होकर शयन कर रहे थे। पीत वर्ण का परीधान था और उत्तम मणिओं के निर्मित नूपुरों की ध्वनि से युक्त वह प्रसन्न मुख तथा नेत्रों वाले थे ॥२५-२६-२७॥ सद्रत्न निर्मित केयूर और वलय धारण किये हुए तथा मणियों के कुण्डलों से उनका गण्ड स्थल शोभित था ॥२८॥ उन श्याम सुन्दर के वक्षः स्थल पर कौस्तुभमणि विराजित थी और उनका मुख शरत्पूर्णिमा के चन्द्र की आभा को भी पराजित करने वाला था ॥२९॥

राधे स्मरसिगोलोकवृत्तान्तं सुरसंसदि ।
अद्यपूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत् पुरा प्रिये ।
त्वंमेप्राणाधिकाराधेप्रेयसो च वरानने ॥३०
यथा त्वञ्च तथाऽहञ्जभेदोहिनावयोर्ध्रुवम् ।
यथाक्षीरेचधावल्यंयथाग्नौदाहिका सती ॥३१
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहंत्वयिसन्ततम् ।
विनामृदाघटंकर्तुं विनास्वर्णनकुण्डलम् ॥३२
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन ।
तथा त्वया विना सृष्टिमहंकर्तुंनचक्षमः ॥३३
सर्वशक्तिस्वरूपासिसर्वरूपोऽहमक्षरः ।
यदा तेजः स्वरूपोऽहंतेजोरूपासि त्वं तदा ॥३४
न शरीरी यदाहञ्च तदा त्वमशरीरिणी ।
सर्ववीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि ॥३५
त्वञ्च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ।
ममाङ्गांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥३६

उस समय श्री कृष्ण ने कहा—हे राधे ! देवों की सभा में गोलोक में जो वृत्तान्त हुआ था उसका आपको स्मरण होता है न ? हे प्रिये ! मैं आज उसे पूर्ण करूँगा जो मैंने पहिले स्वीकार किया था। हे राधे !

हे वरानने ! आप मेरी प्राणों से भी अधिक प्रेयसी हैं ॥३०॥ जैसी आप हैं वैसा ही मैं हूं। हम दोनों में कुछ भी रंचक मात्र भेद नहीं है । जिस प्रकार से क्षीर में धवलता रहती है और अग्नि में दाहिका शक्ति विद्यमान होती है–पृथिवी में गन्ध होता है उसी भाँति निश्चित रूप से मैं तुम्हारे अन्दर निरन्तर स्थित रहा करता हूँ। मिट्टी के बिना कुम्हार घर और सुवर्ण के बिना स्वर्णकार कुण्डल बनाने में जैसे समर्थ नहीं होता है वैसे ही मैं भी आपके बिना सृजन करने में सर्वथा असमर्थ ही रहता हूं ॥३१-३२-३३॥ हे राधे ! आप समस्त प्रकार की शक्तियों के स्वरूप हैं। और मैं सब तरह के स्वरूप वाला हूं। जब मैं अविनाशी तेज के स्वरूप वाला हूँ तो आप भी उस तेज के रूप वाली होती हैं ॥३४॥ जब मैं शरीर से रहित रहता हूँ तो आप भी बिना शरीर वाली रहा करती हैं। हे सुन्दरी ! मैं सदा आपके योग से ही सर्व बीज स्वरूप वाला होता हूं ॥३५॥ आप मेरे अङ्ग के अंश रूप वाली हैं–आप मूल प्रकृति और ईश्वरी हैं ॥३६॥

स्मरामिसर्वंजानामि विस्मरामि कथं विभो ।
यत्त्वं वदसि सर्वाहं त्वत्पादाब्जप्रसादतः ॥३७
ईश्वरस्याप्रिया:केचित् प्रियाश्च कुत्र केचन ।
ये यथा मां न स्मरन्ति तथा तेषु तवाकृपा ॥३८
तृणञ्च पर्वतं कर्तुं समर्थः पर्वतं तृणम् ।
तथापि योग्यायोग्ये च सम्पत्तौ च समाकृपा ॥३९
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथाभिर्य्यत्क्षणं गतम् ।
तत्क्षणञ्च युगसमं नाहं गणयितुं क्षमा ॥४०
वक्षः स्थले च शिरसि देहि ते चरणाम्बुजम् ।
दुनोति मन्मनः सद्यस्त्वदीयविरहानलात् ॥४१
राधिकावचनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः ।
तामुवाच हितं तथ्यं श्रुतिस्मृतिनिरूपितम् ॥४२

राधिका ने कहा—हे विभो ! मैं सभी वृत्तान्त का स्मरण कर रही हूं, मैं उसे कैसे भूल सकती हूं। जो कुछ भी आप कहते हैं वही सब मैं

हूँ किन्तु मेरा ऐसा होना आपके चरणों के प्रसाद से ही है ॥३६॥ ईश्वर के कुछ लोग अप्रिय होते हैं और कुछ परम प्रिय हुआ करते हैं। जो जिस तरह से मेरा स्मरण नहीं किया करते है उनपर उसी भाँति आपकी अकृपा होती है ॥३८॥ आप तृण को पर्वत के सम और पर्वत जैस महान विशाल को तिनके के तुल्य बना देने में समर्थ हैं तो भी योग्य –और अयोग्य में और सम्पत्ति में समान कृपा होती है।।३९।। मैं यहाँ स्थित हूँ और आप शयन किये हुए हैं। पारस्परिक कथा में जो क्षण व्यतीत हुआ है। उस क्षण को युग के समान गिनने में मैं समर्थ नहीं हूँ। आप अपना चरण कमल मेरे वक्षः स्थल में और मस्तक में अर्पित कीजिए ॥४०॥ आपके तुरन्त ही विरह रूपी अग्नि से मेरा मन परितप्त हो रहा है ॥४१॥ श्री राधिका के इस वचन का श्रवण का पुरुषोत्तम हँस पड़े थे और फिर उससे हित एवं तथ्य श्रुति तथा स्मृति से निरूपित वचन बोले ॥४२॥

न खण्डनीयं तत्तत्र मयापूर्वं निरूपितम् ।
तिष्ट भद्रे क्षणं भद्रं करिष्यामि तव प्रिये ॥४३
त्वन्मनोरथपूर्णस्य स्वयंकालः समागतः ।
यस्य यल्लिखितं पूर्वं यत्र काले निरूपितम् ॥४४
तदेव खण्डितुं राधेक्षमो नाहञ्च को विधिः ।
विधातुश्च विधाताहं येषां तल्लेखनं कृतम् ॥४५
ब्रह्मादीनाञ्च क्षुद्राणां न तत् खण्ड्यं कदाचन ।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा जगाम पुरतो हरेः ॥४६
मालाकमण्डलुकरः ईषितुस्मरेचतुर्मुखः ।
गत्वा ननाम तं कृष्णं प्रतुष्टाव यथागमम् ॥४७
साश्रुनेत्रः पुलकितो भक्तिनम्रात्मकन्धरः ।
स्तुत्वानत्वा जगद्धाता जगाम हरिसन्निधिम् ॥४८
पुनर्नत्वा प्रभुं भक्त्या जगाम राधिकान्तिकम् ।
मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मातुस्तच्चरणाम्बुजे ॥४९

चकार सम्भ्रमेणैव जटाजालेन वेष्ठितम् ।
कमण्डलुजलेनैव शीघ्रं प्रक्षालितं मुदा ।।५०
यथागमं प्रतुष्टाव पुटाञ्जलियुतः पुनः ।
हे मातस्त्वत्पदाम्भोजं इष्टं कृष्णप्रसादतः ।।५१

श्री कृष्ण ने कहा—मैंने जो पहिले निरूपण किया है उसका वहाँ पर खण्डन नहीं करना चाहिए । हे भद्रे क्षण मात्र स्थित रहो । हे प्रिये ! आपका कल्याण करूँगा ।।४३।। आपके मनोरथ के पूर्ण होने का काल स्वयं ही उपस्थित हो गया है । पहिले जिसका जो समय लिखित हो गया है तथा जिस समय में जो निरूपित करा दिया है वह तभी होगा ।।४४।। हे राधे ! उस का खण्डन मैं भी नहीं कर सकता हूँ विधाता की तो सामर्थ्य ही क्या है ? जिनका जो लेखन किया गया है उसको करने वाला मैं ही हूँ ।।४५।। ब्रह्मा आदि क्षुद्रों के द्वारा तो किसी समय में भी खण्डन करने के योग्य होता ही नहीं है इसी अन्तर में वहाँ हरि के सम्मुख ब्रह्माजी चले आये थे ।।४६।। ब्रह्मा के हाथों में माला और कमण्डलु था—उनके चारों मुखों से मन्द मुस्कान झलक रही थी । ब्रह्मा ने वहां जाकर आगम की विधि से कृष्ण को प्रणाम किया था और उनका स्तवन किया था ।।४७।। ब्रह्मा के नेत्रों में अश्रु छलक रहे थे—शरीर पुलकित हो रहा था और भक्ति के भान कन्धरा नीचे की ओर झुक रही थी । स्तवन-प्रणमन करके जगत् के धाता हरि की सन्निधि में चले गये थे ।।४८।। उन्होंने पुनः प्रभु को प्रणाम भक्ति से किया था और उसके अनन्तर वे राधिका के समीप में चले गये थे । वहां पर माता के चरण कमल में भक्ति भाव से शिर से प्रणाम किया था ।।४९।। माता के चरणाम्बुज को सम्भ्रम से जटाओं के जाल से वेष्टित कर दिया था अर्थात् शीघ्रता में प्रणाम करने से राधा के चरण ब्रह्मा की जटा से वेष्टित हो गये थे । फिर कमण्डलु के जल से हर्ष पूर्वक प्रक्षालन किया था ।।५०।। ब्रह्मा ने आगम की रीति से ही पुटाञ्जलि होकर पुनः उनका स्तवन किया था ब्रह्मा ने कहा—हे माता ! कृष्ण की कृपा से ही आपके चरण कमल के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।।५१।।

सुदुर्लभञ्च सर्वेषां भारते च विशेषतः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं पुरा मया ॥५२
भास्करे पुष्करे तीर्थे कृष्णस्य परमात्मनः ।
आजगाम वरं दातुं वरदाता हरिः स्वयम् ॥५३
वरं वृणीष्वेत्युक्ते च स्वाभीष्टञ्च वृतं मुदा ।
राधिकाचरणाम्भोजं सर्वेषामपि दुर्लभम् ॥५४
हे गुणातीत मे शीघ्रमधुनैव प्रदर्शय ।
मयेत्युक्तो हरिरयमुवाच मां तपस्विनम् ॥५५
दर्शयिष्यामि काले च वत्सेदानीं क्षमेति च ।
न हीश्वराज्ञा विफला तेन दृष्टं पदाम्बुजम् ॥५६
सर्वेषां वाञ्छितं मातर्गोलोके भारतेऽधुना ।
सर्वा देव्यः प्रकृत्यंशा जन्याः प्राकृतिका ध्रुवम् ॥५७
त्वंकृष्णाङ्गार्धसम्भूतातुल्याकृष्णेनसर्वतः ।
श्रीकृष्णस्त्वमयंराधाधात्वंराधावाहरिः स्वयम् ॥५८
न हि वेदेषु मे दृष्ट इति केन निरूपितम् ।
ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वञ्च गोलोकोऽस्ति यथाम्बिके ॥५९

आपके चरणों का दर्शन सबके लिये अत्यन्त दुर्लभ होता है और भारत में तो विशेष रूप दुलर्भ है । साठ हजार वर्ष पर्यन्त मैंने पहिले तप किया था ॥५२॥ भास्कर पुष्कर तीर्थ में परमात्मा श्रीकृष्ण की तपस्या की थी । वर के दाता हरि वहाँ स्वयं ही मुझे वरदान प्रदान करने के लिये आये थे ॥५३॥ जब श्रीहरि ने मुझ से वरदान माँगने के लिये कहा था तो मैंने प्रसन्नता से अपना अभीष्ट वर माँग लिया था और वह सबके लिये अत्यन्त दुर्लभ राधिका के चरण कमल के प्राप्त करने का ही वरदान था ॥५४॥ मैंने श्रीहरि से उसी समय प्रार्थना की थी कि हे गुणों से अतीत ! मुझे इसी समय श्रीराधा के चरणों का दर्शन शीघ्र करा दीजिये । मेरे ऐसा निवेदन करने पर तपस्वी मुझ से हरि ने यह कहा था ॥५५॥ हे वत्स ! समय आने पर राधा के चरण का दर्शन करा-दूंगा । इस समय क्षमा करो । ईश्वर की आज्ञा कभी विफल नहीं होती

है। उन्होंने आपके पदाम्बुज का दश करा दिया है ॥५६॥ हे माता ! इस समय में भारत के गोलोक में आपके चरण कमल का दर्शन सभी को अभीप्सित हो रहा है। वहाँ प्रकृति के अंश स्वरूप सभी देवियाँ प्रकृतिक होकर जन्य हो गई हैं ॥५७॥ आप तो कृष्ण के आधे अङ्ग से सम्भूत हैं और सभी प्रकार से कृष्ण के ही तुल्य हैं। आप श्रीकृष्ण हैं और राधा हैं तथा राधा स्वयं श्रीहरि ही हैं ॥५८॥ मैंने वेदों में ऐसा कहीं नहीं देखा है। यह किसने निरूपण किया है। हे अम्बिके ! जिस तरह गोलोक ब्रह्माण्ड से बाहिर और ऊपर ही रहता है ॥५९॥

ब्रह्मणः स्तवनं श्रुत्वा तमुवाच ह राधिका ॥६०
वरं वृणु विधातस्त्वं यत्ते मनसि वर्त्तते।
राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच जगद्विधिः ॥६१
वरञ्च युवयोः पादपद्मभक्तिञ्च देहि मे।
इत्युक्ते विधिना राधा तूर्णमोमित्युवाच ह ॥६२
पुनर्ननाम तां भक्त्या विधाता जगतांपतिः।
तदा ब्रह्मा तयोर्मध्ये प्रज्वाल्यच हुताशनम् ॥६२
हरिं संस्मृत्य हवनं चकारविधिना विधि ॥
उत्थायशयनात्कृष्ण उवास वह्निसन्निधौ ॥६४
ब्रह्मणोक्तेन विधिना चकार हवनं स्वयम्।
प्रणमय्यपुनः कृष्णं राधां तां जनकःस्वयम् ॥६५

श्रीनारायण ने कहा—ब्रह्मा की इस प्रकार से स्तुति का श्रवण कर राधा ने उससे कहा—हे विधाता ! तुम मुझसे वरदान माँग लो जो भी कुछ तुम्हारे मन का अभीष्ट हो। राधिका के इस वचन को सुनकर जगत् के विधाता ने उससे कहा—यदि आप वरदान देने की कृपा करती हैं तो मैं ही यही वर प्राप्त करना चाहता हूँ कि आप दोनों पाद पद्म की भक्ति का वरदान मुझे प्रदान करें। इतना कहने पर राधा ने शीघ्र ही इसे स्वीकार कर कहा—मैं तुम्हें यह वर देती हूँ ॥६०-६२॥ जगतों के स्वामी विधाता ने भक्ति पूर्वक पुनः उसको प्रणाम किया था। इस समय ब्रह्मा ने उन दोनों के मध्य में अग्नि जलाकर हरि का स्मरण करते हुए विधि

के साथ हवन किया था। कृष्ण उठकर वह्नि के समीप में बैठ गये थे। ब्रह्मा ने विधि पूर्वक स्वयं हवन किया था। जनक ने स्वयं पुनः कृष्ण को और उस राधा को प्रणाम किया था।।६३–६५।।

कौतुकं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणम् ।
पुनः प्रदक्षिणं राधां कारयित्वा हुताशनम् ।।६६
प्रणमय्य ततः कृष्णांवासयामास तं विधिः ।
तस्या हस्तञ्चश्रीकृष्णं ग्राहयामासत विधिः ।।६७
वेदोक्तसप्तमन्त्रांश्च पाठयामास माधवम् ।
संस्थाप्य राधिकाहस्तं हरेर्वक्षसि वेदवित् ।।६८
श्रीकृष्णहस्तं राधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः ।
स्थापयामास मन्त्रांस्त्रीन् पाठयामास राधिकाम् ।।६९
पारिजातप्रसूनानां मालां जानुविलम्बिताम् ।
श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधाद्वारा ददौ मुदा ।।७०

इसके अनन्तर कौतुक कराया था और सात वार प्रदक्षिणा कराई थी फिर राधा से हुताशन की प्रदक्षिणा कराई थी। ब्रह्मा ने प्रणाम करके कृष्ण को वासित किया था और ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण से राधा का पाणि-ग्रहण कराया था ।।६६-६७।। वेद में कहे हुए सात मन्त्रों को माधव से ब्रह्मा ने पढ़वाया था और वेदों के वेत्ता ने हरि के वक्षःस्थल पर राधिका का हाथ संस्थापित कराया था ।।६८।। प्रजापति ने कृष्ण का हाथ राधा के पृष्ठ देश में रखवाया था और राधा से तीन मन्त्रों को पढ़वाया था ।।६९।। घुटनों तक लम्बी पारिजात के पुष्पों की माला ब्रह्मा ने प्रसन्नता से राधा के द्वारा श्रीकृष्ण के गले में पहिनवा दी थी ।।७०।।

प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधाञ्च कमलोद्भवः।
राधागले हरिद्वारा ददौ मालां मनोहराम् ।।
पुनश्च दासयामास श्रीकृष्णं कमलोद्भवः ।।७१
तद्वामपार्श्वे राधाञ्च सस्मितांकृष्णचेतसम् ।
पुटाञ्जलिकारयित्वामाधवंराधिकांविधिः ।।७२

पाठयामास वेदोक्तान् पञ्चमन्त्राश्च नारद ।
प्रणमय्य पुनः कृष्णं समर्प्य राधिकांविधिः ॥७३
कन्यकाञ्च यथा तातो भक्त्या तस्थौहरेः पुरः ।
एतस्मिन्नन्तरे देवा सानन्दपुलकोद्गमाः ॥७४
दुन्दुभि वादयामासुश्चानकं मुरजादिकम् ।
पारिजातप्रसूनानां पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥७५
जगुर्गन्धर्वप्रवरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
तुष्टाव श्रीहरिं ब्रह्मा तमुवाच ह सस्मितः ॥७६
युवयोश्चरणाम्भोजे भक्तिं मे देहि दक्षिणाम् ।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् ॥७७
मदीयचरणाम्भोजे सुदृढ़ा भक्तिरस्तु ते ।
स्वस्थानं गच्छ भद्रन्ते भविता नात्र संशयः ॥७८

इसके अनन्तर ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण और राधा को पुनः प्रणाम किया था और राधा के कण्ठ में हरि के द्वारा मनोहर माला पहिनाई गई थी ॥७१॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्ण को ब्रह्मा ने बिठा दिया था और उनके वाम भाग में स्मित से युक्त तथा श्रीकृष्ण में संलग्न चित्त वाली राधा को बिठा दिया था। दोनों को पुराञ्जलि युक्त करा के हे नारद ! ब्रह्मा ने वेदोक्त पाँच मन्त्रों को पढ़वाया था। कृष्ण को प्रणाम कराके विधाता ने राधा को सविधि समर्पित कर दिया था ॥७२-७३॥ जिस प्रकार से अपनी कन्या को अपना उसका पिता समर्पित किया करता है उसी प्रकार से ब्रह्मा हरि के सामने स्थित हो गये थे। इसी बीच में देवता लोग परम आनन्द युक्त एवं पुलकित होते हुए दुन्दुभि–आनक और मुरज आदि वाद्यों को बजाने लगे थे। उस समय पारिजात के पुष्पों की वृष्टि आकाश से हुई थी ॥७४-७५॥ इस राधा-कृष्ण के पाणि पीड़नोत्सव के अवसर पर गन्धर्व प्रवर गायन करने लगे और अप्सरागण नृत्य करने लगीं थीं। ब्रह्मा ने हरि का स्तवन किया था। तब श्रीहरि मुस्कराते हुए विराजमान थे उन से ब्रह्मा ने कहा—आप दोनों युगल स्वरूप के चरणों की भक्ति मुझे कृपाकर प्रदान कीजिए। ब्रह्मा के इस वचन को

सुनकर हरि स्वयं उससे बोले ।।७६-७७।। हे ब्रह्मन् ! मेरे चरण कमल में तुम्हारी परम सुदृढ़ भक्ति होगी। अब आप अपने आवास स्थान में जाओ। आपका अत्यन्त कल्याण होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।।७८।।

मया नियोजितं कर्म कुरु वत्स ममाज्ञया ।
श्रीकृष्णस्यवचः श्रुत्वा विधाता जगतां मुने ।।७९
प्रणम्य राधां कृष्णञ्च जगाम स्वालयं मुदा ।
गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मितावक्रचक्षुषा ।।८०
स ददर्श हरेर्वक्त्रं चच्छाद व्रीड़या मुखम् ।
पुलकांकितसर्वाङ्गी कामबाणप्रपीड़िता ।।८१
प्रणम्य श्रीहरिं भक्त्या जगाम शयनं हरेः ।
चन्दनागुरुपंकञ्च कस्तूरीकङ्कुमान्वितम् ।।८२
विश्वकर्मा न जानाति सखीनामपि का कथा ।
वेशं विधातुं कृष्णस्य यदा राधा समुद्यता ।।८३
बभूव शिशुरूपञ्च कैशोरं च विहाय च ।
ददर्श बालरूपं तं रुदन्तं पीड़ितं क्षुधा ।।८४
यादृशं प्रददौ नन्दो भीतं तादृशमच्युतम् ।
विनिश्वस्य च सा राधा हृदयेन विदूयता ।।८५
इतस्ततस्तं पश्यन्ती शोकार्ता विरहातुरा ।
उवाच कृष्णमुद्दिश्य काकूक्तिमिति कातरा ।।८६

श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा से कहा—हे वत्स ! अब मेरी आज्ञा से मेरा नियोजित कर्म करो। हे मुने ! श्रीकृष्ण के इस वचन को सुनकर ब्रह्मा राधा और कृष्ण को प्रणाम करके अपने आलय को हर्ष युक्त होकर चले गये थे। ब्रह्मा के चले जाने पर वह देवी राधा मुस्कान समन्वित होकर तिरछी नजर से हरि के मुख को देखने लगी और फिर लज्जा से उसने मुख को ढक लिया था। राधा का शरीर पुलकित हो गया और वह काम वाण से प्रपीड़ित हो गई थी ।।७९-८१।। श्रीहरि को राधा ने प्रणाम किया और फिर वह हरि के शयन पर चली गई थी जो शय्या कपूर-अगुरु-चन्दन-कस्तूरी और कुंकुम से समन्वित थी ।।८२।। श्रीकृष्ण का

वेश जिस प्रकार का राधा बना सकती थी अर्थात् जैसे शृङ्गार वह करने को समुद्यत रहा करती थी वैसा विश्वकर्मा भी नहीं जानता है विचारी सखियों का तो कहना ही क्या हैं ।।८३।। इसके अनन्तर वह किशोर श्री कृष्ण का स्वरूप त्याग कर शिशु के रूप में हो गया था और फिर क्षुधा से पीड़ित तथा रुदन करते बाल स्वरूप को देखा था ।।८४।। जैसा अच्युत का स्वरूप डरा हुआ था और नन्द ने राधा को दिया था वैसा ही उस समय भी था । राधा अपने विदूयमान हृदय से उसे विलोक कर विनि-श्वसित हो रही थी । राधा इधर-उधर देख कर शोक से दुखि:त और विरह में आतुर होती हुई परम का तर होकर कृष्ण को उद्देश्य करके काकूक्ति में बोली थी—।।८५-८६।।

मायां करोषि मायेश किङ्करीं कथमीदृशीम् ।
इत्येवमुक्त्वा सा राधा पपातचरुरोद च ।।८७
रुरोद कृष्णस्तत्रैव वाग् बभूवाशरीरिणी ।
कथं रोदिषि राधेत्वं स्मर कृष्णपदाम्बुजम् ।।८८
आरासमण्डलं यावन्नक्तमत्रागमिष्यति ।
करिष्यसि रतिं नित्यं हरिणा सार्द्धमीप्सिताम् ।।८९
छायां विधाय स्वगृहेस्वयमागत्य मा रुद ।
कृत्वा क्रोड़े च प्राणेशं मायेशं बालरूपिणम् ।।९०
त्यज शोकं गृहं गच्छ सुन्दरीत्थं प्रबोधिता ।
श्रुत्वैवं वचनं राधाकृत्वा क्रोड़ेचबालकम् ।।९१
ददर्श पुष्पोद्यानञ्च वनं सद्रत्नमण्डपम् ।
तूर्णं वृन्दावनाद्राधा जगाम नन्दमन्दिरम् ।।९२

हे मायेश ! मुझ जैसी किङ्करी से आप क्यों माया कर रहे हैं ? इतना ही कह कर वह राधा भूमि पर गिर पड़ी थी और रोने लगी थी ।।८७।। वहाँ पर ही कृष्ण भी रो रहे थे । उस समय आकाशवाणी हुई थी—हे राधे ! तुम क्यों रुदन कर रही हो ? कृष्ण के चरण कमल का ध्यान करो ।।८८।। जब तक यह रास मण्डल है रात्रि में वह यहाँ आयेंगे और तुम हरि के साथ अपनी अभीष्ट रति नित्य ही करोगी ।।८९।। अपने

गृह में अपनी छाया को स्थिति कर दो और तुम स्वयं यहाँ आकर रहो। रुदन मत करो। अपने प्राणेश एवं मायेश को जो इस समय बाल रूप वाला है अपनी गोद में ले लो अब तुम शोक का त्याग कर दो और हे सुन्दरि! अपने गृह को जाओ। इस प्रकार की आकाश द्वारा कही गई वाणी को सुन कर राधा प्रबोधित हुईं और बालक स्वरूपी कृष्ण को गोद में उसने उठा लिया था। उसने वनपुष्पोद्यान और सद्रत्न मण्डप को देखा था। फिर शीघ्र ही राधा उस वृन्दावन से नन्द के मन्दिर को चली गई थी ॥९०--९२॥

सा मनोयायिनी देवी निमिषार्धेन नारद।
संसिक्तस्निग्धमधुररसना रक्तलोचना ॥९३
यशोदायै शिशुं दातुमुद्यता सैत्युवाचह।
गृहीत्वैवं शिशुं स्थूलं रुदन्तञ्च क्षुधातुरम् ॥९४
गोष्ठे त्वत्स्वामिना दत्तं प्राप्नोति यातनां पथि।
संसिक्तं वसनं वत्से मेघाच्छन्नेऽतिदुर्दिने ॥९५
पिच्छले कर्दमोद्रेके यशोदा वोढुमक्षमा।
गृहाण बालकं भद्रे स्तनं दत्त्वा प्रबोधय ॥९६
गृहं चिरं परित्यक्तं यामि तिष्ठ सुखं सति।
इत्युक्त्वा बालकं दत्त्वा जगाम स्वगृहं प्रति ॥९७
यशोदा बालकं नीत्वा चुचुम्ब च स्तनौ ददौ।
बहिर्निविष्टास्ता राधास्वगृहे गृहकर्मणि ॥९८
इत्येवं कथितं वत्स श्रीकृष्णचरितं शुभम्।
सुखदं मोक्षदं पुण्यमपरं कथयामि ते ॥९९

हे नारद! वह मन की इच्छा के अनुसार ही जाने वाली थी और संसिक्त एवं स्निग्ध मधुर रसना वाली थी तथा रक्त नेत्रों से युक्त थीं। वह आधे निमेष में ही वहाँ पहुंच गई थी। वहाँ यशोदा के लिये शिशु के देने को तुरन्त उद्यत होती हुई राधा बोली—इस रोते हुए स्थूल और क्षुधा से पीड़ित अपने शिशु को ग्रहण करो। गोष्ठ में इसे आपके स्वामी ने दिया था क्योंकि यह मार्ग में यातना को प्राप्त हो रहा है ॥९३-९५॥

मेघों से आच्छन्न उस अत्यन्त दुर्दिन में बालक के वस्त्र संसिक्त हो गये थे। उस पिच्छल और कर्दम के उद्रेक में यशोदा उस बालक का वहन करने में असमर्थ थी। हे भद्रे। अब तुम इस बालक को ग्रहण करो और स्तन पिला कर इसको प्रबोधित करो ॥९६॥ मैंने अपना घर बहुत समय से छोड़ा है अतएव हे सति ! अब मैं जाती हूँ। आप सुख पूर्वक रहिए। इतना कह कर और उस बालक को यशोदा को देकर राधा अपने घर को चली गई थी ॥९७॥ यशोदा ने बालक को लेकर उसका स्नेह से चुम्बन किया और उसे स्तन का पान कराया था। बाहिर निविष्ट यह राधा अपने घर में गृह कर्म में रहती। हे वत्स ! यह श्रीकृष्ण का शुभ चरित्र मैंने कह कर तुमको सुना दिया है। यह चरित्र सुख और मोक्ष तथा परम पुण्य का प्रदान करने वाला है। इसके अतिरिक्त अन्य भी ऐसा ही पुण्यादि देने वाला चरित्र कहता हूँ ॥९८-९९॥

६७—बकप्रलम्बकेशीनामुद्धारवर्णनम्

माधवो बालकैः सार्द्धमेकदा हलिना सह ।
भुक्त्वा पीत्वाच क्रीडार्थं जगाम श्रीवनं मुने ॥१
तत्र नानाविधां क्रीड़ांचकार मधुसूदनः ।
कृत्वातां शिशुभिः सार्द्धं चालयामासगोधनम् ॥२
ययौ मधुवनं तस्माच्छ्रीकृष्णो गोधनैः सह ।
तत्र स्वादु जलं पीत्वा वनेचस महाबलः ॥३
तत्र कदैत्यो बलवान् श्वेतवर्णो भयङ्करः ।
विकृताकारवदनो वकाकारञ्च शैलवत् ॥४
दृष्ट्वा च गोकुलं गोष्ठे शिशुभिर्बलकेशवौ ।
यथा ह्यगस्त्यो वातापिं सर्वं जग्रास लीलया ॥५
वकग्रस्तं हरिं दृष्ट्वा सर्वे देवा भयान्विताः ।
चक्रुर्हाहेति सन्त्रस्ता धावन्तः शस्त्रपाणयः ॥६
शक्रश्चिक्षेप वज्रञ्च मुनेरस्थिविनिर्मितम् ।
न ममार वकस्तस्मात्पक्षमेकं ददाह च ॥७

इस अध्याय में वक—प्रलम्ब और केशी के उद्धार का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—हे मुने ! एक समय माधव हलधर बलदेव और अन्य बालकों के साथ खा—पीकर क्रीड़ा करने के लिये श्रीवन को गये थे ॥१॥ वहाँ पर मधुसूदन ने अनेक प्रकार की क्रीड़ाएं की थीं। वह क्रीड़ा समाप्त करके उसने बालकों के साथ गोधन (गौओं को) चला दिया था ॥२॥ वहाँ से कृष्ण गोधन के साथ मधुवन को चले गये थे। वहाँ वन में महान् बलवान् उसने स्वादु जल का पान किया था ॥३॥ वहाँ पर एक दैत्य था जो बहुत बल वाला, श्वेत वर्ण से युक्त और अत्यन्त भयङ्कर था। उसका मुख और आकार बहुत ही विकृत रूप वाला था। देखने में वह वक की आकृति वाला था किन्तु शैल के समान विशाल था ॥४॥ उसने गोष्ठ में गोकुल को तथा शिशुओं के साथ बलराम और केशव को देख कर वातापि को अगस्त्य की भाँति सबका ग्रास कर लिया था ॥५॥ बकासुर के द्वारा हरि को ग्रस्त देख कर सब देवता भयभीत हो गये थे। देवगण हाथों में हथियार लेकर सन्त्रस्त होते हुए हा हा कार करके इधर-उधर दौड़ने लगे थे ॥६॥ इन्द्र ने उस समय मुनि के अस्थियों से निर्मित बज्र का प्रहार उस बकासुर पर किया था किन्तु वह उस वज्र से भी नहीं मरा था। केवल उसका एक पंख उससे जल गया था ॥७॥

नीहारास्त्रं शशधरः शीतार्तस्तेन दानवः।
यमदण्डं सूर्य्यपुत्रस्तेन कुण्ठो बभूव ह ॥८
वायव्यास्त्रञ्च वायुश्च तेन स्थानान्तरं ययौ।
वरुणश्च शिलावृष्टिं चकार तेन पीड़ितः ॥९
हुताशनश्च वाह्नेन पक्षांश्चैव ददाह सः।
कुवेरस्यार्धचन्द्रेण छिन्नपादो बभूव ह ॥१०
ईशानस्य च शूलेन बभूव मूच्छितोऽसुरः।
ऋषयो मुनयश्चैव कृष्णञ्चक्रुभियाशिषम् ॥११
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः प्रज्ज्वलन् ब्रह्मतेजसा।
ददाह दैत्यसर्वाङ्गं बाह्याभ्यन्तरमीश्वरः ॥१२

तत्सर्वं वमनं कृत्वा प्राणांस्तत्याज दानवः ।
वकं निहत्य बलवान् शिशुभिर्गोधनैः सह ॥१३

ययौ केलिकदम्बानां काननं सुमनोहरम् ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृषरूपधरोसुरः ॥१४

उस समय शशधर (चन्द्रमा) ने अपना नीहारास्त्र उस पर छोड़ा था जिससे वह दानव शीत से आर्त्त हो गया था । सूर्य पुत्र ने यमदण्ड का उस पर प्रक्षेप किया था जिससे वह कुण्ठ हो गया था ॥८॥ वायुदेव ने उस पर अपना वाय व्यास्त्र छोड़ा था इससे वह अन्य स्थान में चला गया था । वरुण देवता ने शिलाओं की वृष्टि उस पर की थी इससे भी वह पीड़ित हो गया था ॥९॥ अग्निदेव ने अपना आग्नेय अस्त्र उस पर छोड़ा था इससे उसने उसके पंखों को जला दिया था । कुबेर के द्वारा प्रक्षिप्त अर्ध चन्द्र अस्त्र से उसके पैर कट गये थे ॥१०॥ ईशान के द्वारा फेंके गये शूल से वह बकासुर मूच्छित हो गया था । उस समय समस्त ऋषिगण तथा मुनि वृन्द ने कृष्ण को भय से युक्त होकर आशीर्वाद दिया था ॥११॥ इसी बीच में ईश्वर कृष्ण ने अपने ब्रह्म तेज से प्रज्वलित होकर उस बकासुर दैत्य का सम्पूर्ण अङ्ग बाहिर और भीतर से दग्ध कर दिया था ॥१२॥ इसके अनन्तर उस दैत्य ने बमन करके सबको बाहिर निकाल दिया था और वह मृत हो गया था बलवान् ने बकासुर को मार कर बालकों और गौओं के साथ केलिकदम्बों के परम सुन्दर वन में प्रस्थान किया था । इसी बीच में वहाँ पर वृष के रूप को धारण करने वाला असुर आ गया था ॥१३-१४॥

नाम्ना प्रलम्बो बलवान् महाधूर्त्तश्च शैलवत् ।
शृङ्गाभ्याञ्च हरिं धृत्वा भ्रामयामास तत्र वै ॥१५

दुद्रुवुर्बालकाः सर्वे रुरुदुश्च भयातुराः ।
बलो जहास बलवान् ज्ञात्वा भ्रातरमीश्वरम् ॥१६

बालकान् बोधयामास भयं किमित्युवाच ह ।
तद्विषाणं गृहीत्वाच स्वयं श्रीमधुसूदनः ॥१७

भ्रामयित्वा च गगने पातयामास भूतले ।
प्राणांस्तत्याज दैत्येन्द्रो निपत्यच महीतलम् ॥१८
जहसुर्बालकाः सर्वे ननृतुश्च जगुर्मुदा ।
हत्वा प्रलम्बं श्रीकृष्णो बलेन सह सत्वरम् ॥१९
गोधनं चारयामास ययौ भाण्डीरमीश्वरः ।
गच्छन्तं माधवं दृष्ट्वा केशी दैत्येश्वरो बली ॥२०
वेष्टयामास तं शीघ्रं खुरेण विलिखन्महीम् ।
मूर्ध्नि कृत्वा हरिं तुष्टो गगनं शतयोजनम् ॥२१

यह प्रलम्ब नाम वाला महान् बल वाला पर्वत की भाँति विशाल था तथा बहुत ही अधिक धूर्त्त था । इसने अपने सींगों से हरि को उठाकर वहाँ चक्कर खिला दिया था ॥१५॥ उस समय समस्त बालक भय भीत होकर भागने लगे और रुदन करने लगे थे । बलवान् बलराम अपने भाई को ईश्वर जानते थे अतः वह अकेले उस समय में हँस रहे थे ॥१६॥ बलराम ने समस्त बालकों को समझाया था कि कुछ भी भय की बात नहीं है । मधु सूदन ने उस समय उस असुर के विषाण को पकड़कर स्वयं उसे आकाश में घुमाकर भूतल में गिरा दिया था । वह दैत्येन्द्र जैसे ही भूमि पर गिरा था कि उसने अपने प्राणों का त्याग कर दिया था ॥१७-१८॥ उसे मृत देखकर सब बालक खूब हँसे और गान तथा नृत्य प्रसन्नता से कर रहे थे । श्रीकृष्ण ने प्रलम्ब असुर को मार कर बलराम के साथ शीघ्र ही गोधन को चराने लगे थे । फिर वहाँ से ईश्वर भाण्डीर वन को चले गये थे । जाते हुए माधव को देखकर अत्यन्त बलवान् दैत्यों का राजा केशी वहाँ आगया था । उसने अपने खुरों से भूमि को खोदते हुए उस कृष्ण को शीघ्र ही वेष्टित कर लिया था । हरि को मस्तक पर करके सौ योजन तक आकाश में वह ले गया था ॥१९-२१॥

उत्पात्य भ्रामयामास पपात च महीतले ।
जग्राह स हरिं पापी चर्वयामास कोपतः ॥२२
स भग्नदन्तो दैत्यश्च वज्राङ्गचर्वणादहो ।
श्रीकृष्णतेजसा दग्धः प्राणांस्तत्याज भूतले ॥२३

स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिर्बभूवह ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पार्षदा दिव्यरूपिणः ॥२४
तत्राजग्मुः स्यन्दनस्था द्विभुजाः पीतवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनोवनमालाविभूषिताः ॥२५
विनोदमुरलीहस्ताः क्वणन्मञ्जीररञ्जिताः ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा गोपवेशधरा वराः ॥२६
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातराः ।
प्रदीप्तं रथमास्थाय रत्नसारविनिर्मितम् ॥२७
भाण्डीरवनमाजग्मुर्यत्र सन्निहितो हरिः ।
दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिताः ॥२८
प्रणम्यच हरिंस्तुत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ।
मुक्त्वादेहं परित्यज्य वैष्णवाःपुरुषास्त्रयः ॥
सम्प्राप्य दानवीं योनिं बभूवुः कृष्णपार्षदाः ॥२९

उस केशी ने ऊपर को उठाकर घुमा दिया था और चक्कर खवा कर भूतल में गेर दिया । उस पापी ने हरि को पुनः पकड़ लिया और क्रोध से उसका चर्वण करने लगा था वज्र के समान अङ्ग वाले कृष्ण के चर्वण करने से उस दैत्य के दाँत भग्न हो गये थे । फिर वह श्रीकृष्ण के तेज से दग्ध होकर भूमि पर गिर पड़ा और उसने अपने पुण्यों को त्याग दिया था ॥२२-२३॥ केशी दैत्य के मर जाने पर स्वर्ग में दुन्दुभि बजने लगीं और आकाश से पुष्प वृष्टि हुई थी । इसी अन्तर में वहां पर दिव्य रूप धारी पार्षद आगये थे ॥२४॥ इन पार्षदों के दो भुजाऐं थीं और पीत वस्त्र धारण करके ये रथ में आरूढ़ थे । किरीट–कुण्डल और वनमाला से इनका अङ्ग विभूषित हो रहा था । विनोद के लिये इनके हाथ में मुरली थी तथा पदों में बजने वाले नूपुर पहिने हुए थे । इनका सम्पूर्ण शरीर चन्दन से चर्चित था तथा गोप का वेश धारण करने वाले थे । ॥२५-२६॥ मन्द हास्य से इनका परम प्रसन्न मुख था तथा ये भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये कातर थे । ये पार्षद दीप्तिमान रथ में विराजमान थे जो उत्तम रत्नों के द्वारा निर्मित किया हुआ था । ये पार्षद भाण्डीर

वन में आये थे जहाँ पर हरि सन्निहित थे। इनके वस्त्र एवं परोधान परम दिव्य थे और रत्नों के अलङ्कारों से ये सुशोभित हो रहे थे ॥२७-२८॥ उन्होंने आकर हरि को प्रणाम किया और स्तवन करके ये तीनों वैष्णव पुरुष देह का त्याग कर मुक्त हो गये थे और फिर उत्तम गोलोक मे चले गये थे। ये कृष्ण के ही पार्षद थे जिनको कि दानव की योनि प्राप्त हुई थी। अब उसे समाप्त कर यथा स्थान पहुँच गये थे ॥२९॥

६८—विप्र पत्नीनां मोक्षणम्

अहो किमद्भुतं सूत रहस्य सुमनोहरम्।
श्रुतं कृष्णस्य चरितं सुखदं मोक्षदं परम् ॥१
श्रुत्वा नगरनिर्माणं नारदो मुनिसत्तमः।
पप्रच्छ कृष्णचरितमपरं सुमनोहरम् ॥२
श्रीकृष्णाख्यानचरितं पीयूषमृषिसत्तम।
ज्ञानसिन्धो निगद मां शिष्यञ्च शरणागतम् ॥३
नारदस्य वचः श्रुत्वा मुदा नारायणः स्वयम्।
उवाच परमीशस्य चरितं परमाद्भुतम् ॥४
एकदा बालकैः सार्द्धं बलेन सह माधवः।
जगाम श्रीमधुवनं यमुनातीरनीरजम् ॥५
विचेरुर्गोसहस्रैश्च चिक्रीडुर्गालिकास्तदा।
विश्रान्तास्तृट्परीताश्च क्षुधा च परिपीड़िताः ॥६
तमूचुर्गोपशिशवः श्रीकृष्णं परया मुदा।
क्षुदस्मान् बाधते कृष्ण किं कुर्मो ब्रूहि किङ्करान् ॥७
शिशूनां वचनं श्रुत्वा तानुवाच दयानिधिः।
हितं तथ्यञ्च वचनं प्रसन्नवदनेक्षणः ॥८
बालागच्छतविप्राणां यज्ञस्थानं सुखावहम्।
अन्नं याचततान्शीघ्रं ब्राह्मणांश्चक्रतून्मुखान् ॥९
विप्रा अङ्गिरसाः सर्वेस्वाश्रमे श्रीवनान्तिके।
यज्ञं कुर्वन्तिविप्राश्च श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥१०

निष्पृहा वैष्णवा: सर्वे मां यजन्ति मुमुक्षवः ।
मायया मां न जानन्ति मायामानुषरूपिणम् ।।११

इस अध्याय में विप्र पत्नियों के मोक्ष का निरूपण किया जाता है । शौनक ने कहा—हे सूत ! यह कैसा एक परम अद्‌भुत एव अत्यन्त मनोहर रहस्य है । हमने श्री कृष्ण का चरित सुन लिया है जो सुख एवं मोक्ष को प्रदान करने में परम श्रेष्ठ है ।।१।। सूतजी ने कहा—मुनियों में परम श्रेष्ठ नारद ने नगर का निर्माण सुन कर अन्य कृष्ण के चरित के विषय में पूछा था ।।२।। नारद ने कहा—हे ऋषि सत्तम ! श्री कृष्ण का आख्यान चरित अमृत के समान है । हे ज्ञान के सागर ! मुझ शरणागत शिष्य को और कहिए ।।३।। नारद के इन वचनों को सुनकर परमीश के परमाद्‌भुत चरित को प्रसन्नता पूर्वक नारायण ने स्वयं कहा था ।।४।। नारायण बोले—एक बार बलराम और बालकों के साथ माधव यमुना के तट पर नीरज वाले श्री मधुवन में गये थे ।।५।। वहां उस समय सहस्रों गौओं के साथ विचरण किया था और बालक वहां क्रीड़ा कर रहे थे । वे सभी बालक खेलते हुए थक गये थे और भूख तथा प्यास से परिपीड़ित हो गये थे ।।६।। वे समस्त गोपों के बालक श्री कृष्ण से बड़ी ही प्रसन्नता से कहने लगे—हे कृष्ण ! हमको तो अब भूख सता रही है । अब हम यहाँ क्या उपाय इसे शान्त करने का करें—यह अपने किङ्करों को आप ही बताइये ।।७।। बालकों के इस वचन को सुनकर दया के निधि श्रीकृष्ण प्रसन्न मुख और नेत्रों वाले होते हुए उनका हितकर तथा तथ्य वचन उनसे बोले थे । श्री कृष्ण ने कहा–हे बालको ! तुम लोग विप्रों के यज्ञ स्थान में जाओ जोकि अति सुखावह है । वहां जाकर क्रतून्मुख ब्राह्मणों से शीघ्र ही अन्न की याचना करो ।।८-९।। वहां अङ्गिरस गोत्र वाले विप्र हैं जोकि सभी अपने आश्रम में श्री वन के समीप में ही हैं । वे विप्र वहां यज्ञ कर रहे हैं और सभी श्रुति, स्मृति के बड़े विद्वान् हैं ।।१०।। वे समस्त विष्णु के परम भक्त एवं निष्पृह हैं । सभी वे लोग मुक्ति की कामना रखने वाले मेरे लिये ही यजन कर रहे हैं । माया से मानुष रूप धारी मुझको वे मेरी ही माया के कारण नहीं जानते हैं ।।११।।

न चेद्ददतियुष्मभ्यमन्नं विप्राःक्रतून्मुखाः ।
तत्कान्तायाचत क्षिप्रंदयायुक्ताःशिशूंन्प्रति ॥१२
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ययुर्बालकपुंगवाः ।
पुरतो ब्रह्मणानाञ्च तस्थुरानम्रकन्धराः ॥१३
इत्यूचुर्बालिकाः शीघ्रमन्नं दत्त द्विजोत्तमाः ।
न शुश्रुवुर्द्विजाः केचित् केचिच्छ्रुत्वा स्थिताः स्थिताः ॥१४
ते ययू रन्धनागारं ब्राह्मण्यो यत्रपाचिकाः ।
गत्वाबाला विप्रभार्याः प्रणेमुर्नतकन्धराः ॥१५
नत्वोचुर्बालकाःसर्वेविप्रभार्याः पतिव्रताः ।
अन्नंदत्तमातरोऽस्मान्क्षुधार्तान्बालकानपि ॥१६
बालानां वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वातांश्चमनोहरान् ।
पप्रच्छुः सादरं साध्व्यः स्मेराननसरोरुहाः ॥१७
के यूयं प्रेषिताः केन कानि नामानि कोविदाः ।
दास्यामोऽन्नं बहुविधं व्यञ्जनैः सहितं वरम् ॥१८
ब्राह्मणीनां वचः श्रुत्वा ता ऊचुस्ते मुदान्विताः ।
स्निग्धा हसन्तः स्फीताश्च सर्वे गोपालबालकाः ॥१९

यदि यज्ञ करने की प्रवृत्ति वाले वे बिप्र तुमको अन्न नहीं देवें तो तुम शीघ्र ही जाकर उनके घरों में उनकी पत्नियों से अन्न की याचना करना क्योंकि वे शिशुओं के प्रति बड़ी ही दया वाली रहती हैं ॥१२॥ श्री कृष्ण के इस आदेश वचन का श्रवण कर वे बालक श्रेष्ठ वहां गये थे और यज्ञ भूमि में स्थित विप्रों के सामने नीचे को अपनी कन्धरा झुका कर स्थित हो गये थे ॥१३॥ बालकों ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! हमको कृपा कर शीघ्र कुछ अन्न दे दो। उस समय कुछ द्विजों ने बालकों की इस याचना को सुना हो नहीं था और कुछ ने सुन भी लिया तोभी वे चुपचाप ही स्थित रह गये थे ॥१४॥ इस के अनन्तर वे बालक रन्धन करने के स्थान में पहुँच गये थे जहाँ पर उनकी ब्राह्मणी पाचिका होकर अन्न का पाक कर रहीं थीं बालकों ने वहां पर उन विप्रों की भार्याओं को प्रणाम किया और वे नत कन्धर होकर स्थित हो गये थे ॥१५॥

प्रणाम करके सब बालक उनसे बोले—हे विप्रों की भार्याओ ! आप तो पतिव्रताऐं हैं। हे माताओ ! हम क्षुधा से पीड़ित बालक हैं हमको आप अन्न का दान कर दो ॥१६॥ उन बालकों के वचन को श्रवण करके और उनको अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाले देखकर हास्य युक्त मुख कमल वाली परम साध्वी विप्र पत्नियों ने उन बालकों से आदर के साथ पूछा था ॥१७॥ विप्र पत्नियों ने कहा—हे बच्चो ! तुम कौन हो और यहाँ तुमको किसने भेजा है तथा उन भेजने वाले विद्वानों के क्या—क्या नाम हैं ? हम तुमको बहुत प्रकार का अन्न देंगी जो व्यञ्जनों से सहित बहुत ही अच्छा होगा ॥१८॥ ब्राह्मण पत्नियों के इस वचन को सुनकर परम प्रसन्न होकर उन बालकों ने कहा था जोकि बालक स्नेह युक्त—स्फीत और हंस मुख सब गोपों के पुत्र थे ॥१९॥ बालकों ने कहा—

प्रेषितारामकृष्णाभ्यांवयंक्षत्पीड़िताभृशम् ।
दत्तान्नं मातरोऽस्मभ्यंक्षिप्रं यामस्तदान्तिकम् ॥२०
इतोऽविदूरे भाण्डीरे वनाभ्यन्तरमेव च ।
वटमूले मधुवने वसन्तौ रामकेशवौ ॥२१
विश्रान्तौ क्षुधितौ तौ च याचेतेऽन्नञ्चमातरः ।
किमु देयमदेयं वा शीघ्रं वदत नोऽधुना ॥२२
गोपानाञ्च वचः श्रुत्वा हृष्टानन्दाश्रुलोचनाः ।
पुलकांकितसर्वाङ्गास्तत्पादाब्जमनोरथाः ॥२३
नानाव्यञ्जनसंयुक्तं शाल्यन्नं सुमनोहरम् ।
पायसं पिष्टकं स्वादु दधि क्षीरं घृतं मधु ॥२४
रौप्ये कांस्ये राजते च पात्रे कृत्वा मुदान्विताः ।
तः सर्वा विप्रपत्न्यश्च प्रपयुः कृष्णसन्निधिम् ॥२५

हमको बलराम और कृष्ण ने आपके पास भेजा है क्यों कि हम भूख से बहुत ही अधिक पीड़ित हो रहे हैं। हे माताओ ! आप हमको अन्न देवें जिससे हम शीघ्र ही उनके समीप में पहुंच जावें ॥२०॥ यहाँ से समीप में ही भाण्डीर वन में वन के अन्दरूनी भाग में वट के मूल में मधुवन में राम और केशव दोनों विराजमान हैं ॥२१॥ हे माताओ ! वे

बहुत थके हुए हैं और क्षुधायुक्त हैं। वे आपसे अन्न की याचना कर रहे हैं। अब आप लोग हमको शीघ्र ही उत्तर देदो कि आपको अन्न देना है या नहीं देना है ॥२२॥ गोपालों के इस वचन को सुनकर विप्र पत्नियां हर्षानन्द के आँसुओं से नेत्र भर लाँई थीं। सबके अङ्गों में रोमाञ्च हो गया था क्यों कि वे उनके चरणों में मनोरथ रखने वाली थीं ॥२३॥ वे समस्त विप्र पत्नियाँ अनेक व्यञ्जनों से संयुक्त—परम सुन्दर पायस-पिष्टक—स्वादिष्ट दधि—क्षीर—घृत—मधु आदि खाद्य परमोत्तम पदार्थ कांसे-चाँदी के पात्रों में रखकर अति हर्षित होती हुईं सब की सब कृष्ण की सन्निधि में चली गईं थीं ॥२४-२५॥

नानामनोरथं कृत्वामनसा गमनोत्सुकाः।
पतिव्रतास्ता धान्याश्चश्रीकृष्णदर्शनोत्सुकाः ॥२६
श्रीकृष्णं ददृशुर्गत्वा रामञ्च सहबालकम्।
वटमूले वसन्तन्तमुडुमध्ये यथोडुपम् ॥२७
श्यामं किशोरं वयसा पीतकौशेयवाससम्।
सुन्दरं सस्मितं शान्तंराधाकान्तंमनोहरम् ॥२८
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं रत्नालंकारभूषितम्।
रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां गण्डस्थलविराजितम् ॥२९
त्वं ब्रह्म परमंधामं निरीहोनिरहंकृतिः।
निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयम् ॥३०
साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः।
प्रकृतिः पुरुषस्त्वञ्च कारणञ्च तयोः परम् ॥३१
सृष्टिस्थित्यन्तविषये येच देवास्त्रयः स्मृताः।
तेत्वदंशाः सर्वबीजा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३२
यस्यलोम्नाञ्च विवरेचाखिलंविश्वमीश्वर।
महाविराट्महाविष्णुस्त्वं तस्यजनकोविभो ॥३३
तेजस्त्वञ्चापि तेजस्वी ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः।
वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥३४

वे मनमें अनेक प्रकार के मनोरथ करती हुई गमन में अति उत्सुक पतिव्रताऐं परम धन्य हैं जोकि श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्कण्ठा लिये हुए थीं ॥२६॥ वहां जाकर उन सब ने बालकों के साथ बलराम और कृष्ण का दर्शन किया था वे दोनों भाई वट के मूल में बालकों के मध्य में उडुगण के मध्य में चन्दन की भाँति विराजमान थे ॥२७॥ उनकी किशोर अवस्था थी और श्याम वर्ण था वे पीत वस्त्र का परीधान किये हुए थे। परम सुन्दर उनका स्वरूप था। मन्द मुस्कान से युक्त—अति शान्त एवं मन को हरण करने वाला राधाकान्त का दर्शन उन्होंने किया था जिनका मुख शरत्पूर्णिमा के चन्द्र के तुल्य था तथा रत्नालङ्कारों से भूषित थे। उनके रत्नों के कुण्डल गण्ड स्थल पर झूम रहे थे। ऐसे श्री कृष्ण का दर्शन विप्र पत्नियों ने करके उनसे कहा—॥२७-२६॥ ब्राह्मणियों ने कहा—आप तो परम धाम साक्षात् ब्रह्म हैं। आप निरीह और निरहङ्कार युक्त हैं। आप निर्गुण—निराकार हैं। आप अपनी ही इच्छा से इस समय सगुण—एवं साकार हो गये हैं। आप साक्षिरूप—निर्लिप्त और निराकृति साक्षात् परमात्मा हैं। आप ही पुरुष और प्रकृति दोनों हैं। आप उन दोनों के परम कारण हैं। सृष्टि—स्थिति और उप-संहार के कार्यों में जो तीन वेद बताये गये हैं वे सब आपके ही अंश स्वरूप हैं जो सबके बीज रूप ब्रह्मा–विष्णु और महेश्वर इन नामों वाले कहे जाते हैं ॥३०-३२॥ हे विभो ! जिसके रोमों के विवरों में यह समस्त विश्व स्थित है। हे ईश्वर ! जो महा विराट् और महा विष्णु है उसके भी जनक हैं ॥३३॥ आप तेजरूप और तेजस्वी हैं तथा आप ज्ञान और ज्ञानी दोनों ही हैं। आप ज्ञान परायण हैं। आपका निर्वचन वेदों में भी नहीं होता है। हे ईश्वर ! आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥३४॥

ताः पदाम्भोजपतिता दृष्ट्वा श्रीमधुसूदनः ।
वरं वृणुत कल्याणं भविता केत्युवाच ह ॥३५
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वाविप्रपत्न्योमुदान्विताः ।
तमूचुर्वचनं भक्त्याभक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥३६

वरं कृष्ण न गृह्णीमो नः स्पृहा त्वत्पदाम्बुजे ।
देहि त्वं दास्यमस्मभ्यं दृढां भक्तिं सुदुर्लभाम् ॥३७
पश्यामोऽनुक्षणं वक्त्रसरोजं तव केशव ।
अनुग्रहं कुरु विभो न यस्यामो गृहं पुनः ॥३८
द्विजपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः ।
ओमित्युक्त्वा त्रिलोकेशस्तस्थौ बालकसंसदि ॥३९

नारायण ने कहा—इस प्रकार से स्तवन करती हुईं उन को अपने चरण कमलों में गिरी हुईं विप्र पत्नियों को देखकर श्री मधुसूदन ने उनसे कहा—हे विप्र पत्नियो ! तुम वरदान माँग लो तुम्हारा कल्याण होगा ॥३५॥ श्री कृष्ण के इस वचन को सुनकर विप्र पत्नियाँ परम हर्षित होकर भक्ति के भाव से विनम्र कन्धरा वाली होती हुईं श्री कृष्ण से बोलीं—॥३६॥ द्विज पत्नियों ने कहा—हे कृष्ण ! हम कोई अन्य वर नहीं चाहती हैं । हमारी तो आप के चरण कमलों में ही स्पृहा है । आप हमको अपना दास्य यह प्रदान करिये और हमको अपनी परम दुर्लभ दृढ़ भक्ति दीजिए ॥३७॥ हे केशव ! हम यही चाहती हैं कि प्रतिक्षण आपके मुख कमल का दर्शन करती रहें । हे विभो ! आप हमारे ऊपर अनुग्रह करिये । अब हम फिर उस अपने सांसारिक बन्धन युक्त घर में नहीं जायेंगी ॥३८॥ द्विज पत्नियों के ऐसे वचन का श्रवण कर करुणा के सागर श्री कृष्ण ने ऐसा ही होगा—इस तरह स्वीकार कर लिया था और वे तीनों लोकों के स्वामी वहाँ पर ही बालकों की संसद में स्थित हो गये थे ॥३९॥

प्रदत्तं विप्रपत्नीभिर्मिष्टमन्नं सुधोपमम् ।
बालकान् भोजयित्वा तु स्वयञ्च बुभुजे विभुः ॥४०
एतस्मिन्नन्तरे तत्र शातकुम्भं रथं परम् ।
ददृशुर्विप्रपत्न्यश्च पतन्तं गगनादहो ॥४१
रत्नदर्पणसंयुक्तं रत्नसारपरिच्छदम् ।
रत्नस्तम्भैर्निबद्धञ्च सद्रत्नकलशोज्ज्वलम् ॥४२

श्वेतचामरसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् ।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥४३
शतचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् ।
वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यैर्वनमालाविभूषितैः ॥४४
अवरुह्य रथात्तूर्णं ते प्रणम्य हरेः पदम् ।
रथस्यारोहणं कर्तुमूचुर्ब्राह्मणकामिनीः ॥४५
विप्रभार्या हरिं नत्वा जग्मुर्गोलोकमीप्सितम् ।
बभूवुर्गोपिकाः सद्यस्त्यक्त्वा मानुषविग्रहान् ॥४६

विप्र पत्नियों के द्वारा दिया हुआ इष्ट अन्न जोकि सुधा के समान परमोत्तम विभु ने स्वयं उसका उपभोग किया था और गोप बालकों को खिलाया था ॥४०॥ इसी अन्तर में विप्र पत्नियों ने एक परम सुन्दर सुवर्ण का रथ आकाश से नीचे उतरता हुआ देखा था ॥४१॥ वह रथ रत्नों और दर्पणों से युक्त था तथा उसका परिच्छद भी उत्तम रत्नों का था। उसमें रत्नों के स्तम्भ निबद्ध थे तथा रत्नों के कलशों से वह परम शोभा समन्वित था। उस रथ में श्वेत चमर संलग्न थे और वह्नि के समान शुद्ध वरण से युक्त था। चारों ओर उसके पारिजात के पुष्पों की मालाऐं लटक रहीं थीं ॥४२-४३॥ सौ चक्रों से वह रथ युक्त था। मनोवेग वाला—मनोहर—वनमाली दिव्य पार्षदों से वेष्टित था ॥४४॥ वे पार्षद शीघ्र ही रथ से नीचे उतर पड़े थे और उन्होंने हरि को प्रणाम किया था। इसके अनन्तर उन्होंने विप्र पत्नियों से रथ पर आरोहण करने की प्रार्थना की थी ॥४५॥ वे विप्र भार्याऐं हरि को प्रणाम करके अभीप्सित गोलोक में चली गईं थीं। उन्होंने तुरन्त ही अपने मानषीय शरीर का त्याग कर दिया और फिर वे गोलोक धाम की दिव्य गोपिकाऐं होगईं थीं ॥४६॥

६८—कालीयदमनाख्यानम्

एकदा बालकैः सार्धं बलदेवं विना हरिः ।
जगाम यमुनातीरं यत्र कालीयमन्दिरम् ॥१

परिपक्वफलं भुक्त्वा यमुनातीरजे वने ।
स्वेच्छामयस्तृट्परीतः पपौ च निर्मलं जलम् ॥२
गोकुलं चारयामास शिशुभिः सह कानने ।
विजहार च तैः सार्धं स्थापयामास गोकुलम् ॥३
क्रीडानिमग्नचित्तोऽयं बालकाश्च मुदान्विताः ।
भुक्त्वा नवतृणं गावो विषतोयं पपुर्मुने ॥४
विषाक्तञ्च जलं पीत्वा दारुणान्तकचेष्टया ।
ज्वालाभिः कालकूटानां सद्यः प्राणांश्च तत्यजुः ॥५
दृष्ट्वा मृतं गोसमूहं गोपाश्चिन्ताकुला भिया ।
विषण्णवदनाः सर्वे तमूचुर्मधुसूदनम् ॥६
ज्ञात्वा सर्वं जगन्नाथो जीवयामास गोकुलम् ।
उत्तस्थुस्तत्क्षणं गावो ददृशुः श्रीहरेर्मुखम् ॥७

इस अध्याय में कालीय दमन के आख्यान का निरूपण किया जाता है । नारायण ने कहा—एक बार श्री हरि बल्देव के बिना ही अन्य गोप बालकों को साथ में लेकर यमुना के तट पर जा निकले थे जहाँ पर कालीय का मन्दिर था ॥१॥ वहाँ पर यमुना के तट पर वन में परिपक्व फलों को सब ने भक्षण किया था और पिपासा से पीड़ित होने पर स्वेच्छा से परिपूर्ण होकर निर्मल जल का पान किया था ॥२॥ उस वन में बालकों के साथ गौओं को चराया था । इसके अनन्तर गो-समूह को वहाँ पर संस्थित करा कर उन बालकों के साथ क्रीड़ा करने लगे थे ॥३॥ यह हरि तो अपनी क्रीड़ा में निमग्न चित्त वाले थे और अन्य सभी बालक भी हर्ष से समन्वित होरहे थे । हे मुने ! उस समय में गौओं ने नवीन तृण खाकर वह विषैला जल पी लिया था ॥४॥ उस विषाक्त जल को पीकर उनकी बड़ी दारुण अन्त करने वाली चेष्टा हो गई थी और कालकूट विष की ज्वालाओं से उन गौओं ने तुरन्त ही अपने प्राणों को त्याग दिया था ॥५॥ उस गौओं के समूह को मृत देख कर समस्त गोपों के बालक भय से बहुत ही चिन्तित हो गये थे । विषाद से परिपूर्ण मुख वाले सब गोप बालक कृष्ण से कहने लगे ॥६॥ जगत् के स्वामी श्रीकृष्ण ने यह सब

वृत्तान्त जान कर उन सभी गौओं को जीवित कर दिया था। गौऐं उसी समय उठ खड़ी हुईं और उन्होंने श्रीकृष्ण के मुख का दर्शन किया था ॥७॥

कृष्णः कदम्बमारुह्य यमुनातीरनीरजम् ।
पपात सर्पभवने नागमध्ये नराकृतिः ॥८
शतहस्तप्रमाणञ्च जलोत्थानं बभूव ह ।
बाला हर्षं विषादञ्च मेनिरे तत्र नारद ॥९
सर्पो नराकृतिं दृष्ट्वा कालियः क्रोधविह्वलः ।
जग्राह श्रीहरिं तूर्णं तप्तलोहं यथा नरः ॥१०
दग्धकण्ठोदरो नागश्चोद्विग्नो ब्रह्मतेजसा ।
प्राणा यान्त्येवमुक्त्वा च चकारोद्वमनं पुनः ॥११
भग्नदन्तो रक्तमुखः कृष्णवज्राङ्गचर्वणात् ।
रक्तवक्त्रस्य भगवानुत्तस्थौ मस्तकोपरि ॥१२
नागो विश्वम्भराक्रान्तः स प्राणांस्त्यक्तुमुद्यतः ।
चकार रक्तोद्वमनं पपात मूर्च्छितोमुने ॥१३
दृष्ट्वा तं मूर्च्छितं नागा रुरुदुः प्रेमविह्वलाः ।
केचित्पलायिता भीताः केचित् प्रविविशुर्बिलम् ॥१४

कृष्ण उसी समय यमुना के तट पर जल में खड़े हुए एक कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये थे और नर की आकृति वाले वह उस वृक्ष से उस कालीय दह में नागों के मध्य में सर्पों के घर में कूद पड़े थे ॥८॥ उस समय श्रीकृष्ण के कूदने पर वहाँ यमुना का जल एक सौ हाथ तक ऊँचा उछाल मारकर उठ गया था। हे नारद ! उस क्षण में जो बालक वहाँ थे उन्हें उस क्रीड़ा को देखकर हर्ष और विषाद दोनों ही हुए थे ॥९॥ वहाँ पर समागत एक नर के आकार वाले व्यक्ति को देख कर कालिय सर्प को बड़ा भारी क्रोध हुआ था। उसने शीघ्र ही श्रीहरि को पकड़ लिया था जैसे कोई मनुष्य तपे हुए लौह को पकड़ लिया करता है ॥१०॥ श्रीकृष्ण के पकड़ने से कालिय नाग के दांत भग्न होगये थे—मुँह से रुधिर आने लगा —उसका कण्ठ और उदर दग्ध होगया था वह नाग ब्रह्म तेज से

उद्विग्न होगया था—उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके प्राण निकल कर जारहे हैं अतः उसने तुरन्त श्रीकृष्ण को छोड़ दिया था। फिर उसने वमन किया था। कृष्ण के वज्र के समान अङ्ग के चर्वण करने से उसके मुँह से खून बहने लगा था। उसी समय भगवान् उठकर उसके मस्तक पर खड़े हो गये थे ॥११-१२॥ विश्वम्भर से आक्रान्त होने पर उस कालिय नाग ने अपने प्राणों के त्याग देने की तैयारी कर ली थी। हे मुने ! वह बराबर रक्त का वमन करने लगा और मूर्च्छित होकर भूमि तल पर गिर गया था ॥१३॥ उस स्वामी कालिय नाग को बेहोश देखकर अन्य नाग प्रेम से विह्वल होकर रुदन करने लगे थे। उनमें से कुछ तो डर कर वहाँ से भाग गये थे और कुछ बिलों में प्रविष्ट होगये थे ॥१४॥

मरणाभिमुखं कान्तं दृष्ट्वा सा सुरसा सती।
नागिनीभिः सह प्रेम्णा रुरोद पुरतो हरेः ॥१५

पुटाञ्जलियुता तूर्णं प्रणम्य श्रीहरिं भिया।
धृत्वा पादारविन्दे च तमुवाच भियाकुला ॥१६

हे जगत्कान्त कान्तं मे देहि मानञ्च मानद।
पतिः प्राणाधिकः स्त्रीणां नास्ति बन्धुश्च तत्परः ॥१७

अयि सुरवरनाथ ! प्राणनाथं मदीयं !
न कुरु वधमनन्तप्रेमसिन्धौ ! सुबन्धो ! ।
अखिलभुवनबन्धो ! राधिकाप्रेमसिन्धो !
पतिमिह कुरु दानं मे विधातुर्विधातः ॥१८

त्रिनयनविधिशेषाः षण्मुखश्चास्यसङ्घैः।
स्तवनविषयजाड्याः स्तोतुमीशा न वाणी ॥१९

न खलु निखिलवेदाः स्तोतुमन्येऽपि देवाः।
स्तवनविषयशक्ताः सन्ति सन्तस्तवैव ॥२०

कुमतिरहमविज्ञा योषितां क्वाधमा वा।
क्व भुवनगतिरीशश्चक्षुषो गोचरोऽपि ॥२१

विधिहरिहरशेषैः स्तूयमानश्च यस्त्व
मतनुमनुजमीशं स्तोतुमिच्छामि तं त्वाम् ॥२२

सती सुरसा ने अपने स्वामी को मरने वाला देखकर नागिनियों के साथ हरि के सामने प्रेम से रुदन करना आरम्भ कर दिया था ॥१५॥ वह हाथ जोड़कर श्री हरि को प्रणाम करने लगी और अपने आपको उसने भय से आकुल होते हुए हरि के चरणों में रख कर उनसे कहने लगी ॥१६॥ सुरसा ने कहा—हे जगत् के कान्त ! हे मानद ! आप मुझे मेरा स्वामी और मान दीजिए। स्त्रियों का पति ही एक प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है। उससे अधिक उनका अन्य कोई बन्धु नहीं होता है ॥१७॥ हे सुरश्रेष्ठों के स्वामी ! हे अनन्त प्रेम के सागर ! हे सुबन्धो ! यह कालिय नाग मेरे प्राणों का नाथ है। आप इसका वध न करें। आप तो समस्त भुवन के बन्धु हैं और राधिका के प्रेम के सागर हैं। आप विधाता के भी विधाता हैं। आप कृपा कर मेरे पतिदेव का दान कर देवें ॥१८॥ आपका स्तवन कौन कर सकता है। शिव–ब्रह्मा–शेष–षण्मुख भी अपने बहुत से मुखों के द्वारा आपकी स्तुति करने में जड़ ही रहते हैं तथा सरस्वती भी असमर्थ होती है ॥१९॥ सम्पूर्ण वेद या अन्य देवगण आपके स्तवन करने में अशक्त होते हैं केवल कतिपय सन्त ही आपकी स्तुति कर सकते हैं ॥२०॥ मैं तो दुष्ट बुद्धि वाली हूँ—अविज्ञ हूँ और स्त्रियों में मैं अधम हूँ। कहाँ तो मैं ऐसी अधमा हूँ और आप भुवनगति ईश्वर कहाँ जिनका कि आज मुझे साक्षात् दर्शन हो रहा है ॥२१॥ जो आप विधि—हरि और हर तथा शेष आदि के द्वारा स्तूयमान हैं ऐसे अतनु मनुज ईश्वर आपकी मैं स्तुति करना चाहती हूँ ॥२२॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरा।
विधृत्य चरणाम्भोजं तस्थौ नागेशवल्लभा ॥२३
उत्तिष्ठोऽत्तिष्ठ नागेशि वरं वृणु भयं त्यज।
गृहाण कान्तं हे मातर्मद्वरादजरामरम् ॥
कालिन्दीह्रदमुत्सृज्य स्वकीयं भवनं व्रज ॥२४
भर्त्रा स्वगोष्ठ्या सार्द्धञ्च गच्छ वत्से त्वमीप्सितम्।
अद्य प्रभृति नागेशि भूता कन्या च त्वं मम ॥२५

त्वत् प्राणाधिक एवायं जामाता च न संशयः ।
मत्पादपद्मचिह्नेन गरुड़स्त्वत्पतिं शुभे ॥२६
कृत्वा च स्तवनं भक्त्या प्रणमिष्यति मत्पदम् ।
त्यज त्वं गरुड़ाद्भीतिं शीघ्रं रमणकं व्रज ।
ह्रदान्निर्गच्छ वत्से त्वं वरं वृणु यथेप्सितम् ॥२७
वरं दास्यसिचेन्मह्यं वरदेश्वर हे पितः ।
त्वत्पादाब्जे दृढ़ांभक्तिं निश्चलांदातुमर्हसि ॥२८
मन्मनस्त्वत्पदाम्भोजे भ्रमतु भ्रमरो यथा ।
तव स्मृतेर्विस्मृतिर्मे कदापि न भविष्यति ॥२९

इस प्रकार से स्तवन करके भक्ति से विनम्र कन्धरा वाली नागेश की प्रेयसी श्रीकृष्ण के चरण कमलों को ग्रहण कर स्थित हो गई थी ॥२३॥ उस समय श्रीकृष्ण ने कहा—हे नागेशि ! उठ जाओ और मुझसे वरदान माँग लो—अब भय का त्याग कर दो । हे माता ! मेरे वरदान से तुम अपने स्वामी को अजर एवं अमर ग्रहण करो । अब तुम इस यमुना के ह्रद का त्याग करके अपने ही भवन में जाकर रहो ॥२४॥ हे वत्से ! तुम स्वयं अपनी गोष्ठी और स्वामी के साथ अपने ही इच्छित स्थान पर चली जाओ । हे नागेशि ! आज से लेकर तुम मेरी कन्या हो गई हो ॥२५॥ तुम्हारा यह प्राणाधिक भी जानता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । अब मेरे चरणों के चिह्न मस्तक पर रहने से हे शुभे ! गरुड़ तुम्हारे पति से कुछ भी न कहेगा ॥२६॥ गरुड़ अब मेरे चरणों के चिह्नों को प्रणाम कर भक्ति भाव से उनकी स्तुति किया करेगा । अतः तुम अब गरुड़ का भय त्याग कर शीघ्र ही रमणक द्वीप में चले जाओ । वत्से ! तुम ह्रद से निकल कर चली जा—वरदान माँग लो और यथेप्सित वर प्राप्त कर लो ॥२७॥ सुरसा ने कहा—हे पिता ! हे वरदेश्वर ! यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो आप अपने चरणों में दृढ़ एवं निश्चल भक्ति का वर देने के योग्य हैं ॥२८॥ मैं यही चाहती हूँ कि मेरा मन आपके चरण कमलों में एक भ्रमर की भाँति ही सर्वदा मँडराता रहा करे । आपकी स्मृति कभी भी मेरे मन से विस्मृत न होवे ॥२९॥

विज्ञाय सुचिरं बाला नोत्तस्थौ तज्जलाद्धरिः ।
चक्रुर्विषादं मोहाच्च रुरुदुर्यमुनातटे ॥३०
स्ववक्षो घातनञ्चक्रुः केचिद्बालाः शुचाकुलाः ।
केचिन्निपत्य भूमौ च मूर्च्छां प्रापुर्हरिं विना ॥३१
ह्लदं प्रवेष्टुं केचिच्च विरहेण समुद्यताः ।
केचिद्गोपालबालाश्च चक्रुश्च तन्निवारणम् ॥३२
कृत्वा विलापं केचिच्च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः ।
तेषां केचिज्ज्ञानवन्तो रक्षाञ्चक्रुः प्रयत्नतः ॥३३
एतस्मिन्नन्तरे केचिद् बालका नन्दसन्निधिम् ।
संप्रापुरतिलोलाश्च रुदन्तः शोकविह्वलाः ॥३४
प्रवृत्तिमूचुस्तं शीघ्रं यशोदां मूलतो बलम् ।
गोपान्गोपालिकाश्चैवरक्तपंकजलोचनाः ॥३५
त्वावार्त्ताञ्च ते सर्वेशीघ्रं जग्मुः शुचान्विताः ।
कलिन्दनन्दिनीतीरं रुरुदुर्बालकैर्युताः ॥३६

इधर बालकों ने देखा कि बहुत समय हो गया है और हरि यमुना के जल से नहीं उठकर निकले हैं। तब तो मोह से वे सब बड़ा विषाद करके यमुना के तट पर रोने लगे थे ॥३०॥ कुछ बालक तो वहाँ पर चिन्ता से बेचैन होकर अपने वक्षःस्थल का घात करने लगे थे और कुछ गोप बालक हरि के बिना भूमि पर गिर कर मूर्छित हो गये थे ॥३१॥ कुछ हरि के वियोग से उस ह्लद में ही प्रवेश करके मरने को उद्यत हो गये थे और कुछ गोप बालक उनका निवारण कर रहे थे। कुछ गोपाल बालक विलाप करके अपने प्राणों का ही त्याग हरि के अभाव में करने को समुद्यत हो गये थे। उनमें कुछ ज्ञान वाले भी बालक थे जो उन सब की रक्षा समझा बुझा कर कर रहे थे ॥३२-३३॥ इसी अन्तर में कुछ बालक जो अत्यन्त चंचल प्रकृति वाले थे शोक से विह्वल होकर रुदन करते हुए नन्द के समीप में पहुँच गये थे ॥३४॥ उन बालकों ने नन्द—यशोदा और बलराम से आदि से लेकर सारा वृत्तान्त कह दिया था। यह वृत्तान्त अन्य सभी गोपों और गोपालिकाओं से भी उन्होंने कह दिया

था। इस दुश्चरित वृत्तान्त को सुन कर वे सभी लाल कमल के तुल्य नेत्रों वाले–शोक में निमग्न होकर शीघ्र ही वहाँ गये थे और कालिन्दी के तट पर जाकर सब उन बालकों के साथ रुदन करने लगे ॥३५-३६॥

गत्वासम्मीलिताः सर्वे रुरुदुः शोकमूर्च्छिताः।
ह्रदं विशन्तीसम्बांतां केचिच्चक्रुर्निवारणम् ॥
ह्रदं विशन्तीं तां राधां वारयामास काश्चन।
मूर्च्छाञ्च प्रापसाशोकान्मृतेवच सरित्तटे ॥३७
विलप्यादिभृशं नन्दो मूर्च्छां प्राप पुनः पुनः।
भूयोऽपि रोदनं कृत्वा भूयो मूर्च्छामवाप ह ॥३८
विलपन्तं भृशं नन्दं यशोदां शोककर्षिताम्।
गोपांश्च गोपिकाश्चैव राधिकामतिमूर्च्छिताम् ॥३९
रुदतो बालकान् सर्वान् बालिकाश्च शुचान्विताः।
सर्वांश्च बोधयामास बलश्च ज्ञानिनां वरः ॥४०

वहाँ उस समय सभी सम्मिलित हो गये थे और सब महान् शोक से मूर्च्छित होकर हाहाकार कर रहे थे। माता यशोदा शोकाकुल होकर उस ह्रद में प्रवेश कर रही थी उस समय कुछ लोगों ने उसका निवारण किया था। राधा भी उस यमुना के ह्रद में प्रवेश करना चाहती थी, उसको भी कुछ गोपियों ने रोक दिया था किन्तु वह शोक के कारण वहीं यमुना तट पर एक मृत की भाँति मूर्छा को प्राप्त हो गई थी ॥३७॥ अत्यन्त विलाप करके नन्द बार२ मूर्च्छा को प्राप्त होते थे। होश करके फिर वह रुदन करते थे और पुनः मूर्च्छित हो जाते थे ॥३८॥ अत्यन्त विलाप करने वाले नन्द को–महान् शोक से कर्शित यशोदा को–गोपों को–गोपिकाओं को—अत्यन्त मूर्च्छित राधिका को—रोते हुए बालकों को और चिन्ता मग्न बालिकाओं को सबको ज्ञानियों में परम श्रेष्ठ बलराम ने प्रबोधन कराया था ॥३९-४०॥

गोपा गोपालिका बालाःसर्वेश्शृणुतमद्वचः।
हे नन्द ज्ञानिनां श्रेष्ठगर्गवाक्यस्मृतिंकुरु ॥४१
जगद्विभर्तुः शेषस्य संहर्तुः शङ्करस्य च।

विधातुः संविधातुश्च भुवि कस्मात्पराजयः ॥४२
परमाणुः परो व्यूहः स्थूलात् स्थूलः परात्परः ।
विद्यमानोऽप्यविदृश्यः संयोगो योगिनामपि ॥४३
दिशां नास्ति समाहारः स्पृश्योनाकाश एव च ।
अपि सर्वेश्वरो बाध्य इत्यूचुः श्रुतयः स्फुटम् ॥४४
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णमुत्पतन्तं जलान्मुने ।
ददृशुस्तं सुप्रसन्ना व्रजाश्च व्रजयोषितः ॥४५
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सस्मितं सुमनोहरम् ।
अस्निग्धवस्त्रमस्निग्धमलुप्तचन्दनाञ्जनम् ॥४६
सर्वाभरणसंयुक्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।
मयूरपिच्छचूडञ्च वंशीवदनमच्युतम् ॥४७
यशोदा बालकं दृष्ट्वा कृत्वा वक्षसि संस्मृता ।
चुचुम्ब वदनाम्भोजं प्रसन्नवदनेक्षणा ॥४८
क्रोड़े चकार नन्दश्च बलश्च रोहिणी मुदा ।
निमेषरहिताः सर्वे ददृशुः श्रीमुखं हरेः ॥४९
प्रेमान्धा बालका सर्वे चक्रुरालिङ्गनं हरेः ।
पपुश्चक्षुश्चकोरैश्च मुखचन्द्रञ्च गोपिका ॥५०

श्री बलदेव ने कहा—हे गोपो ! हे गोप बालिकाओ ! हे बालाओ ! आप सभी लोग मेरे वचन का श्रवण करो । हे नन्द ! आप तो ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं । आप गर्ग मुनि के वाक्य को याद करो ॥४१॥ इस समस्त जगत् के भरण करने वाले का—शेष का संहार करने वाले शङ्कर का और ब्रह्मा का जो विधाता है उसका इस भूतल में कभी कहीं भी पराजय किसी से हो सकता है ? अर्थात् उसे पराजित करने वाला कोई भी नहीं है ॥४२॥ यह परमाणु से भी पर व्यूह है और स्थूल से भी अधिक स्थूल है—पर से भी पर है । यह विद्यमान भी अविदृश्य है और योगियों का भी संयोग है । दिशाओं का समाहार नहीं है और आकाश हो स्पर्श करने के योग्य नहीं है । समस्त श्रुतियों ने यही स्पष्ट कहा है कि सर्वेश्वर भी बाध्य होता है ॥४३-४४॥ हे मुने ! बलराम इस प्रकार से सबको समझा

ही रहे थे कि इसी बीच में जल से ऊपर को आते हुए कृष्ण को सबने देखा था उस समय सब ब्रज की नारियाँ और अन्य व्रज निवासी बहुत प्रसन्न हुए थे ॥४५॥ शरत्काल पार्वण चन्द्र के समान मुख वाले—मन्द स्मित से युक्त—सुमनोहर–स्निग्धता शून्य वस्त्रों वाले—स्वयं भी स्निग्धता से रहित–अलुप्त चन्दन और अञ्जन वाले—समस्त आभरणों से समन्वित—मोर की पंख मस्तक में धारण करने वाले—मुख में वंशी को लगाये हुए तथा ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान अच्युत बालक श्रीकृष्ण को देख कर यशोदा ने लपक कर ले लिया और अपने वक्षःस्थल से लगा लिया था। प्रसन्न मुख और नेत्रों वाली यशोदा ने श्रीकृष्ण के मुख कमल का चुम्बन किया था ॥४६-४८॥ इसके अनन्तर नन्द—बलराम और रोहिणी ने बड़ी ही प्रसन्नता से श्रीकृष्ण को अपनी२ गोद में लेकर स्नेहालिङ्गन किया था। सबने इकटक होकर हरि के श्रीमुख को देखा था ॥४९॥ समस्त बालक प्रेम से अन्ध होकर हरि का आलिङ्गन कर रहे थे। गोपिकाओं ने अपनी चक्षुरूपी चकोरों के द्वारा श्रीकृष्ण के मुख रूपी चन्द्रमा का पान किया था ॥५०॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सहसा काननान्तरम्।
दावाग्निर्वेष्टयामास तैः सर्वैः सहगोकुलम् ॥५१
दृष्ट्वा शैलप्रमाणाग्निं परितः काननान्तरे।
प्रणाशं मेनिरे सर्वे भयमापुश्च सङ्कटे ॥५२
श्रीकृष्णं तुष्टुवुः सर्वे सम्पुष्टाञ्जलयो ब्रजाः।
बालागोप्यश्चसन्त्रस्ताभक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥५३
यथा संरक्षितं ब्रह्मन् सर्वापत्स्वेव नः कुलम्।
तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेमधुसूदन ॥५४
त्वमिष्टदेवतास्माकं त्वमेव कुलदेवता।
स्रष्टा पाता च संहर्त्ता जगताञ्च जगत्पते ॥५५
अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु।
वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान् ॥५६

इसी अनन्तर में वहाँ सहसा दूसरे कानन को दावाग्नि ने वेष्टित कर लिया था उसमें गोधन के सहित वे सभी थे ।।५१।। उस समय काननान्तर में चारों ओर से शैल के प्रमाण के तुल्य अग्नि को देख कर सबने अपना पूरा प्रणाश समझ लिया था और उस सङ्कट में सभी भय को प्राप्त हो गये थे ।।५२।। समस्त व्रजवासीगण सम्पुटाञ्जलि से युक्त होकर कृष्ण का स्तवन करने लगे। सम्पूर्ण बालक—गोपीगण उस समय सन्त्रस्त होकर भक्ति से विनम्र कन्धरा वाले हो गये थे ।।५३।। बालाओं ने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने अब तक जो भी व्रज में आपत्तियाँ आई थी उनसे हमारे समस्त कुल की रक्षा की थी। हे मधुसूदन ! अब यह दावाग्नि की महान् आपत्ति शिर पर आ गई है इससे फिर हमारी रक्षा करो ।।५४।। आपही हमारे इष्टदेव हैं और आप ही हम सब के कुलदेवता भी हैं। हे जगत्पते ! आप तो जगतों के सृजन करने वाले—पालक और संहार करने वाले हैं ।।५५।। हे गोविन्द ! हम सबको इस समय अभय का दान करो और वह्नि का संहार करो। हम सब आपके शरण में आये हैं। शरण में आये हुए हमारी आप रक्षा करो ।।५६।।

इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वापदाम्बुजम् ।
दूरीभूतस्तुदावाग्निःश्रीकृष्णामृतदृष्टितः ।।५७
दूरीभूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदान्विताः ।
सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमात्रतः ।।५८
दावाग्निमोक्षणं कृत्वा तैः सार्द्धं शृणु नारद ।
जगाम श्रीहरिर्गेहं कुबेरभवनोपमम् ।।५९
ब्राह्मणेभ्यो धनं नन्दः परिपूर्णंददौ मुदा ।
भोजनं कारयामास ज्ञातिवर्गांश्चबान्धवान् ।।६०
नानाविधं मङ्गलञ्च हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ।
वेदांश्च पाठयामास विप्रद्वारा मुदान्वितः ।।६१
एवं मुमुदिरे सर्वे वृन्दारण्ये गृहे गृहे ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसाः ।।६२

इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् ।
कलिकिल्विषकाष्ठानां दहने दहनोपमम् ॥६३

इस प्रकार से श्रीहरि की प्रार्थना करके वे सब उनके चरण कमल का ध्यान करके वहाँ स्थित हो गये थे । श्रीकृष्ण की अमृत दृष्टि के प्रभाव से वह दावाग्नि दूर हो गई थी ॥५७॥ जब सबने देखा कि वह दावाग्नि दूर हट गई है तो सब आनन्दातिरेक से नृत्य करने लगे और कहने लगे कि हरि के स्मरण मात्र से ही समस्त आपत्तियाँ नष्ट हो जाया करती हैं ॥५८॥ श्रीनारायण ने कहा—हे नारद ! आप श्रवण करो कि हरि ने उस दावाग्नि से समस्त व्रज निवासियों को छुटकारा दिला कर फिर वह उन्हीं के साथ कुवेर के भवन के समान समृद्ध अपने घर में चले गये थे ॥५६॥ वहाँ पर पहुँच कर नन्द ने परम हर्ष से ब्राह्मणों को परिपूर्ण धन का दान दिया था । ज्ञाति वर्ग को जनों को और वन्धु बान्धवों को भोजन कराया था ॥६०॥ नन्द ने वहाँ अनेक प्रकार के मङ्गल कर्म–हरि के नामों का संकीर्तन—वेदों का ब्राह्मणों के द्वारा पाठन यह सभी हर्ष के साथ कराया था ॥६१॥ इस तरह से वृन्दारण्य में घर-घर में सब अति आनन्द से समन्बित हो गये थे । सब लोग श्रीकृष्ण के चरण कमल के ध्यान में एक तन मन वाले होकर ब्रज में निवास करते थे ॥६२॥ इस प्रकार से यह परम मङ्गल हरि का चरित कह दिया है । यह हरि का चरित कलियुग के पाप रूपी काष्ठों के दहन करने में साक्षात् अग्नि के ही समान है ॥६३॥

७०—ब्रह्मणा गोवत्सादि हरणम्

एकदा बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः ।
भुक्त्वा पीत्वानुलिप्तश्च वृन्दारण्यं जगाम ह ॥१
क्रीड़ाञ्चकार भगवान् कौतुकेन च तैः सह ।
क्रीड़ानिमग्नचित्तानां दूरं तद् गोकुलं ययौ ॥२
तस्य प्रभावं विज्ञातुं विधाता जगताम्पतिः ।
जहार गाश्च सर्वाश्च वत्सांश्च बालकानपि ॥३

विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञः सर्वकारकः ।
पुनश्चकार तत्सर्वं योगीन्द्रो योगमायया ॥४
जगाम श्रीहरिर्गेहं चारयित्वा च गोकुलम् ।
बलेन बालकैः सार्धं क्रीड़ाकौतुकमानसः ॥५
एवं चकार भगवान् वर्षमेकञ्च प्रत्यहम् ।
यमुनागमनं गोभिर्बलेन सह बालकैः ॥६
ब्रह्मा प्रभावं विज्ञाय लज्जानम्रात्मकन्धरः ।
आजगाम हरेः स्थानं भाण्डीरवटमूलके ॥७

इस अध्याय में ब्रह्मा के द्वारा गो वत्सों के हरण के आख्यान का निरूपण किया गया है । नारायण ने कहा—एक बार माधव बालकों के तथा बलराम के साथ खा-पीकर और अनुलिप्त होकर वृन्दारण्य में गये थे ॥१॥ वहाँ पर भगवान् ने कौतुक के साथ बालकों को साथ लेकर क्रीड़ा की थी । जब सभी क्रीड़ा में निमग्न चित्त वाले हो गये थे तो गौओं और वत्सों का समुदाय चरते२ दूर चला गया था ॥२॥ जगतों के पति विधाता ने उसका प्रभाव जानने के लिये सम्पूर्ण गौओं को—वत्सों को और छोटे२ बालकों को भी हरण कर लिया था ॥३॥ सर्वज्ञ और सभी कुछ करने वाले योगीन्द्र श्रीकृष्ण ने उस ब्रह्मा का अभिप्राय समझ कर अपनी योग की माया के द्वारा उन सभी को फिर बना दिया था ॥४॥ क्रीड़ा के कौतुक को रखने वाले मन से युक्त श्रीहरि बल और बालकों के साथ समस्त गौओं के समूह को चराकर गृह में चले गये थे ॥५॥ इस प्रकार से पूरे एक वर्ष तक प्रतिदिन भगवान् ने किया था कि प्रतिदिन यमुना पर गमन गौओं—बलराम और बालकों के साथ होता था ॥६॥ ब्रह्मा ने प्रभाव को जान लिया था और लज्जा से विनम्र कन्धरा वाला होकर वहाँ भाण्डीर वन के वट के मूल में हरि के समीप वह आया था॥७॥

ददर्श कृष्णं तत्रैव गोपालगणवेष्टितम् ।
यथा पार्वणचन्द्रञ्च विभान्तं भगणैः सह ॥८
रत्नसिंहासनस्थञ्च हसन्तं सस्मितं मुदा ।
पीतवस्त्रपरीधानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥९

एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा प्रणनामातिविस्मितः ।
दर्शं दर्शमीश्वरं तं प्रणनाम पुनः पुनः ॥१०
यद् दृष्टं हृदयाम्भोजे तद्रूपं वहिरेव च ।
या मूर्त्तिः पुरतो दृष्टा सा पश्चात्परितस्ततः ॥११
तत्र वृन्दावने सर्वं दृष्ट्वा कृष्णसमं मुने ।
ध्यायं ध्यायञ्च तद्रूपं तत्र तस्थौ जगद्गुरुः ॥१२
गावो वत्साश्च बालाश्च लता गुल्माश्च वीरुधः ।
सर्वं वृन्दावनं ब्रह्मा श्यामरूपं ददर्श ह ॥१३
दृष्ट्वैवं परमाश्चर्य्यं पुनर्ध्यानञ्चकार ह ।
ददर्श त्रिजगद् ब्रह्मा नान्यत् कृष्णं विना मुने ।।१४

वहाँ पर उस ब्रह्मा ने गोपालगण से वेष्टित श्रीहरि का दर्शन किया था जिस तरह पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र अन्य नक्षत्रों के साथ विभा से युक्त विराजमान हो श्रीकृष्ण उस समय रत्नों के सिंहासन पर विराजमान थे। हर्ष से हास्य युक्त थे और स्मित सहित उनका मुख कमल था। पीताम्बर पहिने हुए ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान थे ॥८-९॥ इस प्रकार के प्रभु का दर्शन करके ब्रह्मा अत्यन्त विस्मय युक्त होकर वहाँ उपस्थित हुआ और हरि को प्रणाम किया था। उस सर्वेश्वर प्रभु को बार२ देख२ कर पुनः-पुनः ब्रह्मा ने उनको प्रणाम किया था ॥१०॥ जो उसने अपने हृदय कमल में ध्यान के द्वारा हरि का रूप देखा था वही रूप बाहिर भी देखा था। जो मूर्त्ति सामने देखी थी वही पीछे और सब ओर देखी गई थी ॥११॥ हे मुने ! वहाँ वृन्दावन में सब कृष्ण के ही समान देख कर उनके रूप का बार२ ध्यान करके जगत् का गुरु ब्रह्मा वहीं पर स्थित हो गया था ॥१२॥ ब्रह्मा ने गौऐं—वत्स—बाला-लता-गुल्म—वीरुध सभी वृन्दावन को श्याम के ही स्वरूप वाला देखा था ॥१३॥ ब्रह्मा ने इस भाँति परम आश्चर्य को देख कर पुनः ध्यान किया था। हे मुने ! ब्रह्मा ने तीनों जगत् में कृष्ण के बिना अन्य कुछ भी नहीं देखा था ॥१४॥

क्व कृष्णो जगतां नाथः क्व वा मायाविभूतयः ।
सर्वं कृष्णमयं दृष्ट्वा किञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः ॥१५

किं स्तौमि किं करोमीति मनसैवं प्रगृह्य च ।
तत्र स्थित्वा जगद्धाता जपं कर्तुं समुद्यतः ॥१६
सुखं योगासनं कृत्वा बभूव सम्पुटाञ्जलिः ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिदीनवत् ॥१७
इड़ां सुषुम्नां मध्याञ्च पिङ्गलां नलिनीन्धुराम् ।
नाड़ीषट्कञ्च योगेन निबध्यचप्रयत्नतः ॥१८
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् ।
विशुद्धं परमाज्ञाख्यं षट्चक्रञ्च निबध्य च ॥१९
लंघनं कारयित्वा च तं षट्चक्रं क्रमाद्विधिः ॥२०
ब्रह्मरन्ध्रं समानीय वायुपूर्णञ्चकार ह ॥२१
निबध्य वायुं मध्यान्तामानीय हृदयाम्बुजम् ।
तं वायुं भ्रमयित्वा च योजयामास मध्यया ॥२२

ब्रह्मा ने सबको कृष्णमय देख कर बड़ा ही विस्मय हुआ था और वह कुछ भी कहने में समर्थ न हो सका था । कहाँ तो कृष्ण सम्पूर्ण जगतों के नाथ हैं और कहाँ ये माया की विभूतियाँ हैं ॥१५॥ क्या मैं स्तवन करूँ और क्या कार्य करूँ—इस प्रकार से मन में सोच करके वहाँ पर स्थित होते हुए जगत् के धाता जप करने को समुद्यत हो गये थे ॥१६॥ सुख पूर्वक योगासन लगा कर सम्पुट अञ्जलि वाले हो गये । ब्रह्मा का सम्पूर्ण अङ्ग पुलकित हो गया था—नेत्रों में अश्रु छलक उठे थे और अत्यन्त दीन की भाँति उस समय ब्रह्मा की दशा हो गई थी ॥१७॥ ब्रह्मा ने इडा-सुषुम्ना—संध्या-पिङ्गला—नलिनी—धुरा इन नाडियों के षट्क को योग के द्वारा प्रयत्न पूर्वक निबद्ध करके तथा मूलाधार—स्वाधिष्ठान—मणिपूर—अनाहत—विशुद्ध और परमाज्ञाख्य इस षट् चक्र को निबद्ध करके लंघन करा कर उस षट् चक्र को क्रम से ब्रह्मरन्ध्र में लाकर ब्रह्मा ने वायु से पूर्ण कर दिया था ॥१८—२१॥ मध्यान्ता वायु को निबद्ध करके हृदयाम्बुज में लाकर उस वायु को भ्रमित करा कर मध्या के साथ योजित कर दिया था ॥२२॥

एवं कृत्वा तु निष्पन्दो यो दत्तो हरिणा पुरा ।
जजाप परमं मन्त्रं तस्यैव च दशाक्षरम् ॥२३
मुहूर्त्तश्च जपं कृत्वा ध्यायं ध्यायं पदाम्बुजम् ।
ददर्श हृदयाम्भोजे सर्वतेजोमयं मुने ॥२४
तत्तेजसोऽन्तरे रूपमतीव सुमनोहरम् ।
द्विभुजं मुरलीहस्तं भूषितं पीतवाससा ॥२५
श्रुतिमूलस्थलन्यस्तज्वलन्मकरकुण्डलम् ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥२६
यद् दृष्टं ब्रह्मरन्ध्रे च हृदि तद्बहिरेव च ।
दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥२७
यत् स्तोत्रञ्च पुरा दत्तं हरिणैकार्णवे मुने ।
तमीशं तेन विधिना भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥२८

इस प्रकार से करके निष्पन्द होकर जो पहिले हरि के द्वारा दिया गया था उसके ही दशाक्षर परम मन्त्र का ब्रह्मा ने जाप किया था ॥२३॥ हे मुने ! एक मुहूर्त्त तक जप करके और हरि के पदाम्बुज का ध्यान बार२ करके ब्रह्मा ने अपने हृदय कमल में सर्व तेजोमय का दर्शन किया था ॥२४॥ उस तेज के अन्तर में अतीव मनोहर हरि का रूप था जिसकी दो भुजाऐं थीं—मुरली हाथ में लिये हुए था और पीतवर्ण के वस्त्र से भूषित था ॥२५॥ उस रूप वाले हरि के कानों के मूल स्थल में दीप्तमान् मकर के आकार वाले कुण्डल थे। मन्द हास्य से प्रसन्न मुख वाले थे। भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने में अत्यन्त कातर स्वरूप वाले थे ॥२६॥ जो यह परम सुन्दर स्वरूप हरि का ब्रह्मरन्ध्र में देखा था वही हृदय में देखा और वही बाहिर भी देखा था। इस समान स्वरूप को सर्वत्र देख कर ब्रह्मा को परम आश्चर्य हुआ था। उस समय उसने हरि का स्तवन किया था ॥२७॥ हे मुने ! पहिले एकार्णव में जो स्तोत्र हरि ने दिया था उसी के द्वारा उसी विधि से भक्तिभाव से नम्र आत्म कन्धरा वाला होकर उस ईश्वर का ब्रह्मा ने स्तवन किया था ॥ २८॥

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ।
सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम् ॥२९
नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरविग्रहम् ।
स्थितं जन्तुषु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् ॥३०
स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्व्यापि जगत्परम् ।
सर्वस्वरूपं सर्वेषां बीजरूपं सनातनम् ॥३१
सर्वाधारं सर्ववरं सर्वशक्तिसमन्वितम् ।
सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम् ॥३२
सर्वमन्त्रस्वरूपञ्च सर्वसम्पत्करं वरम् ।
शक्तियुक्तमयुक्तञ्च स्तौमिस्वेच्छामयं विभुम् ॥३३
शक्तीशं शक्तिबीजञ्च शक्तिरूपधरं वरम् ।
संसारसागरे घोरे शक्तिनौकासमन्वितम् ॥३४
पुण्यप्रदञ्च शुभदं शुभबीजं नमाम्यहम् ।
इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वा गाश्च सबालकान् ॥३५
निपत्य दण्डवत् भूमौ रुरोद प्रणनाम च ।
ददर्श चक्षुरुन्मील्य विधाता जगतां मुने ॥३६
गते जगत्कारणे च ब्रह्मलोके च ब्रह्मणि ।
श्रीकृष्णो बालकैः सार्धजगामस्वालयंविभुः ॥३७
गावो वत्साश्च बालाश्च जग्मुर्वर्षान्तरे गृहम् ।
श्रीकृष्णमायया सर्वे मेनिरे ते दिनान्तरम् ॥३८

ब्रह्मा ने कहा—हे प्रभो ! आप सबका स्वरूप हैं और आप सबके ईश्वर भी हैं । आप सबके कारणों के भी कारण हैं आप सभी के द्वारा निर्वचन करने के अयोग्य हैं ऐसे शिव स्वरूप वाले आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥२९॥ आप नूतन मेघ के आकार वाले हैं—आपका शरीर श्याम वर्ण का परम सुन्दर है । आप समस्त जन्तुओं में स्थित रहने वाले हैं । आपका स्वरूप निर्लिप्त है और आपका साक्षी स्वरूप है । ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥३०॥ आप अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले—पूर्ण काम—जगत् में व्यापक और जगत् से भी पर हैं । आप सर्व स्वरूप—

सबके बीज रूप और सनातन हैं ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३१॥ आप सबके आधार हैं–सर्व शक्तियों से संयुत–सबके आराध्य–सबके गुरु और सब मङ्गलों के कारण हैं ॥३२॥ आप समस्त मन्त्रों के स्वरूप वाले हैं—समस्त सम्पत्तियों के करने वाले—श्रेष्ठ-शक्ति से युक्त और अयुक्त हैं। ऐसे स्वेच्छामय विभु की मैं स्तुति करता हूँ ॥३३॥ आप शक्ति के स्वामी–शक्ति के बीज-शक्ति के रूप को धारण करने वाले और इस अति घोर संसार रूपी सागर में आप शक्ति की नौका से समन्वित हैं। ऐसे प्रभु के आगे भूमि में दण्ड की भाँति गिर कर ब्रह्मा ने प्रणाम किया था और रुदन करने लगा था। हे मुने! जगतों के विधाता ने फिर चक्षुओं को उन्मीलित करके श्रीहरि का दर्शन किया था ॥३४-३६॥ नारायण ने कहा—जगत् के कारण ब्रह्मा के ब्रह्मलोक में स्तवन करके चले जाने पर श्रीकृष्ण बालकों के साथ अपने आलय में चले गये थे ॥३७॥ गौऐं–वत्स और बालक भी सब एक वर्ष के पश्चात् अपने गृह को गये थे। श्रीकृष्ण की माया से उन्होंने दिन का अन्तर ही मान लिया था ॥३८॥

७१—इन्द्रयाग वर्णनम्

एकदानन्दयुक्तश्च नन्दगोपो व्रजे मुने।
दुन्दुभिं वादयामास शक्रयागकृतोद्यमः ॥१॥
दधि क्षीरं घृतं तक्रं नवनीतं गुड़ं मधु।
एतन्यादाय शक्रस्य पूजां कुर्वन्त्विति ब्रुवन् ॥२
ये ये सन्त्यत्र नगरे गोपा गोप्यश्च बालकाः।
बालिकाश्च द्विजा भूयो वैश्याः शूद्राश्च भक्तितः ॥३
इत्येवं श्रावयित्वा च स्वयमेव मुदान्वितः।
यष्टिमारोपयामास रम्यस्थाने सुविस्तृते ॥४
ददौ तत्र क्षौमवस्त्रं मालाजालं मनोहरम्।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमेव च ॥५
स्नातः कृताह्निको भक्त्या धृत्वा धौते च वाससी।
उवास स्वर्णपीठे च प्रक्षालितपदाम्बुजः ॥६

नानाप्रकारपात्रैश्च ब्राह्मणैश्च पुरोहितैः।
गोपालैर्गोपिकाभिश्च बालाभिः सह बालकैः ॥७

इस अध्याय में इन्द्र के याग का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—हे मुने! एक बार नन्द इन्द्र के याग के लिये उद्यम करने वाले व्रज में अत्यन्त आनन्द से युक्त होकर दुन्दुभि का वादन करा रहे थे ॥१॥ नन्द समस्त व्रज निवासियों से कह रहे थे कि तुम सब लोग दधि—क्षीर—घृत—तक्र—नवनीत—गुड़ और मधु इन सब पदार्थों को लाकर इन्द्र देव की पूजा करो ॥२॥ जो-जो भी यहाँ नगर में गोप—गोपी—बालक—बालिका—द्विज—वैश्य—शूद्र हैं वे सभी भक्ति भाव से एकत्रित होकर इन्द्र देव की पूजा करें ॥३॥ इस प्रकार से नन्द ने सब को सुना दिया था और स्वयं ने भी परमानन्द से युक्त होकर सुविस्तृत सुरम्य स्थल में यष्टि का आरोपण किया था ॥४॥ उस यष्टि के स्थान पर क्षौम वस्त्र और मनोहर मालाओं का जाल समर्पित किया था। चन्दन—अगुरु—कुङ्कुम—कस्तूरी—चन्दन आदि का द्रव भी अर्पित किया गया था ॥५॥ नन्द ने स्नान करके आह्निक कृत्य समाप्त कर धौत वस्त्र धारण किये थे और भक्ति भाव से अपने पदाम्बुज का प्रक्षालन कर स्वर्ण पीठ पर स्थिति की थी ॥६॥ उनके साथ में नाना प्रकार के पात्र थे—ब्राह्मण—पुरोहित—गोपाल गोपिका—बालाऐं और बालक सभी साथ में वहाँ स्थित हुए थे ॥७॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्राजग्मुर्नगरवासिनः।
महासम्भृतसम्भारा नानोपायनसंयुताः ॥८
आजग्मुर्मुनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा।
शान्ताः शिष्यगणैः सार्द्धं वेदवेदांगपारगाः ॥९
ब्राह्मणाश्च कतिविधा भिक्षुका वन्दिनस्तथा।
भूया वैश्याश्च शूद्राश्च समाजग्मुर्महोत्सवे ॥१०
दृष्ट्वा मुनीन्द्रान् नन्दश्च ब्राह्मणान् भूमिपांस्तथा।
स्वर्णपीठात् समुत्तस्थौ व्रजाङ्गचोत्तस्थुरेव च ॥११

प्रणम्य वासयामास मुनीन्द्रान् विप्रभूमिपान् ।
तेषामनुमतिं प्राप्य तत्रोवास पुनर्मुदा ॥१२
पाकञ्च यष्टिनिकटे कर्त्तुमाज्ञाञ्चकार ह ।
पाकप्राज्ञं ब्राह्मणानां शतमानीय सादरम् ॥१३
एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हरिः स्वयम् ।
गोपालबालकैः सार्धं बलेन बलशालिना ॥१४

इसी बीच में वहाँ पर नगर वासी समस्त लोग आगये थे जिनके साथ अनेक प्रकार के सम्भार (सामग्रियाँ) थे और विविध भाँति उपायन भी थे ॥८॥ ब्रह्म तेज से अत्यन्त दीप्ति वाले सब मुनिगण वहाँ आये थे जो परम शान्त स्वरूप वाले और वेद—वेदाङ्गों के पारगामी थे । उनके साथ शिष्यगण भी आये थे ॥९॥ उस महोत्सव में ब्राह्मण—कितने ही प्रकार के भिक्षुक—वन्दी गण—भूप—वैश्य—शूद्र वहाँ आये थे ॥१०॥ नन्द ने मुनीन्द्र गण—ब्राह्मण और भूमियों को आता हुआ देखकर स्वर्ण पीठ से उठकर गात्रो त्थान दिया था और उनके साथ समस्त ब्रज वासी उठ खड़े हुए थे ॥११॥ उन सबको प्रणाम करके मुनिगणों—भूमियों और विप्रों को समुचित आसनों पर विराजमान कराया था फिर उनकी अनुमति प्राप्त करके नन्द स्वयं भी सहर्ष बैठ गये थे ॥१२॥ फिर पाक को यष्टि के निकट में रख देने की आज्ञा दी थी और सौ ब्राह्मणों को आदर के सहित बुलाकर पाक करने की आज्ञा दी थी जोकि पाक करने के विशेष पण्डित थे ॥१३॥ इसी अन्तर में वहाँ पर हरि स्वयं शीघ्र ही आ गये थे । उनके साथ बहुत से गोपाल बालक थे और बलराम भी थे । जो कि विशेष बलशाली थे ॥१४॥

दृष्ट्वा तञ्च जनाः सर्वे सम्भ्रान्ता हर्षविह्वलाः ।
उत्तस्थुराराद्भीताश्च पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥१५
क्रीड़ास्थानात् समायान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् ।
विनोदमुरलीवेणुश्रृङ्गशब्दसमन्वितम् ॥१६
भो भो वल्लवराजेन्द्र किं करोषीह सुव्रत ।
आराध्यः कश्चका पूजा किं फलं पूजनेभवेत् ॥१७

फलेन साधनं किं वा कः साध्यः साधनेन च ।
देवे रुष्टे भवेत् किं वा पूजायाः प्रतिबन्धके ॥१८
तुष्टो देवः किं ददाति फलमत्र परत्र किम् ।
काचिद्ददात्यत्र फलं परत्रे नेह काचन ॥१९
काचिच्च नोभयत्रापि चोभयत्रापि काचन ।
अवेदविहिता पूजा सर्वहानिकरण्डिका ॥२०
पूजेयमधुना वा ते किमु वा पुरुषक्रमात् ।
दृष्टो देवस्त्वया कस्मिन्पूजेयं चानुसारिणी ॥२१

श्री कृष्ण को देखकर सभी लोग सम्भ्रान्त और हर्ष से विह्वल हो गये थे । वे सब लोग समीप में ही आने पर भीत होते हुए उठकर खड़े हो गये थे और उनका शरीर पुलकायमान हो गया था ॥१५॥ श्रीकृष्ण उस समय अपने क्रीड़ा स्थान से वहाँ आये थे । उनका स्वरूप परम शान्त था । उनके हाथों में मुरली–वेणु–शृङ्ग थे जिनकी ध्वनि से विनोद कर रहे थे ॥१६॥ श्री कृष्ण ने कहा—हे वल्लव राजेन्द्र ! यहाँ पर यह आप क्या सुव्रत कर रहे हैं ? इस पूजा का आराध्य देव कौन है और यह कौन सी पूजा है तथा इसके पूजन का क्या फल है ? ॥१७॥ इस फल से क्या साधन होता है और उस साधन के द्वारा कौन साध्य है यदि इस पूजा का प्रतिबन्ध कर दिया जावे तो उस देवता के रुष्ट हो जाने पर क्या हो जायगा ? ॥१८॥ यदि देवता तुष्ट हो जाता है तो वह यहाँ और परलोक में क्या फल दिया करता है ? कोई देवता तो यहाँ इस लोक में ही फल देता है और कोई यहाँ तो कुछ भी फल नहीं देता है केवल परलोक में फल दिया करता है । कोई देवता दोनों ही जगह कुछ भी फल नहीं देता है और कुछ ऐसे भी देवता हैं जो दोनों लोकों में फल देते हैं । जो पूजा वेद द्वारा विहित नहीं होती है वह तो सब प्रकार की हानि करंडिका हुआ करती है ॥१९-२०॥ यह पूजा इस समय आपने ही आरम्भ की है अथवा यह पुरुष क्रम से चली आरही है ? क्या आपने वह देव कभी देखा है जिसके लिये यह पूजा की जारही है ? ॥२१॥

पौर्वापरीयं पूजेति महेन्द्रस्य महात्मनः ।
सुवृष्टिसाधनीसाध्यं सर्वशस्यमनोहरम् ॥२२
शस्यानि प्राणिनां प्राणाः शस्याज्जीवन्ति जीविनः ।
पूजयन्ति व्रजस्थाश्च महेन्द्रं पुरुषक्रमात् ॥२३
महोत्सवो वत्सरान्ते निर्विघ्नाय शिवाय च ।
इत्येवं वचनं श्रुत्वा बलेन सह माधवः ॥
उच्चैर्जहास स पुनरुवाच पितरं मुदा ॥२४
अहो श्रुतं विचित्रं ते वचनं परमाद्भुतम् ।
उपहास्यं लोकशास्त्रं वेदेष्वेव विगर्हितम् ॥२५
निरूपणं नास्ति कुत्र शक्राद् वृष्टिः प्रजायते ।
अपूर्वं नीतिवचनं श्रुतमद्य मुखात्तव ॥२६
शृणु नीतिं श्रुतिमतां हे तात नानयं वदे ।
वचनं सामवेदोक्तं सन्तो जानन्ति सर्वतः ॥२७
प्रश्नं कुरुष्व मन्त्रांश्च विविधानपि संसदि ।
ब्रुवन्तु परमार्थञ्च किमिन्द्राद् वृष्टिरेव च ॥२८
सूर्य्याद्धि जायते तोयं तोयात् शस्यानि शाखिनः ।
तेभ्योऽन्नानि फलान्येव तेभ्यो जीवन्ति जीविनः ॥२९

नन्द ने कहा—यह पूजा पौर्वापरी है अर्थात् परम्परा गत है और यह महान् आत्मा वाले इन्द्र देव की समर्चा होती है । इससे सुवृष्टि हुआ करती है जिस साधन के द्वारा सुन्दर फसल का होना ही साध्य है ॥२२॥ शस्य ही प्राणियों के प्राण हुआ करते हैं क्यों कि समस्त जीवधारी शस्य से ही अपना जीवन धारण किया करते हैं । व्रज में रहने वाले लोग पुरुष क्रम से इस महेन्द्र को पूजा करते हैं ॥२३॥ यह महोत्सव वर्ष के अन्त में एक बार विघ्नों के अभाव के लिये और कल्याण के लिये ही किया जाता है । इस प्रकार के वचन को श्रवण कर बलराम के साथ माधव बड़े जोर से हँस पड़े थे और फिर उन्होंने आनन्द पूर्वक अपने पिता से कहा था—॥२४॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे प्रभो ! बड़ा ही आश्चर्य है । आज आपका यह परम अद्भुत और अत्यन्त विचित्र वचन सुना है

जो कि उपहास करने के ही योग्य है यह लोक शास्त्र है किन्तु वेदों में यह निन्दित माना गया है ।।२५।। इस का कहीं भी निरूपण नहीं है कि इन्द्र से वृष्टि हुआ करती है । मैंने आज यह नीति का अपूर्व ही वचन आपके मुख से श्रवण किया है ।।२६।। हे तात ! आप श्रुतिमानों की नीति का श्रवण करो और जो अनय है उसे कभी भी नहीं बोलना चाहिए । सन्त लोग साम वेद में कहे हुए वचन को सर्व प्रकार से जानते हैं ।।२७।। संसद में प्रश्न और विविध मन्त्रों को करो और परमार्थ जो हो उसी को कहो—क्या कभी इन्द्र से भी वृष्टि होती है ।।२८।। सूर्य से जल की उत्पत्ति होती है और तोय मे शस्य एवं शाखी समुत्पन्न होती हैं । उन्हीं से अन्न एवं फल समुत्पन्न हुआ करते हैं जिनसे जीव धारी लोग जीवित रहा करते हैं ।।२९।।

सूर्य्यं ग्रस्तञ्च नीरञ्च काले तस्मात्समुद्भवः ।
सूर्य्यो मेघादयः सर्वे विधात्रा ते निरूपिताः ।।३०
यत्राब्दे यो जलधरो गजश्चसागरो मतः ।
शस्याधिपोनृपो मन्त्रीविधात्रातेनिरूपिताः ।।३१
जलाढकानां शस्यानां तृणानाञ्च निरूपितम् ।
अब्देऽब्देस्त्येव तत् सर्वं कल्पे कल्पे युगे युगे ।।३२
विनिर्मितो विराटेन तत्त्वानि प्रकृतिर्जगत् ।
कूर्मश्च शेषो धरणी चाब्रह्मस्तम्भ एव च ।।३३
यस्याज्ञया मरुत् कूर्मं धत्तेशेषं बिभर्त्तिसः ।
शेषो वसुन्धरां मूर्ध्नासा च सर्वञ्चराचरम् ।।३४
यस्याज्ञया सदा वाति जगत्प्राणो जगत्त्रये ।
तपतिभ्रमणं कृत्वा भूगोलं सुप्रभाकरः ।।३५
दहत्यग्निः सञ्चरते मृत्युश्च सर्वजन्तुषु ।
बिभर्त्ति शाखिनः काले पुष्पाणि च फलानिच ।।३६
स्वे स्वे स्थाने समुद्राश्च तूर्णं मज्जन्त्यधोऽधुना ।
तमीशं भज भक्त्या च शक्रः किं कर्तुमीश्वरः ।।३७

जल सूर्य के द्वारा ही ग्रस्त हो जाता है अर्थात् सूर्य की किरणें जल का पान कर जाया करती हैं और जब समय आता है तब उसी सूर्य से जल की समुत्पत्ति भी हुआ करती है। सूर्य और मेघ आदि सब विधाता के द्वारा निरूपित हैं ॥३०॥ जिस वर्ष में जो जलधर होता है और गज सागर होता है। शस्यों का अधिप नृप और मन्त्री वे सब विधाता के द्वारा निरूपित हैं ॥३१॥ जलाढकों—शस्यों और तृणों का निरूपण किया है। यह वर्ष-वर्ष में होता है। यह सब प्रत्येक कल्प और युग में भी होता है ॥३२॥ विराट् के द्वारा सब विनिर्मित है। ये तत्व—प्रकृति—जगत्—कूर्म—शेष—धरणी और आब्रह्म स्तम्भ पर्यन्त सभी विराट् रूप ही है ॥३३॥ जिसकी आज्ञा से यह मरुत् वहन करता है—कूर्म शेष को धारण करता है वह ही भरण किया करता है। जिसके आदेश से शेष इस वसुन्धरा को धारण करता है और वह वसुन्धरा समस्त चराचर को धारण किया करती है ॥३४॥ जिसकी आज्ञा से जगत् का प्राण तीनों लोकों में सदा वहन करता है और यह सुप्रभाकर इस समस्त भू गोल का भ्रमण कर तपता है। अग्नि दाह किया करता है और मृत्यु सम्पूर्ण जन्तुओं में सञ्चार करता रहता है वही वृक्षों—पुष्पों और फलों को समय पर भरण किया करता है ॥३५-३६॥ अपने २ स्थान पर इस समय समुद्र अधो मज्जन किया करते हैं यह भी उसी की आज्ञा है। भक्ति भाव से उसी ईश का सेवन करो इन्द्र विचारा क्या करने में समर्थ है ? ॥३७॥

ब्रह्माण्डञ्च कतिविधमाविर्भूतं तिरोहितम् ।
विधयश्च कतिविधा यस्य भ्रूभङ्गलीलया ॥३८
मृत्योमृ त्युः कालकालो विधातुर्विधिरेव सः ।
भज तं शरणं तातसतेरक्षां करिष्यति ॥३९
अहोऽष्टाविंशदिन्द्राणां पतने यदहर्निशम् ।
विधातुरेव जगतामष्टोत्तरशताधिकः ॥४०
निमेषाद्यस्य पतनं निर्गु णस्यात्मनः प्रभोः ।
एवंभूते तिष्ठतीशे शक्रपूजा विड़म्बनम् ॥४१

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद ।
प्रशशंसुश्च मुनयो भगवन्तं सभासदः ॥४२

जिसकी भ्रूभङ्ग की लीला से कितने ही प्रकार के ब्रह्माण्ड आविर्भूत होते हैं और छिप जाया करते हैं और उनमें कितने ब्रह्मा हुआ करते हैं ॥३८॥ वह मृत्यु है तथा काल का भी काल है एवं विधाता का भी वह विधि है । हे तात ! आप उसी की सेवा करो । वह आपकी रक्षा अवश्य ही करेगा ॥३९॥ अट्ठाईस इन्द्रों का पतन एक ही अहोरात्र में हो जाता है और जगतों के विधाता का भी पतन एक सौ आठ बार होता है। उस निर्गुण प्रभु के एक निमेष के समय में इनका यह पतन हुआ करता है । इस प्रकार के परम प्रभु के रहते हुए इन्द्र की पूजा करना एक विडम्बना मात्र ही है ॥४०-४१॥ हे नारद ! इतना कहकर श्री कृष्ण विरत हो गये थे । उस समय सभी सभासद मुनियों ने भगवान् की उस उक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी ॥४२॥

नन्दः सपुलको हृष्टः सभार्यां साश्रुलोचनः ।
आनन्दयुक्ता मनुजा यदि पुत्रैः पराजिताः ॥४३
श्रीकृष्णाज्ञां समाज्ञाय चकार स्वस्तिवाचनम् ।
क्रमेण वरणं तत्र सर्वेषाञ्च चकार ह ॥४४
पर्वतस्य मुनीन्द्राणां चकार पूजनं मुदा ।
बुधानां ब्राह्मणानाञ्च गवां वह्नेश्च सादरम् ॥४५
तत्र पूजासमाप्तौ च क्रतौ च सुमहोत्सवे ।
नानाप्रकारवाद्यानां बभूव शब्द उल्वणः ॥४६
जयशब्दः शङ्खशब्दो हरिशब्दो बभूव ह ।
वेदमङ्गलकाण्डञ्च पपाठ मुनिपुङ्गवः ॥४७
वन्दिनां प्रवरो डिण्डी कंसस्य सचिवः प्रियः ।
उच्चैः पपाठ पुरतो मंगलं मङ्गलाष्टकम् ॥४८
कृष्णः शैलान्तिकं गत्वा भिन्नां मूर्त्तिं विधाय च ।
वस्तु खादामि शैलोऽस्मि वरं वृण्वित्युवाच ह ॥४९

नन्द उस समय पुलकाय मान होकर नेत्रों से अश्रु भर लाये थे। पुत्रों के द्वारा यदि मनुष्य पराजित हो जाते हैं तो वे आनन्द से परिपूर्ण हो जाया करते हैं ॥४३॥ सब ने तुरन्त ही श्री कृष्ण की आज्ञा को मानकर स्वस्ति वाचन किया था और क्रम से सबका वरण किया था। ॥४४॥ फिर आनन्द पूर्वक पर्वत का—मुनीन्द्रों का—बुधों का—ब्राह्मणों का—गौओं का और अग्नि का पूजन आदर के साथ किया था ॥४५॥ वहाँ पूजन की समाप्ति और क्रतु में सुमहोत्सव के पूर्ण हो जाने पर नाना प्रकार के वाद्यों का अत्यन्त घोर शब्द हुआ था ॥४६॥ वहां जय-जय का शब्द—शङ्ख की ध्वनि और हरि शब्द का उच्चारण हुआ था। मुनि श्रेष्ठों ने वेद का मङ्गल काण्ड का पाठ किया था ॥४७॥ वन्दियों में परम श्रेष्ठ डिण्डी जो कि कंस का प्रिय सचिव था उसने समक्ष में बड़े ऊँचे स्वर से मङ्गलाष्टक का मंगल पाठ किया था ॥४८॥ कृष्ण ने शैल (गोवर्द्धन) के समीप में आकर एक भिन्न मूर्त्ति की रचना करक कहा—मैं शैल हूँ आप की समस्त वस्तुओं को खाता हूँ। मुझ से वर माँग लो ॥४९॥

उवाच नन्दं श्रीकृष्णः पश्य शैलं पितः पुरः।
वरं प्रार्थय भद्रं ते भविता चेत्युवाच ह ॥५०
हरेर्दास्य हरेर्भक्ति वरं वव्रे स वल्लवः।
द्रव्यं भुक्त्वा वरं दत्त्वा सोऽन्तर्धानञ्चकार ह ॥५१
मुनीन्द्रान् ब्राह्मणांश्चैव भोजयित्वा च गोपपः।
वन्दिभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च मुनिभ्यश्च धनं ददौ ॥५२
मुनिभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि दत्त्वा नन्दो मुदान्वितः।
रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सगणः स्वालयं ययौ ॥५३
एतस्मिन्नन्तरे शक्रः कोपप्रस्फुरिताधरः।
मखभङ्गं बहुविधां निन्दां श्रुत्वा सुरेश्वरः ॥
मरुद्भिर्वारिदैः सार्द्धं रथमारुह्य सत्वरम् ॥५४
जगाम नन्दनगरं वृन्दारण्यं मनोहरम्।
सर्वे देवा ययुः पश्चाद् युद्धशास्त्र विशारदाः ॥५५

शस्त्रास्त्रपाणयः कोपाद्रथमारुह्य नारद ।
वायुशब्दैर्मेघशब्दैः सैन्यशब्दैर्भयानकैः ॥५६
चकम्पे नगरं सर्वं नन्दो भयमवाप ह ।
भार्यां सम्बोध्य स्वगणमुवाच शोककातरः ॥
रहःस्थलं समानीय नीतिशास्त्रविशारदः ॥५७

श्री कृष्ण ने नन्द से कहा—हे पिता ! आप सामने शैल को देखो। आप इस शैल (गोवर्द्धन) से वर दान प्राप्त कर लो। आपका कल्याण होगा ॥५०॥ उस समय उस वल्लव ने शैल से हरि का दास्य भाव और हरि की भक्ति का वर दान माँगा था। उस शैल ने सम्पूर्ण द्रव्य को खाकर वरदान दिया और फिर अन्तर्धान हो गया था अर्थात् शैल में जो कृष्ण ने अपनी ही मूर्त्ति स्थित की थी वह तिरोभूत हो गई थी ॥५१॥ इस के अनन्तर गोप पति ने मुनीन्द्रों और ब्राह्मणों को भोजन कराया था और वन्दिगणों—ब्राह्मणों तथा मुनियों को बहुत धन दक्षिणा के रूप में दिया था ॥५२॥ मुनियों को और ब्राह्मणों को धन देकर नन्द परम प्रसन्न हुए थे और फिर राम कृष्ण इन दोनों को अपने आगे साथ लेकर समस्त परिकर के सहित अपने गृह को चले गये थे ॥५३॥ इसके अनन्तर नन्द ने उस डिण्डी को जो कि एक परम श्रेष्ठ वन्दी था रुपये—वस्त्र—सुवर्ण...श्रेष्ठ अश्व–मणि–भक्ष्य द्रव्य जो कि अनेक प्रकार का था दिया। इसी अनन्तर में इन्द्र को बड़ा क्रोध आया था और कोप की अधिकता से उसके होठ फड़क रहे थे जब कि उस सुरेश्वर ने अपने लिये किये जाने वाले मख का भंग और उस समय में की गई निन्दा का श्रवण किया था। वह मरुतों और वारिदों को साथ में लेकर शीघ्र ही रथ पर समारूढ़ होकर व्रज को चल दिया था ॥५४॥ इन्द्र नन्द के नगर में गया था जहाँ कि अतीव मनोहर वृन्दारण्य था। अन्य युद्ध शास्त्र के महा मण्डित देवगण उसके पीछे से गये थे। ॥५५॥ हे नारद ! सभी के हाथों में शस्त्र थे और क्रोध करते हुए रथ पर समारूढ थे। उन्होंने वायु के शब्दों के द्वारा तथा मेघों की गर्जन ध्वनि और भयानक सैन्य के कोलाहल के द्वारा सम्पूर्ण नन्द के नगर को कँपा दिया था और नन्द भी भय से युक्त

हो गये थे । फिर नन्द ने अपनी भार्या को सम्बोधित करके शोक से कातर होते हुए अपने गणों से कहा था और रहः स्थल में वह नीति शास्त्र के पण्डित सब को ले आये थे ॥५६-५७॥

हे यशोदे समागच्छ वचनं श्रृणु रोहिणी ।
रामकृष्णौ समादाय व्रज दूरं व्रजात् प्रिये ॥५८
बालका बालिका नार्यो यान्तु दूरं भयाकुलाः ।
बलवन्तश्चगोपालास्तिष्ठन्तुमत्समीपतः ॥५९
पश्चाच्च निर्गमिष्यामो वयञ्च प्राणसङ्कटात् ।
इत्युक्त्वा बल्लवश्रेष्ठःसस्मार श्रीहरिंभिया ॥६०
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ।
काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव श्रीशचीपतिम् ॥६१
इन्द्रः सुरपतिः शक्रो दितिजः पवनाग्रजः ।
सहस्राक्षो भगाङ्गश्च कश्यपात्मज एव च ॥६२
विड़ौजाश्च शुनासीरोमरुत्वान् पाकशासनः ।
जयन्तजनकः श्रीमान् शचीशो दैत्यसूदनः ॥६३
आखण्डलो हरिहयो नमुचिप्राणनाशनः ।
वृद्धश्रवा वृषश्चैव दैत्यदर्पनिषूदनः ॥
षट्चत्वारिंशन्नामानि पापघ्नानि विनिश्चितम् ॥६४

नन्द ने कहा—हे यशोदे ! यहाँ आओ । हे रोहिणि ! मेरा वचन श्रवण करो । हे प्रिये ! बलराम और कृष्ण को लाकर तुम इस व्रज से कहीं सुदूर स्थल में चली जाओ ॥५८॥ जो बालक बालिकाऐं और नारियाँ हैं वे सभी भय से आकुल हो रहे हैं अतः यहाँ से दूर जाकर रहें। जो गोपाल बलवान् हैं वे ही इस समय यहाँ मेरे पास ठहर जावें ॥५९॥ हम लोग जब देखेंगे कि प्राणों का सङ्कट ही उपस्थित हो गया है तो पीछे से निकल जाँयगे । इतना कहकर उस वल्लवों में श्रेष्ठ ने, भय से श्री हरि का स्मरण किया था ॥६०॥ नन्द ने पुटाञ्जलि से युक्त भक्ति भाव से विनम्र कन्धरा करके काण्व शाखा में कहे हुए स्तोत्र के द्वारा श्री शचीपति (इन्द्र) को तुष्ट किया था ॥६१॥ नन्द ने कहा—

इन्द्र आप सुरों के स्वामी हैं—शक्र दिति से जन्म ग्रहण करने वाले और पवन के ज्येष्ठ भ्राता हैं आपके एक सहस्र नेत्र हैं । आप भग के अङ्ग वाले हैं और कश्यप मुनि के पुत्र हैं ॥६२॥ आपको बिड़ौजा–शुनासीर –मरुत्वान और पाक शासन कहते हैं । आप जयन्त के पिता हैं—श्रीमान् हैं और दैत्यों के नाशक तथा शची के पति हैं । आपका नाम अखण्डल और हरिहय हैं और आप नमुचि के प्राणों के नाश करने वाले हैं । आपको वृद्धश्रवा और वृष भी कहा जाता है तथा आप सदा दैत्यों के दर्प को नष्ट करने वाले हैं ॥६३॥ ये छयालीस आपके परम शुभ नाम हैं जो कि निश्चत् रूप से पापों के हनन करने वाले होते हैं ॥६४॥

स्तोत्रं नन्दमुखाच्छ्रुत्वा चुकोप मधुसदनः ।
उवाच पितरं नीतिं प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥६५
कं स्तौषि भीरो को वेन्द्रस्त्यज भीतिं ममान्तिके ।
क्षणार्द्धं भस्मसात् कर्त्तुं क्षमोऽहमवलीलया ॥६६
गाश्चवत्सांश्च बालांश्चयोषितो या भयातुराः ।
गोवर्द्धनस्य कुहरे संस्थाप्य तिष्ठ निर्भयम् ॥६७
बालस्य वचनं श्रुत्वा तच्चकार मुदान्वितः ।
हरिर्दधार शैलन्तं वामहस्तेन दण्डवत् ॥६८
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दीप्तोऽपि रत्नतेजसा ।
अन्धीभूतञ्च सहसा बभूव रजसावृतम् ॥६९
सवातो मेघनिकरश्चच्छादगगनं मुने ।
वृन्दावने बभूवातिवृष्टिरेव निरन्तरम् ॥७०

नारायण ने कहा—नन्द के मुख से इस स्तोत्र को सुनकर मधुसूदन को बड़ा क्रोध आया था । और ब्रह्मतेज से प्रज्वलित होते हुए अपने पिता नन्द से नीति कहने लगे ॥६५॥ आप किस की स्तुति कर रहे हैं ? हे भीरु ! इन्द्र विचारा कौन है । आप अपने भय का त्याग कर देवें । मेरे समीप अब आप हैं । फिर भी आपको किसका भय हो रहा है । मैं अपनी सामान्य लीला से ही एक क्षण में इसको भस्मसात् करने की

सामर्थ रखता हूँ ॥६६॥ गौओं को—वत्सों को—बालकों को और स्त्रियों को जो भी भय से अत्यन्त आतुर हो रहे हैं आप गोवर्द्धन के कुहर में लेजाकर संस्थापति कर देवें और वहाँ भय रहित होकर स्थित रहें ॥६७॥ बालक श्री कृष्ण के इस वचन को सुनकर आनन्द युक्त हो वही किया था। हरि ने उस गोवर्द्धन शैल को वाम हस्त से दण्ड की भाँति धारण कर लिया था ॥६८॥ इस अन्तर में वहाँ पर रत्नों के तेज से दीप्त भी वह स्थल सहसा रज से आवृत होकर अन्धी भूत हो गया था। ॥६९॥ हे मुने ! मेघों के समुदाय ने आकाश मण्डल ढाँक लिया था जिनके साथ वायु भी बड़ी तीव्रता से वहन हो रहा था। उस समय वृन्दावन में निरन्तर अति वृष्टि हुई थी ॥७०॥

शिलावृष्टिर्वज्रवृष्टिरुल्कापातः सुदारुणः।
समस्तं पवतस्पर्शात् पतितं दूरतस्ततः ॥७१
विफलस्तत्समारम्भो यथानीशोद्यमो मुने।
दृष्ट्वा मोघञ्च तत्सर्वं सद्यः शक्रश्चुकोप ह ॥७२
जग्राहामोघकुलिशं दधीच्यस्थिविनिर्मितम्।
दृष्ट्वा तं वज्रहस्तञ्च जहास मधुसूदनः ॥७३
सहस्तं स्तम्भयामास वज्रमेवातिदारुणम्।
सहामरगणैर्मेघञ्चकार स्तम्भनं विभुः ॥७४
सर्वे तस्थुर्निश्चलास्ते भित्तौ पुत्तलिका यथा।
हरिणा जृम्भितः शक्रः सद्यस्तन्द्रामवाप ह ॥७५
ददर्श सर्वं तन्द्रायां तत्र कृष्णमयं जगत्।
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नालंकारभूषितम् ॥७६
पीतवस्त्रपरीधानं रत्नसिंहासनस्थितम्।
ईषद्धाम्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रकातरम् ॥७७
अन्तर्बहिः समं दृष्ट्वा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥७८

केवल वर्षा ही नहीं साथ में शिलाओं की वर्षा—वज्रों की वर्षा और महान् दारुण उल्काओं का पात भी हुआ था। यह सब पर्वत के स्पर्श होते ही दूर में ही जाकर पतित होते थे ॥७१॥ हे मुने ! इन्द्र के

द्वारा किया हुआ यह समारम्भ अनीशोद्यम की भाँति ही विफल हो गया । इन्द्र ने इस सबकी सद्य ही मोघता देखकर और भी अधिक कोप किया था ॥७२॥ फिर इन्द्र ने दधीचि ऋषि की अस्थियों के द्वारा बनाया हुआ अमोघ वज्र को ग्रहण किया था । उस वज्र हाथ में लेने वाले इन्द्र को देखकर मधुसूदन को हँसी आ गई थी । उस समय विभु ने सबका स्तम्भन कर दिया था—अत्यन्त दारुण वज्र—अमरगणों के साथ मेघ सब स्तम्भित हो गये थे ॥७३-७४॥ सभी स्तम्भन हो जाने के कारण निश्चल भीत में पुत्तलिका की भाँति ठहर गये थे । हरि के द्वारा जृम्भित किये जाने पर इन्द्र को तुरन्त ही वहाँ तन्द्रा प्राप्त हो गई थी ॥७५॥ उस इन्द्र ने अपनी तन्द्रित दशा में सम्पूर्ण जगत् को कृष्णमय देखा था । सर्वत्र दो भुजाओं वाला—मुरली हाथ में लिये हुए, रत्नों के आभरणों से भूषित दिखाई देता था ॥७६॥ पीताम्बर के परीधान करने वाला—रत्न सिंहासन पर स्थित—मन्द हास्य से युक्त, परम प्रसन्न मुख वाला और निज भक्तों पर शीघ्र ही अनुग्रह करने के लिये कातर (उतावला) उन श्री कृष्ण को देखा था ॥७७॥ बाहिर और भीतर समान स्वरूप को देखकर इन्द्र ने परमेश्वर का स्तवन किया था ॥७८॥

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नः श्रीनिकेतनः ।
प्रीत्या तस्मै वरं दत्त्वा स्थापयामास पर्वतम् ॥७९
प्रणम्य च हरिं शक्रः प्रययौ स्वगणैः सह ॥८०
गह्वरस्था जनाः सर्वे प्रजग्मुर्गह्वराद् गृहम् ।
ते सर्वे मेनिरे कृष्णं परिपूर्णतमं विभुम् ।
पुरस्कृत्य व्रजस्थांश्च प्रययौ स्वालयं हरि ॥८१

नारायण ने कहा—इन्द्र के स्वन-वचनों का श्रवण कर श्री निकेतन ने कहा कि मैं प्रसन्नता से वर देता हूँ । यह इन्द्र से कह कर उस पर्वत को वहीं स्थापित करा दिया था ॥७९॥ इन्द्र भी हरि को प्रणाम करके अपने सब गणों के साथ वापिस चला गया था ॥८०॥ गोवर्धन पर्वत के गह्वर में स्थित सम्पूर्ण व्रज के जन भी बाहर निकल कर अपने २ घरों को चले गये थे । उस समय उन सब ने कृष्ण को परिपूर्णतम विभु मान

लिया था। इसके उपरान्त हरि भी सब व्रज वासियों को अपने आगे लेकर स्वालय को चले गये थे ॥८१॥

७२—धेनुकासुरोपाख्यानवर्णनम्

एकदा राधिकानाथो बलेन सह बालकैः ।
जगाम तत्तालवनं परिपक्वफलान्वितम् ॥१
वृक्षाणां रक्षिता दैत्यः खररूपी च धेनुकः ।
कोटिसिंहसमबलो देवानां दर्पनाशनः ॥२
शरीरं पर्वतसमं कूपतुल्ये च लोचने ।
ईषापङ्क्तिसमा दन्तास्तुण्डं पर्वतगह्वरम् ॥३
शतहस्तपरिमिता जिह्वा लोला भयानका ।
कासारसदृशा नाभिः शब्दस्तस्य भयानकः ॥४
दृष्ट्वा तालवनं बाला हर्षमापुरनिन्दिताः ।
कौतुकात् कृष्णमूचुस्ते स्मेराननसरोरुहाः ॥५
हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते ।
महाबलबलभ्रातः समस्तबलिनां वर ॥६
अवधानं कुरु विभो क्षणार्द्धं नो निवेदने ।
क्षुधितानां शिशूनाञ्च भक्तानां भक्तवत्सल ॥
स्वादूनि सुन्दराण्येव पश्य तालफलानि च ॥७

इस अध्याय में धेनुकासुर के उपाख्यान का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—एक समय में राधिका के नाथ बलराम और अन्य गोपाल बालकों के साथ उस ताल वन में गये थे जहाँ परिपक्व फलों से युक्त वृक्ष थे ॥१॥ उन वृक्षों की रक्षा करने वाला खर के रूप धारण करने वाला एक दैत्य था जिसका नाम धेनुक था। वह करोड़ सिंहों के तुल्य बल वाला था और देवों के दर्प का नाश करने वाला था ॥२॥ उसका विशाल शरीर पर्वत के समान था और नेत्र कूप के समान थे। ईषा पंक्ति के समान दाँत थे तथा उनका मुख पर्वत की खोह के तुल्य था ॥३॥ उस दैत्य की जीभ सौ हाथ लम्बी थी जो कि बहुत चंचल एवं

भयानक थी। उसकी नाभि एक कासार के तुल्य गहरी थी तथा उसकी ध्वनि अत्यन्त ही भयानक थी ॥४॥ उस ताल वन को देखकर सभी बालक बहुत ही हर्ष संयुक्त हो गये थे। वे सभी सुन्दर बालक हँसते हुए मुख वाले श्री कृष्ण से कहने लगे थे। बालकों ने कहा—हे कृष्ण ! हे करुणा के सागर ! हे जगत् के स्वामी ! आपके तो बड़े भाई महान् बलवान् हैं जो समस्त बलधारियों में भी परम श्रेष्ठ हैं ॥५-६॥ हे विभो ! थोड़ी देर के लिए जो हम लोग निवेदन कर रहे हैं उसका श्रवण करने की कृपा करें। हे भक्त वत्सल ! अति स्वादिष्ट और सुन्दर परिपक्व ताल के फलों को देखकर आपके भक्त ये सभी बालक भूख वाले हो गये हैं अर्थात् इन्हें भूख लगी है ॥७॥

भङ्क्तुं चालयितुं वृक्षान् पातितुञ्च फलानि च ॥८
नानावर्णानि पुष्पाणि कक्वानि दुर्लभानि च।
आज्ञां करोषि चेत् कृष्ण चेष्टां कर्त्तुं वयं क्षमाः ॥
किन्त्वत्र दैत्यो बलवान् खररूपी च धेनुकः।
अजितस्त्रिदशैः सर्वैर्महाबलपराक्रमः ॥१०
दुर्निवार्यश्च सर्वेषां कंसस्य सचिवो महान्।
हिंसकः सर्वजन्तूनां वनानामस्ति रक्षिता ॥११
सुविचार्य्यं जगत्कान्त वद नो वदतां वर।
युक्तं कार्य्यमयुक्तं वा कर्त्तव्यमथवा न वा ॥१२
बालकस्य वचः श्रुत्वा भगवान् मधुसूदनः।
उवाच मधुरं बालान् वचनं तत्सुखावहम् ॥१३

इन ताल के वृक्षों को तोड़ने-हिलाने और फलों को गिराने के लिये हम सभी समर्थ हैं। इसमें बड़े सुन्दर पके हुए दुर्लभ फल और फूल लगे हुए हैं। आप हमको यदि आज्ञा प्रदान करें तो हम इन वृक्षों को हिलाने की चेष्टा करें ॥८-९॥ किन्तु भय इसी बात का है कि यहाँ एक महान् बलशाली दैत्य रहता है जिसका खर के समान रूप है और धेनुक नाम है। वह देवों के द्वारा भी अजित है। सभी देवगणों ने बड़ा जोर लगा लिया है किन्तु इस महान् बल-पराक्रम वाले को कोई भी आज तक जीत

नहीं सका है ॥१०॥ यह यहाँ से हटाया नहीं जा सकता है क्योंकि यह कंस राजा का महान् सचिव है। यह समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाला और वनों की रक्षा करने वाला दैत्य है ॥११॥ हे जगत् के स्वामी ! आप स्वयं भली भाँति विचार करके हमको आज्ञा देवें। आप तो स्वयं बोलने वालों में अति श्रेष्ठ हैं। यह कार्य युक्त है अथवा अयुक्त है। हम सबको यह इस समय करना चाहिए या नहीं करना चाहिए ॥१२॥ इस प्रकार के बालकों के वचन सुन कर भगवान् मधुसूदन उन बालकों से मधुर वचन बोले जो उनको सुख देने वाला था ॥१३॥

किं वो दैत्याद्भयं बाला यूयं मत्सहचारिणः।
वृक्षान् भङ्क्त्वा चालयित्वा फलानि खादताभयम् ॥१४
श्रीकृष्णाज्ञां समादाय बालका बलशालिनः।
उत्पेतुर्वृक्षशिखरं क्षुधिताश्च फलार्थिनः ॥१५
नानाप्रकारवर्णानि स्वादूनि सुन्दराणि च।
फलानि पातयामासुः परिपक्वानि नारद ॥१६
केचिद् बभञ्जुर्वृक्षांश्च चालयामासुरेव।
केचित् कोलाहलञ्चक्रुर्ननृतुस्तत्र केचन ॥१७
अवरुह्य तरुभ्यश्च बालका बलशालिनः।
फलान्यादाय गच्छन्तो ददृशुर्दैत्यपुङ्गवम् ॥१८
महाबलं महाकायं घोरं गर्दभरूपिणम्।
आगच्छन्तं महावेगात् कुर्वन्तं शब्दमुल्वणम् ॥१९
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे फलानि तत्यजुर्भिया।
कृष्ण कृष्णेति शब्दञ्च प्रचक्रुर्बहुधा भृशम् ॥२०

श्री कृष्ण ने कहा—हे बालको ! आपको उस दैत्य से क्यों भय होता है ? आप तो मेरे सहचारी हैं। आप वृक्षों का भङ्ग करके और उन्हें खूब हिला कर निर्भयता के साथ फलों को खाओ ॥१४॥ श्री कृष्ण की इस आज्ञा को प्राप्त कर बालक बहुत बलशाली होगये थे। वे क्षुधा से युक्त फलों के खाने की इच्छा वाले वृक्षों के शिखरों पर चढ़ गये थे। हे

नारद ! उन बालकों ने नाना प्रकार के स्वादु युक्त सुन्दर फलों को जोकि पूर्ण तथा पके हुए थे नीचे भूमि तल पर गिरा दिया था ॥१५-१६॥ कुछ बालकों ने वृक्षों को भग्न कर दिया था कुछ ने उन्हें खूब हिला दिया था। कुछ बालक वहां बहुत अधिक कोलाहल कर रहे थे और उनमें कुछ आनन्द में मग्न होकर नृत्य कर रहे थे ॥१७॥ वृक्षों से नीचे उतर कर उन बलशाली बालकों ने फलों को लेकर जब चल रहे तो उस धेनुक दैत्य श्रेष्ठ को वहां देखा था ॥१८॥ इसका महान् बल था और इसका शरीर भी अत्यन्त विशाल था। यह परम घोर गर्दभ के स्वरूप वाला था। बालकों ने देखा कि वह उन्हीं की ओर घोर भयानक ध्वनि करता हुआ महान् वेग से चला आरहा है ॥१९॥ उसको आते हुए देखकर सभी बालकों ने भय से फलों को वहीं फैंक दिया और वे रुदन करने लगे थे। उनके मुख से उस समय भयभीत होने के कारण हे कृष्ण—हा कृष्ण—ये ही शब्द प्रायः निकल रहे थे ॥२०॥

अस्मान् रक्ष समागच्छ हे कृष्ण करुणानिधे।
हे सङ्कर्षण नो रक्ष प्राणा नो यान्ति दानवात् ॥२१
हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे गोविन्द दामोदर दीनबन्धो।
गोपीश गोपेश भवार्णवेऽस्माननन्त नारायण रक्ष रक्ष ॥२२
भयेऽभये वाथ शुभेऽशुभे वा सुखेषु दुःखेषु च दीननाथ।
त्वयाविनान्यंशरणंभवार्णवेननोऽस्तिहेमाधवरक्षरक्ष ॥२३
जय जय गुणसिन्धो कृष्णभक्तैकबन्धो।
बहुतरभययुक्तान् बालकान् रक्ष रक्ष ॥
जहि दनुजकुलानामीशमस्माकमन्तं।
सुरकुलबलदर्पं वर्धयेमं निहत्य ॥२४
बालानां विक्लवं दृष्ट्वा बलेन सह माधवः।
आजगाम शिशुस्थानं भयहा भक्तवत्सलः ॥२५
भयंनास्तिभयंनास्तीत्युक्त्वादुद्रावसत्वरम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्योनिर्भयं दत्तवान्शिशून् ॥२६

दृष्ट्वा कृष्णं बलं वाला ननृतुर्विजहुर्भयम् ।
हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमंगलदायिका ।।२७
श्रीकृष्णो दानवं दृष्ट्वा ग्रसन्तं पुरतः शिशून् ।
बलं सम्बोध्य बलिनमुवाच मधुसूदनः ।।२८
दानवो बलिपुत्रोऽयं नाम्ना साहसिको बली ।
गर्दभो ब्रह्मशापेन शप्तो दुर्वाससा पुरा ।।२९

हे कृष्ण ! हे कृपा के निधि ! यहाँ आकर हमारी रक्षा करो । हे सङ्कर्षण ! इस दुष्ट दानव से हमारे प्राणों की रक्षा करो ।।२१।। हे कृष्ण ! हे मुरारे ! हे दामोदर ! हे गोविन्द ! हे दीन बन्धो ! हे गोपीश ! हे गोपेश ! हे नारायण ! हे अनन्त ! इस भवार्णव में हमारी रक्षा करो-रक्षा करो ।।२२।। भय में—अभय में—शुभ में और अशुभ में—सुख में और दुःख में हे दीनों के नाथ ! हे माधव ! एस संसार रूपी समुद्र में आपके बिना हमारा अन्य कोई भी रक्षक शरण नहीं है । आप ही हमारी इस समय रक्षा करो ।।२३।। हे गुणों के सागर ! हे भक्तों के एकमात्र बन्धो । हे कृष्ण ! आपकी जय हो-जय हो । इस समय में अत्याद्यक भय से हम कातर बालक हो रहे हैं आप यहाँ आकर हमारी रक्षा करो ।।२४।। इस दनुज कुलों के स्वामी का हनन करो जोकि हमारा अन्त कर देने वाला होरहा है । आप इसको मारकर सुरकुल दर्प का वर्धन करो ।।२५।। बालकों के इस प्रकार के भय और घबराहट से परिपूर्ण विवेचन को सुनकर तथा उनकी सन्त्रस्त दशा देखकर बलराम के साथ उन बच्चों के स्थान पर आ गये थे क्योंकि भगवान् तो भय के हरण करने वाले और अपने भक्त जनों पर प्यार करने वाले हैं ।।२६।। मुख पर थोड़ा सा हास्य करते हुए प्रसन्न मुख वाले माधव ने वहां पहुंच कर बालकों से कहा—कोई भी भय नहीं है तुम लोग शीघ्र यहाँ से चले जाओ—ऐसा कहते हुए हरि ने बालकों को निर्भयता प्रदान की थी ।।२७।। जब बालकों ने कृष्ण और बलराम को अपने निकट देख लिया था तो वे भय का त्याग कर आनन्द से नृत्य करने लगे थे । हरि का स्मरण ही अभय का देने वाला तथा सम्पूर्ण मङ्गलों का प्रदान करने वाला होता है ।।२८।। श्रीकृष्ण ने

देखा कि वह दानव सामने ही बालकों को ग्रस रहा है उस समय मधुसूदन ने बलशाली बलराम को सम्बोधित करके कहा था ॥२९॥

पापिष्ठो मम वध्योऽयं महाबलपराक्रमः ।
अहमेनं वधिष्यामि त्वं रक्ष बालकान् बल ॥३०
आदाय बालकान् सर्वान् दूरं गच्छेत्युवाच ह ।
तान् गृहीत्वा बलः शीघ्रं जगाम त्वरयाज्ञया ॥३१
दृष्ट्वा कृष्णं दानवेन्द्रो महाबलपराक्रमः ।
जग्रास लीलया कोपाज्ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥३२
बभूवातिदाहयुक्तो मर्तुकामोऽतितेजसा ।
उज्जग्रास पुनर्दैत्यो विभुं तेजस्विनं भिया ॥३३
उज्भितं सन्ततमीशञ्च दृष्ट्वा दैत्यो मुमोच ह ।
अतीवसुन्दरं शान्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥३४
कृष्णदर्शनमात्रेण बभूवास्य पुरा स्मृतिः ।
आत्मानं बुबुधे कृष्णं जगतां कारणं परम् ॥३५
तेजःस्वरूपमीशन्तं दृष्ट्वा तुष्टाव दानवः ।
यथागमं यथा जन्म गुणातीतं श्रुतेः परम् ॥३६

श्री कृष्ण ने कहा—यह दानव बलि का पुत्र है यह बहुत ही बल वाला है। पहिले दुर्वासा ऋषि के शाप से जोकि एक ब्राह्म शाप था उससे शप्त होकर इस गर्दभ शरीर को प्राप्त हुआ था ॥३०॥ यह महान् पापिष्ठ है और मेरे द्वारा वध करने के योग्य है। इसमें महान् बल और पराक्रम है। हे बलराम ! आप इस समय बालकों की रक्षा करो और मैं इस दुष्ट दैत्य का वध करूंगा ॥३१॥ आप इन बालकों को सबको ले जाकर दूर यहाँ से चले जाओ। इस कृष्ण की आज्ञा से बलराम तुरन्त उनको लेकर दूर चले गये थे ॥३२॥ महान् बल और पराक्रम वाले दानवेन्दु ने कृष्ण को देखकर लीला से ही उनको ग्रास करने लगा था जोकि कोप से जलती हुई अग्नि के समान थे ॥३३॥ कृष्ण के ग्रसने से वह दैत्य अत्यन्त दाह से युक्त होगया था और कृष्ण के अत्यन्त असह्य तेज के कारण मरने के करीब होगया था। फिर उस दैत्य ने उस विभु को जो

अति तेजस्वी थे, भय से उगल दिया था ॥३४॥ उसको कृष्ण के दर्शन मात्र से ही पुरानी स्मृति होगई थी। उसने अपने आपको समझ लिया था और जगतों के परम कारण कृष्ण को भी पहचान लिया था ॥३५॥ उस नेत्र के स्वरूप वाले ईश्वर का दर्शन करके उस दानव ने श्रुति से भी पर और गुणों से अतीत उसको जन्म के अनुसार यथागम स्तुति की थी ॥३६॥

वामनोऽसि त्वमंशेन मत्पितुर्यज्ञभिक्षुकः।
राज्यहर्ता च श्रीहर्ता सुतलस्थलदायकः ॥३७
बलिभक्तिवशो वीरः सर्वेशो भक्तवत्सलः।
शीघ्रं त्वं हिंस मां पापं शापाद्गर्दभरूपिणम् ॥३८
श्रुत्वानुमेने दैत्येन्द्रस्तवनं करुणानिधिः।
कथं करोति संहारमीदृशं भक्तमित्यहो ॥३९
अनुमन्य स्मृतिं तस्यसंजहारहरिः स्वयम्।
नहि युक्तोवधस्तोतुर्दुर्वक्तुर्विधिरीश्वरात ॥४०
दानवो मायया विष्णोर्विसस्मार पुनः स्वकम्।
दुरुक्तिं कण्ठदेशे तदधिष्ठानं चकारह ॥४१
उवाच श्रीहरिंदैत्यः कोपात् प्रस्फुरिताधरः।
मुनेसद्यो मत्तुंकामो दैवग्रस्तो विचेतनः ॥४२

दानव ने कहा—हे प्रभो! आप अंश से वामन हैं जोकि मेरे पिता के यहाँ यज्ञ के भिक्षुक बने थे। आप मेरे पिता के राज्य और श्री के हरण करने वाले हैं तथा सुतल लोक का स्थल प्रदान करने वाले हैं ॥३७॥ आप बलि की भक्ति के वश में रहने वाले—वीर—सबके स्वामी और भक्तों पर प्यार करने वाले हैं। अब आप मुझको शीघ्र ही मार दीजिए। मैं बड़ा पापी हूँ और शाप के कारण से ही इस गर्दभ के स्वरूप को प्राप्त करने वाला हुआ हूँ ॥३८॥ नारायण ने कहा—करुणा के निधि श्री कृष्ण ने दैत्येन्द्र के स्तवन का श्रवण कर उसे स्वीकार तो कर लिया किन्तु उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ था कि ऐसे अपने भक्त का अब संहार कैसे किया जावे ॥३९॥ फिर उसकी

स्मृति को मानकर हरि ने स्वयं उसका संहार किया था । जो स्तवन करने वाला है उसका वध युक्त नहीं है । जो दुर्वक्ता है उसी के वध की ईश्वर से विधि है ॥४०॥ विष्णु की माया से वह दानव फिर अपने को भूल गया था और दुरुक्ति ने उसके कण्ठ के भाग में अपना अधिकार कर लिया था ॥४१॥ वह दैत्य क्रोध से प्रस्फुरित अधरों वाला होकर श्री हरि से बोला था । हे मुने ! वह चेतना से सून्य होकर दैवग्रस्त होगया था और तुरन्त ही मरने की इच्छा वाला बन गया था ॥४२॥

ध्रुवं त्वं मर्त्तुकामोऽसि दुर्बुद्धे मानवार्भक ।
अद्यप्रस्थापयिष्यामि त्वामहं यममन्दिरम् ॥४३
आयासि जीवनाकाङ्क्षी मम तालवनं शिशो ।
न यास्यसि पुनर्गेहं बान्धवं न हि द्रक्ष्यसि ॥४४
न कंसो न जरासन्धो नरको न समो मम ।
देवाः कम्पन्ति मे नित्यं के चान्ये मत्समा भुवि ॥४५
न हि संहारकर्त्ता च मां संहर्त्तुं क्षमः शिवः ।
न च ब्रह्मा न विष्णुश्च न मृत्युः काल एव च ॥४६
मम तालतरून् भङ्क्त्वा पातयित्वा फलानि च ।
अहंकारोऽति सहसा किमहो कस्य तेजसा ॥४७
कस्त्वं वद वटो सत्यं कमनीयोऽतिसुन्दरः ।
दुर्लभं जीवनं दातुं मह्यं कथमिहागतः ॥४८
इत्युक्त्वा मस्तके कृत्वा प्रेरयित्वा तु तं बली ।
दूरतः पातयामास श्रीकृष्णं मरणोन्मुखः ॥४९

दैत्य ने कहा—हे मानव के बच्चे ! हे दुष्ट बुद्धि वाले ! तू निश्चय ही मेरे हाथ से मरना चाहता है । मैं आज तुझे यमराज के यहाँ अवश्य ही पहुँचा दूंगा ॥४३॥ हे शिशो ! तू अपने जीवन की इच्छा रखते हुए मेरे इस तालवन में आगया है-यह कैसे आश्चर्य की बात है । किन्तु अब तू जीवित यहाँ से अपने घर जाकर बन्धुओं को फिर नहीं देख पायेगा ॥४४॥ कंस—जरासन्ध और नरक इनमें कोई भी मेरे समान बलवान नहीं है । मुझसे समस्त देवगण भी काँपते रहा करते हैं । मेरी समानता रखने वाला

अन्य इस भूतल में कोई भी नहीं है। मेरे संहार करने वाला भी कोई नहीं उत्पन्न हुआ है। यदि मेरा कोई संहार करने की क्षमता रखता है तो वह केवल एक शिव ही है। उसके अतिरिक्त ब्रह्मा–विष्णु–मृत्यु और काल कोई भी मेरे संहार करने में समर्थ नहीं है ॥४५-४६॥ मेरे इस वन के ताल के वृक्षों को भग्न करके और उनके फलों को गिरा कर सहसा तुझे अहङ्कार हो गया है। यह तो बतादे कि यह ऐसा घमण्ड तुझे किसके तेज से हुआ है ? ॥४७॥ हे बालक ! तू मुझे यह तो सत्य बतला दे कि तू इतना सुन्दर कौन है ? इस अपने दुर्लभ जीवन को मुझे देने के लिये यहाँ क्यों आगया है ॥४८॥ इतना कह कर उस बलवान् दैत्य ने कृष्ण को अपने मस्तक पर करके तथा घुमा कर मरणोन्मुख उसने श्रीकृष्ण को दूर गिरा दिया था ॥४९॥

पातयित्वाच तं भूमौ विषाणाभ्यां जघानसः ।
कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेणतद्विषाणौ बभञ्जतुः ॥५०
दैत्यो भग्नविषाणश्च तमीशं कोपतो मुने ।
जग्रास चर्वणं कर्त्तुं भग्नदन्तो बभूव ह ॥५१
तेजसा दग्धवक्त्रश्च तमुज्जग्राह तत्क्षणे ।
जज्वाल व्यथितः कोपाद्ददार खुरतोमहीम् ॥५२
घूर्णयित्वातु लांगूलं शब्दं कृत्वा भयानकम् ।
स जगाम शिशुस्थानंदुद्रुवुर्बालिकाभिया ॥५३
बलञ्च प्रेरयामास मस्तकेन महाबली ।
बलो मुष्टिं ददौ तस्मै मूर्च्छामाप ततोऽसुरः ॥५४
क्षणेन चेतनां प्राप्य जगाम हरिसन्निधिम् ।
वज्रमुष्टयाच व्यथितः पुनर्मूर्च्छामवापसः ॥५५
पुनश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ व्यथाकुलः ।
उत्ससर्ज बृहल्लेडं (ण्ड) मूत्रञ्च भयमापह ॥५६

उसने श्रीकृष्ण को भूमि पर गिरा कर अपने सींगों के द्वारा मारना आरम्भ कर दिया था किन्तु कृष्ण के अङ्ग के संस्पर्श होने से ही उसके दोनों विषाण भग्न हो गये थे ॥५०॥ हे मुने ! दैत्य ने भग्न विषाण

वाला होकर श्रीकृष्ण पर बड़ा कोप किया था और उसका चर्वण करने के लिये उसको ग्रस लिया था किन्तु चर्वण करने का आरम्भ करते ही उसके सब दाँत भग्न हो गये थे ॥५१॥ श्रीकृष्ण के तेज से उसका मुख दग्ध हो गया था और उसी क्षण में उसको उगल दिया था। वह अत्यन्त व्यथा युक्त होकर जलने लगा था और कोप से खुरों से भूमि को खोदने लगा था ॥५२॥ उस दानव ने अपनी पूंछ को घुमा कर तथा मुंह से अत्यन्त भीषण शब्द करके फिर वह वहाँ गया था जहाँ सभी बालक स्थित थे। बालक भय से भाग गये थे ॥५३॥ उस महान् बलवान ने अपने मस्तक से बलराम को प्रेरित किया था। बलदेव ने उसमें एक मुक्का जमा दिया था जिससे वह असुर वेहोश हो गया था ॥५४॥ एक क्षण के पश्चात् वह चेतना प्राप्त करके हरि के समीप में गया था फिर उसमें एक वज्र मुष्टि लगाई थी जिससे वह व्यथित होकर पुनः मूर्छा को प्राप्त हो गया था ॥५५॥ इसके उपरान्त व्यथा से आकुल होकर वह पुनः चेतना को प्राप्त हो गया था और उठ खड़ा हो गया था। उसने भय से एक बहुत बड़ा लेंड और मूत्र का उत्सर्ग किया था ॥५६॥

क्षणात् सन्धिक्षणंप्राप्य महाबलपराक्रमः।
कृत्वाशिरसिगोविन्दं घूर्णयामासदानवः ॥५७
पातयामास भूमौ तं घूर्णयित्वा पुनः पुनः।
उत्पाट्य तालवृक्षं तं ताड़यामास माधवः ॥५८
यथा केशापहारेण मानवस्य भवेद् व्यथा।
तथा बभूव दैत्यस्य तालवृक्षस्य ताड़नात् ॥५९
गोवर्धनं समुत्पाट्य घातयामास तं विभुः।
पपात वेगाच्छैलेन्द्रस्तस्योपरि महामुने ॥६०
पर्वतस्य प्रहारेण मूर्च्छामाप महाबलः।
बभूव पलिताङ्गश्च रुधिरञ्च समुद्वहन् ॥६१
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ रुषासुरः।
गृहीत्वा पर्वतश्रेष्ठं प्रेरयामास माधवम् ॥६२

दृष्ट्वा शैलमुपतन्तं वेगेन मधुसूदनः ।
जग्राह दक्षिणकरे यथेक्षुदण्डवत्प्रभुः ॥६३
पूर्वस्थाने पर्वतं तं स्थापयामास कौतुकात् ।
गृहीत्वादैत्यकर्णाग्रं पातयामास दूरतः ॥६४

एक क्षण में सन्धि का क्षण पाकर महान् बल और पराक्रम वाले उस दैत्येन्द्र ने गोविन्द को अपने मस्तक पर करके घुमा दिया था ॥५७॥ इस तरह बार-बार घुमा कर उस गोविन्द को भूतल पर गिरा दिया था। माधव ने एक ताल का वृक्ष उखाड़ कर उस पर उससे प्रहार किया था ॥५८॥ जिस प्रकार से केशों के अपहार से मानव को व्यथा हुआ करती है उसी तरह से उस दैत्य को ताल वृक्ष के द्वारा ताड़न से हुई थी ॥५९॥ इसके पश्चात् विभु ने गोवर्द्धन को उठा कर उस पर घात की थी। हे महा मुने ! वह शैलेन्द्र उस दैत्य के ऊपर बड़े वेग से गिरा था ॥६०॥ पर्वत के प्रहार से वह महान् बलवान् मूर्च्छा को प्राप्त हो गया था और मुख से रक्त का उद्वमन करता हुआ पलित अङ्ग वाला हो गया था ॥६१॥ फिर वह असुर थोड़ी ही देर में होश में आकर क्रोध के साथ खड़ा हो गया था। उसने उस श्रेष्ठ पर्वत को ग्रहण करके माधव के ऊपर गिरा दिया था ॥६२॥ बड़े वेग से ऊपर से आते हुए शैल को देख कर मधुसूदन ने उसे दाहिने हाथ में ईख के दण्ड की भाँति ग्रहण कर लिया था ॥६३॥ फिर माधव ने उस पर्वत को कौतुक से पूर्व के ही स्थान पर स्थापित कर दिया था और दैत्य के कर्णों के अग्र भाग को पकड़ कर दूर उसे गिरा दिया था ॥६४॥

उत्पत्य च महावेगाच्चकार वेष्टनं हरेः ।
पृथिवीं घर्षयामास तीक्ष्णाग्रेण खुरेण च ॥६५
प्रगृह्य श्री हरिं वेगात्कृत्वा मूर्ध्नि महासुरः ।
उत्पपात मनोयायी लीलया लक्षयोजनम् ॥६६
प्रहरञ्च तयोर्युद्धं निर्लक्षे च बभूव ह ।
ततो गृहीत्वा श्रीकृष्णं पपात धरणीतले ॥६७

पुनर्मुहूर्त्तं युद्धञ्च बभूव भूतले तयोः ।
मुदा हरिः प्रशशंस प्रहस्य दानवेश्वरम् ॥६८
मद्भक्तस्य बलेः पुत्र धन्यंत्वज्जीवनं परम् ।
स्वस्त्यस्तुते दानवेन्द्र वत्सनिर्वाणतां व्रज ॥६९
मद्दर्शनं स्वस्ति बीजं परं निर्वाणकारणम् ।
सर्वाधिकं सर्वपरं लभ स्थानं मनोहरम् ॥७०

उसने उठ कर फिर बड़े भारी वेग से हरि का वेष्टन किया था और तीक्ष्ण अग्र भाग वाले खुर से पृथिवी को घर्षित करने लगा था ॥६५॥ उस दैत्य ने हरि को पकड़ कर वेग से मस्तक पर करके मनोयायी वह महान् असुर लीला से ही एक लक्षयोजन ऊपर उछल गया था ॥६६॥ वहाँ आकाश में एक प्रहर तक निर्लंब में उन दोनों का युद्ध हुआ था और इसके पश्चात् श्रीकृष्ण कोग्रहण कर धरणीतल में गिर पड़ा था ॥६७॥ फिर भूतल में उन दोनों का युद्ध एक मुहूर्त्त तक हुआ था। हरि ने प्रसन्नता से दानवेश्वर की हँस कर बहुत प्रशंसा की थी ॥६८॥ श्री कृष्ण ने कहा—मेरे भक्त बलि के पुत्र ! तेरा जीवन परम धन्य है। हे दानवेन्द्र ! तेरा कल्याण हो। हे वत्स ! अब तू निर्वाणता को प्राप्त कर ॥६९॥ मेरा दर्शन कल्याण का बीज होता है और निर्वाण पद देने वाला है। अब तू सबसे अधिक–सबसे पर मनोहर स्थान की प्राप्ति कर ॥७०॥

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः सस्मार चक्रमुत्तमम् ।
सूर्य्यकोटिसमं दीप्तया जग्राह तत् सुदर्शनम् ॥७१
चिक्षेप भ्रामयित्वा च षोड़शारमनुत्तमम्।
चिच्छेद लीलया वध्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥७२
पपात मस्तकं भूमौ दानवस्य महात्मनः ।
तेजःसमूह उत्तस्थौ शतसूर्य्यसमप्रभः ॥७३
विलोक्य हरिलोकं संश्लिष्टं कृष्णपदाम्बुजे ।
सम्प्राप्य परमं मोक्षमहो दानवपुङ्गवः ॥७४

इस प्रकार से यह कह कर श्रीकृष्ण ने उत्तमच क्र का स्मरण किया था। वह सुदर्शनचक्र करोड़ों सूर्यों के समान दीप्ति वाला था। उस को हरि ने ग्रहण किया था ॥७१॥ उस सोलह आर वाले अत्यन्त उत्तम चक्र को हरि ने घुमाकर उस दैत्य प्रक्षिप्त किया था ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर के द्वारा वध्य करने के योग्य उसको उस चक्र ने लीला से ही छिन्न कर दिया था ॥७२॥ महान् आत्मा वाले उस दानव का मस्तक कट कर भूमि पर गिर गया था। उससे एक तेज का समूह जो शत सूर्यों के समान था उत्थित हुआ था ॥७३॥ उसने हरि लोक को देखा और फिर श्री कृष्ण के पद कमल में वह संश्लिष्ट हो गया था। दानवों में श्रेष्ठ ने परम मोक्ष की प्राप्ति कर ली थी ॥७४॥

गोपीवस्त्रापहरणे जयदुर्गाव्रतकथनम्

शृणु नारद वक्ष्यामि श्रीकृष्णचरितं पुनः ।
गोपीनां वस्त्रहरणं वरदानं मनीषितम् ॥१
हेमन्ते प्रथमे मासि गोपिकाः काममोहिताः ।
कृत्वा हविष्यं भक्त्या च यावन्मासं सुसंयुताः ॥२
स्नात्वा सूर्य्यसुतातीरे पार्वतीं वालुकामयीम् ।
कृत्वावाह्य च मन्त्रेण पूजां कुर्वन्ति नित्यशः ॥३
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च मनोहरैः ।
नानाप्रकारपुष्पैश्च माल्यैर्बहुविधैरपि ॥४
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रैर्नानाफलैर्मुने ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च वाद्यैर्नानाविधैरपि ॥५
हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते ॥६
मन्त्रणानेन देवेशीपरिहारं विधाय च ।
ततः कृत्वा तु संकल्पं पूजयेन्मूलमन्त्रतः ॥७

इस अध्याय में गोपियों के वस्त्रों के अपहरण में जय दुर्गा व्रत का निरूपण किया जाता है। नारायण ने कहा—हे नारद ! मैं श्री कृष्ण के

चरित को पुनः कहता हूँ उसका तुम श्रवण करो । इस चरित में गोपियों के वस्त्रों के अपहरण का तथा अपने अभीप्सित वरदान का वर्णन किया गया है ।।१।। हेमन्त ऋतु में प्रथम मास में गोपिकाऐं काम से मोहित हो गईं थीं । उन्होंने भक्ति भाव से हविष्य को बनाकर पूरे मास तक सुसंयत होने का नियम ग्रहण किया था ।।२।। वे गोपियां प्रतिदिन सूर्य सुता (यमुना) के तीर पर स्नान करके बालुकामयी पार्वती देवी की प्रतिमा बनाकर मन्त्र के सविधि आवाहन करके उसकी नित्य ही पूजा करती थीं ।।३।। पूजा के उपचारों में सभी आवश्यक वस्तुऐं थीं । चन्दन—अगुरु—कस्तूरी—और मनोहर कुङ्कुम के द्वारा तथा अनेक प्रकार के सुन्दर सुगन्धित पुष्प एवं बहुत तरह की मालाओं के द्वारा देवी की पूजा करती थी ।।४।। धूप—दीप—नैवेद्य—वस्त्र और नाना भांति के फलों से तथा मणि–मुक्ता और प्रवालों के द्वारा देवी की अर्चना की जाती थी एवं अनेक मनोहर वाद्यों से देवी को प्रसन्न किया करती थीं ।।५।। हे मुने ! गोपियाँ देवी का अर्चन करके प्रार्थना किया करती थीं कि हे देवि ! आप समस्त जगतों की जननी हैं और सृष्टि—स्थिति और संहार के करने वाली हैं । हे माता ! हे सुव्रते ! आप कृपा कर हम सबको नन्द गोप के पुत्र को कान्त वना देने का वरदान प्रदान करें ।।६।। इस मन्त्र के द्वारा देवीशी का परिहार करके फिर संकल्प करनी थीं । और मूल मन्त्र के द्वारा पूजा किया करती थीं ।।७।।

एवं पूर्णे च मासे च समाप्तिदिवसे तथा ।
स्नातुं प्रजग्मुर्गोप्यश्च वस्त्राण्याधाय तत्तटे ।।८

नानाविधानि द्रव्याणि रत्नमूल्यानि नारद ।
पीतलोहित शुक्लानि चारुणि मिश्रितानि च ।।९

तीरावृतान्यसंख्यानि तैश्च तीरं सुशोभनम् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीवायुना सुरभीकृतम् ।।१०

नैवेद्यैश्च बहुविधैः कालदेशोद्भवैः फलैः ।
धूपैः प्रदीपैः सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्च विराजितम् ।।११

जले क्रीडोन्मुखा गोप्यो बभूवुः कौतुकेन च ।
नग्नाः क्रीड़ाभिरासक्ताः श्रीकृष्णार्पितमानसाः ॥१२

दृष्ट्वा कृष्णश्च वस्त्राणि द्रव्याणि विविधानि च ।
वासांस्यादाय वस्तूनि चखाद शिशुभिः सह ॥१३

गत्वा दूरञ्च गोपालास्तस्थुः सर्वे मुदान्विताः ।
वस्त्राणि पुञ्जीकृत्यादौ ऊचुः स्कन्धेऽतिलोलुपाः ॥१४

इस प्रकार से एक मास के पूर्ण हो जाने पर जब इस पूजन के नियम की समाप्ति का दिन प्राप्त हुआ था तो वे समस्त गोपियाँ यमुना के तट पर वस्त्र लेकर स्नान करने को गईं थी ॥८॥ हे नारद ! उनके साथ अनेक प्रकार के रत्न मूल्य द्रव्य थे जो पीत–लोहित और शुक्ल—सुन्दर और मिश्रित थे ॥९॥ ये समस्त द्रव्य असंख्य थे और यमुना के तीर को आवृत किये हुए थे । इन सबसे यमुना का तट शोभित हो रहा था । चन्दन—अगुरु—कस्तूरी की वायु से तट सुगन्धित हो गया था ॥१०॥ वहाँ बहुत प्रकार के नैवेद्य थे तथा काल और देश में होने वाले फल थे, इन से एवं धूप–दीप–सिन्दूर–और कुङ्कुम से वह यमुना का तट विभूषित हो रहा था ॥११॥ उस समय में गोपियाँ कौतुक से यमुना के जल में क्रीड़ोन्मुख हो गईं थीं । समस्त गोपियाँ जल की क्रीड़ा में आसक्त—नग्न और श्री कृष्ण में अपना मन अर्पित करने वाली थीं ॥१२॥ कृष्ण ने इस गोपियों की जल क्रीड़ा को देखा और उन के वस्त्र तथा अन्य समस्त द्रव्य उठा लिये थे । जो वस्तुऐं खाने के योग्य थीं उनको बालकों के साथ वह चखने लगे थे ॥१३॥ सब गोपाल दूर जाकर बड़े आनन्द से युक्त होकर स्थित हो गये थे । सब वस्त्रों को एकत्रित करके स्कन्ध में अत्यन्त लोलुप वे आदि में बोले ॥१४॥

श्रीदामा च सुदामा च वसुदामा तथैव च ।
सुबलश्च सुपार्श्वश्च शुभाङ्ग सुन्दरस्तथा ॥१५

चन्द्रभानुर्वीरभानुः सूर्य्यभानुस्तथैव च ।
वसुभानू रत्नभानु गोपालाद्वादश स्मृताः ॥१६

श्रीकृष्णो बलदेवश्च प्रधानाश्च चतुर्दश ।
गोपा हरेर्वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुने ॥१७

वस्त्राण्यादाय ते सर्वे तस्थुरेकत्र दूरतः ।
शतशः पुञ्जिकास्तत्र स्थापयामासुरुन्मुखाः ॥१८
किञ्चिद्वस्त्रं समादाय कृत्वा च पुञ्जिकां मुदा ।
समारुह्य कदम्बाग्रमुवाच गोपिकां हरिः ॥१९

भो भो गोपालिकाः सर्वा विनष्टा व्रतकर्मणि ।
कृत्वा विधानं मद्वाक्यं श्रुत्वा क्रीड़त मन्मथात् ॥२०

संकल्पिते व्रतार्हे च मासे मंगलकर्मणि ।
यूयं नग्नाः कथं तोये व्रतांगहानिकारिकाः ॥२१

श्रीदामा—सुदामा—वसुदामा—सुबल—सुपार्श्व—शुभाङ्ग—सुन्दर—चन्द्रभानु—वीरभानु—सूर्यभानु—वसुभानु ये बारह गोपाल कहे गये हैं ॥१५-१६॥ श्री कृष्ण और बलराम ये प्रधान थे । इस तरह गोपालों का पूर्ण मण्डल चौदह का था । हे मुने ! हरि के समान अवस्था वाले मित्र गोपाल करोड़ों की संख्या में थे ॥१७॥ वे सब गोपियों के वस्त्रों को लेकर वहां से दूर एक स्थान में स्थित हो गये थे । इस तरह वहाँ सैकड़ों पुञ्जिकाऐं उन उन्मुखों ने स्थापित करदी थीं ॥१८॥ उनमें से कुछ वस्त्रों को लेकर उनकी आनन्द से पुञ्जिका बना कर कदम्ब की ऊंची शाखा पर चड़कर श्रीहरि गोपिकाओं से कहा—॥१९॥ श्री कृष्ण बोले—हे गोपालिकाओ ! आपने जो यह व्रत का कर्म किया है उस में आप सभी विनिष्ट हो गई हैं । मेरे वाक्य को श्रवण कर के विधान करने के पश्चात् मन्मथ से क्रीड़ा करो ॥२०॥ तुमने जो एक मास पर्यन्त व्रत के योग्य मङ्गल कर्म का सङ्कल्प किया है उसमें तुम लोग नग्न होकर यमुना के जल में कैसे क्रीड़ा कर रही है ? यह तो तुम्हारे व्रतांग की हानि करने वाला कर्म है ॥२१॥

परिधेयानि वासांसि पुष्पमाल्यानि यानि च ।
व्रतार्हाणि च वस्तूनि केन नीतानि वोऽधुना ॥२२

व्रते तु नग्ना यास्नातिर्ता रुष्टोवरुणःस्वयम् ।
वरुणानुचरा वासश्चक्रुर्वस्तुविनिर्हृतिम् ॥२३
कथं यास्यथ नग्नाश्च व्रतस्य किं भविष्यति ।
व्रताराध्या कथं सा च वस्तूनि किं न रक्षति ॥२४
चिन्तां कुरुत तां पूज्यां तुष्टाव बलिरीश्वरीम् ।
युष्माकमीदृशीदेवीनशक्तावस्तुरक्षणे ॥२५
कथं व्रतफलं सावो दातुं शक्तासुरेश्वरी ।
फलं प्रदातुं या शक्ता सा शक्ता सर्वकर्मणि ॥२६
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा चिन्तामापुव्रजस्त्रियः ।
ददृशुर्यमुनातीरं वस्त्रवस्तुविहीनकम् ॥२७
चक्रुर्विषादं तोये च नग्नास्ता रुरुदुर्भृशम् ।
क्व गतानि च वस्त्राणि वस्तूनीत्यूचुरत्र नः ॥२८
कृत्वा विषादं तत्रैव तमूचुर्गोपकन्यकाः ।
पुटाञ्जलियुताः सर्वा भक्त्या विनयपूर्वकम् ॥२९

तुम्हारे परीधान करने के योग्य वस्त्र और जो पुष्पों की माला आदि व्रत के योग्य वस्तुऐं हैं वे सब आपकी इस समय किस ने लेली हैं ? ॥२२॥ इस व्रत के काल में जो नग्न होकर स्नान करती है उससे वरुण देव स्वयं बहुत रुष्ट हैं । वरुण के अनुचरों ने ही तुम्हारे वस्त्रों को एवं अन्य वस्तुओं का अपहरण किया है ॥२३॥ अब तुम यहाँ से नग्न होकर कैसे जाओगी और तुम्हारे व्रत का क्या फल होगा ? वह व्रत के द्वारा आराध्या देवी कैसी है ? क्या वह तुम्हारी वस्तुओं की भी रक्षा नहीं करती है ? ॥२४॥ उसी देवी का चिन्तन करो और पूज्य उसका स्तवन करो तथा उस ईश्वरी को बलि दो । आपकी ऐसी देवी है कि वह आपकी वस्तुओं की भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है ॥२५॥ वह सुरेश्वरी आप को व्रत का फल किस तरह प्रदान करने में समर्थ होगी । जो फल प्रदान करने की क्षमता रखती है वह सभी कर्मों के करने में समर्थ हुआ करती है ॥२६॥ श्री कृष्ण के उस वचन का श्रवण कर व्रज की स्त्रियाँ बड़ी चिन्तित हो गईं थीं क्योंकि उन्होंने यमुना के तट को वस्तु और वस्त्रों

से विहीन देखा था ।।२७।। वे जलमें ही स्थित होती हुईं विषाद करने लगीं थीं और नग्न वे अत्यन्त रुदन कर रही थीं वे कह रही थीं कि हमारे वस्त्र तथा वस्तुऐं कहाँ गये जो यहां पर ही रक्खे हुए थे ।।२८।। इस तरह से विषाद करके वहाँ पर गोप कन्यकाऐं उससे कहने लगी थीं। वे सब हाथों को जोड़े हुए थीं और भक्ति के भाव से विनय पूर्वक श्रीकृष्ण से उन्होंने कहा था ।।२६।।

परिधेयानि वस्त्राणि किंकरीणां सदीश्वरः ।
निवोधयात्मानमेव स्पर्श कर्त्तुं त्वमर्हसि ।।३०
व्रतार्हाणि च वस्तूनि देवस्वानि च साम्प्रतम् ।
अदत्तानि नोचितानि गृहीतुं वेदविद्वद ।।३१
देहि धौतानि धृत्वा च करिष्यामो व्रतं वयम् ।
वस्तुनान्येन गोविन्द वस्तूनां भक्षणं कुरु ।।३२
एतस्मिन्नंतरे तत्र श्रीदामा वस्त्रपुञ्जिकाम् ।
दर्शयित्वा च ताः सर्वा दूरं दुद्रावतत्पुरः ।।३३
दृष्ट्वा सवस्त्रं गोपालं सर्वासामीश्वरीपरा ।
सर्वावयस्याश्चोवाच कोपयुक्ताजलप्लुता ।।३४

गोपालिकाओं ने कहा—आप सदीश्वर हैं अपने आपको ही समझा लेवें। क्या हम किङ्करियों के परीधान के योग्य वस्त्रों का आप स्पर्श करने के योग्य होते हैं ? ।।३०।। आप तो वेदों के ज्ञाता हैं। आप ही हम को बताइये कि जो व्रत के योग्य वस्तुऐं है वे इस समय देवस्व हैं। जब तक देवता के लिये उनको समर्पित नहीं किया गया है क्या उनका इस तरह ग्रहण कर लेना उचित है ? ।३१। आप हमको उन्हें दे दें। धौतों को धारण करके हम व्रत को सम्पन्न करेंगी। हे गोविन्द ! अन्य वस्तु के द्वारा आप वस्तुओं का भक्षण करें ।।३२।। इसी अन्तर में वहाँ पर श्रीदामा ने वस्त्रों की पुञ्जिका को गोपियों को दिखाकर उनके सामने ही उन सब से दूर वह भाग गया था ।।३३।। सब की परा ईश्वरी ने वस्त्रों के सहित गोपाल को देख कर जल में ही प्लुतु होती हुई कोप युक्त होकर अपनी समस्त समवयस्क सहेलियों से बोली ।।३४।।

हे सुशीले शशिकले हे चन्द्रमुखि माधवि ।
कदम्बमाले हे कुन्ति यमुने सर्वमङ्गले ॥३५
हे पद्ममुखि सावित्रि पारिजाते च जाह्नवि ।
सुधामुखि शुभे पद्मे हे गोरि हे स्वयंप्रभे ॥३६
कालिके कमले दुर्गे हे सरस्वति भारति ।
अपूर्णे रति हे गङ्गे चाम्बिके सति सुन्दरि ॥३७
कृष्णप्रिये मधुमति चम्पे चन्दननन्दिनि ।
यूयं सर्वाः समुत्थाय बद्ध्वानयत वल्लभम् ॥३८
सर्वा राधाज्ञया तूर्णं समुत्थाय जलात् क्रुधा ।
प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्य पाणिना ॥३९॥
एतासां सहचारिण्यो गोप्यस्तूर्णं सहस्रशः ।
प्रजग्मुस्तेन रूपेण कोपादारक्तलोचनाः ॥४०
वेगेन दुद्रुवुः सर्वाः श्रीदामानञ्च बालिकाः ।
वेगेन च प्रधावन्तं बिभ्रन्तं वस्त्रपुञ्जिकाम् ॥४१
जगामशीघ्रं श्रीदमा यत्र गोपाः सहांशुकाः ।
जवेन दुद्रुवुर्गोप्यस्तत्पश्चाद्बलसंयुताः ॥४२

श्री राधिका ने कहा—हे सुशीले ! हे शशिकिले ! हे चन्द्रमुखि ! हे माधवि ! हे कदम्ब माले ! हे कुन्ति ! हे यमुने ! हे गौरि ! हे स्वयं प्रभे ! हे कालिके ! हे कमले ! हे दुर्गे ! हे सरस्वति ! हे भारति ! हे अपूर्णे ! हे रति ! हे गंगे ! हे अम्बिके ! हे सति ! हे सुन्दरि ! हे कृष्ण प्रिये ! हे मधुमति ! हे चम्पे ! हे चन्दन नन्दिनि ! तुम सब उठ कर खड़ी हो जाओ और इस वल्लव को बाँध कर ले आओ ॥३५-३८॥ श्री राधा की आज्ञा से सब गोपियाँ शीघ्र जल से क्रोध में आकर निकल आईं और पाणि से अपनी योनि को ढाँक कर चलदी थीं ॥३९॥ इनकी सह चारिणी सहस्रों अन्य गोपियाँ भी क्रोध से रक्त नेत्रों वाली होती हुई उसी रूप से चलदी थीं ॥४०॥ समस्त बालिकाऐं बड़े वेग से श्रीदामा के पीछे दौड़ीं थीं जो कि वस्त्रों की पुञ्जिका को लेकर वेग के साथ आगे

भागा जारहा था ॥४१॥ श्रीदामा शीघ्र ही वहाँ पहुँच गया था जहाँ अन्य गोप वस्त्रों के सहित संस्थित थे। गोपियाँ भी बड़े वेग के साथ बल से संयुत होती हुई उनके पीछे से दौड़ लगा रहीं थीं ॥४२॥

वस्त्रचोरांश्च गोपाश्च वेष्टयामासुराशु ताः ।
भियः प्रदुद्रुवुर्बाला यत्र कृष्णः सहांशुकः ॥४३
श्रीकृष्णसहितान् बालान् वरयामासुराशु च ।
गोपिकानां भिया गोपा ददुर्वस्त्राणि माधवम् ॥४४
माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा ।
कदम्बवृक्षः शुशुभे वस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥४५
वस्त्राणां पुञ्जिकाः सर्वाः स्कन्धेषु विनिधाय च ।
उवाच गोपिकाः कृष्णः परिहासपरं वचः ॥४६

वस्त्रों की चोरी करने वाले गोपों को उन गोपियों ने शीघ्र ही घेर लिया था। उस समय बालक भय से वस्त्रों को लेकर दौड़ते हुए वहाँ पहुंच गये थे जहाँ श्री कृष्ण विद्यमान थे ॥४३॥ गोपियों ने श्री कृष्ण के सहित सब बालकों को शीघ्र वारण किया था। गोपिकाओं के भय से गोपों ने समस्त वस्त्र माधव को दे दिये थे ॥४४॥ माधव ने उन वस्त्रों को वृक्ष के स्कन्ध—स्कन्ध पर स्थापित कर दिया था। वह कदम्ब का वृक्ष नाना भाँति के वस्त्रों से अत्यन्त सुशोभित हो गया था ॥४५॥ वस्त्रों की पुञ्जिकाओं को कदम्ब के स्कन्धों में लटका कर कृष्ण ने परिहास पूर्वक वचन गोपियों से कहे थे ॥४६॥

भोभो गोपालिकानग्नाइदानीं कि करिष्यथ ।
वस्त्रयाच्ञांप्रकर्तुञ्चकुरुताशु पुटाञ्जलिम् ॥४७
गत्वा वदत युष्माकमीश्वरीमथ राधिकाम् ।
करोतु शीघ्रं वस्त्राणि याच्ञां कृत्वा पुटाञ्जलिम् ॥४८
अन्यथाहं न दास्यामियुष्मभ्यमंशुकानि च ।
युष्माकमीश्वरी राधाकिंकरिष्यतिमेऽधुना ॥४९
व्रताराध्या च या देवी सा वा मे किं करिष्यति ।
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रूत यूयञ्च राधिकाम् ॥५०

श्री कृष्ण ने कहा—हे गोपालिकाओ ! अब नग्न हैं क्या करेंगी ? वस्त्रों की याचना करना चाहती हो तो शीघ्र दोनों हाथ जोडो ॥४७॥ जाकर तुम अपनी ईश्वरी राधिका से भी कह दो कि वह भी वस्त्रों की याचना करने के लिये पुटाञ्जलि करें ॥४८॥ अन्यथा बिना हाथ जोड़े हुए मैं किसी भी प्रकार से तुम्हारे वस्त्रों को नहीं दूंगा तुम्हारी स्वामिनी राधा मेरा इस समय क्या अपकार कर सकेंगी ॥४९॥ आपकी व्रत के द्वारा जो आराधना करने के योग्य देवी है वह भी मेरा क्या कर सकती हैं। इस प्रकार से यह सब तुम से कह दिया है अब तुम जाकर अपनी स्वामिनी राधा से कह दो ॥५०॥

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ताः सर्वा गोपकन्यकाः ।
वीक्ष्य लोचनकोणेन प्रजग्मू राधिकान्तिकम् ॥५१
चक्रुर्निवेदनं गत्वा यदुवाच हरिःस्वयम् ।
श्रुत्वा जहासः सा राधा बभूव कामपीड़िता ॥५२
श्रुत्वा तासाञ्च वचनं पुलकाञ्चितविग्रहा ।
न जगाम हरेः स्थानं व्रीड़या सस्मितासती ॥५३
जले योगासनं कृत्वा दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम् ।
ब्रह्मेशानन्तु धर्माणां वन्द्यमीप्सितदं परम् ॥५४
स्मारं स्मारं पदाम्भोजं साश्रुसम्पूर्णलोचना ।
भावातिरेकात्प्राणेशन्तुष्टाव निर्गुणंपरम् ॥५५

श्री कृष्ण के इस वचन को श्रवण करके उन सब गोपियों ने अपने नेत्र के कोने से देखकर फिर वे सब राधिका के समीप में चली गई थीं ॥५१॥ वहां जाकर उनने राधिका से वह सब निवेदन कर दिया था जो स्वयं हरि ने उनसे कहा था। यह श्रवण कर राधा [हंस] गई थीं और काम से पीड़ित हो गई थीं ॥५२॥ उन गोपियों के वचन को सुनकर राधा का सम्पूर्ण शरीरांग पुलकायमान हो गया था। वह लज्जा से स्मित युक्त होती हुई सती हरि के उस स्थान पर नहीं गई थी। फिर राधा ने उस यमुना के जल में ही बैठ कर योग का आसन जमाकर श्री कृष्ण चरण कमलों का ध्यान किया था जो कि ब्रह्मेशान—धर्मों के वन्दनीय और

परम ईप्सित थे ॥५३-५४॥ राधा श्री कृष्ण के चरणकमलों को बार-बार स्मरण करके नेत्रों में आँसू भर लाईं। उस समय राधा ने भावातिरेक युक्त होकर प्राणेश का स्तवन किया था ॥५५॥

७४—रासक्रीड़ाप्रस्ताववर्णनम्

त्रिषु मासेष्वतीतेषु तासाञ्च हरिणा सह ।
वद केन प्रकारेण बभूव तनुसङ्गमः ॥१
वृन्दावनं किंप्रकारं किंविध रासमण्डलम् ।
हरिरेकस्ताश्च बह्व्यः केन क्रीड़ा बभूव ह ॥२
कुतूहलं भवति मे इदं श्रोतुं नवं नवम् ।
कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्त्तन ॥३
कथा पुराणसाराणां रासयात्रा हरेरहो ।
हरिलीलाः पृथिव्यान्तु सर्वाः श्रुतिमनोहराः ॥४
नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणः स्वयम् ।
प्रहस्य सुप्रसन्नास्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥५
एकदा श्रीहरिर्नक्तं वनं वृन्दावनं ययौ ।
शुभे शुक्लत्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने ॥६
यूथिकामालतीकुन्दमाधवीपुष्पवायुना ।
वासितं कलनादेन मधुभ्राणां मनोहरम् ॥७
नवपल्लवसंयुक्तं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् ।
नवलक्षरासवाससंयुक्तं सुमनोहरम् ॥८
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन चवासितम् ।
कर्पूरान्वितताम्बूलभोगद्रव्यसमन्वितम् ॥९

इस अध्याय में रास क्रीड़ा के प्रस्ताव का निरूपण किया जाता है। नारद ने कहा—हरि के साथ उनके तीन मास व्यतीत हो जाने पर उनका किस प्रकार से शरीर का सङ्गम हुआ था यह बताने की कृपा करें ॥१॥ वृन्दावन किस प्रकार का था और उसमें भी रासमण्डल बना हुआ था वह किस तरह का था। हरि तो एक हरि थे और गोपिकाऐं बहुत-सी थीं। उनके साथ किस रीति से क्रीड़ा हुई थी ? ॥२॥ हे पुण्य श्रवण

कीर्त्तन ! हे महाभाग ! मुझे इसे श्रवण करने का नवीन-नवीन कुतूहल होता है। आप इसे कहिए ॥३॥ हरि की रासयात्रा पुराणों के सारों की कथा है। पृथिवी में सभी हरि कीलीला श्रवण करने में अत्यन्त सुन्दर होती हैं ॥४॥ सूतजी ने कहा—नारद के इस वचन को सुनकरन ारायण ऋषि स्वयं प्रहर्षित हुए और सुप्रप्रन्न मुख वाले उन्होंने उसे कहना आरम्भ किया था ॥५॥ नारायण बोले—एक बार हरि रात्रि के समय में वृन्दावन नामक वन में गये थे। हे मुने ! शुक्लपक्ष की शुभ त्रयोदशी में पूर्ण चन्द्र के उदय होने का वह समय था ॥६॥ वह वृन्दावन यूथिका—मालती—कुन्द—माधवी लताओं के पुष्पों की वायु से सुवासित था और मधुकरों के कलनाद से अत्यन्त मनोहर हो रहा था ॥७॥ नवीन पल्लवों से युक्त तथा पुंस्कोकिलों के सुत अर्थात् 'कुहू' की ध्वनि उसमें श्रुत हो रही थी। वह नवलक्ष रास वास से समन्वित था तथा सुमनोहर था ॥८॥ चन्दन—अगुरु—कस्तूरी और कुंकुम से सुगन्धित था। कर्पूर से युक्त ताम्बूल आदि भोग करने के द्रव्यों से संयुत था ॥९॥

प्रसूनैश्चम्पकानाञ्च कस्तूरीचन्दनान्वितैः ।
रतियोग्यैर्विरचितैर्नानातल्पैः सुशोभितम् ॥१०
दीप्तं रत्नप्रदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतम् ।
नानापुष्पैश्च रचितं मालाजालैर्विराजितम् ॥११
परितो वर्त्तुलाकारं तत्रैव रासमण्डलम् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुसंस्कृतम् ॥१२
पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च युक्तं क्रीड़ासरोवरैः ।
हंसकारण्डवाकीर्णैर्जलकुक्कुटकूजितैः ॥१३
क्रीड़नीयैः सुन्दरैश्च सुरतश्रमहारिभिः ।
शुद्धस्फटिकसंकाशतोयपूर्णैः सुनिर्मलैः ॥१४
दधिपूर्णशुक्लधान्तजलैर्निर्मञ्छनीकृतम् ।
रम्भास्तम्भसमूहेन सुन्दरेण सुशोभितम् ॥१५

यह वृन्दावन चम्पकों के पुष्पों से जो कि कस्तूरी और चन्दन से युक्त थे तथा रति के योग्य विरचित नाना प्रकार के पर्यङ्कों से सुशोभित था

॥१०॥ वह वन रत्नों के प्रदीपों से दीप्तमान् और धूप से सुरभीकृत हो रहा था। अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित मालाओं के समूह से विशेष शोभा युक्त था ॥११॥ वहाँ पर ही चारों ओर गोल आकार वाला रास मण्डल बना हुआ था जो चन्दन—अगुरु-कस्तूरी और कुंकुम से भली-भाँति संस्कार किया हुआ था ॥१२॥ उसमें पुष्पों से युक्त पुष्पोद्यान थे तथा अनेक क्रीड़ा करने के लिये सरोवर बने हुए थे जो कि हंस कारण्डव आदि पक्षियों से घिरे हुए थे और जल कुक्कुटों से कूजित से परिपूर्ण थे ॥१३॥ ये सब सरोवर क्रीड़ा करने के योग्य थे और परम सुन्दर तथा सुरत के श्रम को दूर करने वाले थे। इन सबमें विशुद्ध स्फटिक मणि के तुल्य निर्मल जल परिपूर्ण रूप से भरा हुआ था ॥१४॥ दधि पूर्ण शुक्ल धान्य के जल से यह निर्मच्छनीकृत तथा सुन्दर कदली के स्तम्भों के समूह से सुशोभित रासमण्डल बना हुआ था ॥१५॥

आम्रपल्लवयुक्तेन सूत्रबन्धेन चारुणा।
भूषितं मङ्गलघटैः सिन्दूरचन्दनान्वितैः ॥१६
मालतीमाल्यसंयुक्तैर्नारिकेलफलान्वितैः।
स रासमण्डलं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१७
चकार तत्र कतुकाद्विनोदमुरलीरवम्।
गोपीनां कामुकीनाञ्च कामवर्धनकारणम् ॥१८
तच्छ्रुत्वा राधिका सद्यो मुमोह मदनातुरा।
बभूव स्थाणुवद्देहा ध्यानैकतानमानसा ॥१९
क्षणेन चेतनां प्राप्य पुनः शुश्राव सा ध्वनिम्।
उवास सा समुत्तस्थौ समुद्विग्ना पुनःपुनः ॥२०
त्यक्त्वा चावश्यकं कर्म निःससाराद्भुतं गृहात्।
ययौ तदनुसारेण प्रसमीक्ष्य चतुर्दिशम् ॥२१
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
तेज साच द्योतयन्ती सद्ररत्नसारभूषणैः ॥२२

यह रास मण्डल आम के पल्लवों से युक्त परम सुन्दर सूत्र बन्धों से भूषित हो रहा था और सिन्दूर तथा चन्दन से समन्वित मङ्गल कलशों

से युक्त था। यह रास मण्डल मालती के पुष्पों द्वारा बनी हुई मालाओं से समन्वित और नारियल के फलों से युक्त था। ऐसे रास मण्डल को देख कर भगवान् रास बिहारी मधुसूदन हँस गये थे ॥१६-१७॥ वहाँ पर रासबिहारी श्रीकृष्ण ने पहुंच कर कौतुक से विनोदार्थ मुरलिका वादन की ध्वनि की थी जो कामुकी ब्रजाङ्गनाओं के काम के वर्धन करने का कारण थी ॥१८॥ उस मुरली की ध्वनि का श्रवण कर राधिका तुरन्त ही कामातुरा होती हुई मोहित हो गईं थीं। उनका शरीर एक स्थाणु के समान निष्पन्द हो गया था और ध्यान उनका मन एक तान हो रहा था ॥१९॥ एक क्षण के पश्चात् चेतना प्राप्त हुई थी उस राधा ने पुनः वही वंशी का शब्द सुना था। वह खड़ी हो गई थी और बार-बार समुद्विग्न चित्त वाली हो गई थी ॥२०॥ घर में जो भी कुछ आवश्यक काम था उसको तुरन्त ही त्याग दिया था और अपने घर से एक अद्भुत रीति से निकल पड़ी थी। जिधर से वह मोहन की मोहनी मुरलिका की मधुर मनोरथ ध्वनि आ रही थी उसी ओर चारों दिशाओं को देख कर चल दी थीं ॥२१॥ वह अपने सुन्दर एवं उत्तम रत्नों के भूषणों के द्वारा तथा नैसर्गिक स्वात्म तेज के द्वारा दिशाओं को प्रकाशित करती हुई और महान् आत्मा वाले श्रीकृष्ण के चरण कमल का मन में ध्यान करती हुई वृन्दावन की ओर चल दी थीं ॥२२॥

बहिर्बभूवुस्तास्त्रस्ता वरेण हृतचेतनाः।
कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्का काममोहिताः ॥२३
त्रयस्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः।
राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः ॥२४
तासां पश्चाद्ययुर्गोप्यस्तासां संख्यां निबोध मे।
समावेशेन वयसा रूपेण च गुणेन च ॥२५
ययुः सुशीलासङ्गेन सहस्राणि च षोड़श।
ययुश्चन्द्रमुखीपश्चात्सहस्राणि च षोड़श ॥२६
एकादशसहस्राणि माधव्याल्यश्च निर्ययुः।
जग्मुः कदम्बमालाल्यः सहस्राणि त्रयोदश ॥२७

ययुः कुन्तीवयस्याश्च सहस्राणि दश स्मृताः ।
चतुर्दशसहस्राणि ययुस्ता यमुनानुगाः ॥२८

घर से निकल तो पड़ी किन्तु जैसे ही बाहिर वे सब गोपकाऐं गईं वैसे ही वर के द्वारा हरण किये हुए चित्त की चेतना वाली त्रस्त हो गईं थी क्यों कि वे सब अपने कुल के धर्म का एक दम त्याग करके काम से मोहित होती हुईं निःशङ्क होकर घर से निकल चलीं थीं ॥२३॥ राधिका की अत्यन्त ही प्रियतमा सुशीला आदि तेतीस वयस्या सहेली थीं जो कि समस्त गोपियों में सर्व श्रेष्ठ थीं । वे सभी चल दी थीं ॥२४॥ उनके पीछे से अन्य गोपियाँ भी वृन्दावन बिहारी के समीप में गईं थीं उनकी संख्या भी श्रवण कर लो जो कि सभी गोपियाँ वेश-रूप-गुण और अवस्था में उनके ही समान थीं ॥२५॥ सोलह सहस्र तो सुशीला के साथ गईं थी । इसके पीछे से चन्द्रमुखी के साथ भी सोलह हजार गोपियाँ थी ॥२६॥ माधवी के साथ ग्यारह सहस्र थीं और कदम्ब माला के साथ तेरह सहस्र निकल कर गईं थीं ॥२७॥ कुन्ती के साथ उसकी सहेली दश सहस्र थीं यमुना के पीछे जाने वाली गोपियाँ चौदह सहस्र थीं जो सभी वृन्दावन में मुरली वादन की ध्वनि से मस्त होकर घर से रात्रि में निकल कर श्री कृष्ण के समीप में गईं थी ॥२८॥

जाह्नवीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्नव ।
ययुर्नव सहस्राणि पद्ममुख्याल्य एव च ॥२९
सावित्र्याल्यः पञ्चदश सहस्राणि ययुर्व्रजात् ।
पारिजातवयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश ॥३०
स्वयंप्रभानुगाः सप्त सहस्राणि ययुर्व्रजात् ।
ययुः सुधामुखीगोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥३१
शुभानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ।
पद्मानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥३२
गौरी पद्मा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ।
ययुः सर्वमङ्गलाल्यः सहस्राणि च षोड़श ॥३३

कालिकाल्यो ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोड़श ।
निर्ययुःकमलालयश्चसहस्राणित्रयोदश ॥३४

दुर्गानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोड़श ।
ययुः सरस्वतीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ॥३५

जाह्नवी की सहचारिणी नौ सहस्र थीं और पद्ममुखी की सहेली भी नौ सहस्र थीं । सावित्री की अनुगामिनी गोपियाँ पन्द्रह सहस्र थीं जो ब्रज से वहाँ रात्रि में गई थीं । पारिजाता की वयस्या गोपी दश सहस्र थीं ॥२९-३०॥ स्वयंप्रभा की सहचारिणी गोपियों की संख्या सातहजार थीं और सुधा मुखी के साथ चौदह सहस्र गोपियां गई थीं ॥३१॥ शुभा के पीछे जाने वाली चौदह सहस्र थीं । पद्मा की सहचारिणी भी चौदह सहस्र थीं ॥३२॥ गौरी और पद्म की अनुगामिनी भी चौदह सहस्र वहाँ गई थीं तथा सर्व मङ्गला की सहचारिणी सोलह हजार थीं ॥३३॥ कालिका आली भी सोलह हजार थीं तथा कमला की सहेली तेरह हजार थीं । दुर्गा की अनुगामिनी सोलह हजार थीं और सरस्वती की सहगामिनी तेरह सहस्र निकल कर गई थीं ॥३४-३५॥

प्रजग्मुर्भारतीपश्चात्सहस्राणि दश व्रजात् ।
अपर्णासहचारिण्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥३६

रतिपश्चाद्वयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश ।
गङ्गावयस्याः प्रययुः सहस्राणि चतुर्दश ॥३७

प्रजग्मुरम्बिका पश्चात्सहस्राणि च षोड़श ।
सतीपश्चाद्ययुर्गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ॥३८
नन्दिनीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्दश ।
प्रययुः सुन्दरीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ॥३९

ययुः कृष्णप्रियापश्चात्सहस्राणि च षोड़श ।
ययुर्मधुमतीपश्चात्सहस्राणि च षोड़श ॥४०
ययुश्चम्पानुगा गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ।
चन्दनाल्यो ययुः पश्चात्सहस्राणि च षोड़श ॥४१

इनके पीछे भारती के साथ ब्रज से वृन्दावन को दश सहस्र गोपियाँ थीं तथा अपर्णा के साथ चौदह सहस्र और रति की सहगामिनी दशसहस्र एवं गङ्गा की सहचारिणी चौदह सहस्र थीं ॥३६-३७॥ अम्बिका के पीछे सोलह हजार गोपकाऐं थीं। सती के साथ तेरह सहस्र—नन्दिनी के साथ दश सहस्र—सुन्दरी के पीछे तेरह सहस्र—कृष्ण प्रिया के साथ सोलह सहस्र—मधुमती के साथ भी सोलह हजार—चम्पा की अनुगामिनी तेरह सहस्र और चन्दना के साथ सोलह सहस्र गोपियाँ ब्रज से मुरली वादन श्रवण कर रात्रि में कुलमर्यादा का त्याग कर वृन्दावन की ओर निकल कर गई थीं ॥३८-४१॥

सर्वा बभूवुरेकत्र तत्र तस्थुः पलं मुदा ।
तत्राययुर्गोपिकाश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ॥४२
चारुचन्दनहस्ताश्च काश्चित्तत्रायंयुर्व्रजात् ।
श्वेतचामरहस्ताश्च काश्चित्तत्राययुर्मुदा ॥४३
तत्राययुर्गोपकन्याः काश्चित् कुङ्कुमवाहिकाः ॥४४
काश्चित् तत्राययुर्गोप्यस्ताम्बूलपात्रवाहिकाः ।
यावत्काञ्चनवस्त्राणां वाहिका गोपकन्यकाः ॥४५
काश्चित्तत्राययुः शीघ्रं यत्र चन्द्रावली मुदा ।
सर्वाश्चैकत्र संभूय सस्मिताश्च मुदान्विताः ॥४६
विधाय राधिकावेशं स्थानाच्च प्रययुर्मुदा ।
चक्रुः पुनःपुनस्ताश्च हरिशब्दं जयं पथि ॥४७
प्रापुर्वृन्दावनं रम्यं ददृशू रासमण्डलम् ।
स्वर्गेभ्यः सुन्दरं दृश्यं राकापतिकरान्वितम् ॥४८
सुनिर्जनं कुसुमितं वासितं पुष्पवायुना ।
नारीणां कामजननं मुनिमोहनकारणम् ॥४९

वे सब एक ही स्थान पर एक पल भर आनन्द के साथ खड़ी हो गई थीं। वहाँ पर कोई गोपिका तो मालाऐं हाथों में लेकर आई थीं। ॥४२॥ कुछ के करों में सुन्दर चन्दन था जो कि ब्रज से वहाँ आई थीं। कुछ के कर कमलों में श्वेत चमर थे ॥४३॥ कुछ गोपिकाऐं कुंकुम लिये

हुए थीं और कुछ काञ्चन वर्ण वाले वस्त्रों को वहन करने वाली वहाँ आई थीं। कुछ गोपियाँ ताम्बूल वाहिनी थीं जो ताम्बूल पात्र (पानदान) लिये हुए थीं ॥४४ ४५॥ ये सभी सानन्द वहाँ आ गई थीं जहाँ पर चन्द्रावली थीं। सभी ये एक ही स्थान पर एकत्रित होकर स्मित और हर्ष से युक्त हो रहीं थीं ।४६।। सब ने राधिका का वेश करके उस स्थान से हर्ष के साथ प्रस्थान किया था। वे बार-बार मार्ग में हरि के शब्द को जय के साथ कहती हुई जा रहीं थीं ।।४७।। वे सब वृन्दावन में पहुँच गई थीं और उन्होंने रास मण्डल को देखा था जो परम रम्य बना हुआ था। वहाँ का दृश्य स्वर्ग से भी कहीं अधिक सुन्दर था और वह राकापति की किरणों से समन्वित था ।।४८।। वह रास मण्डल सुनिर्जन-कुसुमों से युक्त एवं पुष्पों की वायु से परम सुवासित हो रहा था। वह नारियों के काम को उत्पन्न करने वाला था और बड़ेर मुनियों के भी मोह करने का कारण स्वरूप था ॥४९॥

शुश्रुवुस्तत्र ताः सर्वाः पुंस्कोकिलकलध्वनिम्।
अतिसूक्ष्मकलञ्चापि भ्रमराणां मनोहरम् ॥५०

प्रसूनमधुमत्तानां भ्रमरीसङ्गसङ्गिनाम्।
शुभे क्षणे प्रविवेश राधिका रासमण्डलम् ॥५१
सर्वाभिरालिभिः सार्धं ध्यात्वा कृष्णपदाम्वुजम्।
राधामारात्तु सवीक्ष्य कृष्णस्तत्र मुदान्वितः ॥५२

जगामानुव्रजं प्रीत्या सस्मितोमदनातुरः।
मध्यस्थां सखिसङ्घानां रत्नलङ्कारभूषिताम् ॥५३
दिव्यवस्त्रपरीधानां सस्मितां वक्रलोचनाम्।
गजेन्द्रगामिनीं रम्यांमुनिमानसमोहिनीम् ॥५४

नवीनवेशवयसा रूपेणातिमनोहराम्।
तलश्रोणिनितम्बानां भारशेषान्वितां पराम् ॥५५

चारुचम्पकवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम्।
बिभ्रन्तीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् ॥५६

राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम् ।
नवयौवनसम्पन्नं रत्नाभरणभूषितम् ।।५७

उन समस्त व्रज बालाओं ने वहाँ प्रस्कोकिल कल ध्वनि का श्रवण किया था और अत्यन्त सूक्ष्म भ्रमरों की मनोहर गुन्जार को भी सुना था ।।५०।। विकसित पुष्पों के मधु में मत्त और भ्रमरी के सङ्ग के संगी भ्रमरों के कलगान के शुभेक्षण क्षण में राधिका ने उस रास मण्डल में प्रवेश किया था ।।५१।। समस्त अपनी आलियों के साथ कृष्ण के चरण कमलों को ध्यान में लाती हुई राधा को समीप में भलो भाँति देख कर श्री कृष्ण वहाँ पर परम हर्ष से युक्त हो गये थे ।।५२।। मन्द मुस्कान से संयुत तथा कामातुर होकर प्रीति के साथ श्रीकृष्ण ने उस व्रज का अनुगमन किया था । सत्पूर्ण सखियों के मध्य में राधा स्थित थी और रत्नों के आभरणों से विभूषित थी ।।५३।। श्रीराधा दिव्य वस्त्र का पराधीन करने वाली—स्मित से युक्त—वक्रलोचनों से समन्वित—गजेन्द्र की भाँति मन्द एवं मस्त गमन करने वाली—परम रम्य एवं मुनियों के मन को भी मोहित करने वाली थी ।।५४।। श्रीराधा नवीन वेश और अवस्था से तथा रूप लावण्य से अत्यन्त मनोहर थीं जिसके तल श्रोणि नितम्बों का भार विशेष रूप से शोभा युक्त था ।।५५।। राधा की चारु चम्पक के वर्ण के समान आभा और शरत्काल के पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख की परम शोभा से वह युक्त थी । कवरी के भार को वहन करने वाली थी जिसमें मालती की मालाऐं लटकी हुईं थीं ।।५६।। ऐसी परम सुन्दर राधा को श्रीकृष्ण ने देखा और राधा ने किशोर श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण को देखा जो नवीन यौवन से सम्पन्न और रत्नों के आभरणों से विभूषित थे ।।५७।।

कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाममनोहरम् ।
प्राणाधिकां तां पश्यन्तं पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ।।५८
परमाद्भुतरूपञ्च सर्वत्रानुपमं परम् ।
विचित्रवेशं चूडाञ्च बिभ्रन्तं सस्मितं मुदा ।।५९
वक्रलोचनकोणेन दर्शं दर्शं पुनः पुनः ।
मुखमाच्छादयामास व्रीड़या सस्मिता सती ।।६०

मूर्च्छामवाप सा सद्यःकामबाणप्रपीड़िता ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी बभूव हृतचेतना ।।६१

श्रीकृष्ण का स्वरूप करोड़ों कामदेव के रूप लावण्य की लीला का धाम एवं अत्यन्त मनोहर था । वह अपनी प्राणों से भी अधिक प्रिया राधा को उस समय देख रहे थे जो राधा श्रीकृष्ण को अपनी तिरछी दृष्टि से देख रही थी ।।५८।। श्रीकृष्ण का परम अद्भुत रूप था जिसकी सर्वत्र कोई भी उपमा नहीं है । उनका परम विचित्र वेश था और मस्तक पर चूड़ा को धारण करने वाले थे—मन्द मुस्कान से युक्त एवं हर्षित स्वरूप से समन्वित उनका सुन्दर वपु था ।।५९।। ऐसे परम मोहन स्वरूप वाले श्रीकृष्ण वक्र नेत्र के कोने से बार-बार राधा देख-देख कर क्रीड़ा से अपने मुख को वह सती ढाँक लेती थी ।।६०।। वह राधा काम बाण से अत्यन्त उत्पीड़ित होकर उस समय मूर्च्छा को प्राप्त हो गई वह तुरन्त ही पुलकों से अञ्चित समस्त अंगों वाली तथा चेतना से शून्य हो गई थी ।।६१।।

कटाक्षकामबाणैश्च विद्धः क्रीड़ारसोन्मुखः ।
मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्थौ स्थाणुसमो हरिः ।।६२
पपात मुरली तस्य क्रीड़ाकमलमुज्ज्वलम् ।
द्वितीयं पीतवस्त्रञ्च शिखिपिच्छं शरीरतः ।।६३
क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौ राधान्तिकं मुदा ।
कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समाश्लिष्य चुचुम्ब सः ।।६४
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण संप्राप्य चेतनां सती ।
प्राणाधिकं प्राणनाथ समाश्लिष्यचुचुम्बह ।।६५
मनो जहार राधायाः कृष्णस्तस्य च सा मुने ।
जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम् ।।६६
रत्नप्रदीपसंयुक्तं रत्नदर्पणसंयुतम् ।
चारुचम्पकशय्याभिश्चनन्दनाक्ताभी राजितम् ।।६७
कर्पूरान्विततताम्बूलभोगद्रव्यैः समन्वितम् ।
उवास राधया सार्धं कृष्णस्तत्र मुदान्वितः।।६८

राधा के सुन्दर स्वरूप को देख कर कृष्ण उसके कटाक्ष रूपी कामदेव के बाणों से विद्ध होकर क्रीड़ा के रस के उन्मुख होते हुए मूर्च्छा को प्राप्त हो गये किन्तु वह भूतल पर नहीं गिरे और हरि स्थाणु के समान वहीं पर स्थित रहे ॥६२॥ उस समय उनकी मुरली और उज्ज्वल क्रीड़ा का कमल हाथ से गिर गये दूसरा पीताम्बर जो उनके शरीर के ऊपर था वह और मयूर का पिच्छ भी नीचे गिर गया ॥६३॥ एक ही क्षण में कृष्ण ने चेतना को प्राप्त किया था और फिर वह परम हर्ष के साथ राधा के पास गये । श्रीकृष्ण ने राधा को अपने वक्षःस्थल से लगा कर उसका प्रेम के साथ चुम्बन किया ॥६४॥ श्रीकृष्ण के अंग के स्पर्श मात्र से ही सती राधा को चेतना प्राप्त हो गई और उसने भी अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय प्राणों के नाथ का भली-भाँति आलिङ्गन करके चुम्बन किया ॥६५॥ हे मुने ! उस समय कृष्ण ने राधा के और राधा ने कृष्ण के मन को हरण कर लिया । रसिक चूड़ामणि श्रीकृष्ण फिर राधा के साथ रतिमन्दिर में चले गये ॥६६॥ वह रति मन्दिर रत्नों के प्रदीपों से युक्त था और उसमें रत्नों के दर्पण लगे हुए थे । वहाँ सुन्दर चम्पक पुष्पों की शय्या लगी हुई थी जिसमें चन्दन की चर्चना हो रही थी ॥६७॥ वह रति मन्दिर कपूर से युक्त, ताम्बूल आदि अनेक भोग के योग्य द्रव्यों से समन्वित था । वहाँ पर श्रीकृष्ण राधा के साथ बहुत ही हर्ष से संयुत होकर निवसित हो गये थे ॥६८॥

७५—जाह्नवी जन्म वृत्तान्तः

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शङ्करः समुपस्थितः ।
सस्मितो वृषभेन्द्रस्थो विभूतिभूषणः स्वयम् ॥१
व्याघ्रचर्माम्बरधरो नागयज्ञोपवीतकः ।
स्वर्णाकारजटाभारमर्धचन्द्रञ्च संदधत् ॥२
त्रिशूलपट्टिशकरो बिभ्रत् खट्वाङ्गमुत्तमम् ।
सद्रत्नसाररचितस्वरयन्त्रकरो मुदा ॥३
वाहनादवरुह्याशु भक्तिनम्रात्मकन्धरः ।
प्रणम्य कमलाकान्तं वामे चोवास भक्तितः ॥४

आजग्मुर्मुनयः सर्वे सुराः शक्रादयस्तथा ।
आदित्या वसवो रुद्रा मनवः सिद्धचारणाः ॥५
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ।
प्रणम्य तं शिवं सर्वे सुराश्च नम्रकन्धराः ॥६
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सङ्गीतं शङ्करो जगौ ।
कृत्वाऽतीव सुतालञ्च स्वरयन्त्रसमन्वितः ॥७

इस अध्याय में जाह्नवी के जन्म के वृतान्त का निरूपण किया गया है। श्रीकृष्ण ने कहा—इसी अन्तर में वहाँ पर शङ्कर समुपस्थित हो गये जो स्मित से संयुत-वृषभ पर समारूढ़ और स्वयं विभूति से भूषित शरीर वाले थे ॥१॥ शिव व्याघ्र के चर्म का वस्त्र धारण किये हुए थे और उनके कन्धे पर नागों का यज्ञोपवीत था। सुनहली जटाओं के जूट का भार उनके मस्तक पर था और अर्ध चन्द्र को धारण किये हुए थे ॥२॥ शिव के करों में त्रिशूल और पट्टिश नाम वाले आयुध थे और उन्होंने उत्तम खट्वांग को धारण कर रक्खा था। रत्नों के सार के द्वारा निर्मित किया हुआ स्वर यन्त्र परम हर्ष से कर में लिये हुए थे ॥३॥ वहाँ आकर शिव अपने वाहन वृषभ से नीचे उतर पड़े और भक्ति-भाव से विनम्र कन्धरा वाले होते हुए कमला कान्त को प्रणाम करके वाम भाग में संस्थित हो गये ॥४॥ उस समय वहाँ पर इन्द्र आदि समस्त देवगण—मुनि मण्डल आदित्य—वसु—रुद्र—मनु—सिद्ध और चारण सभी आये ॥५॥ सब पुलकों से अञ्चित सर्वाङ्ग वालों ने पुरुषोत्तम की स्तुति की और सबने शिव को प्रणाम करके समस्त देवगण वहाँ नम्र कन्धरा वाले हो गये ॥६॥ इसी अन्तर में वहाँ पर शंकर ने एक सङ्गीत का गायन किया जो सुर और ताल से समन्वित अतीव सुरयन्त्र से युक्त एवं सुन्दर था ॥७॥

आवयोश्च गुणाख्यानं राससम्बन्धि सुन्दरम् ।
समयोचितरागेण मनोमोहनकारिणा ॥८
यत्र कण्ठैकतानेन चैकमानेन चारुणा ।
पदभेदविरामेण गुरुणा लघुना क्रमात् ॥९

गमकेनातिदीर्घेण मदेन मधुरेण च ।
भवेति दुर्लभं सृष्टं प्रीत्या स्वेन विनिर्मितम् ॥१०
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः पुनः पुनः ।
तदेव श्रुतिमात्रेण मूर्च्छां प्राप्य विचेतनाः ॥११
बभूव रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये ।
रुद्ररूपाः सुराः सर्वे विधातृहरिपार्षदाः ॥१२
नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिवःस्वयम् ।
जलपूर्णञ्च वैकुण्ठं दृष्ट्वा त्रस्तोऽहमीश्वरि ॥१३
गत्वा मूर्तीर्विनिर्माय सर्वाश्च तादृशीरिति ।
तत्स्वरूपास्तदस्त्राश्च तत्स्ववाहनभूषणा ॥१४

मन के मोहन करने वाले समय के समुचित राग के द्वारा हम दोनों के रास से सम्बन्ध रखने वाला गुणों का सुन्दर आख्यान उस संगीत में था ॥८॥ जिस संगीत को कण्ठ की एकता–नेत्रों की एक मानता—सुन्दर पद भेदों का विराम जो गुरु लघु के क्रम से था—अतिदीर्घ गमक--मद और मधुर अपने स्वर से विनिर्मित इस संसार में अत्यन्त दुर्लभ प्रीति के साथ सृजन किया ॥९-१०॥ वह पुलकायमान समस्त अंगों वाला और अश्रुओं से परिपूर्ण नेत्रों वाला बार-बार हो जाता था । उसके श्रवण मात्र से मूर्च्छा को प्राप्त करके चेतना शून्य हो गये थे ॥११॥ हे प्रिये ! समस्त मुनिगण—सुरगण—विधाता तथा हरि के पार्षदगण सामने ही रुद्र रूप हो गये ॥१२॥ हे ईश्वरि ! नारायण-लक्ष्मी और गायन करने वाले स्वयं शिव वैकुण्ठ को जल पूर्ण देख कर मैं भी त्रस्त हो गया ॥१३॥ जाकर सब उसी प्रकार की मूर्तियों का निर्माण किया उनके वे ही स्वरूप वही अस्त्र और वही वाहन तथा भूषण थे ॥१४॥

तत्स्वभावास्तन्मनस्कास्तत्तद्विषयमानसाः ।
स्थानं निर्माय परितो वैकुण्ठस्य चतुर्दिशि ॥१५
तदधिष्ठातृदेवी च आजगाम स्वमालयम् ।
शरीरजा सुराणां सा बभूव सुरनिम्नगा ॥
मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा ॥१६

कोटिजन्मार्जितं पापं विविधं पापिनामहो ।
यस्याश्च स्पर्शवायोश्चसम्पर्केणविनश्यति ॥१७
किं वा न जाने प्राणेशि स्पर्शदर्शनोःफलम् ।
किमुतस्नानजन्यञ्चकथयामि निरूपणम् ॥१८
सर्वंतीर्थात्परं पृथव्यां पुष्करं परिकीर्त्तितम् ।
वेदोक्तञ्चत देवास्याःकलांनार्हतिषोडशीम् ॥१९
भगीरथेन चानीता तेन भागीरथीस्मृता ।
गामागता स्रोतसोंऽशाद्गंगा तेन प्रकीर्त्तिता ॥२०
जानुद्वारा पुरा दत्ता जह्नुना तोयकोपतः ।
तस्यकन्यास्वरूपा सा जाह्नवीतेनकीर्त्तिता ॥२१
भीष्मः स्वयं वसुर्जातस्तस्यां सा तेन भीष्मसूः ॥२२

उन सबके स्वभाव वैसी ही थे और वे सब तन्मनस्क तथा तत्तत् विषयों के मन वाली थी । वैकुण्ठ के सब ओर चारों दिशाओं में स्थान का निर्माण करके उसकी अधिष्ठात्री देवी अपने आलय में आगई । सुरों के शरीर से जन्म लेने वाली वह सुरों की नदी हो गई वह मुमुक्षुओं की मुक्ति को प्रदान करने वाली तथा भगवद्भक्तों को हरि की भक्ति देनेवाली थी ॥१५-१६॥ जिसको स्पर्श कर लेने वाली वायु के स्पर्श से तथा सम्पर्क मात्र से पापियों के करोड़ों जन्मों के विविध प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१७॥ हे प्राणेशि ! उसके साक्षात् स्पर्श और दर्शन का क्या अधिक फल होता है--इसे मैं नहीं जानता और उसमें स्नान करने से जो पुण्य होता है उसका तो निरूपण ही क्या किया जा सकता है ॥१८॥ इस भूतल में समस्त तीर्थों से परम तीर्थ पुष्कर कहा गया है और वह वेदों में कथित किया गया है किन्तु वह पुष्कर भी इस जाह्नवी की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होता है ॥१९॥ इसको देवलोक से भगीरथ राजा लाया इसीलिये इसका शुभ नाम भागीरथी कहा गया है । स्रोत अंश से यह गाम् अर्थात् पृथ्वी में आई थी इसीलिए इसे 'गंगा'—नाम से पुकारा गया है ॥२०॥ पहिले समय में जानु के द्वारा जल के कोप से यह जन्हु

राजा के द्वारा दी गई थी इसलिये यह उस जन्हु राजा की कन्या के स्वरूप में थी। अतएव इसे जाह्नवी कहा जाता है। ॥२१॥ भीष्म वसु स्वयं इससे समुत्पन्न हुए थे अतएव इसका नाम भीष्मसू भी कहा जाता है ॥२२॥

धाराभिस्तिसृभिः स्वर्गं पृथिवीमतलं तथा ।
ममाज्ञया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी ॥२३
प्रधानराधया स्वर्गेसाच मन्दाकिनीस्मृता ।
योजनायुतविस्तीर्णाप्रस्थेचयोजनास्मृता ॥२४
क्षीरतुल्यजला शश्वदत्युत्तुंगतरंगिणी ।
वैकुण्ठाद् ब्रह्मलोकञ्च ततः स्वर्गं समागता ॥२५
स्वर्गाद्धिमाद्रिमार्गेण पृथिवीमागता मुदा ।
सा धारालकनन्दाख्या लवणोदेनमिश्रिता ॥२६
शुद्धस्फटिकसंकाशा बहुवेगवती सती ।
पापिनां पापशुष्केन्धं दग्धुं पावकरूपिणी ॥२७
अतो सागरवंशेभ्यो निर्वाणमुक्तिदायिनी ।
वैकुण्ठगामिनी सा च सोपानरूपिणी वरा ॥२८

यह मेरी आज्ञा से तीन धाराओं से स्वर्ग—पृथ्वी और अतल लोकों में जाने वाली है। इसी से इसका नाम त्रिपथगामिनी—यह—शुभ नाम पड़ गया है ॥२३॥ वह प्रधान राधन द्वारा स्वर्ग में रहती हैं और वहाँ मन्दाकिनी इस नाम से कही गई है। वहाँ यह दश हजार योजन के विस्तार वाली कही गई है ॥२४॥ यह निरन्तर क्षीर के समान जल वाली और अत्यन्त ऊंची तरंगों वाली है। वैकुण्ठ से यह ब्रह्म लोक में आई और फिर वहाँ से स्वर्ग में आई ॥२५॥ स्वर्ग लोक से हिमालय के मार्ग द्वारा बड़े हर्ष से इस पृथ्वी में आई। वह लवणोद से मिश्रित होकर इस जगह धारालकनन्दा नाम वाली हुई ॥२६॥ यहाँ पर यह शुद्ध स्फटिक मणि के समान जल वाली, अधिक वेग से संयुत सती पापियों के पापरूपी शुष्क ईंधन के जला देने के लिए पावक के स्वरूप वाली थी ॥२७॥ इसलिए सगर राजा के वंश वालों को निर्वाण मुक्ति के प्रदान करने वाली हुई।

वह वैकुण्ठ में गमन कराने वाली सोपान के स्वरूप वाली है जोकि सर्व श्रेष्ठ है ॥२८॥

अतोऽपि मृत्युसमये सतां पुण्यस्वरूपिणाम् ।
आदौ पादौ च संन्यस्य मुखे तोयं प्रदीयते ॥२९
गंगासोपानमारुह्य सन्तो यान्ति निरामयम् ।
आब्रह्मलोकं संलंध्य रथस्थाश्चनिरापदः ॥३०
दैवात्पुरा प्राक्तनेन मग्ने चेत् कृतपातकैः ।
लोमप्रमाणवर्षञ्च मोदन्ते हरिमन्दिरे ॥३१
ततो भोगो भवेत्तेषां निश्चितं पापपुण्ययोः ।
अति स्वल्पेन कालेन कालव्यूहञ्चबिभ्रताम् ॥३२
ततःपुण्यवतां गेहे लब्ध्वा जन्म च भारते ।
संप्राप्य निश्चलांभक्ति भवन्ति हरिरूपिणः ॥३३
मृतद्विजानां देहांश्च दैवाच्छूद्रा वहन्ति चेत् ।
पदप्रमाणवर्षञ्च तेषाञ्च नरके स्थितिः ॥३४
ततस्तेषाञ्च साहाय्यं करोति हरिरूपिणी ।
ददाति मुक्ति तेभ्योऽपि क्रमेण कृपामयी ॥३५

इसीलिये पुण्य स्वरूप वाले सत्पुरुषों के मृत्यु के समय में आदि में पादों का त्याग करके इसका जल मुख में दिया जाया करता है ॥२९॥ गंगा के सोपान पर समारूढ़ होकर सन्त पुरुष निरामयता को प्राप्त हो जाया करते हैं। ब्रह्मलोक तक उल्लंघन करके रथ पर स्थित हो निरापद हो जाते हैं ॥३०॥ यदि दैववश पहिले किये हुए पातकों से मग्न हों तो भी लोमों के प्रमाण वाले वर्षों तक हरि मन्दिर में आनन्द प्राप्त किया करते हैं ॥३१॥ अत्यन्त स्वल्प काल में ही काल व्यूह का भरण करने वाले उन पुरुषों के पाप और पुण्यों का भोग निश्चत होता है ॥३२॥ इसके अनन्तर भारत में पुण्यात्मा पुरुषों के घर में जन्म प्राप्त करते हैं और वहाँ पर निश्चल हरि की भक्ति को प्राप्त कर वे हरि के ही रूप वाले हो जाया करते हैं ॥३३॥ मृत द्विजों के शव को यदि दैववश शूद्र वहन करते

हैं तो जितने कदम वे रखते हैं उतने ही वर्षों के प्रमाण तक उनकी नरक में स्थिति हुआ करती है ॥३४॥ इसके अनन्तर यह हरि के रूप वाली ही उनकी सहायता किया करती है। यह कृपामयी क्रम से उनके लिये भी मुक्ति दिया करती है ॥३५॥

जन्मपुण्यवतां गेहे कारयित्वा च भारते।
स्थलं ददाति वैकुण्ठे निश्चितं जन्मभिस्त्रिभिः ॥३६
यात्रां कृत्वा तु यः शुद्धौ स्नातुं याति सुरेश्वरीम्।
पद्मप्रमाणवर्षञ्च वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥३७
गंगा प्राप्यानुषंगेण स्नातिचेत् समलो नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्यदि न लिप्यते ॥३८
कलौ पञ्चसहस्राब्दं स्थितिस्तस्याश्च भारते।
तस्याञ्च विद्यमानायांकःप्रभावःकलेरहो ॥३९
कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम।
तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कलेः ॥४०
अतलं याति या धारा सा च भोगवती स्मृता।
पयःफेननिभा शश्वदतिवेगवती सदा ॥४१

फिर यह—भारत देश में पुण्यवानों के घर में इनका जन्म कराके तीन जन्मों में वैकुण्ठ में निश्चत रूप से स्थल दे देती है ॥३६॥ यात्रा करके जो शुद्धि में सुरेश्वरी के स्नान करने को जाता है वह अपने पदों (कदमों) के बराबर वर्षों तक वैकुण्ठ में आनन्द किया करता है ॥३७॥ आनुषङ्ग से गङ्गा के समीप पर पहुँच कर जो मल से युक्त नर यदि गंगा में स्नान कर लेता है तो वह समस्त प्रकार के पापों के छुटकारा पा जाया करता है यदि पुनः वह उसी प्रकार के पापों में लिप्त नहीं होता है तो उसका आनुषङ्गिक स्नान से ही कल्याण हो जाया करता है ॥३८॥ भारत में उस भागीरथी देवी की स्थिति कलियुग में पाँच सहस्र वर्ष तक रहती है। जब तक भारत में विद्यमान रहती है कलियुग का कुछ भी प्रभाव नहीं रहता है ॥३९॥ कलियुग में दश सहस्र तर्ष तक मेरी प्रतिमा

और पुराण स्थित रहते हैं। उस समय में भी कलियुग का क्या प्रभाव हो सकता है ॥४०॥ जो धारा अतल लोक को जाया करती है वह भोगवती कही जाती है। वह पय के फेन के तुल्य और निरन्तर वेग वाली सदा होती है ॥४१॥

आकरामूल्यरत्नानां मणीन्द्राणाञ्च सन्ततम् ।
नागकन्याश्चतत्तीरेक्रीड़न्ति स्थिरयौवनाः ॥४२
स्वयं देवी च वैकुण्ठे वेष्टयित्वा च सन्ततम् ।
सहस्रयोजनाप्रस्थे दैर्घ्ये च लक्षयोजना ॥४३
अस्या विनाशः प्रलये नास्त्येव दुहितुमम ।
नानारत्नाकरं दिव्यं तत्तीरं सुमनोहरम् ॥४४

यह अमूल्य रत्नों की तथा सदा श्रेष्ठ मणियों की खान है। उसके तट पर स्थिर यौवन वाली नाग कन्याऐं क्रीड़ाऐं किया करती हैं ॥४२॥ यह स्वयं देवी वैकुण्ठ में निरन्तर वेष्ठित करके एक लक्ष योजन तक दीर्घता वाली और चौड़ाई में एक सहस्र योजन वाली होकर रहा करती है ॥४३॥ मेरी दुहिता इसका कभी प्रलय में भी नाश नहीं होता है। इसका दिव्य तीर अत्यन्त मनोहर और अनेक प्रकार के रत्नों का निधि है ॥४४॥

७६—श्रीकृष्ण चरित्र वर्णनम्

अतः परं किं रहस्यं बभूव मुनिसत्तम ।
कथं जगाम भगवान् मथुरां नन्दमन्दिरात् ॥१
नन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरेः कथम् ।
गोपांगना यशोदा च कृष्णैकतानमानसाः ॥२
चक्षुर्निमेषविच्छेदाद् या राधा न हि जीवति ।
कथं दधार सा देवी प्राणान् प्राणेश्वरं विना ॥३
ये ये तत्संगिनो गोपाः शयनाशनभोगतः ।
कथं विसस्मरुस्ते च तादृशं बान्धवं व्रजे ॥४
श्रीकृष्णोमथुरां गत्वा किं किं कर्म चकारसः ।
स्वर्गारोहणपर्य्यन्तं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥५

कंसश्चकार यज्ञञ्च समाहूतो धनुर्मखम् ।
जगाम् तत्र भगवान् तेन राज्ञा निमन्त्रितः ।।६
राजाप्रस्थापयामास चाक्रूरं भगवत्प्रियम् ।
अक्रूरःप्रेरितो राज्ञा गत्वा च नन्दमन्दिरम् ।।७

इस अध्याय में श्री कृष्ण के मथुरा गमन करने का निरूपण किया जाता है। नारद ने कहा—हे मुनि सत्तम ! इससे आगे क्या रहस्य हुआ ? भगवान् अपने परम प्रिय नन्द के मन्दिर से मथुरा क्यों गये ? नन्द ने अपने परम प्रिय हरि के वियोग हो जाने पर कैसे प्राणों को धारण किया ? व्रज की समस्त गोपाङ्गना तथा माता यशोदा ने भी अपने प्राणों को कैसे रक्खा जोकि कृष्ण में ही एक मात्र मन वाली थी ? ।।१-२।। जो राधा चक्षु के निमेष मात्र समय तक भी कृष्ण का वियोग सहन नहीं कर सकती थी और जीवित नहीं रह सकती थी उस राधा ने अपने प्राणेश्वर के बिना कैसे अपने प्राणों को धारण किया ? ।।३।। जो जो भी उसके सङ्ग में रहने वाले गोप थे जोकि शयन अशन और अन्य सभी भोगों में सर्वदा साथ ही रहा करते थे उन गोपों ने व्रज में उस जैसे बान्धव को कैसे भुला दिया ? श्री कृष्ण ने मथुरा में जाकर क्या-क्या कर्म किये ? श्री कृष्ण के स्वर्गारोहण पर्यन्त जो-जो भी कर्म हुए, उन्हें आप कहने के लिये आप योग्य होते हैं ।।४-५।। नारायण ने कहा—मथुरा के राजा कंस ने यज्ञ किया और उस धनुर्मख में कृष्ण को बुलाया। उस राजा के द्वारा निमन्त्रित होकर भगवान् मथुरा में गये ।।६।। भगवान् के प्रिय अक्रूर को राजा ने व्रज में कृष्ण बलराम को लिवा लाने को भेजा और राजा के द्वारा प्रेरित अक्रूर नन्द के मन्दिर में गया ।।७।।

श्रीकृष्णञ्च गृहीत्वा च सगणं मथुरां गतः ।
कृष्णः श्रीमथुरां गत्वा जघान नृपतिं मुने ।।८
जघान रजकञ्चैव चाणूरं मुष्टिकं गजम् ।
चकार पित्रोरुद्धारं बान्धवानाञ्च बान्धवः ।।९
कुब्जया सह शृंगारं कृत्वा च कौतुकेन च ।
ताञ्च प्रस्थापयामास गोलोकं गोपिकापतिः ।।१०

चकार कृपया विष्णुर्मालाकारस्य मोक्षणम् ।
कृपयाचोद्धवद्वारा बोधयामासगोपिकाः ॥११
तदोपनीतो भगवानवन्तीनगरं ययौ ।
चकार विद्याग्रहणं मुनेः सान्दीपिनेर्गुरोः ॥१२
ततो जित्वा जरासन्धं निहत्य यवनेश्वरम् ।
उग्रसेनञ्च नृपतिञ्चकार विधिपूर्वकम् ॥१३
गत्वा समुद्रनिकटं निर्माय द्वारकां पुरीम् ।
जहाररुक्मिणीं देवीं जित्वानृपतिसंघकम् ॥१४

वह अक्रूर श्री कृष्ण को उनके गणों के सहित लेकर मथुरा आगया। हे मुने ! कृष्ण ने मथुरा में पहुंच कर वहाँ के राजा कंस को मार दिया ॥८॥ परम बन्धु कृष्ण ने मथुरा में कंस के रजक (धोबी)—चाणूर और मुष्टिक नामक दोनों पहलवानों को और गज को भी मार गिराया और फिर माता-पिता देवकी वसुदेव का तथा अन्य बान्धवों का बन्धन से उद्धार किया ॥९॥ श्रीकृष्ण ने मथुरा में कुब्जा के साथ कौतुक से शृङ्गार क्रीड़ा की और गोपिकाओं के पति ने उसे गोलोक धाम में भेज दिया ॥१०॥ विष्णु ने कृपा करके मालाकार का मोक्ष कर दिया और अनुग्रह करके उद्धव के द्वारा गोपिकाओं को व्रज में बोध करा दिया ॥११॥ इसके उपरान्त उस समय स्वयं उपनीत होकर भगवान् अवन्ती नगर में गये। वहाँ पर मुनि सान्दीपनि गुरु से विद्या ग्रहण की थी ॥१२॥ इसके अनन्तर जरासन्ध को जीतकर और यवनेश्वर का हनन करके उग्रसेन को विधि के साथ राजा बनाया ॥१३॥ समुद्र के निकट जाकर द्वारका पुरी का निर्माण किया तथा फिर राजाओं के समूह को जीतकर रुक्मिणी देवी का हरण किया ॥१४॥

कालिन्दीं लक्ष्मणां शैव्यां सत्यां जाम्बवतीं सतीम् ।
मित्रविन्दां नाग्नजितीं समुद्वाहञ्चकार सः ॥१५
निहत्य नरकं भूपं रणेन दारुणेन च ।
पत्नीषोड़शसाहस्र्यं विहारञ्च चकार सः ॥१६

जहार पारिजातञ्च जित्वा शक्रञ्च लीलया ।
चिच्छेदबाणहस्तांश्च जित्वा च चन्द्रशेखरम् ॥१७
पौत्रस्यमोक्षणं कृत्वा पुनरागत्यद्वारकाम् ।
आत्मानं दर्शयामास लोकांश्चप्रतिमन्दिरम् ॥१८
योगे च वसुदेवस्य तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ।
प्राणाधिष्ठातृदेवीञ्च ददर्श तत्र राधिकाम् ॥१९
पूर्णे च शतवर्षे च सुदाम्नः शापमोक्षणे ।
पुनर्ययौ तया सार्द्धं पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥२०
पुनश्चतुर्दशाब्दञ्च तया सार्द्धं जगत्पतिः ।
चकार रासं रासे च पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥२१
पूर्णमेकादशाब्दञ्च निर्वृत्य नन्दमन्दिरे ।
मथुरायां द्वारकायां पूर्णमब्दशतं विभुः ॥२२

उन भगवान् ने इसके उपरान्त कालिन्दी–लक्ष्मणा–शैब्या—सत्या–जाम्बवती–सती मित्रविन्दा और नग्नजिती के साथ विवाह किया ॥१५॥ दारुण युद्ध के द्वारा नरकासुर राजा का हनन करके सोलह सहस्र पत्नियों के साथ उसने विहार किया ॥१६॥ इन्द्र को लीला से ही जीत कर पारिजात वृक्ष का हरण किया । चन्द्रशेखर को जीतकर वाण के हाथों का छेदन कर दिया ॥१७॥ पौत्र का मोक्ष करके फिर द्वारका में आगये । प्रत्येक पत्नी के मन्दिर में अपने आपको लोगों को दिखला दिया ॥१८॥ तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग से वसुदेव के योग में अपनी प्राणों की अधिष्ठात्री देवी राधिका को वहाँ पर देखा ॥१९॥ अपने सौ वर्ष पूर्ण हो जाने पर और सुदामा के शाप के मोक्षण करने के पश्चात् फिर उस राधा के साथ परम पुण्य स्थल वाले वृन्दावन के निकुंज वन में वह श्री कृष्ण चले गये थे ।२०। फिर चौदह वर्ष पर्यन्त उन जगतों के पति ने उस प्राणेश्वरी राधा के साथ पुण्य क्षेत्र भारत में और रास मण्डल में रास किया और ॥२१॥ पूरे ग्यारह वर्ष नन्द-मन्दिर में समाप्त किये और मथुरा में तथा द्वारका में विभु ने पूरे सौ वर्ष व्यतीत किये ॥२२॥

चकार भारहरणं पृथिव्यां पृथुविक्रमः ।
पञ्चविंशतिवर्षञ्च शतवर्षाधिकं मुने ।
तिष्ठन् जगाम गोलोकं पृथिव्याञ्च पुरातनः ॥२३
यशोदायै च नन्दाय वृषभानाय धीमते ।
राधामात्रे कलावत्यै ददौ सामीप्यमोक्षणम् ॥२४
कृष्णेन सार्द्धं गोपीभी राधिका च कुतूहलात् ।
बबन्ध धर्मसेतुञ्च वेदोक्तञ्च युगे युगे ॥२५
इत्येवं कथितं सर्वं समासेन महामुने ।
श्रीकृष्णचरितं रम्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥२६
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च ।
भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥२७
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ।
परमव्ययमव्यक्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२८
सत्यं नित्यं स्वतन्त्रञ्च सर्वेशं प्रकृतेःपरम् ।
निर्गुणञ्च निरीहञ्च निराकारं निरञ्जनम् ॥२९

विशेष विक्रम वाले भगवान् ने हे मुने ! एक सौ पच्चीस वर्ष तक पृथिवी में निवास कर उसके भार का हरण किया था । सवा सौ वर्ष तक भूतल में स्थित रहते हुए भार का हरण और अन्य अनेक लीलाऐं करके पुरातन प्रभु फिर गोलोक धाम में चले गये ॥२३॥ श्री कृष्ण ने यशोदा-नन्द-धीमान् वृषभानु-राधा मात्र और कलावती राधा की माता को सामीप्य का मोक्ष प्रदान किया ॥२४॥ गोपियों और कृष्ण के साथ राधा ने कुतूहल से युग-युग में वेदोक्त धर्मसेतु का बन्धन किया ॥२५॥ हे महा-मुने ! इस प्रकार से यह श्री कृष्ण का रम्य तथा चारों वर्गों के फल को प्रदान करने वाला समस्त चरित्र संक्षेप में वर्णन कर दिया ॥२६॥ ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त सभी नाशवान् है । अतएव परम आनन्द से पूर्ण नन्द के नन्दन का आनन्द के साथ भजन करो ॥२७॥ भगवान् नन्द नन्दन स्वेच्छामय परम ब्रह्म—परमात्मा—ईश्वर—पर अव्यक्त और अपने भक्तों पर अनुग्रह करने वाले स्वरूप से युक्त हैं । वह सत्य—नित्य—स्वतन्त्र—

सर्वेश प्रकृति से पर–निर्गुण–निरीह–निरञ्जन और निराकार हैं। साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम ऐसे श्री कृष्ण का भजन करना चाहिए ॥२८-२९॥

७७—श्रीकृष्णप्रभाववर्णनम्

स एवभगवान् कृष्णः सर्वात्मा पुरुषः परः।
दुराराध्योऽतिसाध्यश्च सर्वाराध्यः सुखप्रदः ॥
निजभक्तातिसाध्यश्च भक्तस्याराध्य एव च ॥१
शश्वद् दृश्यः स्वभक्तस्याभक्तस्यादृश्य एव च ॥२
दुर्ज्ञेयं तस्य चरितं कार्यं हृदयमेव च।
बद्धास्तन्मायया सर्वे मोहिताश्च दुरन्तया ॥३
यद्भयाद्वाति वातोऽयं कूर्मो धत्ते निराश्रयः।
कूर्मोऽनन्तं विधत्ते च यद्भयेन निरन्तरम् ॥४
बिभर्ति शेषो विश्वञ्च यद्भयेन च नारद।
सहस्रशीर्षा पुरुषः शिरसश्चैकदेशतः ॥५
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
शैलकाननसंयुक्ता पातालाः सप्त एव च ॥६
सप्त स्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकसमन्विताः।
एवं विश्वं त्रिभुवनं कृत्रिमं परिकीर्तितम् ॥७

इस अध्याय में श्री कृष्ण के प्रभाव का निरूपण किया जाता है। नारायण ने कहा—वह ही भगवान् कृष्ण सबकी आत्मा पर पुरुष—दुराराध्य—अत्यन्त साध्य और सबके द्वारा आराधना करने के योग्य तथा सुख प्रदान करने वाले हैं ॥१॥ अपने निजभक्तों के द्वारा यह अत्यन्त साधन करने के योग्य हैं और भक्तों के द्वारा आराधना करने योग्य हैं। जो अपने निज के भक्त हैं उन के द्वारा यह निरन्तर दर्शन करने के योग्य हैं जो अभक्त हैं उनको यह कभी भी दृश्य नहीं हुआ करते हैं ॥२॥ श्री कृष्ण का चरित्र बहुत ही दुर्ज्ञेय है। इसका ध्यान हृदय में ही करना चाहिए। उसकी दुरन्त माया से सब लोग मोहित एवं बद्ध हैं ॥३॥ जिसके भय से यह वायु वहन करता है और कूर्म निराश्रय होता हुआ

भूमि को धारण किये रहता है। जिसके भय से कूर्म निरन्तर अनन्त को धारण किया करता है ॥४॥ हे नारद ! यह शेष इस सम्पूर्ण विश्व को जिसके भय से धारण करता रहता है। वह सहस्र शीर्ष वाला पुरुष है किन्तु शिर के एक देश से ही विश्व को धारण करता है ॥५॥ यह वसुन्धरा सात सागरों से युक्त और सात द्वीपों वाली है। इस पर शैल और कानन अनेक हैं। पाताल भी सात ही होते हैं ॥६॥ ब्रह्म लोक से संयुक्त स्वर्ग भी विविध भाँति वाले सात हैं। एक विश्व है और तीन भुवनों वाला है। किन्तु यह सभी कृत्रिम कहा गया है ॥७॥

यद्भयेन विधात्रा च प्रतिसृष्टौ च निर्मितम् ।
एवं विश्वान्यसंख्यानि लोमकूपैर्महान् विराट् ॥८
यद्भयेन विधत्ते च यदंशो ध्यायते हि यम् ।
विष्णुः पाति च संसारं यद्भयेन कृपानिधिः ॥९
कालाग्निरुद्रो यद्भीतः कालः संहरते प्रजाः ।
मृत्युञ्जयो महादेवो यद्भयाद्ध्यायते च यम् ॥१०
षड्गुणैरनुरागैश्च विरागी विरतः सदा ।
यद्भयेन दहत्यग्निः सूर्य्यस्तपति यद्भयात् ॥११
यद्भयाद्वर्षतीन्द्रश्च मृत्युश्चरति जन्तुषु ।
यद्भयेन यमः शास्ता पापिनां धर्म एव च ॥१२
धत्ते च धरणी लोकान् यद्भयेन चराचरान् ।
सूयते प्रकृतिः सृष्टौ यद्भयान्महदादिकम् ॥१३
दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं को वा जानाति पुत्रक ।
यत्प्रभावं न जानन्ति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१४

जिसके भय से विधाता के द्वारा प्रति सृष्टि में इसका निर्माण किया जाता है। इस तरह के असंख्य विश्व हैं। यह महान् विराट इस श्रीकृष्ण के लोमों के छिद्र में ही रहा करते हैं ॥८॥ जिसका एक अंश ही इसके भय से इसको किया करता है और जिसका ध्यान करता रहता है, जिसके भय से विष्णु कृपा का निधि इस संसार का पालन किया करता है ॥९॥ जिसके भय से डरा हुआ होकर कालाग्निरुद्र काल प्रजा का

संहार करता है और मृत्यु को भी जीतने वाला महादेव जिसके भय से भीत होता हुआ ही उसका ध्यान सर्वदा करता रहता है ।।१०।। जो शिव षडगुण और अनुरागों से सर्वदा विराग वाला एवं विरत रहते हैं। जिसके भय से अग्नि दाह किया करता है और सूर्य तपता है ।।११।। जिसके भय के कारण से ही इन्द्र वर्षा किया करता है और यह मृत्यु समस्त जन्तुओं में सञ्चारण करता रहता है। जिसके भय से ही यमराज शासन किया करता है तथा पापियों को दण्ड देता है। धर्मराज भी जिसके भय से शासन करता है ।।१२।। जिसके भय से यह धरणी सम्पूर्ण चर और अचर लोकों को धारण किया करती है। जिसके भय से हो परम भीत होती हुई प्रकृति देवी सृजन में महदादि का प्रसव किया करती है। हे पुत्र ! उस श्री कृष्ण का अभिप्राय बहुत कठिनता से जानने के योग्य है । कौन उसे जानने की सामर्थ्य रख सकता है। जिसके प्रभाव को ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर भी नहीं जानते हैं ।।१३-१४।।

कथं जानामि तच्चेष्ठामहं वत्स सुमन्दधीः ।
कथं जगाम मथुरां त्यक्त्वा वृन्दावनं वनम् ।।१५
कथं तत्याज गोपीश्च राधां प्राणाधिकां प्रियाम् ।
यशोदां बान्धवादींश्च नन्दं वा नन्दनन्दनः ।।१६
दर्पहा दर्पदः सोऽपि सर्वेषां सर्वदः सदा ।
बभञ्ज राधादर्पञ्च सुदाम्नः शापकारणात् ।।१७
अन्येषां भावनाहेतोर्ब्रह्मप्राप्तिस्तथा भवेत् ।
एवं किञ्चिद्वितर्कञ्च कुरुते कमलोद्भवः ।।१८
चकार दर्पभङ्गञ्च महाविष्णुः पुराविभुः ।
ब्रह्मणश्च तथा विष्णोः शेषस्य च शिवस्यच ।।१९
धर्मस्य च यमस्यापि साम्बस्यचन्द्रसूर्य्ययोः ।
गरुड़स्य च वह्नेश्च गुरोर्दुर्वाससस्तथा ।।२०
दौवारिकस्य भक्तस्या जयस्य विजयस्य च ।
सुराणामसुराणाञ्च भवतः कामशक्रयोः ।।२१

लक्ष्मणस्यार्जुनस्यापि बाणस्य च भृगोस्तथा ।
सुमेरोश्चसमुद्राणां वायोश्चवरुणस्यच ।।२२

हे वत्स ! मैं सुमन्द बुद्धि वाला उसकी चेष्टा को कैसे जान सकता हूँ । वह वृन्दावन के निकुञ्जवन का त्याग कर मथुरा में कैसे गये ।।१५।। उन श्रीकृष्ण ने अपनी परम प्रेयसी गोपियों को और प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा को कैसे त्याग दिया । उस नन्द नन्दन ने अपनी माता यशोदा और पिता नन्द को तथा अन्य बान्धव आदि को कैसे और क्यों त्याग दिया । इसे मैं कैसे बता सकता हूँ ।।१६।। वह दर्प के हनन करने वाले—दर्प को देने वाले और सर्वदा सबको सभी कुछ देने वाले हैं । उनने सुदामा के शाप के कारण से राधा के दर्प का भञ्जन किया ।।१७।। अन्यों की भावना के हेतु से ब्रह्म प्राप्ति उस प्रकार से होती है इस प्रकार से कमलोद्भव ब्रह्मा कुछ वितर्क किया करता है ।।१८।। पहिले विभु महा विष्णु ने ब्रह्मा–विष्णु—शेष और शिव का दर्प—भंग किया था ।।१९।। इसी प्रकार से महा विष्णु ने धर्म—यम–साम्ब—चन्द्र–सूर्य–गरुड़–वह्नि और गुरु दुर्वासा का भी दर्प का भंजन किया था ।।२०।। अपने द्वारपाल भक्त जय और विजय का—सुरों का—असुरों का—कामदेव का तथा इन्द्र का भी दर्प का भंग किया ।।२१।। लक्ष्मण–अर्जुन—बाण–भृगु–सुमेरु वायु—वरुण और समुद्रों के दर्प का भी महा विष्णु ने भञ्जन किया ।।२२।।

सरस्वत्याश्च दुर्गायाः पद्मायाश्चभुवस्तथा ।
सावित्र्याश्चैव गङ्गाया मनसायास्तथैव च ।।२३

प्राणाधिष्ठातृदेव्याश्च प्रियया: प्राणतोऽपि च ।
प्राणाधिकाया राधाया अन्येषामपि का कथा ।।२४

हृत्वा दर्पञ्च सर्वेषां प्रसादञ्च चकार सः ।
कर्ता हर्ता पालयिता स्रष्टा स्रष्टुश्च सर्वतः ।।२५

यं स्तोतुमीशो नालञ्च पञ्चवक्त्रेण शङ्करः ।
स्तोतुं नालं चतुर्वक्त्रो विधाताजगतामपि ।।२६

स्तोतुं नालमनन्तश्च सहस्रवदनैरहो ।
स्वयं विष्णुर्विश्वव्यापी नालं स्तोतुं जनार्दनः ॥२७

महाविराट् न शक्तोऽपि यं स्तोतुं परमेश्वरम् ।
कम्पिता यस्य पुरतः प्रकृतिः परमात्मनः ॥२८

सरस्वती जड़ीभूता यं स्तोतुं परमेश्वरम् ।
महिमानं न जानन्ति वेदा यस्य च नारद ॥२९

इत्येवं कथितो ब्रह्मन् प्रभावः परमात्मनः ।
निर्गुणस्य च कृष्णस्य किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३०

सरस्वती का—दुर्गा का— पद्मा और पृथ्वी का—सावित्री—गंगा—मनसा के दर्प का भी भंजन किया ॥२३॥ अपने प्राणों की अधिष्ठात्री देवी—प्राणों से अधिक प्रिया राधा के दर्प का भी उन्होंने भंजन किया तो अन्यों के विषय में तो कहा ही क्या जावे ॥२४॥ उन्होने सबके दर्प का हनन करके पीछे सभी पर अपनी प्रसन्नता भी की है। वह कर्त्ता-हर्त्ता पालयिता और सृजन करने वाले का भी स्रष्टा हैं ॥२५॥ पाँच मुखों वाले शङ्कर भी जिसका श्रवण करने में समर्थ नहीं होते हैं। सम्पूर्ण जगतों का विधाता चार मुखों वाले भी जिसकी स्तुति करने में क्षमता नहीं रखते हैं ॥२६॥ शेष के एक सहस्र मुख हैं किन्तु वह भी जिसकी स्तुति करने में असमर्थ रहते हैं। स्वयं विष्णु जनार्दन जो कि सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है—इनका स्तवन करने की सामर्थ नहीं रखते हैं। जिस परमेश्वर की स्तुति करने में महाविराट् भी समर्थ नहीं होते हैं। जिस परमात्मा के समक्ष में प्रकृति कम्पित रहा करती है। जिस परमेश्वर की स्तुति करने में सरस्वतीदेवी जड़ी भूत हो जाया करती है हे नारद ! उसकी महिमा को वेद भी नहीं जानते हैं ॥२९॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार का परमात्मा का महान् प्रभाव होता है जिसका हमने निरूपण कर दिया है। अब उस निर्गुण कृष्ण के विषय में अन्य तुम और क्या श्रवण करने की इच्छा रखते हो ॥१३०॥

७८—कंसयज्ञकथनम्

अथकंसो विचिन्त्यैवं दृष्ट्वा दुःस्वप्नमेवच ।
समुद्विग्नो महाभीतो निराहारोनिरुत्सुकः ॥१
पुत्रं मित्रं बन्धुगणं बान्धवञ्च पुरोहितम् ।
समानीय सभामध्ये तानुवाच सुदुःखितः ॥२
मयादृष्टो निशीथे यो दुःस्वप्नोहिभयप्रदः ।
निबोधतबुधाः सर्वे बान्धवाश्च पुरोहिताः ॥३
बिभ्रती रक्तपुष्पाणां मालां सारक्त चन्दनम् ।
रक्ताम्बरं खड्गतीक्ष्णं खर्परञ्च भयंकरम् ॥४
प्रकृत्याट्टाट्टहासञ्च लोलजिह्वा भयंकरी ।
अतीववृद्धा कृष्णांगी नगरे ममनृत्यति ॥५
मुक्तकेशी छिन्ननासा कृष्णा कृष्णाम्बरापि या ।
विधवा सा महाशूद्री मामालिंगितुमिच्छति ॥६
मलिनं चैलखण्डञ्च बिभ्रती रूक्षमूर्द्धजान् ।
दधतीं कूर्णतिलकं कपाले मम वक्षसि ॥७
कृष्णवर्णानि पक्वानि छिन्नभिन्नानि सत्यक ।
पतन्तिकृत्वाशब्दांश्चशश्वत्तालफलानिच ॥८

इस अध्याय में कंस राजा के यज्ञ का निरूपण है । नारद ने कहा—इसके अनन्तर कंस ने इस प्रकार से विचिन्तन कर तथा दुःस्वप्न को देख कर वह एक समुद्विग्न हो गया । उसे महान् भय व्याप्त हो गया और उत्साह हीन होते हुए निराहार रहने लगा ॥१॥ उसने अपने पुत्र—मित्र गण—वन्धुवर्ग—बान्धव—और पुरोहित इन सबको बुलाकर वह बहुत अधिक दुःखित होते हुए सभा के मध्य में उनसे बोला ॥२॥ कंस ने कहा--आज मैंने आधी रात में एक बहुत ही बुरा स्वप्न देखा जिससे अत्यधिक भय ने मुझे घेर लिया है । अब आप समस्त मेरे बान्धव लोग—विद्वान् और पुरोहित मुझे समझाने की कृपा करें ॥३॥ मेरे नगर में मैंने स्वप्न में देखा है कि एक अत्यन्त वृद्धा जिसका वर्ण एकदम काला है, नृत्य

करती हुई भ्रमण कर रही है। वह रक्त वर्ण के पुष्पों की माला तथा रक्त चन्दन धारण करने वाली थी। उसके वस्त्र भी लाल थे। उसके हाथ में एक तीक्ष्ण खंग और अति भयंकर खप्पर था। उसकी बहुत ही चंचल लम्बी जिह्वा बाहिर निकल रही थी और वह एकदम बड़े ही जोर से अट्टहास कर रही थी ॥४-५॥ उसके केशों का जूड़ा खुला हुआ था अर्थात् शिर के बाल बिखरे हुए थे। एक ऐसी थी जिसकी नासिका छिन्न थी तथा कृष्ण अम्बर वाली थी। वह विधवा—महा शूद्री मेरा आलिगन करने की इच्छा वाली हो रही थी ॥६॥ मैला एक पुराने वस्त्र के खण्ड को धारण करने वाली तथा जिसके केश बहुत ही रूखे थे और चूर्ण तिलक को कपाल पर लगाये हुए थी। मेरे वक्षःस्थल पर कृष्ण वर्ण वाले-पक्व और छिन्न-भिन्न ताल के फल निरन्तर शब्द करते हुए गिर रहे थे॥७-८॥

कुचैलो विकृताकारो म्लेच्छो हि रूक्षमूर्द्धजः।
ददाति मह्य भूषायां छिन्नभिन्नकपर्दकान् ॥९
महारुष्टा च दिव्या स्त्री पतिपुत्रवती सती।
बभञ्ज पूर्णकुम्भञ्च साभिशप्य पुनः पुनः ॥१०
अम्लानामूढ़मालाञ्च रक्तचन्दनचर्चिताम्।
ददाति मह्यं विप्रश्च महारुष्टोऽतिशप्य च ॥११
क्षणमङ्गारवृष्टिश्च भस्मवृष्टिः क्षणं क्षणम्।
क्षणं क्षणं रक्तवृष्टिर्भवेच्च नगरे मम ॥१२
वानरं वायसं श्वानं भल्लूकं शूकरं खरम्।
पश्यामि विकटाकारं शब्दं कुर्वन्तमुल्वणम् ॥१३
पश्यामि शुष्ककाष्ठानां राशिमम्लानकज्जलम्।
अरुणोदयवेलायां कपीन् छिन्ननखानि च ॥१४

एक कुवस्त्रधारी—विकृत आकार वाला—रूखे केशों से युक्त म्लेच्छ है जो मुझे भूषा के लिये छिन्न-भिन्न चिथड़ों को दे रहा था ॥९॥ पति और पुत्र वाली सती दिव्य स्त्री अत्यधिक मुझ पर रुष्ट हो रही थी और वह बार-बार पूर्ण कुम्भ का भञ्जन कर मुझे अभिशप्त कर रही थी ॥१०॥ एक महान् रुष्ट विप्र रक्त चन्दन से चर्चित अम्लान मूढ़ माला को

अति शप्त करके दे रहा था ॥११॥ क्षण भर में तो मैंने स्वप्न में देखा कि अंगारों की वर्षा चारों ओर हो रही है और फिर दूसरे ही क्षण में भस्म की वर्षा हो रही है। कभी२ क्षण-क्षण में रक्त वृष्टि होती हुई मैंने अपने ही नगर में देखी। मैंने रात्रि के स्वप्न में यह भी देखा कि वानर वायम--श्वान--भल्लूक--शूकर और गधा बिकट आकार वाला अत्यन्त उल्वण शब्द कर रहे थे। मैंने शुष्क काष्ठों के समूह को अम्लान कज्जल के रूप में देखा तथा अरुणोदय के समय में कपियों को और छिन्न नखों को देखा ॥१२-१४॥

पीतवस्त्रपरीधाना शुल्कचन्दनचर्चिता।
बिभ्रती मालतीमालां रत्नभूषणभूषिता॥१५
क्रीड़ाकमलहस्ता सा सिन्दूरविन्दुशोभिता।
कृत्वाभिशापं मां रुष्टा याति मन्मन्दिरात् सती॥१६
पाशहस्तांश्च पुरुषान् मुक्तकेशान् भयङ्करान्।
अतिरूक्षांश्च पश्यामि विशतो नगरं मम॥१७
नग्ननारीं मुक्तकेशीं नृत्यन्तीञ्च गृहे गृहे।
अतीव विकृताकारां पश्यामि सस्मितां सदा॥१८
छिन्ननासा च विधवा महाशूद्री दिगम्बरी।
सा तैलाभ्यङ्गितं माञ्च करोत्यतिभयङ्करी॥१९
निर्वाणाङ्गारयुक्ताश्च भस्मपूर्णा दिगम्बराः।
अतिप्रभातसमये चित्राः पश्यामि सस्मिताः॥२०

कंस ने कहा मैंने रात्रि के स्वप्न में देखा कि एक पीतवर्ण के वस्त्र का परीधान करने वाली—शुक्ल चन्दन से चर्चित अंगों वाली—मालती की माला धारण किये हुए—रत्नों के आभूषणों से विभूषित तथा क्रीड़ार्थ कमल हाथ में लेने वाली एवं सिन्दूर के विन्दु से शोभित मस्तक वाली सती है जो मुझ पर अत्यन्त रुष्ट हो गई और मुझे अभिशाप देकर वह मेरे मन्दिर से बाहिर कहीं चली गई ॥१५-१६॥ मैंने स्वप्न में देखा कि मेरे इस नगर में मुक्त केशों वाले अत्यन्त भयङ्कर पुरुष जिनके हाथों में पाश लगे हुए थे और वे बहुत ही अधिक रूखे प्रवेश कर रहे थे ॥१७॥

एक नग्न नारी जिसके माथे के केश एक दम खुले हुए थे घर-घर में नृत्य करती हुई भ्रमण कर रही थी। मैंने देखा कि उसकी आकृति अत्यन्त विकृत थी और मुस्करा रही थी ॥१८॥ एक छिन्न नासिका वाली विधवा महाशूद्री बिलकुल ही नग्न थी। वह अत्यन्त भयंकरी मेरा तैलाभ्यङ्ग कर रही थी ॥१९॥ मैंने देखा कि निर्वाण अंगारों से युद्ध-भस्म से पूर्ण और नग्न, स्मित करने वाले विचित्र पुरुष अति प्रभात के समय में यहाँ मेरे नगर में आये हुऐ हैं ॥२०॥

पश्यामि च विवाहञ्च नृत्यगीतमनोहरम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानान् पुरुषान् रक्तमूर्द्धजान् ॥२१
रक्तं वमन्तं पुरुषं नृत्यन्तं नग्नमुल्वणम् ।
धावन्तञ्च शयानञ्च पश्यामि सस्मितं सदा ॥२२
राहुग्रस्तञ्च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्य्ययोः ।
एककाले च पश्यामि सर्वग्रासञ्च बान्धवाः ॥२३
उल्कापातं धूमकेतुं भूकम्पं राष्ट्रविप्लवम् ।
झञ्झावातं महोत्पातं पश्यामि च पुरोहित ॥२४
वायुना घूर्णमानांश्च छिन्नस्कन्धान् महीरुहान् ।
पतितान् पर्वतांश्चैव पश्यामि पृथिवीतले ॥२५
पुरुषं छिन्नशिरसं नृत्यन्तं नग्नमुच्छ्रितम् ।
मुण्डमालाकरं घोरं पश्यामि च गृहे गृहे ॥२६
दग्धं सर्वाश्रमं भस्मपूर्णमंगारसंकुलम् ।
हाहाकारञ्च कुर्वन्तं सर्वं पश्यामि सर्वतः ॥२७
इत्येवमुक्त्वा राजा स विरराम सभातले ।
श्रुत्वा स्वप्नं बान्धवाश्च नतवक्त्रा निशश्वसुः ॥२८
जहार चेतनां सद्यः सत्यकश्च पुरोहितः ।
मत्वा विनाशं कंसस्य यजमानस्य नारद ॥२९
रुरोद नारीवर्गश्च पिता माता च शोकतः ।
मेने विनाशकालञ्च सद्यः स्वयमुपस्थितम् ॥३०

मैंने स्वप्न में विवाह–मनोहर नृत्यगीत–रक्तवस्त्र के परीधान वाले तथा रक्त केशों वाले पुरुष देखे ॥२१॥ ऐसा पुरुष भी देखा जो नग्न— तेजी से दौड़ लग ने वाला, रक्त का वमन करने वाला, नाचता हुआ— सोता हुआ और मुस्कान से समन्वित था ॥२२॥ मैंने चन्द्र और सूर्य दोनों को आकाश में राहु के द्वारा ग्रसा हुआ देखा। मैंने एक ही काल में समस्त का हे बान्धवो ! सर्व ग्रास होते हुए देखा ॥२३॥ उल्कापात, धूमकेतु, भूकम्प, राष्ट्र विप्लव, झञ्झावात, महोत्पात ये सब हे पुरोहित ! मैंने स्वप्न में देखे ॥२४॥ मैंने यह भी देखा कि वायु के द्वारा वृक्ष एक दम हिल रहे थे और उनके स्कन्ध टूट२ कर गिर रहे थे। मैंने पर्वतों को गिरते हुए देखा जो पृथ्वी पर उखड़२ कर पतित हो रहे थे ॥२५॥ कटे हुए मस्तक वाले, नग्न और उच्छ्रित एवं नृत्य करने वाले पुरुष को देखा। मैंने घर-घर में मुण्डों की मालाओं का ढेर देखा जो कि अत्यन्त ही घोर रूप वाला था ॥२६॥ समस्त आश्रम दग्ध भस्म से पूर्ण और अंगारों से घिरे हुए थे। मैंने देखा कि सभी ओर सब हा हा कार का चीत्कार कर रहे थे ॥२७॥ इस प्रकार से यह सब कह कर राजा कंस उस सभा के स्थल में चुप हो गया बान्धवों ने जब इस प्रकार के दुःस्वप्न को सुना तो सबके सब नम्र मस्तक होकर लम्बी श्वास लेने लगे। सत्यक नामधारी पुरोहित ने तुरन्त ही चेतना का हरण किया। हे नारद ! उसने अपने यजमान कंस के विनाश का होना मान लिया ॥२९॥ समस्त नारी वर्ग रुदन करने लगा तथा माता–पिता भी शोक से ग्रस्त होकर रुदन कर रहे थे। सबने शीघ्र ही स्वयं उपस्थित विनाश का काल अच्छी तरह से मान लिया ॥३०॥

७९—कंस सत्यक परामर्शः

सर्वं कृत्वा परामर्शं सत्यकश्च पुरोहितः।
बुद्धिमान् शुक्रशिष्यश्च तमुवाच हितं मुने ॥१
भयं त्यज महाभाग भयं किं ते मयि स्थिते।
कुरु यागं महेशस्य सर्वारिष्टविनाशनम् ॥२

यागो धनुर्मखो नाम बह्वन्नो बहुदक्षिणः ।
दुःस्वप्नानां नाशकरः शत्रुभीतिविनाशकः ॥३
आध्यात्मिकमाधिदैवमाधिभौतिकमुत्कटम् ।
एषां त्रिविधोत्पातानां खण्डनो भूतिवर्धनः ॥४
यागे समाप्ते शम्भुश्च जरामृत्युहरं वरम् ।
ददाति साक्षाद्भवति दाता च सर्वसम्पदाम् ॥५
चकारेमञ्च यागञ्च पुरा बाणो महाबलः ।
नन्दी परशुरामश्च मल्लश्च बलिनां वरः ॥६
पुरा ददौ धनुरिदं शिवो नन्दीश्वराय च ।
यागेन भूत्वा सिद्धः स ददौ बाणाय धार्मिकः ॥७

नारायण ने कहा—हे मुने ! सत्यक नामक कंस के पुरोहित ने जो शुक्राचार्य का शिष्य था और अत्यधिक बुद्धिमान् था सब परामर्श करके कंस से उसके हित की बात बोला ॥१॥ सत्यक ने कहा—हे महाभाग ! आप अपने भय का त्याग कर देवें। मेरे स्थित होते हुए आपको किस बात का भय है। आप अब शिव का याग करिए जो कि समस्त अरिष्टों के विनाश करने वाला है ॥२॥ वह याग धनुर्मख नाम वाला है जिसमें बहुत सा अन्न लगता है और बहुत अधिक दक्षिणा भी दी जाती है। यह याग दुःस्वप्नों के बुरे फलों का नाश करने वाला है और शत्रुओं की भीति का विनाशक होता है ॥३॥ भूति वर्धन शिव आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों प्रकार के उत्पातों का उत्कट खण्डन करने वाला देवता है ॥४॥ याग के समाप्त होते ही शम्भु जरा और मृत्यु के हरण करने वाला वरदान दिया करते हैं और वह साक्षात् समस्त प्रकार की सम्पदाओं के प्रदान करने वाले होते हैं ॥५॥ पहिले महाबली बाण ने इस याग को किया था। नन्दी, परशुराम और बलियों में श्रेष्ठ मल्ल ने भी इस याग को किया था। पहिले शिव ने नन्दीश्वर के लिये यह धनु दिया। याग से वह सिद्ध हो गया और फिर उस धार्मिक ने इसे बाण के लिये दे दिया था ॥६-७॥

कृत्वा यागं महासिद्धो ददौ रामाय पुष्करे ।
तुभ्यं ददौ पर्शुरामः कृपया च कृपानिधिः ॥८
सहस्रहस्तपरिमितं दैर्घ्येऽतिकठिनं नृप ।
दशहस्तप्रशस्तञ्च शङ्करेच्छाविनिर्मितम् ॥९
पशुपतेः पाशुपतं युक्तयानेन दुर्वहम् ।
सर्वं भंक्तुं न शक्ताश्च देवं नारायणं विना ॥१०
यागे च धनुषः पूजां शङ्करस्य तु शङ्करे ।
कुरु शीघ्रं शुभाहंञ्च सर्वान् कुरु निमन्त्रणम् ॥११
अस्मिन् यागे धनुर्भङ्गो भवेद्यदि नराधिप ।
विनाशो यजमानस्य भविष्यति न संशयः ॥१२
भग्ने धनुषि यागश्च भग्नो भवति निश्चितम् ।
फलं ददाति को वात्र चानिष्पन्ने च कर्मणि ॥१३
ब्रह्मा च धनुषो मूले मध्ये नारायणः स्वयम् ।
अग्रे चोग्रप्रतापश्च महादेवो महामते ॥१४

महा सिद्ध ने याग करके पुष्कर में इसे परशुराम को दे दिया और कृपा के निधि परशुराम ने इसे तुमको दिया था ॥८॥ हे नृप ! यह दीर्घता में एक सहस्र परिमित है और अत्यन्त कठिन है। यह दश हस्त प्रशस्त शंकर की इच्छा से ही निर्मित किया गया है ॥९॥ यह पशुपति का पाशुपत धनु युक्तमान के द्वारा भी दुर्वह है। नारायणदेव के बिना इसको सभंग करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥१०॥ इस शंकर के धनुष के याग में शंकर की पूजा आप शीघ्र ही करें। यह परम शुभ करने वाला है। इस याग में आप सबको निमन्त्रित करें ॥११॥ हे नराधिप ! इस याग में यदि धनुष का भंग हो जायगा तो यजमान का निश्चय ही विनाश हो जायगा–इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१२॥ धनुष के भग्न हो जाने पर तो फिर वह याग भी निश्चित रूप से भग्न हो जायगा। जब कर्म ही पूर्ण निष्पन्न नहीं होगा तो फिर इसका फल देने वाला भी कौन होगा। अर्थात् कोई भी फल दाता नहीं होगा ॥१३॥ इस धनुष के मूल में ब्रह्मा विराजमान रहते हैं और इसके मध्य में नारायण स्वयं

विद्यमान हैं और हे महामते ! इसके अग्र भाग में उग्रप्रताप वाले महादेव रहते हैं ॥१४॥

धनुर्हि त्रिविकारञ्च सद्रत्नखचितं वरम् ।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाप्रच्छन्नकारणम् ॥१५
अशक्तश्च नमयितुमनन्तश्च महाबलः ।
सूर्यश्च कार्तिकेयश्च का कथान्यस्य भूमिप ॥१६
त्रिपुरारिः पुरानेन जघान त्रिपुरं मुदा ।
निर्भयं कुरु स्वच्छन्दं मंगलार्हं महोत्सवे ॥१७
सत्यकस्य वचः श्रुत्वा चन्द्रवंशविवर्धनः ।
उवाच कंसः सर्वार्थे सततञ्च हितैषिणम् ॥१८
वसुदेवगृहे यज्ञे मद्वधी कुलनाशनः ।
स्वच्छन्दं नन्दगेहे च वर्धते नन्दनन्दनः ॥१९
मद्बन्धुवर्गान् शूरांश्च मन्त्रिणः सुविशारदान् ।
भगिनीं पूतनां पूतां जघान बालको बली ॥२०
गोवर्धनं दधारैककरेण वलवर्धनः ।
महेन्द्रस्य च शुरस्य चकार च पराभवम् ॥२१

इस धनुष में तीन विकार हैं। यह बहुत उत्तम रत्नों से खचित है। श्रेष्ठ है और ग्रीष्म काल के मध्याह्न के मार्तण्ड की प्रभा के तुल्य प्रभा से प्रछन्न कारण वाला है ॥१५॥ इसको महान् बलशाली अनन्त स्वामि कार्त्तिकेय, सूर्य भी नवा देने में असमर्थ हैं अन्य के विषय में तो कहा ही क्या जा सकता है ॥१६॥ हे राजन् ! पहिले त्रिपुरारि शिव ने इसके ही द्वारा त्रिपुर को बड़े हर्ष से मारा था। आप बिल्कुल निर्भय होकर महोत्सव में मङ्गल के योग्य इस धनुर्मख को स्वच्छन्दता पूर्वक करिये ॥१७॥ सत्यक पुरोहित के इस वचन का श्रवण कर चन्द्र वंश को बढ़ाने वाला कंस सभी अर्थों में निरन्तर अपने हित चाहने वाले उससे बोला ॥१८॥ कंस ने कहा—वसुदेव के गृह में यज्ञ में मेरे मारने वाला कुल का नाशक स्वतन्त्रता पूर्वक नन्द नन्दन नन्द के घर में वर्धमान हो रहा है ॥१९॥ उस बलवान् बालक ने मेरे बन्धु वर्गों—शूरों–सुविशारद मन्त्रियों

को तथा मेरी भगिनी परम पूत पूतना को मार दिया ॥२०॥ उन बल में बढ़े हुए ने गोवर्धन को एक ही हाथ से उठा लिया। महान् शूर महेन्द्र का भी उसने पराभव कर दिया ॥२१॥

ब्रह्माणं दर्शयामास ब्रह्मरूपं चराचरम् ।
निवहं बालवत्सानां चकार कृत्रिमं मुदा ॥२२
तमेव बलिनं हन्तुं मन्त्रणं कुरु सत्यक ।
मम शत्रुर्विना तेन नास्तीह धरणीतले ॥२३
न हि स्वर्गे न पाताले त्रिषु लोकेषु निश्चितम् ।
सन्ति सन्तश्च राजानः सर्वत्र मम बान्धवाः ॥२४
महातपस्वी ब्रह्मा च तपस्वी शङ्करः स्वयम् ।
विष्णुः सर्वत्र सर्वात्मा समदर्शी सनातनः ॥२५
नन्दपुत्रं निहत्याहं त्रिषु लोकेषु पूजितः ।
सार्वभौमो भविष्यामि सप्तद्वीपेश्वरो महान् ॥२६
स्वर्गे निहत्य शक्रं च दुर्बलं दैत्यनिर्जितम् ।
भविष्यामि महेन्द्रश्चतत्र निर्जित्य भास्करम् ॥२७
यक्ष्मग्रस्तं च चन्द्रं च ममैव पूर्वपूरुषम् ।
वायुं कुबेरं वरुणं यमं जेष्यामि निश्चितम् ॥२८

इस बालक ने ब्रह्मा को अपना चराचर ब्रह्मरूप दिखला दिया कि बड़े हर्ष से कृत्रिम बालक और वत्सों का निर्वाह कर दिया ॥२२॥ हे सत्यक ! तुम उस प्रकार के बली के हनन करने की मन्त्रणा करो। उसको छोड़कर इस धरणी तल में अन्य मेरा कोई भी शत्रु पैदा नहीं हुआ है ॥२३॥ स्वर्ग में—पाताल में और तीनों लोकों में निश्चत रूप से मेरा कोई शत्रु नहीं है। सभी सन्त और राजा लोग सर्वत्र मेरे बान्धव ही हैं ॥२४॥ ब्रह्मा तो महान् तपस्वी पुरुष हैं। शङ्कर भी स्वयं परम तपस्या करने वाले हैं तथा विष्णु सभी जगह रहने वाला—सब की आत्मा और सबको समदृष्टि से देखने वाला है तथा सनातन है ॥२५॥ यदि मैं किसी भी प्रकार से नन्द के पुत्र का निहनन कर पाऊँ तो फिर मैं तीनों लोकों में पूजित हो सकूँगा और महान् सातों द्वीपों का स्वामी सार्वभौम

हो सकता हूँ ॥२६॥ स्वर्ग में दैत्यों के द्वारा निर्जित दुर्बल इन्द्र को मार कर मैं भी महेन्द्र हो जाऊंगा। सूर्य को पराजित कर और यक्ष्मा से ग्रसित चन्द्रमा को भी जो कि मेरा ही पूर्व पुरुष है, जीतकर फिर मैं वायु—कुवेर—वरुण और यम को निश्चित रूप से अवश्य ही जीत लूँगा ॥२७-२८॥

गच्छ नन्दव्रजं शीघ्रं नन्दं च नन्दनन्दनम् ।
तद्भ्रातरं च बलिनं बलमानय साम्प्रतम् ॥२९
कंसस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच स सत्यकः ।
हितं सत्यं नीतिसारं परं सामयिकं तथा ॥३०
अक्रूरमुद्धवं वापि वसुदेवमथापि वा ।
प्रस्थापय महाभाग नन्दव्रजमभीप्सितम् ॥३१
सत्यकस्य वचः श्रुत्वा वसन्तं तत्र संसदि ।
स्वर्णसिंहासनस्थं च वसुदेवमुवाच सः ॥३२
तत्त्वज्ञो नीतिशास्त्राणां त्वमुपायविशारदः ।
व्रज नन्दव्रजं बन्धो वसुदेवसुतालयम् ॥३३
वृषभानुञ्च नन्दञ्च बलञ्च नन्दनन्दनम् ।
शीघ्रमानय यज्ञेऽत्र सर्वं गोकुलवासिनम् ॥३४
गृहीत्वा पत्रिकां दूता गच्छन्तु च चतुर्दिशम् ।
नृपान् मुनिगणान् सर्वान् कर्तुं विज्ञापनं मुदा ॥३५
नृपस्य वचनं श्रुत्वा शुष्कण्ठोष्ठतालुकः ।
उवाच वचनं ब्रह्मन् हृदयेन विदूयता ॥३६

कंस ने सत्यक पुरोहित से कहा कि तुम अब शीघ्र व्रज में जाओ वहां नन्द व्रज में जाकर नन्द—नन्द नन्दन और उसके भाई महाबली बलराम को अब यहाँ ले आओ ॥२९॥ कंस के इस वचन का श्रवण कर सत्यक उससे सत्य—नीति का सार—बहुत ही समय के अनुसार उचित एवं हित वचन बोला—सत्यक ने कहा—हे महाराज ! नन्द व्रज में तो उस परम अभीप्सित स्थल में आप अक्रूर—उद्धव या वसुदेव को ही

भिजवाइये ॥३०-३१॥ सत्यक के इस वचन को सुनकर उस संसद में वास करने वाले और स्वर्ण के सिंहासन पर स्थित वसुदेव से वह कंस बोला—॥३२॥ राजेन्द्र कंस ने कहा—आप तो नीति शास्त्रों के तत्त्वों के परम ज्ञाता हैं और आप सभी उपायों के भी महान् पण्डित हैं। हे बन्धो! अब आप नन्द के व्रज में चले जाइये जो कि वसुदेव के सुत का आलय है ॥३३॥ आप वहाँ से वृषभानु-नन्द बलराम और नन्द नन्दन को यहाँ यज्ञ में अन्य भी समस्त गोकुल वासियों को लिवा लाओ ॥३४॥ दूत लोग पत्रिका लेकर चारों दिशाओं में चले जावें। मेरे यहाँ धनुर्मख होने वाला है—इसका सब नृपों—मुनियों और अन्य सबको भली भाँति विज्ञापन हर्ष पूर्वक कर देवें ॥३५॥ राजा कंस के इस वचन को सुनकर वसुदेव का कण्ठ—ओष्ठ और ताल शुष्क हो गये थे। हे ब्रह्मन्! विदूयमान हृदय से वसुदेव ने यह वचन राजा कंस से कहा—॥३६॥

न युक्तमत्र राजेन्द्र गमनं मम साम्प्रतम्।
विज्ञापितुं नन्दव्रजं वसुदेवस्य नन्दनम् ॥३७

यद्यायातो नन्दपुत्रो यागे ते च महोत्सवे।
अवश्यं तद्विरोधश्च भविष्यति त्वया सह ॥३८

तमहं च समानीय कारयिष्यामि संयुगम्।
इति मे न हि भद्रं च विघ्नस्तस्य तत्रापि च ॥३९
पित्रानीतो मृतः कृष्णः इति सर्वो वदिष्यति।
वसुदेवः सुतद्वारा जघान नृपमेव च ॥४०

द्वयोरेकतरस्यापि सद्यो मृत्युर्भविष्यति।
पतिष्यन्ति च शूराश्च नास्ति युद्धं निरामयम् ॥४१

वसुदेव बोले—हे राजेन्द्र! मेरा इस समय वहाँ पर जाना उचित न होगा कि मैं वहाँ जाकर नन्द व्रज में वसुदेव के नन्दन को इसका विज्ञापन करूं ॥३७॥ यदि वह नन्द का पुत्र यहाँ आगया और आपके इस महान उत्सव धनुर्मख में सम्मिलित हुआ तो अवश्य ही आपका विरोध उस के साथ हो जायगा ॥३८॥ मैं उसको यहाँ लाकर एक युद्ध कराऊं,

इससे मेरी भी कोई भलाई नहीं होगी तथा आपका भी इससे कल्याण नहीं होगा और उसको विघ्न हो जायगा ।।३९।। फिर तो संसार में सभी लोग यही कहेंगे कि पिता ही इस कृष्ण को मथुरा ले गया था कि वह वहाँ जाकर मर गया था । अथवा वसुदेव ही ने अपने पुत्र के द्वारा राजा को मरवा दिया था ।।४०।। दोनों में किसी भी एक की तुरन्त ही मृत्यु तो अवश्य ही होगी क्यों कि शूर लोगों का पतन होता ही है कभी भी युद्ध में निरामय तो होता ही है ।।४१।।

वसुदेववचः श्रुत्वा रक्तपंकजलोचनः ।
खड्गं गृहीत्वा तं हन्तुं प्रययौनृपतीश्वरः ।।४२
हा हेति कृत्वा पुत्रंच वारयामास तत्क्षणम् ।
उग्रसेनो महाराजमतीवबलवान् मुने ।।४३
स्वपीठाद्वसुदेवश्च कोपाविष्टो गृहं ययौ ।
अक्रूरं प्रेरयामास गन्तुं नन्दव्रजं नृपः ।।४४
दूतान् प्रस्थापयामास शीघ्रं प्रतिदिशं तथा ।
आययुर्मुनयः सर्वे नृपाश्च सपरिच्छदाः ।।४५
दिक्पालाश्च सुराः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।
सनकश्च सनन्दश्च वोढुः पंचशिखस्तथा ।।४६
सनत्कुमारो भगवान् प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ।
कपिलश्चासुरिः पैलः सुमन्तुश्च सनातनः ।।४७
पुलहश्च पुलस्त्यश्च भृगुश्च क्रतुरंगिराः ।
मरीचिःकश्यपश्चैव दक्षोऽत्रिश्च्यवनस्तथा ।।४८
भरद्वाजश्च व्यासश्च गौतमश्च पराशरः ।
प्रचेताश्च वशिष्ठश्च संवर्तश्च बृहस्पतिः ।।४९

वसुदेव के इस वचन को श्रवण कर कंस की आँखें एक दम रक्त कमल के समान लाल हो गईं और वह खड्ग लेकर क्रोध से उस वसुदेव को मारने के लिये चल दिया ।।४२।। उस समय उग्रसेन पिता ने अपने पुत्र कंस नृप को हा हा कार कर के वारण किया । हे मुने ! उस महाराज को अत्यन्त बलवान् उस समय उग्रसेन ही रोक सका ।।४३।।

वसुदेव भी कोप में आविष्ट होकर अपने आसन से उठकर अपने गृह को चले गये फिर राजा कंस ने अक्रूर को नन्द के व्रज में जाने के लिये प्रेरित किया ॥४४॥ उसी समय उसने प्रत्येक दिशा में इस महोत्सव का विज्ञापन करने के लिये दूतों को भिजवा दिया वहाँ पर सभी मुनिगण और राजा लोग परिच्छदों के सहित आने लगे ॥४५॥ सभी दिशाओं के स्वामी—देवगण—ब्राह्मण—तपस्वी—सनक—सनन्द—वोढु और पंच-शिख—ब्रह्म—तेज से प्रज्वलित भगवान् सनत्कुमार—कपिल—आसुरि—पैल—सुमन्तु—सनातन—प्रलह—पुलस्त्य—भृगु—क्रतु—अङ्गिरा——मरीचि—कश्यप—दक्ष—अत्रि—च्यवन—भरद्वाज—व्यास—गौतम—पराशर—प्रचेता—वशिष्ठ—संवर्त्त—और—बृहस्पति ये सभी वहाँ पर राजा कंस के धनुर्मख के महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये आये थे ॥४६-४९॥

कात्यायनो याज्ञवल्कचोऽप्युतथ्यः सौभरिस्तथा ।
पर्वतो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च जैमिनः ॥५०
विश्वामित्रश्च सुतपाः पिप्पलःशाकटायनः ।
जावालिर्जाङ्गलिश्चैव पिङ्गलिश्च शिलालिकः ॥५१
अस्तिकश्चजरत्कारुस्तथा कल्याणमित्रकः ।
दुर्वासावामदेवश्च ऋष्यशृंगोविभाण्डकः ॥५२
करिपथः कणादश्च कौशिकः पाणिनिस्तथा ।
कौत्सोऽघमर्षणश्चौव बाल्मीकिर्लोमहर्षणः ॥५३
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च पशुरामश्च साङ्कृतिः ।
अगस्त्यश्च तथावान्च तथाऽन्ये मुनयो मुने ॥५४
सशिष्याश्च सपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।
जरासन्धो दन्तवक्रो दाम्भिको द्राविडाधिपः ॥५५
शिशुपालो भीष्मकश्च भगदत्तश्च मुद्गलः ।
धृतराष्ट्रो धूमकेशो धूमकेतुश्च शम्बरः ॥५६
शल्यः सत्राजितः शकुनिपाश्चान्ये महाबलाः ।
भीष्मो द्रोणः कृपाचार्यो ह्यश्वत्थामा महाबलः ॥५७

भूरिश्रवाश्चशाल्वश्च कैकेयः कौशलस्तथा ।
सर्वान्सम्भाषयामास महाराजोयथोचितम् ।।५८
सत्यको यज्ञदिवसं चकार च शुभक्षणम् ।।५९

कात्यायन—याज्ञवल्क्य—उतथ्य—सौभरि—पर्वत—देवल—ज गीषव्य—जैमिनि—विश्वामित्र—मुनपा—पिप्पल—शकटायन—जावालि—जांगलि—पिशलि—शिलालिक—आस्तिक—जरत्कारु—कल्याण—मित्रक—दुर्वासा—वामदेव—ऋष्यश्रृङ्ग—विभाण्डक—करिपथ—कणाद—कौशिक—पाणिनि—कौत्स—अघमर्षण—वाल्मीकि—और लोमहर्षण ये सभी महा मनीषी और मुनिगण उस उस सबको देखने के लिये मथुरा पुरी में एकत्रित हुए ।।५०-५३।। मार्कण्डेय—मृकण्डु—परशुराम—साङ्कृति अगस्त्य—तथा वान हे मुने, इनके अतिरिक्त अन्य समस्त मुनिगण अपने शिष्यों के सहित वहाँ उपस्थित हुए । ब्राह्मण गण और तपस्वियों का समुदाय भी मथुरा में महोत्सव के दर्शन के लिये आया । राजा लोगों में जरासन्ध—दन्तवक्र—दाम्भिक—द्राविड देश का अधिप शिशुपाल—भीष्मक—भगदन्त—मुद्गल—धृतराष्ट्र—धूमकेश—धूमकेतु—शम्बर—शल्य—सत्राजित और शङ्कु तथा अन्य महान् बलवान् राजा वहाँ महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये आये । भीष्म—द्रोण—कृपाचार्य—महान् बलवान् अश्वत्थामा—भूरिश्रवा—शाल्व—कैकेय—कौशल आदि महाराज एवं महान् पुरुष वहाँ उपस्थित हुए । राजा कंस ने इन सबका जैसा भी स्वरूप के अनुरूप उचित था स्वागत सत्कार किया । राजा कंस के पुरोहित सत्यक ने यज्ञ दिवस को शुभ क्षण किया था ।।५४-५९।।

८०—अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनम्

कंसस्य वचनं श्रुत्वा सोऽक्रूरो धर्मिणां वरः ।
उवाच चोद्धवं शान्तं शान्तःप्रहृष्टमानसः ।।१
सुप्रभाताद्य रजनी बभूव मे शुभं दिनम् ।
तुष्टाश्च गुरवो विप्रा देवा मामिति निश्चितम् ।।२
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं मम स्वयमुपस्थितम् ।
बभूव मे समुत्पन्नं यद्यत्कर्म शुभाशुभम् ।।३

चिच्छेद बन्धनिगडं मम बद्धस्य कर्मणा ।
कारागाराच्च संसारान्मुक्तो यामि हरेःपदम् ॥४
सुहृदर्थी कृतोऽहं च कंसेन विदुषा रुषा ।
वरेण तुल्यो देवस्य क्रोधो मम बभूव ह ॥५
व्रजराजं समाहर्त्तुं व्रजं यास्यामि साम्प्रतम् ।
द्रक्ष्यामि परमं पूज्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनम् ॥६
नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
पीतवस्त्रसमायुक्तकटिदेशविराजितम् ॥७
धूलिधूसरिताङ्गं च किंवा चन्दनचर्चितम् ।
अथवा नवनीताक्तमङ्गं द्रक्ष्यामि सस्मितम् ॥८

इस अध्याय ने अक्रूर के हर्ष के उत्कर्ष का निरूपण किया जाता है । नारायण ने कहा—कंस के नन्द व्रज में भेजने के वचन को सुनकर वह धर्मियों में परम श्रेष्ठ अक्रूर शान्त और प्रहृष्ट मन वाला होकर शान्त मूर्त्ति उद्धव से बोला—अक्रूर ने कहा—आज की रात्रि और प्रातः काल बहुत ही सुन्दर एवं शुभ है । यह दिन भी परम शुभ है । मैं समझता हूँ कि मेरे गुरु वर्ग—देवगण और विप्र सभी मुझ से परम सन्तुष्ट हो गये हैं और मेरे ऊपर प्रसन्न हैं—यह ध्रुव सत्य है ॥१-२॥ आज करोड़ों जन्मों के पुण्य जो मैंने कभी अर्जित किये होंगे वे सभी आज स्वयं ही मेरे कल्याण के लिये उपस्थित हो गये हैं । जो भी शुभाशुभ कर्म मेरे समुत्पन्न हुए हैं उनका कर्म से बद्ध मेरे बन्धन का निगड़ आज निछन्न हो गया है । इस संसार रूपी कारागार से अब मैं मुक्त होकर अब हरि के पद प्राप्त होने के लिये जारहा हूँ ॥३-४॥ राजा कंस ने रोष में आकर आज मुझे अपने सुहृद का अर्थी बना दिया है । उस कंस का यह आदेश मेरे लिये तो किसी देवता के वरदान के समान हो गया है । कंस ने तो क्रोध में आकर ऐसी आज्ञा दी थी किन्तु मुझे बहुत ही उत्तम फल देने वाली हो गई ॥५॥ अब में व्रजराज के यहाँ लिवाकर लाने के लिये व्रज में जाऊँगा और वहाँ मैं मुक्ति और भुक्ति के प्रदान करने वाले अपने परम

इष्ट देव का दर्शन प्राप्त करूँगा ॥६॥ आज मैं अपना परम अहोभाग्य मानता हूं कि वहाँ नवीन जलद के सम श्याम वर्ण वाले—नील इन्दी वर के तुल्य परम सुन्दर लोचनों से युक्त—पीताम्बर कटि देश में धारण करने वाले—धूलि से धूसरित अङ्गों से समन्वित अथवा चन्दन से चर्चित अङ्गों से युक्त–नवनीत से अक्त अंग वाले एवं मन्द स्मित युक्त श्री कृष्ण का दर्शन करूंगा ॥७-८॥

किंवा विनोदमुरलीं वादयन्तं मनोहरम् ।
किंवा गवां समूहं च चारयन्तमितस्ततः ॥९

किंवा वसन्तं गच्छन्तं शयानं वा सुनिश्चितम् ।
निदेशं कीदृशं चाद्यं सुदृष्टया च शुभे क्षणे ॥१०
यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
न हि जानाति यस्यान्तमनन्तोऽनन्तविग्रहः ॥११

यत्प्रभावं न जानन्ति देवाः सन्तश्च सन्ततम् ।
यस्य स्तोत्रे जड़ीभूता भीता देवी सरस्वती ॥१२
दासी नियुक्ता यद्दास्ये महालक्ष्मीश्च लक्षिता ।
गङ्गा यस्य पदाम्भोजान्नि.सृता सत्वरूपिणी ॥१३
जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्रिभुवनात्परा ।
दर्शनस्पर्शनाभ्यांचनृणां पातकनाशिनी ॥१४

अथवा वह श्यामसुन्दर किसी स्थान पर विराजे हुए अपनी मुरलिका के वाहन का विनोद कर रहे होंगे। या वे कहीं इधर—उधर अपनी प्यारी गौओं का चारण कराते हुए दर्शन देंगे। किम्बा किसी स्थल पर सानन्द विराजमान होंगे या जारहे होंगे अथवा निश्चित रूप से शय्या पर शयन करते हुओं का मैं दर्शन प्राप्त करूंगा। आज यह कैसा निदेश प्राप्त हुआ है जो सुदृष्टि से यह परम शुभ क्षण मुझे उपस्थित हो गया है ॥९-१०॥ जिसके चरण कमल का ब्रह्मा—विष्णु और शिव आदि बड़े २ तपस्वीगण ध्यान किया करते हैं और वह ऐसा अनन्त विग्रह वाला अनन्त है कि उसके अन्त को कोई भी नहीं जानता है ॥११॥ जिसके

प्रभाव को देवगण और सन्त पुरुष भी नहीं जानते हैं । और जिसके स्तवन करने में साक्षात् बुद्धि—विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी भी भीत होकर जड़ जैसी हो जाया करती है ॥१२॥ जिसके दास्य कर्म में महालक्ष्मी देवी भी दासी की भाँति नियुक्त रहा करती है और गंगा जिसके चरण कमल से निःसृत होती है जो कि सत्त्व के रूप वाली है ॥१३॥ यह गंगा जीवों के जन्म—मृत्यु—जरा और व्याधियों के हरण करने वाली और त्रिभुवन से भी पर है । यह दर्शन और स्पर्शन मात्र से ही मानवों के पापों को हरण करने वाली हुआ करती है ॥१४॥

ध्यायते यत्पदाम्भोजं दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ।
त्रैलोक्यजननी देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥१५
लोम्नां कूपेषु विश्वानि महाविष्णोश्च यस्य च ।
असंख्यानि विचित्राणि स्थूलात् स्थूलतरस्य च ॥१६
स च यत्षोड़शांशश्च यस्यसर्वेश्वरस्य च ।
तं द्रष्टुं यामि हे बन्धोमायामानुषरूपिणम् ॥१७
सर्वं सर्वान्तरात्मानं सर्वज्ञं प्रकृतेः परम् ।
ब्रह्मज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१८
निर्गुणञ्च निरीहञ्च निरानन्दं निराश्रयम् ।
परमं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥१९
स्वेच्छामयं सर्वपरं सर्वबीजं सनातनम् ।
वदन्ति योगिनः शश्वत् ध्यायन्तेऽहर्निशं शिशुम् ॥२०
मन्वन्तरसहस्रञ्च निराहारः कृशोदरः ।
पद्मे पाद्मतपस्तेपे पुरा पाद्मे तु यत्कृते ॥२१

जिसके चरण कमलों का ध्यान दुर्गों की आर्ति का नाश करने वाली दुर्गा स्वयं किया करती है जो कि इस त्रैलोक्य की जननी साक्षात् मूल प्रकृति देवी ईश्वरी है ॥१५॥ स्थूल से भी अधिक स्थूल जिस महा विष्णु के रोमों के छिद्रों में विचित्र एवं असंख्य विश्व पड़े रहा करते हैं वह भी जिस सर्वेश्वर कृष्ण का सोलहवाँ अंश होता है । हे बन्धो ! आज मैं उसी

माया से मनुष्य का रूप धारण करने वाले प्रभु का दर्शन प्राप्त करने के लिये नन्द व्रज में जा रहा हूँ ॥१६-१७॥ वह स्वयं सबका स्वरूप है—सब कुछ का ज्ञाता है और प्रकृति से भी पर है। वह ब्रह्म ज्योति के स्वरूप वाला है तथा अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही रूप धारण करने वाला है ॥१८॥ वह निर्गुण है—निरानन्द—निराश्रय—परम—परमानन्द तथा आनन्द के सहित नन्द नन्दन है ॥१९॥ वह स्वेच्छा मय—सबसे पर—सबका बीज रूप और सनातन है—ऐसा योगी लोग उसे सर्वदा कहते हैं और निरन्तर ही रात दिन उस शिशु का ही ध्यान किया करते हैं ॥२०॥ सहस्रों मन्वन्तरों के काल तक निराहार एवं कृशोदर होकर पहिले पद्म में पाद्मतप की तपस्या की थी जिसके लिये पाद्म हुआ है ॥२१॥

पुनः कुरु तपस्याञ्च तदा द्रक्ष्यसि मामिति ।
सकृच्छब्दञ्च शुश्राव न ददर्श तथापि तम् ॥२२
तावत्कालं पुनस्तप्त्वा वरं प्राप ददर्श तम् ।
ईदृशं परमेशञ्च दक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२३
पुराशम्भुस्तपस्तेपे यावद्वै ब्रह्मणो वयः ।
ज्योतिर्मण्डलमध्ये च गोलोके तं ददर्श सः ॥२४
सर्वतत्वं सर्वसिद्धं मम तत्वं परं वरम् ।
सम्प्राप तत्पदाम्भोजे भक्तिञ्च निर्मलां पराम् ॥२५
चकारात्मसमं तञ्च यो भक्तो भक्तवत्सलः ।
ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२६
सहस्रशक्रपातान्तं निराहारः कृशोदरः ।
यस्यानन्तस्तपस्तेपे भक्त्या च परमात्मनः ॥२७
तदा चात्मसमं ज्ञानं ददौ तस्मै य ईश्वरः ।
ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥२८

वहाँ यह आज्ञा हुई कि पुनः तपस्या करो तभी तुम मेरा दर्शन प्राप्त करोगे। एक ही वार ऐसा शब्द का श्रवण मात्र ही हुआ किन्तु उसका दर्शन फिर भी नहीं हुआ ॥२२॥ उतने ही समय तक पुनः तपस्या करके

वरदान प्राप्त किया और फिर उसका दर्शन प्राप्त किया है। उद्धव ! आज मैं ऐसे ही परमेश्वर का दर्शन प्राप्त करूंगा ॥२३॥ पहिले शम्भु ने तप ब्रह्मा की जितनी अवस्था होती है उतने समय तक किया था। तब ज्योति मण्डल के मध्य में गोलोक में शम्भु ने उसका दर्शन—लाभ किया। सर्व तत्त्व—सर्वसिद्ध और मम तत्त्व का परम वरदान प्राप्त किया तथा उनके पद कमल में परा विर्मल भक्ति प्राप्त की थी ॥२४-२५॥ जो भक्त है उसको भक्त वत्सल ने अपने ही समान कर दिया था। इस प्रकार के परमेश प्रभु का दर्शन हे उद्धव ! आज मुझे प्राप्त होगा ॥२६॥ एक सहस्र इन्द्रों के पात जितने समय में हुआ करते हैं। उतने लम्बे समय तक आहार का त्याग करते हुए कृशउदर वाले अनन्त ने जिस परमात्मा का भक्ति भाव के साथ तप किया। तब कहीं जिस ईश्वर ने उसको आत्म समान ज्ञान प्रदान किया। ऐसे परमेश का हे उद्धव ! आज मैं दर्शन प्राप्त करूंगा ॥२७-२८॥

सहस्रशक्रापातान्तं धर्मस्तेपे च यत्तपः।
तदा बभूव साक्षी स धर्मिणां सर्वकर्मिणाम् ॥२९
शास्ता च फलदाता च यत्प्रसादान्नृणामिह।
सर्वेशमीदृशमहो द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥३०
अष्टाविंशतिरिन्द्राणां पतने यद्दिवानिशम्।
एवं क्रमेण मासाब्दैः शताब्दं ब्रह्मणो वयः ॥३१
अहो यस्य निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत्।
ईदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥३२
नास्ति भूरजसां संख्या यथैव ब्रह्मणांतथा।
तथैवबन्धो विश्वानांतदाधारो महाविराट् ॥३३
विश्वे विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
मुनयो मनवःसिद्धा मानवाद्याश्चराचरा। ॥३४
यत्षोड़शांशः स विराट् सृष्टा नष्टश्च लीलया।
ईदृशं सर्वशास्तारं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्धव ॥३५

इत्येवमुक्त्वाक्रूरश्चपुलकाञ्चितविग्रहः ।
मूर्च्छां प्राप साश्रुनेत्रो दध्यौ तच्चरणाम्बुजम् ॥३६
बभूव भक्तिपूर्णश्च स्मारंस्मारं पदाम्बुजम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं वापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥३७
उद्धवश्च तमाश्लिष्य प्रशशंस पुनः पुनः ।
स च शीघ्रं ययौ गेहमक्रूरोऽपि स्वमन्दिरे ॥३८

एक सहस्र इन्द्रों के पतन होने के समय तक धर्म ने जिसके प्रसन्न करने के लिये तपस्या की थी तब सर्व कर्मी धर्मियों का साक्षी वह उसको प्रत्यक्ष हुआ । जिसके प्रसाद से वह इस समय तक नटों के ऊपर शासन करने वाला तथा उनको फल देने वाला होता है । हे उद्धव ! मेरा अहोभाग्य है कि आज मैं ऐसे परमेश के दर्शन का लाभ प्राप्त करूंगा ॥२९-३०॥ अट्ठाईस इन्द्रों के पतन में जो दिन रात होते हैं इसी क्रम से मास और वर्षों के द्वारा सौ वर्ष की ब्रह्मा की अवस्था होती है ॥३१॥ जिसके एक ही निमेष मात्र समय से उस ब्रह्मा का भी पतन हो जाता है । हे उद्धव ! आज मैं ऐसे ही उस परमात्मा का दर्शन करूंगा ॥३२॥ जिस प्रकार से भूमि की रज के कणों की संख्या नहीं होती है उसी भाँति ब्रह्माओं की संख्या और हे वन्धो ! उसी प्रकार से विश्वों की भी कोई संख्या नहीं होती है । उन सब का आधार यह महा विराट् होता है ॥३३॥ प्रत्येक विश्व में भिन्न २ ब्रह्मा—विष्णु और शिव आदि होते हैं और इसी भाँति मुनिगण—मनुगण—सिद्धवर्ग और मानव आदि चराचर सभी हुआ करते हैं ॥३४॥ वह महा विराट् भी जिसके सोलहवाँ अंश है । वह सृष्ट और नष्ट लीला से ही हुआ करता है । हे उद्धव ! मैं आज ऐसे ही उस सबके शास्ता ईश्वर का दर्शन करूंगा ॥३५॥ अक्रूर ने इतना ही इस प्रकार से कह कर वह पुलकों से अञ्चित शरीर वाला हो गया । उस समय अक्रूर को प्रेमातिरेक से मूर्च्छा होगई । उसके नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बहने लगी और उसने श्री कृष्ण के चरण कमल में अपना ध्यान लगा दिया ॥३६॥ श्री कृष्ण के पद कमल का वार २ स्मरण करके वह अक्रूर भक्ति के भाव में आविष्ट हो गया । उसने परमात्मा कृष्ण की

प्रदक्षिणा की ॥३७॥ उस प्रेमावेश की स्थिति में रहने वाले अक्रूर का उद्धव ने आलिङ्गन किया और बार २ उसके भक्ति भाव की प्रशंसा की। इसके पश्चात् उद्धव अपने घर में शीघ्र ही चले गये और अक्रूर भी अपने आवास मन्दिर में प्रवेश कर गये ॥३८॥

८१—श्रीराधाशोकापनोदनम्

अथ रासेश्वरोयुक्तो रासे रासेश्वरः स्वयम् ।
स च रेमे तया सार्द्धमतीवरमणोत्सुकः ॥१
सुखसम्भोगमात्रेण ययौ निद्राञ्च राधिका ।
दृष्ट्वास्वप्नं समुत्थाय दीनोवाच प्रियं दिने ॥२
अहो स्वामिन्निहागच्छ त्वां करोमि स्ववक्षसि ।
परिणामे विधाता मे न जाने किं करिष्यति ॥३
इत्युक्त्वा सा महाभागा प्रियंकृत्वा स्ववक्षसि ।
दुःस्वप्नं कथयामास हृदयेन विदूयता ॥४
रत्नसिंहासनऽहञ्च रत्नच्छत्रञ्च बिभ्रती ।
तदातपत्रं जग्राह रुष्टो विप्रश्च मे प्रभो ॥५
सागरे कज्जलाकारे महाघोरे च दुस्तरे ।
गभीरे प्रेरयामास मामेव दुर्बलां स च ॥६
तत्र स्रोतसि शोकार्ता भ्रमामि च मुहुर्मुहुः ।
महोर्मीणांच वेगेन व्याकुला नक्रसंकुलैः ॥७

इस अध्याय में श्रीराधा को शोक के अपनोदक का निरूपण किया गया है। नारायण ने कहा—इस के अनन्तर रासेश्वर श्री कृष्ण रास में रासेश्वरी श्रीराधा से संयुत होकर स्वयं उस के साथ अत्यन्त रमण क्रीड़ा उत्सुकता रखते हुए रमण करते थे ॥१॥ रमण क्रीड़ा के सुख सम्भोग मात्र से राधिका निद्रा को प्राप्त हो गई थी। राधा ने निद्रित दशा में स्वप्न देखा और तुरन्त उठ बैठी। फिर दिन में अत्यन्त दीन होकर प्रिय से बोलीं—॥२॥ राधिका ने कहा—अहो स्वामिन् ! आप मेरे निकट में पधारिये, मैं आपको अपने वक्षः स्थल में करना चाहती हूँ। परिणाम में

विधाता मेरा न जाने क्या करेगा ॥३॥ इतना कह कर उस महाभागा ने अपने प्राणेश्वर प्रिय को वक्षः स्थल में करके विद्यमान हृदय वाली होती हुई उसने जो निद्रा में दुःस्वप्न देखा था उसे प्राणेश्वर से कहने लगी ॥४॥ राधा ने कहा—हे प्रभो ! मैंने अपने स्वप्न में देखा कि मैं एक रत्नों के सिंहासन पर स्थित हूँ और रत्नों का ही छत्र धारण कर रही हूँ। उस समय किसी रुष्ट विप्र ने मेरा आत पात्र मुझ से ले लिया है। ॥५॥ फिर उसने एक कञ्चन के समान आकार वाले महान् घोर एवं दुस्तर सागर में जो कि अत्यन्त गम्भीर था दुर्बला मुझ को ही प्रेरित कर दिया ॥६॥ मैं उस स्रोत में शोक से अत्यन्त आर्त्त होकर वार २ भ्रमण कर रही थी। उस सागर में जो बड़ी २ लहरें उठ रहीं थीं उनके वेग से भी मैं व्याकुल हो रहो थी और अनेक नक्रों से वे तरंगे घिरी हुई थीं ॥७॥

त्राहि त्राहीति हे नाथ त्वां वदामि पुनः पुनः ।
त्वां न दृष्ट्वा महाभीता करोमि प्रार्थनां सुरम् ॥८
कृष्ण तत्र निमज्जन्ती पश्यामि चन्द्रमण्डलम् ।
निपतन्तं च गगनाच्छतखण्डं च भूतले ॥९
क्षणान्तरे च पश्यामि गगनात् सूर्य्यमण्डलम् ।
बभूव च चतुःखण्डं निपत्य धरणीतले ॥१०
एककाले च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्य्ययोः ।
अतीवकज्जलाकारं सर्वं ग्रस्तञ्च राहुणा ॥११
क्षणान्तरे च पश्यामि ब्राह्मणो दीप्तिमानिति ।
मत्क्रोडस्थसुधाकुम्भं बभञ्ज च रुषेति च ॥१२
क्षणान्तरे च पश्यामि महारुष्टं च ब्राह्मणम् ।
गृहीत्वा च व्रजन्तं च चक्षुषोः पुरुषं मम ॥१३
क्रीड़ाकमलदण्डंच हस्ताद्ध्वस्तं मम प्रभो ।
सहसा खण्डखण्डंच बभूव सह हेतुना ॥१४

मैं स्वप्न में हे नाथ ! मेरी रक्षा करो २ इस प्रकार से वार २ बोल रही थी। जब मैंने आपको वहाँ कहीं भी नहीं देखा तो मैं महा भय से

युक्त हो गई और फिर देवों की प्रार्थना करने लगी ॥८॥ हे कृष्ण ! मैं वहाँ निमग्न हो रही थी और उसी दशा में मैंने देखा कि चन्द्रमण्डल के आकाश से सैकड़ों खण्ड होकर भूतल में पतन कर रहे हैं। थोड़ी ही देर में मैंने देखा कि गगन से सूर्य मण्डल भी चार खण्डों वाला होकर भूतल पर पतित हो गया है ॥९-१०॥ इसके पश्चात् मैंने स्वप्न में देखा कि एक ही समय में आकाश में चन्द्र और–सूर्य दोनों का मण्डल राहु के द्वारा ग्रस्त होकर अत्यन्त कज्जल के आकार वाला सब हो गया ॥११॥ एक क्षण के पश्चात् मैंने स्वप्न में देखा कि एक विप्र क्रोध में भरा हुआ आया जो कि अत्यन्त दीप्तिमान था। उसने मेरी गोद में स्थित सुधा के कलश लेकर भग्न कर दिया था ॥१२॥ एक ही क्षण के पश्चात् मैंने क्रोध में भरे हुए एवं ऐसे ब्राह्मण को देखा जो मेरे चक्षुओं के पुरुष को ग्रहण करके चला जारहा था ॥१३॥ हे प्रभो ! उसने मेरे हस्त से अपने हाथ में मेरे क्रीड़ा कमल को भी ले लिया और वह हेतु के साथ सहसा खण्ड खण्ड हो गया ॥१४॥

हस्ताद्धस्तं च सहसा सद्रत्नसारदर्पणः ।
निर्मलः कज्जलाकारः खण्डखण्डो बभूव ह ॥१५
हारो मे रत्नसाराणां छिन्नो भूत्वा च वक्षसः ।
अतीवमलिनं पद्मं पपात धरणीतले ॥१६
सौधपुत्तलिकाः सर्वा नृत्यन्ति च हसन्ति च ।
आस्फोटयन्ति गायन्ति रुदन्ति च क्षणं क्षणम् ॥१७
कृष्णवर्णं बृहच्चक्रं खे भ्रमन्तं मुहुर्मुहुः ।
निपतन्तं चोत्पतन्तं पश्यामि च भयङ्करम् ॥१८
प्राणाधिदेवः पुरुषो निःसृत्याभ्यन्तरान्मम ।
राधे विदायं देहीति ततो यामीत्युवाच ह ॥१९
कृष्णवर्णा च प्रतिमा मामाश्लिष्यति चुम्बति ।
कृष्णवस्त्रपरीधाना चेति पश्यामि साम्प्रतम् ॥२०
इतीदं विपरीतं च दृष्ट्वा च प्राणवल्लभ ।
नृत्यन्ति दक्षिणांगानि प्राणा आन्दोलयन्ति मे ॥२१

हाथों ही हाथों में मेरा सद्रत्नों का सार स्वरूप जो दर्पण था वह सहसा निर्मल होते हुए भी कज्जल के आकार वाला होकर खण्ड—खण्ड हो गया। मेरा हार भी रत्नों के सार द्वारा निर्मित था वह भी छिन्न—भिन्न होकर अत्यन्त मलिन हो गया और धरणी तल पर वक्षः स्थल से गिर गया ॥१५-१६॥ जो सौध पुत्तलिकाऐं शोभनार्थ थीं वे सब नृत्य करती हुईं हस रही थीं। वे सब क्षण भर में आस्फोटन करती थीं और फिर एक ही क्षण में गायन तथा रुदन कर रहीं थीं ॥१७॥ मैंने अपने स्वप्न में देखा कि एक कृष्ण वर्ण वाला वृहत चक्र बार-बार आकाश में भ्रमण कर रहा था। वह कभी ऊपर को जाता और कभी नीचे की ओर आता हुआ महान् भयङ्कर था ॥१८॥ मैंने स्वप्न में देखा कि मेरा प्राणों का अधिदेव पुरुष मेरे अभ्यन्तर से बाहिर निकल कर कह रहा था कि हे राधे ! मुझे विदाई दे दो—इसके पश्चात् उस ने मुझे कहा कि मैं तो अब जारहा हूँ ॥१९॥ हे नाथ ! मैंने स्वप्न में देखा कि कोई कृष्ण वर्ण वाली प्रतिभा मेरा आलिङ्गन और चुम्बन कर रही थी जो कि कृष्ण वस्त्रों के परीधान वाली थी। यह मैं अभी भी देख रही हूँ ॥२०॥ हे प्राण वल्लव यह सभी विपरीत देखकर मेरे दक्षिण अङ्ग नृत्य कर रहे हैं और मेरे प्राण आन्दोलित हो रहे हैं ॥२१॥

रुदन्ति शोकात्कर्षन्ति समुद्विग्नं च मानसम् ।
किमिदं किमिदं नाथ वद वेदविदां वर ॥२२
इत्युक्त्वा राधिकादेवी शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ।
पपात तत्पदाम्भोजे भीता सा शोकविह्वला । २३
श्रुत्वा स्वप्नं जगन्नाथो देवीं कृत्वा स्ववक्षसि ।
अध्यात्मिकेन योगेन बोधयामास तत्क्षणम् ॥२४
तत्याज शोकं सा देवी ज्ञानं सम्प्राप्य निर्मलम् ।
शान्तं च भगवन्तं च कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि ॥२५

मेरे प्राण रोते हैं और शोक से मेरे अत्यन्त उद्विग्न मन को खींच रहे हैं। हे नाथ ! यह क्या है ? यह सब क्या है ? हे वेदों के वेत्ताओं में श्रेष्ठत्तम ! मुझे शीघ्र बतलाइये ॥२२॥ इतना कह कर वह देवी राधिका

सूखे हुए कण्ठ—ओष्ठ और तालु वाली हो गईं। वह राधिका अत्यन्त भय भीत होती हुई शोक से बहुत ही अधिक विह्वल होकर श्री कृष्ण के चरण कमलों में गिर पड़ी थीं ॥२३॥ जगतों के स्वामी श्री कृष्ण ने राधा के द्वारा कहे हुए बुरे स्वप्न की समस्त बातें श्रवण कर देवी राधिका को अपने वक्षः स्थल से लगा लिया था और उसी समय में अपने आध्यात्मिक योग के द्वारा उनको बोध करा दिया था ॥२४॥ बोध होने से उस देवी ने समुत्थित शोक का त्याग करदिया और फिर निर्मल ज्ञान की प्राप्ति करली। फिर राधा ने अपने कान्त परम शान्त स्वरूप भगवान् को अपने वक्षःस्थल में लगा लिया ॥२५॥

८२—आध्यात्मिकयोगकथनम्

विरहव्याकुलांदृष्ट्वा कामिनीं काममोहनः
कृत्वावक्षसि तां कृष्णो ययौक्रीड़ासरोवरम् ॥१
राजराजेश्वरी राधा कृष्णवक्षसि राजते।
सौदामिनीव जलदे नवीने गगने मुने ॥२
रेमे सरमया सार्द्धं कृपया च कृपानिधिः।
द्वयोर्द्वयोर्यथा स्वर्णमण्योर्मारकतो मणिः ॥३
रत्ननिर्माणपर्य्यङ्के रत्नेन्द्रसारनिर्मिते।
रत्नप्रदीपे ज्वलति रत्नभूषणभूषितः ॥४
रत्नभूषाभूषितया रासरत्नश्च कौतुकात्।
रसरत्नाकरे रम्ये निमग्नो रसिकेश्वरः ॥५
रासे रासेश्वरी राधा रासेश्वरमुवाच सा।
सुरतौ विरतौ सत्यां विरते न मनोरथे ॥६

इस अध्याय में आध्यात्मिक योग का निरूपण किया जाता है। नारायण ने कहा—काम मोहन कृष्ण ने जिस समय कामिनी राधा को विरह से व्याकुल होती हुई देखा तो उसको वह अपने वक्षःस्थल में लगा कर क्रीड़ा के सरोवर में चले गये थे ॥१॥ राज राजेश्वरी राधा कृष्ण के वक्षःस्थल में हे मुने ! गगन में नूतन जलद में सौदामिनी की

भाँति शोभित हो रही थी ॥२॥ कृपानिधि कृपा करके रमा के सहित साथ में रमण कर रहे थे। उस समय ऐसी शोभा हो रही थी जैसे दो-दो स्वर्ण मणियों के बीच में मरकत मणि हो ॥३॥ रत्नों के निर्माण वाले पर्यङ्क पर जो कि उत्तर प्रकार के रत्नों के द्वारा निर्मित किया गया था—रत्नों के प्रदीपों के जलने पर रत्नों के भूषणों से भूषित होकर रत्नों के भूषणों से विभूषिता के साथ कौतुक से रासरत्न रस रत्नाकर में निमग्न होकर रसिकेश्वर रस विभोर हो रहे थे। वह रासेश्वरी राधा रासेश्वर से कहने लगी कि सुरत क्रीड़ा तो विरत हो गई है किन्तु मनोरथ विरत नहीं हुआ है ॥४-६॥

प्रफुल्लाऽहं त्वया नाथ मृता म्लाना च त्वां विना ।
यथा महौषधिगणः प्रभाते भाति भास्करे ॥७
नक्तं दीपशिखेवाहं त्वया सार्द्धं त्वया विना ।
दिने दिने यथा क्षीणा कृष्णपक्षे विधोःकला ॥८
तव वक्षसि मे दीप्तिःपूर्णचन्द्रप्रभासमा ।
सद्यो मृता त्वया त्यक्ता कुहूत्वां चन्द्रकलायथा ॥९
ज्वलदग्निशिखेवाहं घृताहुत्या त्वया सह ।
त्वया विनाहं निर्वाणा शिशिरे पद्मिनी यथा ॥१०
चिन्ताज्वरजराग्रस्ता मत्तस्त्वयि गतेऽप्यहम् ।
अस्तंगतेरवौचन्द्रे ध्वान्तग्रस्ताधरायथा ॥११
भ्रष्टो वेशस्त्वां विना मे रूपं यौवनचेतनम् ।
तारावली परिभ्रष्टा सूर्यसूतोदये यथा ॥१२
त्वमेवात्मा च सर्वेषां मम नाथो विशेषतः ।
तनुर्यथात्मना त्यक्ता तथाहञ्च त्वया विना ॥१३
पञ्चप्राणात्मकस्त्वं मे मृताहञ्च त्वयाविना ।
यथा दृष्टिश्च गोलोके दृष्टिपुत्तलिकांविना ॥१४

राधिका ने कहा—हे नाथ ! मैं तो आपके साथ रहने पर-ही प्रफुल्लित रहती हूँ और आपके बिना तो मैं अत्यन्त म्लान एवं मृता जैसी ही रहा करती हूँ। जिस प्रकार से महोषधियों का समुदाय प्रभात में भास्कर

भगवान् उदित होने पर ही शोभा दिया करता है ।।७।। रात्रि के समय में आपके साथ में तो दीप की शिखा को भाँति रहती हूँ और आपके बिना कृष्ण पक्ष में चन्द्र की कला के समान मैं दिन प्रति दिन क्षीण हो जाया करती हूँ ।।८।। आपके वक्षःस्थल में मेरी दीप्ति पूर्ण चन्द्र की प्रभा के समान होती है और आपके बिना तो मैं तुरन्त ही मृता जैसी हो जाती हूँ जब कि आप मेरा त्याग कर दिया करते हैं जैसे चन्द्रकला से त्यक्त कुह्वा अर्थात् अमावस्या की रात्रि होती है ।।९।। आपके साथ घृत की आहुति के द्वारा जलती हुई अग्नि की शिखा के समान रहती हूँ। आपके बिना शिशिर ऋतु में निर्वाणा पद्मिनी की भाँति ही मेरी दशा हो जाया करती है ।।१०।। मेरे साथ से आपके चले जाने पर मैं चिन्ता के ज्वर से ग्रस्त हो जाया करती हूँ। जिस भाँति चन्द्र और सूर्य दोनों के अस्ताचलगामी हो जाने पर यह भूमि एक दम घोर अन्धकार से आवृत हो जाया करती है ।।११।। हे नाथ ! आपके बिना मेरा यह सुन्दर वेश भी भ्रष्ट जैसा ही रहता है और मेरा यह रूप लावण्य तथा यौवन एक अचेतन जैसा हो जाता है जिस प्रकार से सूर्य सुत के उदय होने पर गगन में तारावली परिभ्रष्ट हो जाया करती है ।।१२।। वैसे तो आप ही समस्त चराचर की आत्मा हैं किन्तु हे प्राणेश्वर ! मेरे तो आप विशेष रूप से नाथ हैं जिस तरह आत्मा के द्वारा त्यक्त यह शरीर होता है वैसे ही हे प्राणवल्लभ ! आपके बिना मेरी दशा हो जाती है ।।१३।। आप मेरे पाँच प्राणत्मक हैं और आपके बिना मैं मृता जैसी ही हूँ जिस तरह गोलोक में दृष्टि पुत्तलिका के बिना दृष्टि हुआ करती है ।।१४।।

स्थलं यथा चित्रयुक्तं त्वया सार्द्धमहं तथा।
असंस्कृता त्वया हीना तृणाच्छन्ना यथा मही ।।१५

त्वया सार्द्धमहं कृष्ण चित्रयुक्तेव मृण्मयी।
त्वां बिना जलधौताहं विरूपा मृण्मयीवच ।।१६

गोगाङ्गनानां शोभा च त्वया रासेश्वरेणच।
हारे स्वर्णविकारे च श्वेतेन मणिना सह ।।१७

व्रजराज त्वया सार्द्धं राजन्ते राजराजयः ।
यथा चन्द्रेण नभसि ताराराजिर्विराजते ।।१८
त्वया शोभा यशोदाया नन्दस्य नन्दनन्दन ।
यथा शाखा फलस्कन्धैस्तरुराजिर्विराजते ।।१९
त्वया सार्द्धं गोकुलेश शोभा गोकुलवासिनाम् ।
यथा सर्वा लोकराजी राजेन्द्रेण विराजते ।।२०

जिस प्रकार से चित्र युक्त स्थल होता है वैसे ही आपके साथ में मैं हूँ । आपके बिना तृणों से आच्छन्न मही की भाँति मैं हीन एवं संस्कार से शून्य रहती हूँ ।।१५।। हे कृष्ण ! आपके साथ में मैं मृण्मयी चित्र युक्ता के तुल्य रहती हूँ । आपके बिना जल से धोई हुई विरूप वाली मृण्मयी के समान हो जाती हूँ ।।१६।। हे नाथ ! रास के ईश्वर आप से ही गोपाङ्गनाओं की शोभा होती है जैसे सुवर्ण के निर्मित हार में श्वेत वर्ण की मणि के साथ रहने से उसकी विशेष शोभा हुआ करती है ।।१७।। हे व्रजराज ! राजरानियाँ आपके साथ में ही शोभा सम्पन्न होती हैं जैसे नभ में चन्द्र के द्वारा तारावली विशेष रूप से दीप्तिमान हुआ करती है ।।१८।। हे नन्दनन्दन ! यशोदा और नन्द की भी आप से ही यह अद्भुत शोभा हो रही है जिस तरह से वृक्षों की पंक्ति शाखा फल और स्कन्धों के द्वारा शोभा युक्त हुआ करते हैं ।।१६।। हे गोकुलेश ! आपके ही साथ रहने पर गोकुल के निवासी व्रजवासियों की शोभा है जैसे समस्त लोकों का समूह राजेन्द्र के द्वारा विशोभित होता है ।।२०।।

रासस्यापि च रासेश त्वया शोभा मनोहरा ।
राजते देवराजेन यथा स्वर्गेऽमरावती ।।२१
वृन्दावनस्य वृक्षाणां त्वञ्च शोभा पतिर्गतिः ।
अन्येषाञ्च वनानाञ्च बलवान् केशरीयथा ।।२२
त्वयाविनायशोदाञ्च निमग्ना शोकसागरे ।
अप्राप्यवत्सं सुरभी क्रोशन्ती व्याकुलायथा ।।२३

आन्दोलयन्ति नन्दस्यप्राणा दग्धञ्च मानसम् ।
त्वयाविना तप्तपात्रे यथाधान्यसमूहकः ॥२४
इत्युक्त्वा परमप्रेम्णा सा पतन्ती हरेः पदे ।
पुनराध्यात्मिकेनैव बोधयामास तां विभुः ॥२५
आध्यात्मिको महायोगो मोहसंच्छेदकारणम्
यथापरशुर्वृक्षाणां तीक्ष्णधारश्च नारद ॥२६
आध्यात्मिकं महायोगं वद वेदविदां वर ।
शोकच्छेदञ्च लोकानां श्रोतुं कौतूहलं मम ॥२७

हे रासेश ! इस रास की शोभा भी जो सबको हरण करने वाली अत्यन्त रुचिर है वह भी आप ही से है जिस तरह स्वर्ग में अमरावती पुरी देवराज इन्द्र से ही सुशोभित हुआ करती है ॥२१॥ हे नाथ ! वृन्दावन के वृक्षों की आप ही शोभा हैं, पति हैं और गति हैं जिस प्रकार से अन्य समस्त वन्य पशुओं में एक ही केशरी बलवान् हुआ करता है ॥२२॥ आपके बिना माता यशोदा तो शोक के समुद्र में निमग्न हो जाया करती हैं । जैसे कोई दुधार गौ अपने वत्स को न पाकर रँभाती हुई अत्यन्त बेचैन होकर इधर-उधर दौड़ती फिरा करती है ॥२३॥ आप के बिना नन्द के प्राण दग्ध मानस को आन्दोलित किया करते हैं जैसे तृसपात्र में धान्य का समूह रहा करता है ॥२४॥ इतना कहकर वह राधा परम प्रेम से हरि के पद कमल में पतित हो गई थीं । विप्र ने पुनः अपने आध्यात्मिक योग से उसका प्रबोधन करा दिया था ॥२५॥ आध्यात्मिक महा योग है जो मोह के सच्छेदन करने का कारण होता है । हे नारद ! जैसे परशु जिसकी अत्यन्त तीक्ष्ण धार हो वृक्षों के छेदन का कारण हुआ करता है ॥२६॥ नारद ने कहा—हे वेदों के वेत्ता विद्वानों में परम श्रेष्ठ ! उस महायोग आध्यात्मिक को कृपा कर बताइये । जो लोकों के शोक का छेदन करने वाला होता है । मेरे मन में उसके श्रवण करने का अत्यधिक कौतूहल हो रहा है ॥२७॥

आध्यात्मिको महायोगो न ज्ञातो योगिनामपि ।
स च नानाप्रकारश्च सर्वं वेत्ति हरिः स्वयम् ॥२८

किञ्चिदाध्यात्मिकञ्चैव गोलोके राधिकेश्वरः ।
सुप्रीतः कथयामास त्रिपुरारिंमहामुने ।।२९
सहस्रेन्द्रनिपातान्तं तपः कुर्वन्तमीश्वरम् ।
श्रेष्ठं ज्येष्ठं वैष्णवानां वरिष्ठञ्च तपस्विनाम् ।।३०
पुष्करे दुष्करं तप्त्वा पाद्मे पाद्मञ्च पद्मजः ।
दृष्ट्वा तं सादरं कृत्वा उवाच किञ्चिदेवतम् ।।३१
शतेन्द्रपातपर्य्यन्तं कठोरेण कृशोदरम् ।
निश्चेष्टमस्थिसारञ्च कृपया च कृपानिधिः ।।३२
सिंहक्षेत्रे पुरा धर्म मत्तातं धर्मिणां वरम् ।
चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं तपस्तप्त्वा कृशोदरम् ।।३३
पपाठाध्यात्मिकं किञ्चित् कृपया च कृपानिधिः ।
किञ्चिच्छतेन्द्रावच्छिन्नमातपन्तमुवाच सः ।।३४

नारायण ने कहा—अध्यात्मिक एक महान् योग है जिसे योगिगण भी नहीं जाना करते हैं। वह महायोग अनेक प्रकारों वाला होता है जिन्हें स्वयं हरि ही जानते हैं ।।२८।। हे महामुने ! राधिकेश्वर ने जो लोक में कुछ थोड़ा-सा वह आध्यात्मिक योग अत्यन्त प्रसन्न होते हुए त्रिपुरारि शिव से कहा था ।।२९।। वह शिव एक सहस्र इन्द्र अपने समय का उपभोग कर-करके जब उनका निपात हो जावे—इतने लम्बे समय तक तपस्या करते रहे थे—ऐसे ईश्वर वैष्णवों में सबसे बड़े और तपस्वियों में सबसे श्रेष्ठ थे। पुष्कर में दुष्कर तप करके पाद्म में पाद्म को पद्मज ने देखा था। उस समय में उनका आदर करके उनसे कुछ कहा था ।।३०-३१।। इसी प्रकार से शत इन्द्रों के पात तक कठोर तप से कृश उदर वाले—चेष्टा से रहित—अस्थियाँ मात्र शेष रह जाने वाले—धर्मियों में श्रेष्ठ धर्म से सिंह क्षेत्र में कृपा करके कृपा के निधि ने कुछ थोड़ा सा आध्यात्मिक महायोग बताया था। चौदह इन्द्रों के पात पर्यन्त तपस्या करने से अत्यन्त कृश उदर वाले से कृपा के सागर ने कुछ आध्यात्मिक महायोग कृपा करके पढ़ा था। इसी प्रकार से शतेन्द्रावच्छिन्न तप करने वालों को उन्होंने कुछ-कुछ बताया था ।।३२-३४।।

किञ्चित् सनत्कुमारञ्च तपन्तं सुचिरं परम् ।
सुतपन्तमनन्तंच किंचिच्चोवाच नारद ॥३५
चिरं तपन्तं कपिलं हिमशैले तपस्विनम् ।
पुष्करे भास्करे किंचित्तपन्तं दुष्करं तपः ॥३६
उपाच किंचित् प्रह्लादं किंचिद् दुर्वासस भृगुम् ।
एवंनिगूढ़ भक्त चकृपया भक्तवत्सलः ॥३७
क्रीड़ासरोवरे रम्ये यदुवाच कृपानिधिः ।
शोकार्तां राधिकां तच्च कथयामि निशामय ॥३८
विरसां रसिकां दृष्ट्वा वासयित्वा च वक्षसि ।
उवाचाध्यात्मिकं किंचिद् योगिनीं योगिनां गुरु ॥३९
जातिस्मरे स्मरात्मानं कथ विस्मरसि प्रिये ।
सर्वं गोलोकवृत्तान्तं सुदाम्नः शापमेवच ॥४०
शापात् किंचिद्दिनं दीने त्वद्विच्छेदो मया सह ।
भविष्यति महाभागे मेलनं पुनरावयोः ॥४१
पुनरेवगमिष्यामि गोलोकं तं निजालयम् ।
गत्वा गोपाङ्गनाभिश्च गोपैर्गोलोकवासिभिः ॥४२

बहुत समय पर्यन्त तपस्या करने वाले सनत्कुमार से और हे नारद ! अच्छी तरह से तप करने वाले अनन्त से कुछ भगवान् ने यह महायोग बोला था ॥३५॥ हिमालय पर्वत पर चिरकाल तक परम तपस्वी तप करने वाले कपिल को कुछ कहा था तथा भास्कर पुष्कर में दुष्कर तपस्या करने वाले प्रह्लाद को—दुर्वासा को और भृगु को जो इस प्रकार से परम निगूढ़ तथा मन्द थे भक्त वत्सल ने यह आध्यात्मिक महायोग कुछ २ थोड़ा सा बताया था ॥३६-३७॥ रम्य क्रीड़ा सरोवर में शोक से अत्यन्त आर्त राधिका को जो कृपा के निधि प्रभु ने कहा था उसे अब मैं तुमसे कहता हूँ उसका तुम श्रवण करो ॥३८॥ उस परम रसिका राधा को विगल रस वाली देखकर उसे अपने वक्षःस्थल पर संस्थित कराकर योगिनी को योगियों के गुरु ने कुछ थोड़ा सा आध्यात्मिक महा-

योग बोला था ॥३६॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे जातिस्मरे! हे प्रिये! तुम अपने आपको स्मरण करो। इस समय कैसे अपनी आत्मा को तुम भूल रही हो। वह जो गोलोक में समस्त वृत्तान्त घटित हुआ था और सुदामा के द्वारा तुमको शाप दिया गया था ॥४०॥ हे प्रिये! हे दीने! कुछ समय तक तो अवश्य ही मेरे साथ तुम्हारा विच्छेद होगा किन्तु हे महाभागे! फिर हम दोनों का मिलना हो जायगा ॥४१॥ फिर उसी अपने आलय नित्यधाम गोलोक को चला जाऊँगा और वहाँ सभी गोपाङ्गनाऐं गोप जो गोलोक के वास करने वाले हैं एकत्रित हो जायँगे ॥४२॥

अधुनाध्यात्मिकं किंचित् त्वांवदामि निशामय।
शोकघ्न हर्षदं सारंसुखदं मानसस्यच ॥४३
अहं सर्वान्तरात्मा च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु।
विद्यमानश्च सर्वेषु सर्वत्राहष्ट एव च ॥४४
वायुश्चरति सर्वत्र यथैव सर्ववस्तुषु।
न च लिप्तस्तथैवाहं साक्षी च सर्वकर्मणाम् ॥४५
जीवो मत्प्रतिविम्बश्च सवः सर्वत्र जीविषु।
भोक्ता शुभाशुभानाञ्च कर्ताच कर्मणांसदा ॥४६
यथा जलघटेष्वेव मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः।
भग्नेषु तेषु संश्लिष्टस्तयोरेव तथा मयि ॥४७
जीवश्लिष्टस्तथा काले मृतेषु जीविषु प्रिये।
आवाञ्च विद्यमानौ च सततं सर्वजन्तुषु ॥४८
आधारश्चाहमाधेयं कार्यञ्च कारणं विना।
अये सर्वाणि द्रव्याणि नश्वराणि च सुन्दरि ॥ ९

इस समय मैं आपको आध्यात्मिक महायोग कुछ थोड़ा-सा बताता हूँ उसका श्रवण करो। यह शोक का हनन करने वाला—हर्ष को प्रदान करने वाला—परम साररूप और मन को सुख देने वाला है ॥४३॥ मैं सबका अन्तरात्मा हूँ अर्थात् सभी के घट-घट में विद्यमान रहने वाला अन्तर्यामी स्वरूप वाला हूँ किन्तु मैं समस्त कर्मों से निर्लिप्त रहता हूँ

अर्थात् कर्मों का कोई भी प्रभाव मेरे ऊपर कभी भी नहीं होता है। मैं सब चराचर में सर्वदा विद्यमान रहते हुए भी सर्वत्र अदृष्ट ही रहा करता हूँ। तात्पर्य यह है कि मुझे कभी कोई देख नहीं पाता है ॥४४॥ जिस प्रकार से वायु सभी जगह चलता रहता है। ऐसा कोई भी स्थल नहीं होता है जहाँ वायु न हो—वह सभी वस्तुओं में सर्वत्र और सर्वदा रहता ही है वैसे ही मैं भी सदा सर्वत्र विद्यमान रहते हुए भी वायु की भाँति ही अदृश्य रहता हूँ। मैं लिप्त नहीं होता हूँ और समस्त कर्मों का साक्षी अर्थात् देखते रहने वाला हूँ ॥४५॥ सर्वत्र जीवियों में जो यह जीवात्मा है वह मेरा ही एक प्रतिबिम्ब होता है जो शुभ और अशुभ कर्मों का करने वाला और उनके फलों को भोगने वाला भी होता है ॥४६॥ जिस प्रकार से जल से पूर्ण भरे हुए घटों में चन्द्र और सूर्य के मण्डल का स्पष्ट प्रतिबिम्ब ऐसा दिखलाई दिया करता है मानों वह उसी में संस्थित है किन्तु जिस समय वे घर भग्न हो जाते हैं तो वह चन्द्र सूर्य का दिखाई देने वाला स्वरूप उन्हीं में संश्लिष्ट हो जाया करता है। उसी भाँति मेरा प्रतिबिम्ब जीव भी मुझ में संश्लिष्ट हो जाया करता है ॥४७॥ हे प्रिये ! जीवियों के मृत होने पर जब कि उनका समय आता है यह जीवश्लिष्ट होता हैं किन्तु हम दोनों तो निरन्तर सभी जन्तुओं में विद्यमान रहा करते हैं ॥४८॥ मैं आधार हूँ और बिना कारण के कार्य आधेप भी हूँ। हे सुन्दरी ये समस्त द्रव्य नश्वर अर्थात् नाशवान् ही होते हैं ॥४९॥

आविर्भावाधिकाः कुत्र कुत्रचिन्नूनमेवच ।
ममांशाःकेऽपि देवाश्च केचिद्‌दवाःकलास्तथा ॥५०
केचित्कलाः कलांशांशास्तदंशांशाश्च केचन ।
मदंशाःप्रकृतिःसूक्ष्मा साच मूर्त्याचपञ्चधा ॥५१
सरस्वतीच कमला दुर्गा त्वञ्चापि वेदसूः ।
सर्वेदेवाः प्राकृतिका यावन्तो मूर्तिधारिणः ॥५२
अहमात्मा नित्यदेही भक्तध्यानानुरोधतः ।
ये ये प्राकृतिका राधे ते नष्टाः प्राकृते लये ॥५३

अहमेवासमेवाग्रे पश्चादप्यहमेव च।
यथाहञ्च तथा त्वञ्च यथा धावल्यदुग्धयोः ।।५४
भेदः कदापि न भवेन्निश्चितं च तथावयोः।
अहं महान्विराट् सृष्टौ विश्वानि यस्य लोमसु ।।५५
अंशस्त्वं तत्र महती स्वांशेनतस्य कामिनी।
अहं क्षुद्रविराट् सृष्टौ विश्वं यन्नाभिपद्मतः ।।५६

कहीं पर इनका अधिक आविर्भाव होता है और कहीं पर कुछ कम होता है। कुछ देव तो मेरे ही अंश होते हैं और कुछ मेरी कला होते हैं। कुछ कलाओं के भी अंश और कुछ उन अंशों के भी अंश हुआ करते हैं। यह सूक्ष्मा प्रकृति भी मेरा ही एक अंश है और मूर्त्ति के स्वरूप में वह पाँच रूपों में रहा करती है ।।५०-५१।। उन पाँचों मूर्त्तियों में सरस्वती—कमला—दुर्गा–तुम और वेदसू हैं। ये समस्त देव प्राकृतिक ही हैं जितने भी मूर्त्ति को धारण करके रहने वाले हैं ।।५२।। मैं आत्मा नित्य देहधारी हूं और भक्तों के ध्यान के अनुरोध से ही रहा करता हूं। हे राधे! जो भी प्राकृतिक स्वरूप वाले होते हैं वे सभी प्राकृतिक लय होने पर नष्ट हो जाया करते हैं ।।५३।। मैं ही आदि में भी था और पीछे भी मैं ही रह जाता हूं। मैं जिस प्रकार से हूँ वैसे ही तुम भी हो। मुझ में और आपमें कुछ भी अन्तर नहीं है जिस तरह दूध में धवलता रहा करती है वैसे ही हमारा और आपका नित्य सम्बन्ध है ।।५४।। हम दोनों का कभी भी भेद नहीं होता है—यह निश्चित है। मैं महान् विराट हूँ सृष्टि के सृजन के समय में जिसके लोम कूपों में ये विश्व रहा करते हैं ।।५५।। तुम उसमें एक महान् कामिनी अंश हो—उसके अपने अंश से मैं क्षुद्र विराट् हूँ सृष्टि में जिसके नाभि स्थित पद्म से यह विश्व विरचित होता है ।।५६।।

अयं विष्णोर्लोमकूपे वासो मे चांशतः सति।
तस्य स्त्री त्वञ्च बृहती स्वांशेन सुभगा तथा ।।५७
तस्यविश्वेचप्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
ब्रह्मविष्णुशिवा अंशाश्चान्याश्चापिचमत्कला।। ५८

मत्कलांशांशकलया सर्वे देवि चराचराः।
वैकुण्ठे त्वं महालक्ष्मीरहं तत्र चतुर्भुजः ॥५९
स च विश्वाद्बहिश्चार्द्ध यथा गोलोक एव च।
सरस्वती त्वं सत्ये च सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥६०
शिवलोके शिवा त्वञ्च मूलप्रकृतिरीश्वरी।
विनाश्य दुर्गं दुर्गाच्च सर्वदुर्गतिनाशिनी ॥६१
सा एव दक्षकन्या च सा इव शैलकन्यका।
कैलासे पार्वती तेन सौभाग्या शिववक्षसि ॥६२
स्वांशेन त्वं सिन्धुकन्या क्षीरोदेविष्णुवक्षसि।
अहं स्वांशेन सृष्टौच ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६३

हे सति ! यह मेरा वास अंश विष्णु के लोम कूप में है। उसकी तुम अपने अंश से वृहती सुभगा स्त्री हो ॥५७॥ उसके प्रत्येक विश्व में ब्रह्मा—विष्णु और शिव आदि होते हैं। ब्रह्मा—विष्णु और शिव ये अंश हैं इनके अतिरिक्त अन्य भी चमत्कलाऐं हैं ॥५८॥ हे देवि ! मेरी कला के अंश के अंश—कला से ही ये सब चर और अचर होते हैं। वैकुण्ठ में तुम मेरे साथ महालक्ष्मी के स्वरूप में हो और वहाँ पर मेरा चार भुजाओं वाला स्वरूप होता है ॥५९॥ और वह विश्व से आधा बाहिर है जैसे गोलोक धाम होता है। हे सत्ये ! तुम ब्रह्मा की प्रिया सरस्वती और सावित्री के स्वरूप वाली हो ॥६०॥ शिवलोक में आप मूल प्रकृति ईश्वरी शिवा के स्वरूप वाली हैं। दुर्ग से दुर्गा को विनष्ट करके आप समस्त दुर्गों की आर्त्ति (पीड़ा) का नाश करने वाली देवी हैं ॥६१॥ वह ही तुम दक्ष प्रजापति की कन्या हो और अपर जन्म में वही हिमशैल की पुत्री हुई हो। तुम कैलाश में शिव के वक्षःस्थल में परम सौभाग्य वाली पार्वती कही जाती हो ॥६२॥ क्षीर सागर में तुम विष्णु के वक्षःस्थल में अपने ही अंश से सिन्धु की कन्या लक्ष्मी होकर विराजमान रहा करती हो। और में अपने ही अंश से सृष्टि में ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर के स्वरूप में रहा करता हूं ॥६३॥

त्वं च लक्ष्मीः शिवा धात्री सावित्री च पृथक् पृथक्
गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा ।।६४
वृन्दा वृन्दावने रम्ये विरजा विरजातटे ।
सा त्वं सुदामशापेन भारतं पुण्यमागता ।।६५
पूतं कर्तुं भारतञ्च वृन्दारण्यञ्च सुन्दरि ।
त्वत्कलां स्वांशकलया विश्वेषु सर्वयोषितः ।।६६
या योषित्सा च भवती यः पुमान् सोऽहमेव च ।
अहं च कलया वह्निस्त्वं स्वाहा दाहिका प्रिया ।।६७
त्वया सह समर्थोऽहं नालं दग्धुंञ्च त्वांविना ।
अहंदीप्तिमतां सूर्यः कलया त्वं प्रभाकरी ।।६८
संज्ञा त्वं च त्वया भामि त्वां विनाऽहं न दीप्तिमान् ।
अहंच कलया चन्द्रस्त्वञ्च शोभा च रोहिणी ।।६९
मनोहरस्त्वयासार्द्धं त्वां विना न च सुन्दरः ।
अहमिन्द्रश्च कलयासर्वलक्ष्मीश्च त्वंशची ।।७०

आप ही लक्ष्मी—शिवा—धात्री और सावित्री इन के पृथक्२ स्वरूपों में रहा करती हैं। आप गोलोक नित्य धाम में रास में सर्वदा रास की ईश्वरी राधा के स्वरूप में रहती हो ।।६४।। वृन्दावन में आप वृन्दा होकर विराजती हैं और परम रम्य विरजा के तट पर आप विरजा के के स्वरूप में हैं। वह तुम अब सुदामा के शाप से इस परम पुण्य भारत में आगई हो ।।६५।। हे सुन्दरि ! इस भारत देश की वसुन्धरा को और वृन्दारण्य को पवित्र करने के लिये ही आपका यहाँ पदार्पण हुआ है। विश्वों में समस्त नारियाँ आपकी स्वांशकला के अंश से ही समुत्पन्न हुई हैं ।।६६।। जो भी कोई नारी है वह आपका ही एक स्वरूप है और जो पुरुष है वह मेरा ही स्वरूप होता है। मैं ही एक कला से अग्नि का स्वरूप वाला हूं और आप उसके ही सर्वदा साथ रहने वाली उसकी प्रिया दाहिका शक्ति हैं ।।६७।। मैं अग्नि के रूप में रहकर तुम्हारे साथ रहने ही से दग्ध करने में समर्थ होता हूं अन्यथा प्रिया दाहिका के विना मुझमें किसी के भी जला देने की सामर्थ नहीं हुआ करती है। मैं दीप्तमानों में

सूर्य का स्वरूप हूँ और वहाँ पर भी तुम अपनी एक कला से प्रभाकरी शक्ति के रूप में मेरे साथ विद्यमान रहा करती हो ॥६८॥ आप संज्ञा हैं और मैं तुम्हारे ही साथ दीप्ति देता हूँ। तुम्हारे बिना मैं कभी भी दीप्ति वाला नहीं हो सकता हूँ। मैं अपनी एक कला से चन्द्र के स्वरूप वाला हूँ तो आप अपनी कला से उसकी शोभा धापिका रोहिणी के स्वरूप में सर्वदा साथ रहा करती हो ॥६९॥ मैं आपको साथ लेकर ही मनोहर होता हूँ। आपके बिना मेरा कुछ भी सौन्दर्य नहीं है। मैं कला से इन्द्र के रूप में स्थित रहा करता हूँ और आप वहाँ भी मेरे साथ अपनी कला से सर्व लक्ष्मी शची हैं ॥७०॥

त्वया सार्द्धं देवराजो हतश्रीश्च त्वया विना।
अहं धर्मश्च कलया त्वं च मूर्तिश्च धर्मिणी ॥७१
नाहं शक्तो धर्मकृत्ये त्वाञ्च धर्मक्रियां विना।
अहं यज्ञश्च कलया त्वं स्वाहांशेनदक्षिणा ॥७२
त्वया सार्द्धञ्च फलदोऽप्यसमर्थस्त्वया विना।
कलया पितृलोकोऽहं स्वांशेन त्वं स्वधा सती ॥७३
त्वयालं कव्यदाने च सदा नालं त्वयाविना।
अहं पुमांस्त्वं प्रकृतिर्न स्रष्टाहं त्वयाविना ॥७४
त्वं च सम्पत्स्वरूपाहमीश्वरश्च त्वया सह।
लक्ष्मीयुक्तस्त्वया लक्ष्म्या निःश्रीकश्च त्वया विना ॥७५
यथा नालं कुलालश्च घटं कर्तुं मृदा विना।
अहं शेषश्च कलया स्वांशेन त्वं वसुन्धरा ॥७६
त्वां शस्यरत्नाधारांचबिभर्मिमूर्ध्नि सुन्दरि।
त्वं चकान्तिश्च शान्तिश्चभूतिर्मूर्तिमतीसती ॥७७

तुम्हारे साथ में रहने पर ही इन्द्र देवराज होता है अन्यथा तुम्हारे बिना वह हत श्री हो जाया करता है। मैं अपनी एक कला से धर्म हूँ और आप धर्मिणी की मूर्त्ति हैं ॥७१॥ धर्म क्रिया तुम्हारे बिना मैं धर्म के कृत्य में समर्थ नहीं होता हूँ। मैं अपनी एक कला से यज्ञ के स्वरूप वाला हूं और तुम स्वाहांश से दक्षिणा हो। तुम्हारे दक्षिणा रूपिणी के

साथ रहने पर ही मैं फल प्रदाता बनता हूं और तुम्हारे बिना मैं यज्ञ रूप वाला कुछ भी फल देने में समर्थ नहीं हो सकता हूं। मैं अपनी एक कला से पितृलोक हूं तो तुम अपने अंश से सती स्वधा हो ॥७२-७३॥ तुम्हारे साथ रहते हुए मैं कव्य के दान में सदा समर्थ होता हूँ और जब तुम नहीं होती हो तो मैं स्वधा के अभाव में कभी समर्थ नहीं रहा करता हूँ। मैं पुमान् हूँ और आप प्रकृति है। तुम्हारे बिना मैं सृजन करने में सामर्थ नहीं रखता हूँ ॥७४॥ आप सम्पत् स्वरूप वाली हैं और आप के साथ ही में मैं ईश्वर हूँ। तुम लक्ष्मी रूपिणी के साथ में रह कर ही मैं लक्ष्मी से युक्त लक्ष्मी नारायण हूँ। जब तुम लक्ष्मी ही मेरे पास नहीं होती हो तो मैं भी निःश्रीक ही रहता हूँ ॥७५॥ जिस प्रकार से कुम्हार मिट्टी के बिना निर्माण कला में कुशल होते हुए भी घर की रचना नहीं कर सकता है। उसी भाँति रचना का पूर्ण कौशल रहते हुए भी मैं सृजन तुम्हारे बिना नहीं कर सकता हूँ। मैं कला से शेष के स्वरूप वाला हूँ और तुम अपने अंश से वसुन्धरा हो ॥७६॥ हे सुन्दरि ! शस्य रत्नों की आधार स्वरूपिणी आपको अपने मस्तक पर धारण किया करता हूँ। तुम कान्ति—शान्ति—भूति और मूर्त्तिमती सती हो ॥७७॥

तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा क्षुधा तृष्णा परा दया ।
निद्रा शुद्धा च तन्द्रा च मूर्च्छा च सन्नतिः क्रिया ॥७८
मूर्तिरूपा भक्तिरूपा देहिनां देहरूपिणी ।
ममाधारा सदा त्वं च तवात्माहं परस्परम् ॥७९
यथा त्वंच तथाहंच समौ प्रकृतिपूरुषौ ।
न हि सृष्टिर्भवेद्देवि द्वयोरेकतरं विना ॥८०
इत्युक्त्वा परमात्मा च राधां प्राणाधिकां प्रियाम् ।
कृत्वा वक्षसि सुप्रीतो बोधयाम स नारद ॥८१
स च क्रीड़ानियुक्तश्चा बभूव रत्नमन्दिरे ।
तया च राधया सार्द्धं कामुकया सह कामुकः ॥८२

तुम ही तुष्टि–पुष्टि–क्षमा—लज्जा—क्षुधा—तृष्णा–परादया—निद्रा शुद्धा–तन्द्रा–मूर्च्छा—सन्नति और क्रिया के स्वरूपों वाली हो ॥७८॥

आप मूर्त्तिरूप वाली—भक्ति के स्वरूप वाली और देहधारियों की देह रूप वाली हैं। आप सदा मेरी आधार हैं और मैं तुम्हारी आत्मा हूं। ऐसे ही मैं और तुम दोनों परस्पर में हैं ।।७९।। जैसी तुम हो वैसा ही मैं हूं। हम दोनों प्रकृति और पुरुष समान ही हैं। हे देवि ! दोनों में एक के बिना भी इस जगत् की सृष्टि नहीं हो सकती है ।।८०।। यह कह कर परमात्मा ने अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा को अपने वक्षःस्थल में लगा लिया था। हे नारद ! श्रीकृष्ण ने सुप्रसन्न होते हुए इस प्रकार से राधा को अध्यात्मिक महायोग के द्वारा प्रबोधन कराया था ।।८१।। इसके अनन्तर फिर उस रत्ननिर्मित मन्दिर में कामुकी राधा के साथ परम कामुक वह क्रीड़ा में संलग्न हो गये थे ।।८२।।

८३—राधाकृष्णसंवादवर्णनम् ।

कृत्वाक्रीड़ांसमुत्थाय पुष्पतल्पात् पुरातनः ।
निद्रितांप्राणसदृशीं बोधयामासतत्क्षणम् ।।१
वस्त्राञ्चलेन संस्कृत्य कृत्वा तन्निर्मलं मुखम् ।
उवाच मधुरं शान्तं शान्तांच मधुसूदनः ।।२
अयि तिष्ठ क्षणं रासे रासेश्वरि शुचिस्मिते ।
व्रज वृन्दावनं वापि व्रजं व्रज व्रजेश्वरि ।।३
रासाधिष्ठातृदेवि त्वं रासं रासे कुरु क्षणम् ।
ग्रामे ग्रामे यथा सन्ति सर्वत्र ग्रामदेवताः ।।४
प्रियालिनिवहैः सार्द्धं क्षणं चन्दनकाननम् ।
क्षणं वा चम्पकवनं गच्छ वा तिष्ठ सुन्दरि ।।५
क्षणं गृहञ्च यास्यामि विशिष्टं कार्य्यमस्ति मे ।
विरामं देहि मे प्रीत्या क्षणं मां प्राणवल्लभे ।।६
प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं प्राणाश्च त्वयि सन्ति मे ।
प्राणी विहाय प्राणांश्च कुत्र स्थातुं क्षमः प्रिये ।।७

इस अध्याय में श्रीराधा और श्रीकृष्ण के सम्वाद का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—पुरातन पुरुष ने राधा के साथ क्रीड़ा

करके फिर वह पुष्पों की उस शय्या से उठकर बैठ गये थे और निद्रित एवं प्राण के सदृश प्रिया राधा को उसी समय में उन्होंने जगादिया था ॥१॥ उनके मुख को वस्त्र के छोर से सुसंस्कृत करके निर्मल कर दिया था और फिर मधुसूदन शान्त स्वरूप वाली राधा से परम शान्त एवं मधुर वचन बोले ॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे रासेश्वरि ! हे शुचिस्मिते ! अब आप क्षण मात्र रास में स्थित हो जाओ। अथवा वृन्दावन में चलो या हे व्रजेश्वरि ! व्रज में चलो ॥३॥ आप तो हे देवि ! रास की अधिष्ठात्री हैं। थोड़ी देर तक रासमण्डल में रास करो। जैसे ग्राम-ग्राम में सर्वत्र ग्राम देवता होते हैं ॥४॥ हे सुन्दरि ! अपनी प्यारी आलियों के समूहों के साथ कुछ क्षण चन्दन के कानन में अथवा कुछ क्षण चम्पक के वन में जाकर स्थित रहो ॥५॥ मैं क्षण मात्र को अपने गृह को जाऊंगा मुझे वहां कुछ कार्य है जो कि विशेषता रखने वाला है। हे प्राण वल्लभे ! आप प्रसन्नता पूर्वक मुझे क्षण भर के लिये अवकाश प्रदान कर दो ॥६॥ आप मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। मेरे प्राण तुम्हारे ही अन्दर रहा करते हैं। हे प्रिये ! प्राणी प्राणों का त्याग करके अन्यत्र कहाँ रह सकता है ॥७॥

त्वयि मे मानसंशश्वत्त्वं मे संसारवासना।
त्वत्तोममप्रिया नास्ति त्वमेवशङ्करात्प्रिया ॥८
प्राणा मे शङ्करः सत्यं त्वञ्च प्राणाधिका सति।
इत्युक्त्वा तां समाश्लिष्य भगवान् गन्तुमुद्यतः ॥९
अक्रूरागमनं ज्ञात्वा सर्वज्ञः सर्वसाधनः।
आत्मा पाता च सर्वेषां सर्वोपकारकारकः ॥१०
दृष्ट्वा तमेव गच्छन्तमुत्सुकं भिन्नमानसम्।
उवाच राधिका देवी हृदयेनविदूयता ॥११
हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठश्च प्रेयसा मम।
हे कृष्ण हे रमानाथ व्रजेश मा व्रज व्रजम् ॥१२
अधुना त्वां प्राणनाथ पश्यामि भिन्नमानसम्॥
गते त्वयि मम प्रेम गतं सौभाग्यमेव च ॥१३

क्वयासि मां विनिक्षिप्य गम्भीरेशोकसागरे ।
विरहव्याकुलांदीनां त्वय्येवशरणागताम् ॥१४
न यास्यामि पुनर्गेहं यास्यामि काननान्तरम् ।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति गायं गायं दिवानिशम् ॥१५

मेरा मन तुम्हारे ही अन्दर निरन्तर रहता है और आप मेरे संसार की वासना हैं। तुम से अधिक अन्य कोई भी मेरी प्यारी नहीं है तुम मुझे शङ्कर से भी अधिक प्रिय लगती हो ॥८॥ हे सति ! यह सत्य है कि शंकर मेरे प्राणों के तुल्य प्रिय हैं किन्तु आप तो मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। इस प्रकार से कह कर उस राधा का आश्लेष भली भाँति करके हरि जाने को उद्यत हो गये थे ॥९॥ सर्व कुछ के ज्ञान रखने वाले और सब साधनों से सम्पन्न ने अक्रूर के आगमन को जान लिया था। हरि सबके आत्मा—पालन एवं रक्षण करने वाले तथा सबके उपकार के करने वाले थे ॥१०॥ राधिका ने भिन्न मन वाले जाने को उद्यत उनको देख कर वह देव अपने विदूयमान हृदय को करके बोली—॥११॥राधिका ने कहा—हे नाथ ! हे रमण श्रेष्ठ ! आप तो मेरे प्याणों में सबसे श्रेष्ठ हैं। हे कृष्ण ! हे रमानाथ ! हे व्रजेश ! आप व्रज में मत जाओ ॥१२॥ हे प्राण नाथ ! इस समय मैं आपको भिन्न मन वाले देख रही हूँ। आपके चले जाने पर मेरा प्रेम और यह सौभाग्य भी गया ही समझिये ॥१३॥ हे प्राण वल्लभ ! गम्भीर शोक के सागर में मुझे डाल कर आप इस समय कहाँ जा रहे हैं ? मैं तो आपके विरह से अत्यन्त व्याकुल एवं दीन हो रही हूँ। मैं इस समय आपकी ही शरण में आई हुई हूँ ॥१४॥ मैं फिर अपने घर में भी नहीं जाऊंगी और अन्य काननों में रात दिन हे कृष्ण हा कृष्ण—इस तरह गायन करती हुई भ्रमण करती रहूँगी॥१५॥

न यास्याम्यथवारण्यंयास्यामिकामसागरे ।
तत्रत्वत्कामनांकृत्वात्यक्ष्यामिचकलेवरम् ॥१६
यथाऽऽकाशो यथात्मा च यथा चन्द्रो यथा रविः ।
तथा त्वं यासि मत्पार्श्वे निबद्धो वसनाञ्चले ॥१७

अधुनायासि नैराश्यंकृत्वा मे दीनवत्सल ।
न युक्तं हि परित्यक्तुं दीनां मां शरणागताम् ॥१८
यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
त्वां मायया गोपवेशं कथं जानामि मत्सरी ॥१९
कृतं यद्देव दुर्नीतिमपराधसहस्रकम् ।
यदुक्तं पतिभावेन चाभिमानेन तत् क्षम ॥२०
चूर्णीभूतश्च मद्गर्वो दूरीभूतो मनोरथः ।
विज्ञातमात्मसौभाग्यं किमन्यत् कथयामि ते ॥२१
ज्ञात्वा गर्गमुखाच्छ्रुत्वा मोहिता तव मायया ।
त्वाञ्च वक्तुं न शक्नोमि प्रेम्णा वा भक्तिपाशतः ॥२२

अथवा मैं किसी भी कानन में नहीं जाऊंगी और काम के सागर में चली जाऊंगी। वहाँ पर आपकी कामना करके अपने इस कलेवर का त्याग कर दूंगी ॥१६॥ जिस तरह आकाश, आत्मा, चन्द्र और रवि हैं वैसे ही आप मेरे पास में वसन के छोर में वद्ध हैं ॥१७॥ हे दीनों पर प्यार करने वाले ! इस समय आप बिल्कुल मुझे निराश करके त्याग कर रहे हैं यह उचित नहीं है मैं अत्यन्त दीन और आपके शरण में आई हुई हूं ॥१८॥ जिसके चरण कमल को ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि ध्यान में लाया करते हैं मत्सरी मैं माया से गोप के वेश वाले आपको कैसे जान सकती हूँ ॥१९॥ हे देव ! मैंने जो कुछ भी बुरा व्यवहार और सहस्र अपराध किये हैं और पति के भाव से तथा अभिमान वश होकर जो कुछ भी मैंने आपसे कह दिया है उसे अब आप क्षमा कर दीजिए ॥२०॥ मेरा समस्त गर्व चूर्ण हो गया है और सारे मनोरथ भी दूर हो गये हैं। मैंने अपना सौभाग्य जान लिया था। इससे अधिक इस समय आपसे मैं क्या कहूं ॥२१॥ गर्ग के मुख से श्रवण करके और जान कर भी मैं आपकी माया से मोहित हो गई थी। इस समय प्रेम से अथवा भक्ति के भाव के पाश से आपसे कहने में समर्थ नहीं हो रही हूं ॥२२॥

यासिचेन्मां परित्यज्य सकलङ्को भविष्यसि ।
त्वत्पुत्रपौत्रा नश्यन्ति ब्रह्मकोपानलेनच ॥२३

क्षण युगशतं मन्ये त्वां विना प्राणवल्लभम् ।
कथं शताब्दं त्वां त्यक्त्वा बिभर्मि जीवनं प्रभो ॥२४
इत्युक्त्वा राधिका कोपात्पपात धरणीतले ।
मूर्च्छां संप्राप सहसा जहार चेतनां मुने ॥२५
कृष्णस्तां मूर्च्छितां दृष्ट्वा कृपया च कृपानिधिः ।
चेतनां कारयित्वा च वासयामास वक्षसि ॥२६
बोधयामासविविधं योगैःशोकविखण्डनैः ।
तथापिशोकं त्यक्तुं च न शशाकशुचिस्मता ॥२७

हे प्राणनाथ ! यदि आप मुझे त्याग कर जा ही रहे हैं तो आप कलङ्क से युक्त हो जायँगे । ब्रह्मकोप की अग्नि से आपके समस्त पुत्र और पौत्र नष्ट हा जायँगे ॥२३॥ प्राणवल्लभ आपके बिना मैं एक क्षण को भी युग के समान मानती हूँ । हे प्रभो ! शत वर्ष तक आपका त्याग करके मैं कैसे अपने जीवन को धारण करूंगी ॥२४॥ इस प्रकार से यह इतना कह कर राधिका कोप से भूतल पर गिर पड़ी थीं । हे मुने उस राधा को मूर्छा सहसा हो गई थी और उसने अपनी चेतना का त्याग कर दिया था ॥२५॥ कृष्ण ने उसको मूर्च्छित देख कर कृपा के निधि ने कृपा करके उसको होश दिलाया था और अपने वक्षःस्थल में उठा कर उसे लगा लिया था ॥२६॥ शोक के बिखण्डन करने वाले अनेक योगों के द्वारा राधा को प्रबोधित किया था तो भी शुचि स्मित वाली उस राधिका ने अपने शोक को त्याग करने की सामर्थ प्राप्त न की थी ॥२७॥

सामान्यवस्तुविश्लेषो नृणां शोकायकेवलम् ।
देहात्मनोश्च विच्छेदः क्व सुखायप्रकल्पते ॥२८
न ययौ तत्र दिवसे व्रजराजो व्रजं प्रति ।
क्रीड़ासरोवराभ्यासं प्रययौ राधया सह ॥२९
तत्र गत्वा पुनः क्रीड़ां चकार च तया सह ।
विजहौ विरहज्वालां रासे रासेश्वरी मुदा ॥३०
राधा सा स्वामिना सार्द्धं पुष्पचन्दनचर्चिता ।
पुष्पचन्दनतल्पे च तस्थौ रहसि नारद ॥३१

मनुष्यों को एक साधारण सी वस्तु का वियोग भी केवल शोक उत्पन्न कर देने वाला हो जाया करता है तो देह और आत्मा का विच्छेद होना कहाँ सुख प्रद रह सकता है ? ॥२८॥ उस दिन व्रजराज व्रज की ओर नहीं गये थे और राधा के साथ वह क्रीड़ा के सरोवर के समीप में चले गये थे ॥२९॥ वहां पहुंच कर फिर उन श्रीकृष्ण ने उस राधा के साथ पुनः क्रीड़ा की थी। वहाँ पर रासेश्वरी राधा ने रास में अत्यन्त हर्ष से विरह की ज्वाला का त्याग कर दिया था ॥३०॥ हे नारद ! वह राधा अपने स्वामी के साथ में पुष्पों और चन्दन से चर्चित होकर पुष्प और चन्दन से चर्चित शय्या पर एकान्त में स्थित हो गई थी ॥३१॥

८४—रासक्रीड़ा मध्ये ब्रह्मणा आगमन

अतः परं किं रहस्यं राधाकेशवयोर्वद।
निगूढ़तत्वमस्पष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१
शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यंपरमाद्भुतम्।
गोपनीयञ्च वेदेषु पुराणेषु पुराविदाम् ॥२
पुनः सकामो भगवान् कृष्णः स्वेच्छामयो विभुः।
रेमे सरमयासार्द्धं विदग्धश्चविदग्धया ॥३
चतुःषष्टिकलासक्ता यथा कान्ताकलावती।
कामशास्त्रेषु निपुणा विदग्धारसिकेश्वरी ॥४
शृङ्गारलीलानिपुणाशश्वत्कामा च कामुकी।
सुन्दरीसुन्दरीष्वेव शश्वत्सुस्थिरयौवना ॥५
पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या च मानिनी।
शम्भोः शिष्या ज्ञानयुता शतकल्पान्त जीवनी ॥६
वेदवेदाङ्गनिपुणा योगनीतिविशारदा।
नानारूपधरा साध्वी प्रसिद्धा सिद्ध योगिनी ॥७
तत्कन्याराधिकादेवी मातृतुल्याचकामुकी।
चकारनानाभावंसासुशीलास्वामिनं प्रति ॥८

इस अध्याय में रास क्रीड़ा के मध्य में ब्रह्मा के आगमन का निरूपण किया जाता है। नारद ने कहा—इसके आगे राधा और केशव का क्या रहस्य हुआ था ? उस निगूढ़ तत्त्व वाले अस्पष्ट रहस्य को आप मेरे समक्ष कहने के योग्य होते हैं। नारायण ने कहा—हे नारद ! मैं अब एक परम अद्भुत रहस्य को तुमको बताता हूँ उसका तुम श्रवण करो। यह रहस्य वेदों में भी अत्यन्त गोपनीय है और पुरावृत्त के ज्ञाताओं के पुराणों में भी यह छिपा हुआ है ।।१-२।। पुनः सकाम भगवान् विभु श्री कृष्ण ने जो कि अपनी इच्छा से परिपूर्ण रहने वाले और परम विदग्ध हैं रमा के सहित उस विदग्धा राधा के साथ रमण किया था ।।३।। वह रसिकों की ईश्वरी काम शास्त्र में अत्यन्त निपुण थी जैसे कलावती कान्ता हो उसी भाँति वह चौंसठ कला तक आसक्त हो गई थी ।।४।। वह राधा शृङ्गार लीलाओं में बहुत ही दक्ष थी और कामुकी वह निरन्तर काम वासना वाली रहती थी और निरन्तर स्थिर वह सुन्दरियों में सबसे अधिक सुन्दरी थी और निरन्तर स्थिर यौवन से समन्वित रहती थी ।।५।। वह देवी पितृगण की मानसी कन्या—धन्या—मान्या और परम मान वाली थी। वह शंभुकी ज्ञान से युक्त शिष्या थी तथा शत कल्पों के अन्त तक जीवित रहने वाली थी ।।६।। वह देवी वेदों और वेदों के समस्त अङ्गों में निपुण थी तथा योग और नीति की महती विदुषी थी। वह अनेक तरह के रूपों को धारण करने वाली—साध्वी और परम प्रसिद्ध सिद्धा एवं योगिनी थी ।।७।। उस देवी की कन्या यह राधिका देवी थी जो अपनी माता के ही समान कामुकी थी। उस सुशीला ने अपने स्वामी के प्रति अनेक प्रकार के भावों को प्रदर्शित किया था ।।८।।

नानासुवेशोज्ज्वलितां तां निद्राकुलितांविभुः ।
पुनश्चकार मोहेनगाढ़ालिङ्गनमीप्सितम् ।।९
पुनश्च चुम्बनं कृत्वा निवेश्य च स्ववक्षसि ।
सुष्वाप जगतांस्वामी कामी विरहकातरः ।।१०
एतस्मिन्नन्तरे काले ब्रह्मा लोकपितामहः ।
शिवशेषादिभिर्देवैर्मुनीन्द्रैः सार्द्धमाययौ ।।११

आगत्यनत्वा शिरसा तुष्टावसम्पुटाञ्जलि ।
सोमवेदोक्तस्तोत्रेण परिपूर्णतमं विभूम् ॥१२
भारावतारण करुणार्णव शोकसन्तापग्रसन
जरामृत्युभयादिहरण शरणपञ्जर
भक्तानुग्रहकातरभक्तवत्सल ।
भक्तसञ्चितधनओंनमोऽस्तुते ॥१३

अनेक प्रकार के सुवेशों से समुज्ज्वलित और निद्रा से आकुलिता उसका विभु ने पुनः मोहसे अभीष्ट गाढा लिङ्गन किया था ॥६॥ और पुन: चुम्वन करके अपने वक्ष: स्थल पर निवेशित कर जगतों का स्वामी—परम कामी और विरह से कातर सो गये थे ॥१०॥ इसी बीच में लोकों के पितामह ब्रह्मा शिव और शेष आदि देवों तथा मुनीन्द्रों के साथ वहाँ आ गये थे ॥११॥ वहाँ आकर और शिर से प्रणाम कर के पुटाञ्जलि होकर साम वेद में कहे हुए स्तोत्र के द्वारा उस परि पूर्णतम विभु का स्तवन करने लगे थे ॥१२॥ ब्रह्मा ने कहा—हे जगत् के ईश ! आपका जय हो ? आप नन्दित चरण वाले हैं—गुणों से रहित और निराकार हैं—आप अपनी ही इच्छा से परिपूर्ण हैं-आप अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही नित्य विग्रह वाले हैं। आपका गोप वेश है जो कि माया के द्वारा किया गया है-आप माया के ईश हैं-आप सुन्दर बेश से युक्त-सुन्दर शील स्वभाव वाले और शान्त स्वरूप से संयुत है। आप सब के स्वामी—दान्त और नितान्त ज्ञान तथा आनन्द के स्वरूप हैं । आप पर से भी परतर हैं—प्रकृति से पर हैं और सबके अन्तरात्मा रूप हैं। आप निर्लिप्त-सबके द्रष्टा साक्षी स्वरूप हैं और व्यक्त तथा अव्यक्त एवं निरञ्जन हैं। आप भार के अवतारण करने वाले—करुणाज सागर तथा शोक एवं सन्ताप के ग्रास करने वाले हैं। आप मानवों के केरा—मृत्यु आदि के भव को हरण करने वाले हैं । आप शरण में प्राप्त के पञ्जार अर्थात् पूर्ण रक्षक हैं। आप अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये अत्यन्त कातर रहा करते हैं। आप भक्तों पर प्यार करने वाले और भक्तों के लिये संचित धन के तुल्य हैं। आप के लिये प्रणाम है ॥१३॥

सर्वाधिष्ठातृदेवायेत्युक्त्वा वै प्रीणनाय च ।
पुनः पुनरुवाचेदं मूर्च्छितश्च बभूव ह ॥१४
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ।
तत्सर्वाभीष्टसिद्धिश्च भवत्येव न संशयः ॥ ५
अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियहीनो लभेत् प्रियाम ।
निर्धनो लभते सत्यं परिपूर्णतमं धनम् ॥१६
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते दास्यं लभेद्धरेः ।
अचलां भक्तिमाप्नोति मुक्तेरपि सुदुर्लभाम् ॥१७
स्तुत्वा च जगतां धाता प्रणम्य च पुनः पुनः ।
शनैःशनैः समुत्थाय भक्त्या पुनरुवाच ह ॥१८

ब्रह्माजी ने उन सबके अधिष्ठातृ देव के लिये इतना स्तवन करके उन की प्रसन्नता करने के लिये इसी स्तवन को वार वार कहा और फिर वह मूर्च्छित हो गये थे ॥१४॥ इस ब्रह्मा के द्वारा किये गये स्तोत्र को जो समाहित होकर श्रवण करता है उनके समस्त अभीष्टों की सिद्धि निश्चय ही हो जाया करती है—इस में तनिक भी संशय नहीं है ॥१५॥ जो पुत्र हीन होता है उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हो जाती है और जो भर्या से रहित होता है उसे भार्या मिल जाया करती है । निर्धन पुरुष को धनका लाभ होता है और वह सत्य ही परिपूर्ण धन होता है ॥१६॥ इस स्तोत्र का श्रोता पुरुष इस लोक में सुख का भोग कर अन्त में हरि के दास्य भाव को प्राप्त हो जाया करता है । वह अचल भक्ति प्राप्त करके अत्यन्त सुदुर्लभ मुक्ति को भी प्राप्त कर लेता है । इस तरह जगत् के धाता ने प्रभु का स्तवन करके उनको वार-वार प्रणाम किया था । फिर धीरे धीरे उठकर भक्ति पूर्वक उनसे बोले ॥१७-१८॥

उत्तिष्ठ देवदेवेश परमानन्दकारण ।
नन्दनन्दन सानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥१९
व्रज नन्दालयं नाथ त्यज वृन्दावनं वनम् ।
स्मर सुदामशापञ्च शतवर्षनिबन्धनम् ॥२०

भक्तशापानुरोधेन शतवर्षं प्रियां त्यज ।
पुनरेताञ्च सम्प्राप्य गोलोकञ्च गमिष्यसि ॥२१

गत्वा पितृगृहं देव पश्याक्रूरं समागतम् ।
पितृव्यमतिथिं मान्यं धन्यं वैष्णवमोश्वरम् ॥२२

तेन सार्द्धं मधुपुरीं भगवन् गच्छ साम्प्रतम् ।
कुरु शम्भोर्धनुर्भङ्गं भग्नं वैरिगणं हरे ॥२३

हन कंसं दुरात्मानं तातं बोधय मातरम् ।
निर्माणं द्वारकायाश्च भारावतरणं भुवः ॥२४

दह वाराणसीं शम्भोः शक्रस्य सदनं विभो ।
शिवस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् ॥२५

ब्रह्मा ने कहा—हे देव देवेश ! आप तो परम आनन्द के कारण हैं । अब उठिये । हे नन्द के नन्दन ! आप आनन्द से युक्त और नित्य ही आनन्द से परिपूर्ण हैं । आपको हम सबका नमस्कार है ॥१६॥ हे नाथ ! अब आप नन्द के आलम में पधारिये और इस वृन्दावन की निकुञ्ज का त्याग करिये । आप सुदामा के शत वर्ष निबन्धन वाले शाप का स्मरण करिये ॥२०॥ अपने भक्त के द्वारा दिये हुए शाप के अनुरोध से सौ वर्ष तक प्रिया राधा का परित्याग कर दीजिए । फिर इसकी प्राप्ति कर आप गो लोक में जायँगे ॥२१॥ हे देव ! इस समय पिता के घर में जा कर आये हुए अक्रूर का दर्शन करें । वह अक्रूर आपके पितृव्य होते हैं—अतिथि के स्वरूप में घर पर आये हुए हैं—परम मान्य—धन्य एव वैष्णव शिरोमणि हैं ॥२२॥ हे भगवन् ! अब उसके साथ आप मधु पुरी को जाइये । हे हरे ! वहाँ शम्भु के धनुष का भङ्ग कर वैरिगण का नाश करिये ॥२३॥ अत्यन्त दुष्ट का हनन कर अब वहाँ जाकर अपने पिता वसुदेव को बोधन देवें । अब तो आपको द्वारका पुरी का निर्माण और इस वसुन्धरा के भार का अवतरण करना है ॥२४॥ हे विभो ! शम्भु की वाराणसी और इन्द्र के सदन का दाह करें । युद्ध में शिव का जृम्भण तथा बाण की भुजाओं का कृन्तन करने की कृपा करें ॥२५॥

रुक्मिणीहरणं नाथ घातनं नरकस्य च ।
षोड़शानां सहस्रञ्च स्त्रीणां पाणिग्रहं कुरु ॥२६
त्यज प्रियां प्राणसमां व्रजेश्वर व्रजं व्रज ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते यावद्राधा न जाग्रति ॥२७
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च सेन्द्रैर्देवगणैः सह ।
जगाम ब्रह्मलोकञ्च शेषश्च शङ्करस्तथा ॥२८
पुष्पचन्दनवृष्टिञ्च कृष्णस्योपरि देवताः ।
चक्रुः प्रीत्या च भक्त्या च वाग्बभूवाशरीरिणी ॥२९
बध कंसं वत्राहंञ्च स्वपित्रोर्मोक्षणं कुरु ।
क्षयं कुरु भुवो भारं नारदेत्येवमेव च ॥३०
इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः ।
राधां भगवतीं त्यक्त्वा समुत्तस्थौ शनैः शनैः ॥३१
ययौ हरिः कियद्दूरं निरीक्ष्य च पुनः पुनः ।
क्षणं तस्थौ चन्दनानां वने वाससमीपतः ॥३२
विहाय राधा निद्रां सा समुत्तस्थौ स्वतल्पतः ।
न निरीक्ष्य हरिं शान्तं कान्तञ्च प्राणवल्लभम् ॥३३
हा नाथ रमणश्रेष्ठ प्राणेश प्राणवल्लभ ।
प्राणचोर प्रियतम क्व गतोऽसीत्युवाच ह ॥३४

हे नाथ ! आप कृपा करके रुक्मिणी देवी का हरण करें और नरकासुर घातन भी करें वहाँ से सोलह सहस्र पत्नियों का पाणिग्रहण करिये ॥२६॥ हे व्रजेश्वर ! अब अपनी प्राणों के समान प्रिया का त्याग कर देवें और व्रज में पधारें आप शीघ्र ही उठ कर चल दीजिए जब तक यह राधा जाग्रत नहीं होती है ॥२७॥ इन्द्र आदि देवगणों के साथ ब्रह्मा ने इस प्रकार से श्री कृष्ण से निवेदन करके फिर वह ब्रह्म लोक को चले गये थे तथा शेष और शङ्कर भी अपने २ निवास स्थानों में चले गये थे ॥२८॥ इसी समय में देवों ने श्री कृष्ण के ऊपर पुष्प चन्दन की वर्षा की थी जो कि बड़े ही प्रेम और भक्ति के भाव से की गई थी । इसके उपरान्त आकाश वाणी हुई थी ॥२९॥ आकाश वाणी ने कहा

था—वध के योग्य कंस का अब शीघ्र वध करो और अपने माता-पिता को मुक्त कराइये । हे नारद ! आकाश वाणी ने कहा था कि अब भूमि के भार का क्षय करो ॥३०॥ इस प्रकार के आकाश से उद्भूत वचन का श्रवण कर भूत मात्र पर कृपा करने वाले भगवान् ने भगवती राधा का त्याग कर के वहाँ से शनैः शनैः उत्थान किया था ॥३१॥ कुछ हीं दूर हरि गये थे कि बार-बार देखकर वह एक क्षण के लिये वास के समीप में चन्दन के वन में खड़े हो गये थे ॥३२॥ राधा ने निद्रा का त्याग कर दिया था और अपने तल्प से खड़ी हो गई थी । उसने अपने समीप में वहाँ पर परम शान्त स्वरूप स्वामी प्राण वल्लभ को नहीं देखा था ॥३३॥ राधा श्याम सुन्दर को न देखकर विलाप करने लगी—हा नाथ ! आप रमण कराने बहुत ही श्रेष्ठ थे । हे प्राणों के स्वामिन् ! हे प्राणों के वल्लव ! आप तो मेरे प्राणों को चुराने वाले हैं । हे प्रियतम ! आप इस समय कहाँ चले गये हैं ? ॥३४॥

क्षणमन्वेषणं कृत्व बभ्राम मालतीवनम् ।
उवास क्षणमुत्तस्थौ क्षणं सुष्वाप भूतले ॥३५
रुरोद क्षणमत्युच्चैर्विललाप मुहुर्मुहुः ।
आगच्छागच्छ हे नाथेत्येवमुक्त्वा पुनः पुनः ॥३६
मूर्च्छां सम्प्राप सन्तापात् सन्तप्ता विरहानलैः ।
भूतले च तृणाच्छन्ने पपात च यथा मृता ॥३७
आययुस्तत्र गोप्यश्च ब्रह्मन् शतसहस्रशः ।
काश्चिच्चामरहस्ताश्च गृहीत्वा चन्दनद्रवम् ॥३८
तासां मध्ये प्रियलीलाः कृत्वाराधां स्ववक्षसि ।
मृतामिवप्रियां दृष्ट्वा रुरोद प्रेमविह्वला ॥३९
सजलं पङ्कजदलं पङ्कोपरि निधाय च ।
स्थापयामास तां राधां निश्चेष्टाञ्च मृतामिव ॥४०

राधा ने इस प्रकार विलाप करते हुए क्षणमात्र अन्वेषण किया था और मालती के निकुञ्ज वन में भ्रमण किया था । एक क्षण वह बैठ जाती थीं फिर कुछ क्षण खड़ी होजाती थीं और क्षण भर के लिये भूतल

पर सो जाती थीं ॥३५॥ फिर क्षण भर में ही बहुत ऊँचे स्वर में वह रुदन करती थीं और वार-वार विलाप करने लगीं थीं। बार-बार वह यही कहती थीं कि हे नाथ ! अब यहां आ जाइये-आ जाइये ॥३६॥ वह फिर उस श्री कृष्ण के विरह के अनल से जो सन्ताप हुआ था उससे अत्यन्त सन्तप्त होकर मूर्छा को प्राप्त होगई थीं। फिर बेहोश होकर वहीं तृणों से समाच्छन्न भूतल पर गिर पड़ी थीं जैसे कोई मृता हो ॥३७॥ वहाँ पर हे ब्रह्मन् ! सैकड़ों और सहस्रों गोपियाँ आगई थीं। उनमें कुछ के करों में चमर थे और कुछ हाथों में शीतल सुगन्धित चन्दन का द्रव लिये हुए थीं ॥३८॥ उनके मध्य में प्रिया लीला राधा को अपने वक्षःस्थल में लेकर अपनी प्रिया राधा को मृत की भांति देखकर प्रेमातिशय से विह्वल होकर रुदन करने लगी थीं ॥३९॥ जल के सहित पङ्कज के दलों को पङ्क के ऊपर रख कर उस पर मृत के भाँति पड़ी हुई चेष्टाहीन राधा को स्थापित कर दिया था ॥४०॥

गोपीभिः सेवितां तत्र रुचिरैःश्वेतचामरैः।
चन्दनद्रवयुक्ताञ्च स्निग्धवस्त्रान्वितांसतीम् ॥४१
ददर्श कृष्णस्तत्रेत्य तामेव प्राणवल्लभाम्।
निवारितश्च गोपीभिर्बलिष्ठाभिश्च नारद ॥४२
यथानीतः सापराधो दण्ड्यो राजभयादिभिः।
चकार राधां क्रोड़े च समागत्य कृपानिधिः ॥४३
चेतनां कारयामास बोधयामास बोधनैः।
सम्प्राप्य चेतनां देवी ददर्श प्राणवल्लभम् ॥४४
बभूव सुस्थिरा देवी तत्याज विरहज्वरम्।
चकार कान्तं सा कान्ता गात्रालिङ्गनमीप्सितम् ॥४५

गोपियों के द्वारा सुन्दर श्वेत चमरों से वहाँ राधा की सेवा की जा रही थी। राधा के निश्चेष्ट शरीर में शीतल चन्दन का इन गोपियों के द्वारा लगाया गया था और स्निग्ध वस्त्र से वह संयुत थी। इस रीति से उस सती की सेवा होरही थी ॥४१॥ उसी समय कृष्ण ने वहाँ आकर अपनी प्राण वल्लभा उसको देखा था। हे नारद ! जो बलिष्ठ गोपियाँ थीं

उन्होंने उनका निवारण भी किया था ॥४२॥ जैसे कोई अपराध से युक्त और राज भय आदि से दण्ड के योग्य होता है वैसे वह वहाँ आये थे। कृपानिधि ने यहाँ आकर राधा को अपनी गोद में लिटा लिया था ॥४३॥ श्रीकृष्ण ने उस समय अनेक बोधनों के द्वारा उसे ज्ञान कराया और चेतना प्राप्त कराई थीं। जब राधा को चेतना प्राप्त होगई तो उसने वहाँ अपने प्राण वल्लभ का दर्शन किया था ॥४४॥ श्रीकृष्ण को देखकर वह देवी सुस्थिर हुई और विरह के ज्वर का उसने त्याग कर दिया था। उस कान्ता ने फिर अपने कान्त से ईप्सित गात्रका आलिङ्गन किया था ॥४५॥

अक्रूरस्य कृष्णसमीपे गमनम्।

यथाऽक्रूरः स्वशरणं गत्वा कंसेन प्रेषितः।
चकार शयनं तल्पे भुक्त्वा मिष्टान्नमुत्तमम् ॥१
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं चखाद वासितं जलम्।
जगाम निद्रां सुखतः सुखसम्भोगमात्रतः ॥२
ततो ददर्श सुस्वप्नं पुराणश्रुतिसम्मितम्।
निशावशेषसमये बाद्यादिपरिवर्जिते ॥३
अरोगी बद्धकेशश्च वस्त्रयुग्मसमन्वितः।
सुतल्पशायी सुस्निग्धश्चिन्ताशोकविवर्जितः ॥४
किशोरवयसं श्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्।
पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम् ॥५
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं मालतीमाल्यशोभितम्।
भूषितं भूषणार्हञ्च सद्रत्नमणिभूषणैः ॥६
मयूरपिच्छचूडञ्च सस्मितं पद्मलोचनम्।
एवम्भूतं द्विजशिशुं ददर्श प्रथमं मुने ॥७

इस अध्याय में श्रीकृष्ण के समीप में अक्रूर के गमन का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—कंस नृप के द्वारा भेजे हुए अक्रूर अपने गृह में गये थे और वहाँ उत्तम मिष्ट अन्न को खाकर तल्प पर उसने शयन किया था ॥१॥ उस अक्रूर ने सुवासित जल पान किया और कर्पूर सम-

न्वित ताम्बूल का चर्वण किया था। फिर वह सुख सम्भोग से सुख-पूर्वक निद्रा को प्राप्त होगये थे ॥२॥ उस समय अक्रूर ने एक पुराण और श्रुति से सम्मत बहुत सुन्दर वहाँ स्वप्न अक्रूर ने निशा के अवशेष होने के समय में देखा था जब कि वाद्य आदि सब परिवर्जित हो गये थे ॥३॥ अक्रूर ने स्वप्न में देखा था कि एक कोई रोग से रहित अर्थात् पूर्ण स्वस्थ, अपने केशों को बाँधे हुए, दो वस्त्रों से संयुत पुरुष है जो सुन्दर शय्या पर शयन कर रहा है—सुस्निग्ध और चिन्ता शोक आदि सब विकारों से रहित है ॥४॥ फिर अक्रूर ने स्वप्न में देखा था कि एक किशोर अवस्था वाला, श्याम वर्ण से युक्त, दो भुजाओं वाला, मुरलीधारी, पीताम्बर का परीधान किये हुए और वन माला से विभूषित पुरुष है ॥५॥ उस पुरुष के समस्त शरीर में चन्दन लगा हुआ है और मालती के पुष्पों की मालाओं से वह सुशोभित हो रहा है। सुन्दर रत्नों के भूषणों से भूषण के योग्य वह विभूषित हो रहा है ॥६॥ उसके मोर की पंख लगी हुई है, स्मित से युक्त उसका मुख है और पद्म के समान परम सुन्दर नेत्रों वाला है। हे मुने! प्रथम इस प्रकार का एक द्विज का शिशु अक्रूर ने अपने स्वप्न में देखा था ॥७॥

ततो ददर्श रुचिरां पतिपुत्रवतीं सतीम् ।
पीतवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥८
ज्वलतप्रदीपहस्ताञ्च शुक्लधान्यकरां वराम् ।
शरच्चन्द्रनिभास्यांच सस्मितांवरदां शुभाम् ॥९
ततो ददर्श विप्रंच प्रकुर्वन्तं शुभाशिषम् ।
श्वेतपद्मं राजहंसं तुरगंच सरोवरम् ॥१०
ददर्श चित्रितं चारु फलितंपुष्पितं शुभम् ।
आम्रनिम्बनारिकेलगुर्वार्ककदलीतरुम् ॥११
दंशन्तं श्वेतसर्पंच स्वात्मानं पर्वतस्थितम् ।
वृक्षस्थञ्च गजस्थञ्च तरिस्थं तुरगस्थितम् ॥१२
वीणां वादितवन्तञ्च भुक्तवन्तञ्च पायसम् ।
दधिक्षीरयुतान्नञ्च पद्मपत्रस्थमोप्सितम् ॥१३

कृमिविट्सहिताङ्गञ्च रुदन्तं मोहितं तदा ।
शुक्लधान्यपुष्पकरं क्षणं चन्दनचर्चितम् ॥१४

इसके अनन्तर अक्रूर ने स्वप्न में एक सती सधवा स्त्री को देखा जो अपने पति और पुत्रादि से युक्त थी । वह सती पीत वर्ण के वस्त्र का परीधान किये हुए थी और रत्नों के भूषणों से उसके सभी अङ्ग समलंकृत हो रहे थे ॥८॥ उसके करों में जलते हुए दीपक थे तथा शुक्ल धान्य वह श्रेष्ठ सती अपने हाथ में लिये हुए थीं । उसका मुख शरतकाल के पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर था, उसके मुख पर मन्द मुस्कान झलक रही थी और वरदा तथा शुभ थी । इसके अनन्तर स्वप्न में देखा था कि कोई विप्र आया हुआ है जो शुभ आशीर्वाद दे रहा है । अक्रूर ने स्वप्न में देखा कि वहाँ श्वेत पद्म हैं, राज हंस हैं और तुरंग तथा सरोवर हैं ॥९-१०॥ अक्रूर ने चित्रित, सुन्दर, शुभ, फलों से और पुष्पों से युक्त आम्र, निम्ब नारियल, गुर्वार्कं और कदली के वृक्षों को देखा था ॥११ । उसने स्वप्न में अपने आपको पर्वत पर स्थित श्वेत सर्प के द्वारा दंशन करते हुए देखा था। इसके पश्चात् उसने अपने आप कटे वृक्ष पर स्थित, गज पर बैठे हुए, अश्व और तरि पर स्थित देखा था ॥१२॥ अक्रूर ने स्वप्न में देखा था कि वह वीणा वादन कर रहे हैं, पायस का भक्षण कर रहे हैं और पद्मपत्र पर स्थित इच्छित दधि, क्षीर से युक्त अन्न का भोजन कर रहे हैं ॥१३॥ उसने देखा था कि वह कृमि और बिट् से सहित अङ्गों वाला है, रुदन कर रहा है, मोहित होरहा है तथा शुक्ल धान्य और पुष्प हाथ में ग्रहण किये हुए हैं एवं चन्दन से चर्चित हैं ॥१४॥

प्रासादस्थं समुद्रस्थम.त्मानञ्च सलोहितम् ।
छिन्नभिन्नक्षताङ्गञ्च मेदपूयसमन्वितम् ॥१५
ततो ददर्श रजतं मणि शुभ्रञ्च काञ्चनम् ।
मुक्तामाणिक्यरत्नञ्च पूणकुम्भजलं शुभम् ॥१६
सुरभीञ्च सवत्सांच वृषभेन्द्रं मयूरकम् ।
शुकञ्च सारसं हंसं चिल्लं खञ्जनमेव च ॥१७

ताम्बूलं पुष्पमाल्यं ज्वलदग्नि सुरार्चनम् ।
पार्वतीप्रतिमां कृष्णप्रतिमां शिवलिङ्गकम् ॥१८

विप्रबालांच बालांच सुपक्वफलितां कृषिम् ।
देवस्थलींच राजेन्द्र सिंहं व्याघ्रं गुरुं सुरम् ॥१९
दृष्ट्वा स्वप्नं समुत्तस्थौ चकाराह्निकमीप्सितम् ।
उद्धवं कथयामास सर्वं वृत्तान्तमेव च ॥२०

उद्धवाज्ञां समादाय कृत्वा गुरुसुरार्चनम् ।
यात्रां चकार श्रीकृष्णं ध्यात्वा मनसि नारद ॥२१

इसके उपरान्त अक्रूर ने स्वप्न में अपने आपको एक प्रासाद पर स्थित, समुद्र में स्थित, लोहित युक्त, छिन्न-भिन्न एवं क्षत अङ्गों वाला एवं भेद और पूय (मवाद) से युक्त देखा था ॥१५॥ इसके पश्चात् उसने स्वप्न में रजत, शुभ्रमणि, सुवर्ण, मुक्ता, माणक्य रत्न और जल से परिपूर्ण शुभ कुम्भ को देखा था ॥१६॥ वत्स के सहित सुरभी, वृषभेन्द्र, मयूर शुक, सारस, हंस, चील,खञ्जन को देखा था ॥१७॥ अक्रूर ने फिर स्वप्न में ताम्बूल, पुष्पों की माला, जलती हुई अग्नि, सुरों का अर्चन, पार्वती की प्रतिमा, कृष्ण की मूर्त्ति और शिव की लिङ्ग मूर्त्ति को देखा था ॥१८॥ ब्राह्मण की वाला, वाला, और सुपक्व एवं फलित कृषि, देवस्थली,राजेन्द्र, सिंह, व्याघ्र, गुरु और सुर को स्वप्न में अक्रूर ने देखा था ॥१९॥ ऐसे परम शुभ स्वप्न को देखकर अक्रूर शय्या से उठ गये थे और फिर उन्होंने अभीष्ट आह्निक किया था। इसके अनन्तर अक्रूर ने अपने शुभ स्वप्न को उद्धव से कह दिया था ॥२०॥ उद्धव की आज्ञा प्राप्त करके गुरु और सुरों का अर्चन करने के पश्चात् हे नारद ! मनमें श्रीकृष्ण का ध्यान करके अक्रूर ने अपनी व्रज की यात्रा आरम्भ करदी थी ॥२१॥

ददर्श वर्त्मन्येवं च मङ्गलार्हं शुभप्रदम् ।
वांछाफलप्रदं रम्यं पुरो मङ्गलसूचकम् ॥२२

वामे शवं शिवां पूर्णकुम्भं नकुलचासकम् ।
पतिपुत्रवतीं साध्वीं दिव्याभरणभूषितम् ॥२३

शुक्लपुष्पंच माल्यंच धान्यंच खंजनं शुभम् ।
दक्षिणे ज्वलदग्नि विप्रंच वृषभं गजम् ॥२४
वत्सप्रयुक्तां धेनुंच श्वेताश्वं राजहंसकम् ।
वेश्यांच पुष्पमालांच पताकां दधि पायसम् ॥२५
मणिं सुवर्णं रजतं मुक्तामाणिक्यमीप्सितम् ।
सद्योमांसं चन्दनंच माध्वीकं घृतमुत्तमम् ॥२६
कृष्णसारं फलं लाजसिद्धान्नं दर्पणं तथा ।
विचित्रितं विमानंच सुदीप्तां प्रतिमां तथा ॥२७
शुक्लोत्पलं पद्मवनं शङ्खचिल्लं चकोरकम् ।
मार्जारं पर्वतं मेघं मयूरं शुकसारसम् ॥२८

अक्रूर ने मार्ग में भी इसी प्रकार से मङ्गल की सूचना देने वाले—शुभ का सन्देश बताने वाले—मंगल के योग्य—रम्य इच्छा को पूर्ण करने वाले शकुन देखे थे ॥२२॥ अपने वाम भाग में शव—शिवा—पूर्ण कुम्भ—नकुल चासक—पति—और पुत्र के सहित साध्वा नारी जो दिव्य आभरणों से भूषित थी देखी थीं ॥२३॥ शुक्ल पुष्प—माल्य—धान्य और शुभ खञ्जन पक्षी को देखा था । दक्षिण भाग में जलती हुई अग्नि—विप्र—वृषभ—गज देखा था ॥२४॥ वत्स से युक्त धेनु—श्वेत घोड़ा—राजहंस—वेश्या—पुष्पों की माला—पताका—दधि—और पायस देखा था ॥२५॥ मणि—सुवर्ण—रजत—मुक्ता— ईप्सित माणिक्य—ताजा मांस—चन्दन—माध्वीक और उत्तम घृत देखा ॥२६॥ कृष्णसार—फल——लाज सिद्धान्न—दर्पण—विचित्रित विमान—सुदीप्त प्रतिमा देखे थे ॥२७॥ शुक्लोत्पल—पद्मों का वन—शङ्खचिल्ल— चकोर—मार्जार—पर्वत—मेघ—मयूर—शुक—और सारस को देखा था ॥२८॥

शङ्खकोकिलवाद्यानां ध्वनिं शुश्राव मंगलम् ।
विचित्रं कृष्णसंगीतं हरिशब्दं जयध्वनिम् ॥२९
एवम्भूतं शुभं दृष्ट्वा श्रुत्वा प्रहृष्टमानसः ।
प्रविवेश हरिं स्मृत्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥३०

ददर्श पुरतो रम्यं रासमण्डलमीप्सितम् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पचन्दनवायुना ॥३१
वासितं मंगलघटैः रम्भास्तम्भैर्विराजितम् ।
आम्रपल्लवसंघैश्च पट्टसूत्रविचित्रतैः ॥३२
शोभितैः परितः शश्वत् पद्मरागविनिर्मितम् ।
शोभितं शोभनार्हं च त्रिकोटिरत्नमन्दिरैः ॥३३
रम्यैः कुंजकुटीरैश्च राजितं शतकोटिभिः ।
रासं वृन्दावनं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययौ च सः ॥३४
ददर्श पुरतो रम्यं नन्दव्रजमनुत्तमम् ।
परं वैकुण्ठसङ्काशं वैकुण्ठनिलयं शुभम् ॥३५

मार्ग में अक्रूर ने शङ्ख और कोकिल के वाद्यों का श्रवण किया था जो कि मङ्गल ध्वनि होती है । विचित्र कृष्ण का संगीत—हरि शब्द और जय ध्वनि का श्रवण किया था ॥२९॥ इस प्रकार के शुभ शकुनों को देखकर तथा सुनकर अक्रूर का मन बहुत प्रसन्न होगया था । फिर उसने हरि का स्मरण करके परम पुण्य स्थल वृन्दावन के वन में प्रवेश किया था ॥३०॥ वहाँ प्रवेश करते ही सामने अत्यन्त रमणीय और अत्यभीष्ट रास मण्डल को देखा था जो चन्दन—अगुरु—कस्तूरी—पुष्प और चन्दन की वायु से सुगन्धित था तथा मङ्गल घटों से और रम्भा के स्तम्भों से सुशोभित था । वह रास मण्डल आम्र के पल्लवों के समुदाय से और पट्टसूत्रों से विचत्र हो रहा था ॥३१-३२ । वह रास मण्डल चारों ओर से परम शोभित था तथा पद्मराग मणियों के द्वारा विनिर्मित था । तीन करोड़ रत्नों के निर्मित मन्दिरों से वह शोभा के योग्य एव शोभित हो रहा था ॥३३॥ उसमें सैकड़ों करोड़ अति रम्य कुंज कुटीर बनी हुई थी जिनसे उसकी शोभा अत्यन्त बढ़ी हुई थी । फिर रास वृन्दावन को देखकर वह कुछ ही दूर गया था ॥३४॥ फिर उस अक्रूर ने सामने परम उत्तम एवं अतिरम्य नन्द व्रज को देखा था । यह वैकुण्ठ के ही समान और उससे भी उत्तम था । यह वैकुण्ठ के शुभ निलय से संयुत था ॥३५॥

रत्नसोपानसंयुक्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम् ।
नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नवलयान्वितम् ॥३६
खचितं मणिसारेण रचितं विश्वकर्मणा ।
द्वारिदृष्टेन मार्गेण राजद्वारं विवेश सः ॥३७
पताकारत्नजालाढ्यं मुक्तामाणिक्य भूषितम् ।
रत्नदर्पणशोभाढ्यं रत्नचित्रविचित्रतम् ॥
रत्नवीथीविरचितं मंगलैर्घटैः ॥३८
अक्रूरागमनं श्रुत्वा साह्लादो नन्द एव च ।
सहितो रामकृष्णाभ्यां जगामानु व्रजाय वै ॥३९
वृकभान्वादिभिर्युक्तःकृत्वा वेश्यांपुरःसराम् ॥
पूर्णकुम्भंगजेन्द्रंच कृत्वाऽग्रे शुक्लधान्यकम् ॥४०
कृष्णां गां मधुपर्कंच पाद्य रत्नासनादिकम् ।
गृहीत्वा सादरः शान्तः सस्मितो विनतस्तथा ॥४१
आनन्दयुक्तो नन्दश्च सगणः सहबालकः ।
दृष्ट्वाऽक्रूरं महाभागं तूर्णमालिंगनं ददौ ॥४२

इस में रत्नों से निर्मित सोपान बने हुए थे और यह रत्नों के स्तम्भों से शोभायमान था । यह अनेक चित्र–विचित्र वस्तुओं से युक्त था तथा सद्रत्नों के वलयों से समन्वित था ॥३६॥ उत्तम मणियों से खचित और विश्व कर्मा के द्वारा रचित वह नन्द का भवन था । द्वारि इष्ट मार्ग के द्वारा उसने राजद्वार में प्रवेश किया था ॥३७॥ वह भवन पताका और रत्नों के जाल से युक्त था तथा मुक्ता और मणियों से भूषित था । रत्नों के दर्पणों की शोभा से युक्त और रत्नों से चित्र विचित्र था । उसमें रत्नों की ही वीथियाँ बनी हुई थी तथा वह मङ्गल घरों से परम मङ्गलमय था ॥३८॥ अक्रूर के आगमन का श्रवण कर नन्द को परमाह्लाद हुआ था । वह नन्द, राम और कृष्ण को साथ में लेकर अनुव्रजन के लिये वहाँ आगे गये ये ॥३९॥ उस समय वृषभानु आदि भी सब नन्द के साथ गये थे । अपने आगे वेश्या को ले गये थे तथा जल पूर्ण कलश—गजेन्द्र और शुक्ल धान्य को उन्होंने अपने आगे कर लिया था ॥४०॥ कृष्णा गौ—

मधु पर्क—पाद्य और रत्नासन आदि का ग्रहण कर बहुत आनन्द के साथ शान्त एवं विनत भाव से युक्त होकर मुस्कराते हुए अक्रूर को लिवाने के नन्द गये थे ॥४१॥ नन्द उस समय बहुत ही आनन्द से युक्त थे और अपने गण तथा बालकों के साथ नन्द ने अक्रूर का दर्शन किया था और उस महाभाग का तुरन्त ही बढ़ कर आलिङ्गन किया था ॥४२॥

प्रणेमुः शिरसा सर्वे गोपा जगृहुराशिषम् ।
परस्परञ्च संयोगो बभूव गुणवान् मुने । ४३
क्रोड़े चकाराक्रूरश्च कृष्णं रामं क्रमेण च ।
चुचुम्ब गण्डयुगले पुलकाञ्चितविग्रहः ॥४४
साश्रुनेत्रोऽतिसाह्लादः कृताथः सिद्धवाञ्छितः ।
ददर्श कृष्णं द्विभुजं क्षणं श्यामलसुन्दरम् ॥४५
पीतवस्त्रपरीधानं मलतीमाल्यविभूषितम् ।
चन्दनोक्षितसर्वांगं परं वंशोधरं वरम् ॥४६
स्तुतं ब्रह्मेशशेषाद्यैर्मुनीन्द्रैः सनकादिभिः ।
वीक्षितं गोपकन्याभिः परिपूर्णतमं विभुम् ॥४७
क्षणं ददर्श क्रोड़स्थं सस्मितञ्च चतुर्भुजम् ।
लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥४८
सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिसेवितम् ।
सेवितं सिद्धसंघैश्च भक्तिनम्रैः परात्परम् ॥४९

उस समय में समस्त गोपों ने अक्रूर को शिर से प्रणाम किया था और आशीर्वाद प्राप्त किया था। हे मुने! उस समय में परस्पर में गुण वाला संयोग हुआ था ॥४३॥ अक्रूर ने बलराम और कृष्ण को अपनी गोद में क्रम से उठा लिया था और उनके गण्डयुगलों को बड़े ही स्नेह से चुम्बित किया था तथा स्वयं पुलकायमान शरीर वाले होगये थे ॥४४॥ अक्रूर के नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बह रही थी। वह अत्यन्त ही आह्लाद से युक्त—कृताथ और सिद्ध वांछा वाले हो गये थे जिस समय उन्होंने एक क्षण भर श्यामल सुन्दर दो भुजाओं वाले श्रीकृष्ण का दर्शन किया था ॥४५॥ पीत वस्त्र के परीधान करने वाले—मालती लता के

पुष्पों की मालाओं से विभूषित—चन्दन से उक्षित सर्वाङ्ग वाले—वंशी को धारण किये हुए परम श्रेष्ठ श्री कृष्ण का स्वरूप था ॥४६॥ श्रीकृष्ण ब्रह्मा—शेष–ईश आदि के द्वारा मुनीन्द्रों के द्वारा और सनकादि के द्वारा स्तुत थे। गोपिकाऐं उनके स्वरूप को देख रहीं थीं तथा वह परिपूर्णतम एवं विभु थे ॥४७॥ एक क्षण के लिये अक्रूर ने ऐसे स्वरूप वाले श्रीकृष्ण को जबकि वह उसकी गोद में थे चार भुजाओं से युक्त और मुस्कराते हुए देखा था। उस समय अक्रूर ने कृष्ण को लक्ष्मी और सरस्वती के सहित तथा वनमाला से भूषित देखा था ॥४८॥ अक्रूर ने देखा था कि वह सुनन्द—नन्द—कुमुद नामधारी पार्षदों के द्वारा सेवित हैं और पर से भी पर वह भक्ति भाव से विनम्र सिद्धों के समुदाय के द्वारा सेवित हो रहे हैं ॥४६॥

क्षणं ददर्श देवं तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं नागराजविराजितम् ॥५०
दिगम्बरं परं ब्रह्म भस्मांगञ्च जटायुतम् ।
जपमालाकरं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठञ्च योगिनाम् ॥५१
क्षणं चतुर्मुखं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठं मनीषिणाम् ।
क्षणं धर्मस्वरूपञ्च शेषरूपं क्षणं क्षणम् ॥५२
क्षणं भास्कररूपञ्च ज्योतीरूपञ्च सनातनम् ।
क्षणं परमशोभाढ्यं कोटिकन्दर्पनिन्दितम् ॥५३
कामिनीकमनीयच कामुकं कामसंयुतम् ।
एवम्भूतं शिशुं दृष्ट्वा स्थापयामास वक्षसि ॥५४
रत्नसिंहासने रम्ये नन्ददत्ते च नारद ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या पुलकांचितविग्रहः ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ तुष्टाव पुरुषोत्तमम् ॥५५

एक क्षण के लिये उन्हें अक्रूर ने पाँच मुखों से और तीन नेत्रों से युक्त—शुद्ध स्फटिक मणि के समान वर्ण वाले—नाग राजों से विराजित देखा था। अक्रूर ने देखा था कि वह दिगम्बर रूप धारी परम ब्रह्म—भस्मभूषित अङ्ग वाले—जटाओं से युक्त—हाथ में जप की माला लिये

हुए—योगियों में श्रेष्ठ और ध्यान में परम निष्ठ थे ॥५१॥ एक क्षण में ध्यान में निष्ठ चतुर्मुख को जोकि मनीषियों में सर्वश्रेष्ठ है और दूसरे क्षण में धर्म के स्वरूप को तथा क्षण भर में ज्योति रूप वाले सनातन भास्कर के रूप को और क्षण भर में ही कोटि कन्दर्पों को पराजित करने वाले परम शोभा से युक्त स्वरूप का दर्शन किया था ॥५३॥ वह इतना सुन्दर स्वरूप था जो कामनियों का कमनीय था—कामुक और काम से संयुत था। इस प्रकार के उस शिशु का दर्शन करके अक्रूर ने अपने वक्षःस्थल में उसको स्थापित कर लिया था ॥५४॥ हे नारद! नन्द के द्वारा प्रदान किये हुए रत्नों के सिंहासन पर भक्तिभाव से प्रदक्षिणा करके अक्रूर का शरीर पुलकायमान होगया था। अक्रूर ने भूमि में अपना मस्तक टेक कर प्रणाम किया था तथा वह पुरुषोत्तम की स्तुति करने लगे ॥५५॥

नमः कारणरूपाय परमात्मस्वरूपिणे।
सर्वेषामपि विश्वानामीश्वराय नमो नमः ॥५६

पराय प्रकृतेरीश परात्परतराय च।
निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे ॥५७

सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च।
सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे ॥५८

असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
स्वरूपायादिबीजाय तदीशविश्वरूपिणे ॥५९

नमो गोपांगनेशाय गणेशेश्वररूपिणे।
नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः ॥६०

राधारमणरूपाय राधारूपधराय च।
राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च ॥६१

राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च।
राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः ॥६२

वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे वेदिने नमः।
वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदबीजाय ते नमः ॥६३

अक्रूर ने कहा—परमात्मा के स्वरूप वाले कारण रूप आपको मेरा नमस्कार है। समस्त विश्वों के ईश्वर आपके लिये मेरा वार-वार प्रणाम है ॥५६॥ हे प्रकृति के स्वामिन् ! आप पर हैं और पर से भी परतर हैं। आप गुणों से रहित हैं– निरीह हैं अर्थात् आप सब प्रकार की इच्छा से शून्य हैं—आप रूप से हीन हैं और स्वरूप वाले हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥५७॥ आप समस्त देवों के स्वरूप वाले हैं अर्थात् आप ही में सम्पूर्ण देव विराजमान रहते हैं। आप समस्त देवों के ईश्वर हैं और सर्व देवों के भी अधिदेव हैं तथा विश्व आदि भूतों के रूप वाले हैं ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥५८॥ इन असंख्य विश्वों में आप ब्रह्मा—विष्णु और शिव के रूप वाले हैं, आप आदि बीजरूप स्वरूप वाले हैं तथा इसके ईश विश्वरूप वाले हैं ऐसे आपके लिये मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥५९॥ गोपाङ्गनाओं के ईश के लिये नमस्कार है तथा गणेश और ईश्वर रूप धारी एव सुरगण के ईश के लिये मेरा नमस्कार है। राधा के स्वामी के लिये वार-वार मेरा प्रणाम है ॥६०॥ राधा को रमण कराने वाले रूप धारी को तथा राधा के रूप को धारण करने वाले—राधा के आराध्य देव और राधा के प्राणों से भी अधिक प्रिय के लिये नमस्कार है ॥६१॥ राधा के द्वारा साध्य—राधा के अधिदेव प्रियतम—राधा के प्राणों के अधिदेव और विश्वरूप आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥६२॥ वेदों के द्वारा स्तुत–आत्मा वेद के ज्ञाता रूप वाले वेदी आपके लिये नमस्कार है। वेदों के अधिष्ठातृदेव वेदों के बीज आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥६३॥

यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः ।
महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः ॥६४
स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राकृताय नमो नमः ।
प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषायः च ॥६५
इत्येवं स्तवनं कृत्वा मूर्च्छामाप सभातले ।
पपात सहसा भूमौ पुनरीशं ददर्श सः ॥६६
बहिस्थं हृदयस्थञ्च परमात्मानमीश्वरम् ।
परितः श्यामरूपञ्च विश्वस्थं विश्वमेवच ॥६७

अक्रूरं मूर्च्छितं दृष्ट्वा नन्दः सादरपूर्वकम् ।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारद ॥६८

पप्रच्छ सर्ववृत्तान्तं किञ्चिद्दृष्टमिति त्वया ।
मिष्टान्नं भोजयामास कुशलञ्च पुनःपुनः ॥६९

अक्रूरः कथयामास कंसवृत्तान्तमीप्सितम् ।
स्वपित्रोर्मोक्षणार्थञ्च गमनं रामकृष्णयोः ॥७०

जिसके रोम कूपों में असंख्य विश्व नित्य रहा करते हैं और जो महा विष्णु के भी ईश्वर हैं ऐसे विश्वों के ईश आपके लिये मेरा नमस्कार है और बारम्बार नमस्कार है ॥६४॥ आप स्वयं प्रकृति के रूप वाले हैं और प्राकृत हैं। आप प्रकृति के ईश्वर रूप वाले हैं और प्रधान पुरुष हैं ऐसे आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥६५॥ इस प्रकार से अक्रूर स्तवन करके स्वयं मूर्च्छा को प्राप्त हो गये थे और सभा स्थल में सहसा भूमि में गिर पड़े थे और उठकर पुनः उसने अपने ईश्वर का दर्शन किया था ॥६६॥ अक्रूर ने बाहिर स्थित—हृदय में स्थित उस परमात्मा ईश्वर को जो सब ओर थे—विश्व में स्थित और विश्वरूप एवं श्याम स्वरूप वाले थे ऐसे प्रभु का दर्शन किया था ॥६७॥ हे नारद ! जब नन्द ने अक्रूर को मूर्च्छित दशा में देखा था तो उसने उसको आदर के साथ रम्य सिंहासन पर बिठा दिया था ॥६८॥ फिर नन्द ने उनसे सब वृत्तान्त पूछा था कि आपने क्या देखा है। इसके अनन्तर मिष्टान का भोजन कराया था और बार-बार कुशल पूछा था ॥६९॥ अक्रूर ने राजा कंस का जो अभीष्ट वृत्तान्त था वह सब नन्द से कह दिया था। अपने माता—पिता के मोक्षण कराने के लिये बलराम और श्री कृष्ण का मथुरा में गमन हुआ था ॥७०॥

अथ सुष्वाप समये परं संहृष्टमानसः ।
रम्ये चम्पकतल्पे च कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि ॥७१

प्रातरुत्थाय सहसा कृत्वाह्निकमनुत्तमम् ।
स्वरथे स्थापयामास रामं कृष्णं जगत्पतिम् ॥७२

गव्यं पञ्चप्रकारञ्च नानाद्रव्यं सुदुर्लभम् ।
वृषभानुञ्च नन्दञ्च सुनन्दं चन्द्रभानकम् ॥७३
नानाप्रकारं वाद्यञ्च मृदङ्गमुरजादिकम् ।
पटहं पणवञ्चैव ढक्कां दुन्दुभिमानकम् ॥७४
सज्जासंनहनीकांस्यपट्टमदलमण्डवीम् ।
वादयामास सानन्दं नन्दगोपो व्रजेश्वरः ॥७५
श्रुत्वा वाद्यञ्च गोप्यश्च गमनं रामकृष्णयोः ।
दृष्ट्वा कृष्णं रथस्थं तमाययुः कोपपीड़िताः ॥७६
कृष्णेन वारिताः सर्वाः प्रेरिता राधया द्विज ।
बभञ्जुरीश्वररथं पादाघातेन लीलया ॥७७

इसके उपरान्त अक्रूर समय उपस्थित होने पर परम हर्षित मन वाले होते हुए अति रमणीय चम्पक के तल्प पर कृष्ण को अपने वक्षः स्थल पर रखकर सोगये थे ॥७१॥ प्रातः काल में उठकर तुरन्त अपना उत्तम आह्निक कर्म समाप्त करके अक्रूर ने अपने रथ में बलराम और जगत् के पति श्री कृष्ण को स्थापित कर दिया था ॥७२॥ उनके साथ में पाँचों प्रकार का गव्य तथा अन्य अनेक प्रकार के सुदुर्लभ द्रव्य भी रख दिये थे । उस रथ में नन्द—वृषभानु–सुनन्द और चन्द्र भानु भी बैठ गये थे ॥७३॥ मृदङ्ग—मुरज आदिक अनेक प्रकार के वादन थे । पटह—पणव—ढक्का —दुन्दुभि—आनक—सज्जा—संहननी—काँस्यपट्ट–मर्दल और माण्डवी को आनन्द के सहित व्रजेश्वर नन्दगोप ने बजवाया था ॥७४-७५॥ इन वाद्यों की ध्वनि को तथा श्रीराम कृष्ण दोनों भाइयों के गमन को श्रवण कर एवं रथ में संस्थित कृष्ण को देखकर गोपियाँ कोप से पीड़ित होती हुईं उनके समीप में आगईं थी–॥७६॥ हे द्विज ! वे समस्त गोपियाँ राधा के द्वारा प्रेरित होकर वहाँ आईं थीं । यद्यपि कृष्ण के द्वारा वे वारित भी की गईं थीं तो भी उन्होंने लीला से पादों के आघात के द्वारा ईश्वर के रथ का भञ्जन किया था ॥७७॥

तत्र सर्वेषु गोपेषु हाहाकारं कृतेषु च ।
प्रययुर्बलवत्यश्च कृष्णं कृत्वा स्ववक्षसि ॥७८

काचित्क्रूरं तमक्रूरं भर्त्सयामास कोपतः।
काश्चिद्बद्ध्वाच वस्त्रेणचाक्रूरं प्रययुस्ततः ॥७९
काचित्तं ताडयामास कङ्कणेन करेण च।
तद्वस्त्रं हारयामास कृत्वा विवसनं मुने ॥८०
क्षतविक्षतसर्वाङ्गं दृष्ट्वाक्रूरञ्च माधवः।
जगाम राधानिकटं बोधयामास तां पुनः ॥८१
आध्यात्मिकेन योगेन विनयेन च सादरम्।
अक्रूरं बोधयामास बाधयामास तां विभुः ॥८२
आकाशात्पतितं दिव्यं मन्त्रप्रस्थापितं रथम्।
विचित्रवस्त्रसंयुक्तं ददर्श पुरतो हरिः ॥८३
खचितं मणिराजेन रचितं विश्वकर्मणा।
तं दृष्ट्वा मातृभवनमाजगाम जगत्पतिः ॥८४
भुक्त्वा पीत्वा सुखं सुप्त्वा गमने सहबान्धवः।
तस्थौ मुनीन्द्रदेवेन्द्रब्रह्मेशशेषवन्दितः ॥८५
सुषुपुर्गोपिकाः सर्वाः परं संहृष्टमानसा।
पुष्पतल्पे च रम्ये च राधया सह नारद ॥८६
सर्वे चानन्दयुक्ताश्च जना गोकुलवासिनः।
केचिद्गोपाश्च ननृतुः केचित् सङ्गीततत्पराः ॥८७

उस समय में वहाँ पर समस्त गोपों के द्वारा हाहा कार करने पर बलवती गोपियाँ कृष्ण को अपने वक्षः स्थल में लगा कर चली गईं थीं ॥७८॥ कुछ गोपियाँ कोप से अतिक्रूर उस अक्रूर को भर्त्सना देने लगी थीं और कुछ व्रज बालाऐं वस्त्र से अक्रूर को बाँध कर वहाँ से चली गईं थीं ॥७९॥ कुछ गोपाङ्गनाओं ने अपने कर और कङ्कण से उस अक्रूर को ताड़ित किया था। हे मुने ! कुछ ने उसके वस्त्र छीन कर उसे वसन हीन कर दिया था ॥८०॥ माधव ने इस प्रकार से क्षत–विक्षत अंगों वाले अक्रूर को देख कर वह राधा के पास गये और उसको फिर उन्होंने समझाया था ॥८१॥ श्री कृष्ण ने आध्यात्मिक योग के द्वारा तथा

बहुत ही आदर के साथ विनय से अक्रूर को समझाया था तथा विभु ने उस राधा को भी प्रबोधन कराया था ॥८२॥ उस समय आकाश से एक परम दिव्य मन्त्रों द्वारा प्रस्थापित रथ पतित हुआ था जो कि विचित्र वस्त्रों से संयुक्त था। ऐसा एक रथ हरि ने अपने सामने देखा था ॥८३॥ यह रथ उत्तम मणियों से खचित था और विश्वकर्मा के द्वारा विरचित किया हुआ था। उसको देखकर जगत् के पति अपने माता के भवन में आ गये थे ॥८४॥ खा-पीकर और सुख पूर्वक शयन करके मुनीन्द्र-देवेन्द्र —ब्रह्मा—शेष और ईश के द्वारा वन्दना किये हुए श्री कृष्ण अपने भाई के सहित गमन को स्थित हो गये थे ॥८५॥ समस्त गोपियाँ अत्यन्त संप्रहृष्ट मन वाली होती हुईं हे नारद! राधा के साथ रम्य पुष्पों के तल्पों पर सोगईं थीं ॥८६॥ उस समय सभी गोकुल के निवास करने वाले जन आनन्द से युक्त हो गये थे। कुछ गोप तो नाचने लगे थे और कुछ संगीत करने में तत्पर हो गये थे ॥८७॥

८७—यात्रामंगलवर्णनम्

राधिकायाञ्च सुप्तायां सुप्तासु गोपिकासु च।
पुष्पचन्दनतल्पे च वायुना सुरभीकृते ॥१

तृतीयप्रहरेऽतीते निशायाञ्च शुभक्षणे।
शुभचन्द्रर्क्ष योगे चामृतयोगसमन्विते ॥२

सौम्यस्वामियुते लग्ने सौम्यग्रहविलोकिते।
पापग्रहसमासक्तदुष्टदोषादिवर्जिते ॥३

यशोदां बोधयामास कारयामास मङ्गलम्।
बन्धूनाश्वासयामास समुत्थाय हरिः स्वयम् ॥४

वाद्यं निषेधयामास राधिकाभयभीतवत्।
स्वतन्त्रोविश्वकर्त्ता च पाता भर्ता स्वतन्त्रवत् ॥५

प्रक्षाल्य पादयुगलंधृत्वा धौतेच वाससी।
उवास संस्कृते स्थाने विलिप्ते चन्दनादिना ॥६

फलपल्लवसंयुक्तं संस्कृतं चन्दनादिभिः ।
वामे कृत्वा पूर्णकुम्भं वह्निं विप्रं स्वदक्षिणे ।।७

इस अध्याय में श्री कृष्ण की मथुरा यात्रा का मंगलमय वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा—परम सुगन्धित वायु के द्वारा सुरभी कृत पुष्प एवं चन्दन के तल्प (शय्या) पर राधा के सुप्त हो जाने पर तथा समस्त गोपिकाओं के सो जाने पर रात्रि मे तीसरे प्रहर के व्यतीत हो जाने पर जब शुभ क्षण उपस्थित हुआ था उस समय में शुभ चन्द्र और नक्षत्र के योग हो जाने पर तथा अमृत योग के आने पर एवं सौम्य ग्रह जो कि अपनी राशि का स्वामी था उसके लग्न में आजाने पर और सोम्य शुद्रों की ही दृष्टि पूर्ण होने पर पाप ग्रहों से समासक्त दुष्ट ग्रहों के दोष से रहित होने के समय में श्री कृष्ण की मंगल यात्रा का आरम्भ हुआ था ।।१-३।। हरि ने अपनी माता यशोदा को भली भाँति प्रबोधन कराया था और मंगल कराया था । अपने समस्त बन्धु-बान्धवों को समाश्वासन दिया था और स्वयं उस समय उठकर यात्रा को प्रस्तुत हो गये थे ।।४।। राधा के भय से डर कर कृष्ण ने वाद्य वादन का निषेध कर दिया था । यद्यपि यह स्वतन्त्र–विश्व को रचना करने वाले तथा उसके पोषण–रक्षण और स्वतन्त्र की भाँति भरण करने वाले थे किन्तु फिर भी राधा के भय से भीत हो गये थे ।।५।। हरि ने दोनों चरणों का प्रक्षालन किया था और धौत वस्त्रां को धारण किया था फिर चन्दन आदि से विलिप्त सुसंस्कृत स्थान पर बैठ गये थे ।।६।। वह स्थल फलों और पल्लवों से संयुक्त था तथा चन्द्रनादि से भली भाँति संस्कार किये जाने वाला था । उनके वाम भाग में उस स्थल में जल से पूर्ण कलश था और दक्षिण भाग में अग्नि–विप्र थे ।।७।।

पतिपुत्रवतीं दीपं दर्पणं पुरतस्तथा ।
दूर्वाकाण्डञ्च सुस्निग्धं पुष्पंधान्यं सितंशुभम् ।।८
गुरुदत्तं गृहीत्वा च प्रददौ मस्तकोपरि ।
घृतं ददर्श माध्वीकं रजतं काञ्चनं दधि ।।९

चन्दनं लेपनं कृत्वा पुष्पमालां गले ददौ ।
गुरुवर्गं ब्राह्मणञ्च वन्दयामास भक्तितः ॥१०

शंखध्वनिं वेदपाठं सङ्गीतं मङ्गलाष्टकम् ।
विप्राशीर्वचनं रम्यं शुश्राव परमादरम् ॥११

ध्यात्वा मङ्गलरूपञ्च सर्वत्र मंगलप्रदम्
चिक्षेप दक्षिणं पादं सुन्दरं स्वात्मविग्रहम् ॥१२

विधृत्य नासिकां वामभागं मध्यमयाविभुः ।
विसृज्यवायुं सम्पूर्णं नासादक्षिणरन्ध्रतः ॥१३

ततो ययौ नन्दनन्दो नन्दस्य प्रांगणं वरम्
सानन्दः परमानन्दो नित्यानन्दः सनातनः ॥१४

उनके समक्ष में पति पुत्र वाली सौभाग्यवती नारी—दीप–दर्पण थे तथा दूर्वाकाण्ड—सुस्निग्ध पुष्प—धान्य जो सित और शुभ था । इनको गुरु ने दिया और मस्तक पर श्रीकृष्ण ने धारण किया । घृत—माध्वीक–रजत—काञ्चन और दधि का दर्शन किया ॥८-९॥ इसके अनन्तर श्री कृष्ण ने चन्दन का लेपन किया और पुष्पों की माला को गले में पहिना फिर भक्ति भाव से गुरु वर्ग तथा ब्राह्मणों की वन्दना की ॥१०॥ श्रीकृष्ण ने शङ्ख की ध्वनि—वेदों का पाठ–सङ्गीत—मङ्गलाष्टक और विप्रों के द्वारा दिया हुआ परम रम्य आशीर्वाद के वचनों को बहुत आदर के साथ श्रवण किया ॥११॥ फिर मङ्गल के प्रदान करने वाले सर्वद मङ्गल रूप का ध्यान किया । इसके पश्चात् स्वात्म विग्रह सुन्दर दक्षिण पाद का क्षेप किया ॥१२॥ श्रीकृष्ण विभु ने नासिका के वाम भाग से मध्यमा अंगुली से विधृत करके नासिका के दक्षिण छिद्र से सम्पूर्ण वायु का विसर्जन किया ॥१३॥ इसके बाद नन्द नन्दन नन्द के श्रेष्ठ प्राङ्गण में गये । श्री कृष्ण उस समय बहुत ही आनन्द से युक्त तथा परम आनन्द वाले—नित्य ही आनन्द से संयुत—सनातन थे ॥१४॥

नित्योऽनित्यो नित्यबीजस्वरूपो नित्यविग्रहः ।
नित्याङ्गभूतो नित्येशो नित्यकृत्यविशारदः ॥१५

नित्यनूतनरूपञ्च नित्यनूतनयौवनः ।
नित्यनूतनवेशञ्च वयसा नित्यनूतनः ॥१६
नित्यनूतनसम्भाषो यत्प्रेम नित्यनूतनम् ।
नित्यनूतनसम्प्राप्ति सौभाग्यं नित्यनूतनम् ॥१७
सुधारसपरं मिष्टं यद्वाक्यं नित्यनूतनम् ।
नित्यनूतनभक्तञ्च यत्पदं नित्यनूतनम् ॥१८
स्थायं स्थायं प्राङ्गणेऽस्मिन् मायेशो माययायुतः ।
अतीवरम्ये सुस्निग्धो बभूव गमनोन्मुखः ॥१९
रम्भास्तम्भसमूहैश्च रसालपल्लवान्वितैः ।
पट्टसूत्रनिबद्धैश्च सुन्दरैश्च सुसंस्कृते ॥२०
पद्मरागेण खचिते रचिते विश्वकर्मणा ।
कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च चन्दनैश्च सुसंस्कृते ॥२१
तत्र तस्थौ स्वयं कृष्णः सहाक्रूरः सबान्धवः ।
यशोदया समाश्लिष्टो वामपार्श्वेन मायया ॥२२
नन्देनानन्दयुक्तेनाश्लिष्टो दक्षिणपार्श्वतः ।
सम्भाषितो बान्धवैश्च पित्रा मात्रा च चुम्बितः ॥२३

श्रीकृष्ण का स्वरूप नित्य एवं अनित्य है—नित्य बीज रूप और नित्य विग्रह वाला है । यह नित्याङ्गभूत–नित्येश—और नित्य कृत्यों के पण्डित थे ॥१५॥ यह नित्य नवीन रूप वाले–नित्य नूतन यौवन से युक्त—नित्य ही नया वेश रखने वाले और नय से नित्य ही नवीन थे ॥१६॥ यह नित्य ही नवीन सम्भाषण करने वाले—नित्य नया प्रेम से समन्वित—नित्य नूतन सम्प्राप्ति से युक्त और नित्य नवीन सौभाग्य वाले थे ॥१७॥ जिनके वाक्य सुधारस से परिपूर्ण—मिष्ट और नित्य नूतन होते थे । नित्य नूतन भक्तों वाले तथा नित्य नये पद वाले थे ॥१८॥ यह माया के स्वामी माया से युक्त इस नन्द के प्राङ्गण में स्थित हो-होकर जो कि आँगन अतीव रम्य था, गमन के उन्मुख होते हुए सुस्निग्ध हो गये ॥१९॥ इसके अन्तर श्रीकृष्ण रथ में विराजमान हुए जो रथ कदली के स्तम्भों के समूहों से समन्वित था । तथा उसमें आम्र के पल्लव भा संलग्न थे । पट्ट

सूत्रों से वह निवद्ध था जो अत्यन्त सुन्दर थे। इस प्रकार से वह रथ भली भाँति संस्कृत हो रहा था। उसमें पद्मराग मणियाँ जड़ी हुई थीं और वह विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित किया था। यह रथ कस्तूरी कुंकुम और चन्दन से चर्चित था। इसमें अपने बड़े भाई के साथ अक्रूर को लेकर श्रीकृष्ण स्वयं बैठ गये। वहाँ उस समय वाम भाग में माता यशोदा के द्वारा आलिङ्गित किये गये और आनन्द से युक्त नन्द के द्वारा दक्षिण भाग में आश्लिष्ट किये गये ॥२०-२२॥ समस्त बान्धवों के साथ अच्छी तरह से सम्भाषण किया गया और पिता-माता ने उनका चुम्बन किया था ॥२३॥

८७—श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम्।

अथ कृष्णो गुरुं नत्वाःनिर्गम्य शिविरान्मुने।
आरुह्य स्वर्गयानं च शुभां मधुपुरीं ययौ ॥१
विवेश मथुरां रम्यां सहाक्रूरगणैसमम्।
निर्जित्य शक्रनगरीं शोभायुक्तां मनोहराम् ॥२
रत्नश्रेष्ठेन खचितां विश्वकर्मणा।
अमूल्यरत्नकलशै राजितैश्च विराजिताम् ॥३
राजमार्गं शतै रिष्टैर्वेष्टितां रुचिरैर्वरैः।
चन्द्राकारैश्चन्द्रसारैर्मणिभिः परिसंस्कृतैः ॥४
विचित्रैर्मणिसारैश्च वीथीशतविनिर्मितैः।
शोभितैर्वणिजैः श्रेष्ठैःपुण्यवस्तुसमन्वितैः ॥५
सरोवरसहस्रैश्च पारितः परिशोभिताम्।
शुद्धस्फटिकसङ्काशैः पद्मरागविराजितैः ॥६
रत्नलंकारभूषाढ्यैः शोभितां पद्मिनीगणैः।
स्थिरयौवनसंयुक्तैर्निमेषरहितैः परैः ॥७
साक्षतैरूर्ध्ववदनैः कृष्णदर्शनलालसैः।
भ्रूभङ्गलीलालोलैश्च शश्वच्चञ्चललोचनैः ॥८

इस अध्याय में श्रीकृष्ण के मथुरा—गमन का वर्णन किया गया है। नारायण ने कहा—इसके अनन्तर हे मुने! कृष्ण ने गुरु को प्रणाम

करके शिविर से निर्गमन किया और स्वर्ग से आये हुए यान पर समारूढ़ होकर शुभ मथुरापुरी को गये ॥१॥ फिर श्रीकृष्ण ने अक्रूरादिगणों के साथ रम्य मधुपुरी में प्रवेश किया। यह मथुरापुरी अपनी शोभा और मनोहरता से इन्द्र की पुरी को पराजित कराने वाली थी ॥२॥ श्रेष्ठ रत्न जहाँ तहाँ इसमें खचित हो रहे थे और विश्वकर्मा के द्वारा इसकी रचना की गई। यह अति अमूल्य रत्नों के कलशों से जो वहाँ राजित थे, सुशोभित थी ॥३॥ सैकड़ों अभीष्ट राजमार्गों से यह वेष्टित थी जो परम श्रेष्ठ सुन्दर—चन्द्र के आकार वाले और चन्द्रसार परिसंस्कृत मणियों से युक्त थे ॥४॥ विचित्र उत्तम मणियों से सैकड़ों ही वीथियाँ उसमें निर्मित थीं जिनमें परम शोभित—पुण्य वस्तुओं से समन्वित वणिक् संस्थित थे ॥५॥ यह मधुपुरी सहस्रों सरोवरों से चारों ओर परिशोभित थी जिनमें शुद्ध स्फटिक के सदृश पद्मराग मणियाँ लगी हुई थीं ॥६॥ इस पुरी में रत्नों के आभूषणों से समलंकृत पद्मिनीगणों से अत्यन्त शोभा हो रही थी। ये पद्मिनियाँ स्थिर यौवन से संयुत—निमेष रहित (इकटक झाँकती हुई) मस्तक पर कुकुंम से समर्चित—अक्षतों से युक्त ऊपर की ओर मुख किये हुए थीं जिनके चञ्चल नेत्र भ्रूभङ्गलीला से अत्यन्त चंचलता दिखाने वाले और कृष्ण के दर्शन की लालसा से युक्त थे ॥७-८॥

शश्वत्कामसमायुक्तैः पीनश्रोणिपयोधरैः।
कोमलाङ्गैर्मध्यकृपै रतिसारविशारदैः ॥९

रत्ननिर्माणयानानां कोटिभिः परिशोभिताम्।
भूषणैर्भूषिताभिश्च चित्रिताभिश्च चित्रकैः ॥१०

नानाप्रकारश्रीयुक्तां पुष्पोद्यानत्रिकोटिभिः।
नानापुष्पैः पुष्पिताभिर्युक्ताभिर्मधुसूदनैः ॥११

माधुर्यमधुसंयुक्तैर्मधुलुब्धैर्मुदान्वितैः।
माध्वीकमधुमत्तैश्च युक्तैर्मधुकरीचयैः ॥१२

नानाप्रकारदुर्गैश्च दुर्गम्यां वैरिणां गणैः।
रक्षितां रक्षकैः शश्वद्रक्षाशास्त्रविशारदैः ॥१३

त्रिकोटयाट्टालिकाभिश्च संयुक्तां सुमनोहराम् ।
रचिताभिश्चसद्रत्नैर्विचित्रैर्विश्वकर्मणा ॥१४

ये पद्मिनी जाति की मधुपुरी की नारियाँ निरन्तर काम से समायुक्त थीं जिनके श्रोणिभाग और पयोधर पीन थे । इनके अंग अत्यन्त कोमल और मध्य कृष थे । ये रति शास्त्र की परम विदुषियाँ थीं ॥६॥ इस मथुरा में रत्नों द्वारा निर्मित करोड़ों ही यान थे जिनसे इसकी शोभा अत्यधिक हो रही थी । भूषणों से भूषित—विचित्र चित्रों से युक्त थी ॥१०॥ तीन करोड़ पुष्पोद्यानों से अनेक प्रकार की श्री से यह मधुपुरी समन्वित थी । जिनमें नाना भाँति के पुष्पों से युक्त लताओं पर मधुकर गुञ्जार कर रहे थे ॥११॥ उन मधुकरियों के समूह थे जो माधुर्य पूर्ण मधु से सयुक्त—मधु के लुब्ध—माध्वीक मधु से मत्त और आनन्द से युक्त थे ॥१२॥ वह मधुपुरी अनेक दुर्गों से रक्षित और शत्रुओं के द्वारा दुर्गम्य थी । वहां रक्षा करने के शास्त्र के महान् पण्डित रक्षक निरन्तर उस पुरी की रक्षा किया करते कि कोई भी शत्रु प्रवेश न कर सके ॥१३॥ उसमें तीन करोड़ अट्टालिकाऐं बनी हुईं थी जिनसे वह परम मनोहर दिखलाई देती थी । वे अट्टालिकाऐं बहुत बिचित्र सद्रत्नों के द्वारा विश्वकर्मा ने बनाईं थीं ॥१४॥

एवम्भूताञ्च मथुरां दृष्ट्वा कमललोचनः ।
ददर्श पथि कुब्जां तां वृद्धामतिजरातुराम् ॥१५
यान्तीं दण्डसहायेन चातिनम्रां नमद्गलीम् ।
रुक्षितां विकृताकारां बिभ्रतीं चन्दनद्रवम् ॥१६
कस्तूरीकुंकुमाक्तं च स्पृष्टमात्रेण नारद ।
सुगन्धिमकरन्देन गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ॥१७
सा दृष्ट्वासस्मिता वृद्धा श्रीकान्तं शान्तमीश्वरम् ।
श्रीयुक्तं श्रीनिवासं तं श्रीबीजं श्रीनिकेतनम् ॥१८
प्रणम्य सहसामूर्ध्ना भक्तिनम्रा पुटाञ्जलिः ।
प्रददौ चन्दनं तस्य गात्रे श्यामयसुन्दरे ॥१९

गात्रेषु तद्गणाञ्च स्वर्णपात्रकरा वरा।
कृत्वा प्रदक्षिणां कृष्णं प्रणनाम पुनः पुनः ॥२०
श्रीकृष्णदृष्टिमात्रेण श्रीयुक्ता सा बभूव ह।
सहसा श्रीसमा रम्या रुपेण यौवनेन च ॥२१
वह्निशुद्धा सुवसना रत्नभूषणभूषिता।
यथा द्वदशवर्षीया कन्या धन्या मनोहरा ॥२२

कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले श्रीकृष्ण ने इस प्रकार की परम शुशोभित मधुपुरी को देखा था और फिर मार्ग में उस एक कुब्जा को भी देखा था जो अत्यन्त वृद्धा और अति जरा से बहुत ही आतुर थी ॥१५॥ वह एक दण्डे का सहारा लेकर मार्ग में जारही थी। उसकी कमर अत्यन्त झुका हुई थी और नवी हुई वलियों वाली थी। वह कुब्जा रुक्षित तथा विकृत आकृति वाली थी और उसके हाथ में चन्दन द्रव था ॥१६॥ हे नारद! वह चन्दन द्रव कस्तूरी और कुंकुम से स्पृष्ट मात्र से अक्त था तथा सुगन्धि के मकरन्द से गन्ध युक्त एवं परम सुन्दर था ॥१७॥ उस कुब्जा ने परम शान्त ईश्वर श्री कान्त को देखा और वह वृद्धा मुस्कराने लगी थी। उसने श्री युक्त—श्री के निवास स्थल—श्री के बीज स्वरूप और श्री के निकेतन उनको सहसा शिर से प्रणाम किया और भक्ति भाव से विनम्र होती हुई हाथ जोड़कर उनके परम सुन्दर श्याम गात्र मे उस चन्दन द्रव का लेपन किया था ॥१८-१९॥ उनके साथ जो गण थे उनके सबके अङ्गों में भी चन्दन का लेपन किया। उसके हाथ में स्वर्ण का श्रेष्ठ पात्र था उसने कृष्ण को प्रदक्षिणा करके बारम्वार प्रणाम किया था ॥२०॥ श्री कृष्ण की दृष्टि मात्र से ही वह श्री युक्त होगई और तुरन्त ही बह कुब्जा रूप और यौवन से लक्ष्मी के सदृश अत्यन्त रम्य वन गई ॥२१॥ वह्निशुद्ध सुन्दर वस्त्रों वाली तथा रत्नों के भूषणों से समलंकृत वह जैसे कोई बारह वर्ष की कन्या हो उस तरह की धन्य एवं मनोहर होगई थी ॥२२॥

विम्बोष्ठी सस्मिता श्यामा तप्तकांचनसन्निभा।
सुश्रोणी सुदतीबिल्वफलतुल्यपयोधरा ॥२३

श्रीवासस्तां समाश्वास्य ययौ स्थानान्तरं परम् ।
कृतार्थरूपा सा प्रीत्या ययौ पद्मा यथालयम् ॥२४

साददर्श स्वभवनं यथापद्मालयालयम् ।
रत्नशय्याविरचितं सद्रत्नसारनिर्मितम् ॥२५

कर्मणा मनसा वाचा चिन्तयन्ती हरेः पदम् ।
हरेरागमनञ्चापि मुखचन्द्रं मनोहरम् ॥२६

ततो ददर्श श्रीकृष्णो मालाकारं मनोहरम् ।
मालासमूहं बिभ्रन्तं गच्छन्तं राजमन्दिरम् ॥२७

सोऽपि दृष्ट्वा च श्रीकान्त प्रणम्य शिरसाभुवि ।
ददौ माल्यसमूहञ्च कृष्णाय परमात्मने ॥२८

कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा स्वदास्यमतिदुर्लभम् ।
माल्यं गृहीत्वा प्रययौ राजमार्गं वरं वरः ॥२९

वह कुब्जा विम्ब के समान ओष्ठों वाली—मन्दस्मित से युक्त—श्यामा—तप्त काञ्चन के समान वर्ण वाली होगई थी। उसके श्रोणी बहुत सुन्दर थे—दन्तपंक्ति परम रम्य थी और उसके पयोधर विल्व फल के समान परम आकर्षक होगये थे ॥२३॥ श्रीवास कृष्ण ने उसका समाश्वासन किया और वह वहाँ से अन्य सुन्दर स्थान पर चले गये। जैसे पद्मा आलय में हो वैसे ही वह कृतार्थ रूप वाली होकर प्रीति से चली गई ॥२४॥ उसने जाकर अपने भवन को लक्ष्मी के आलय के तुल्य देखा जो रत्नों की शय्या से युक्त एवं उत्तम रत्नों के द्वारा निर्मित किया हुआ था ॥२५॥ वह फिर मन—कर्म और वाणी से हरि के चरणों का ही चिन्तन किया करती थी हरि के वहाँ मनोहर मुख चन्द्र के आगमन का चिन्तन करती रहती थी ॥२६॥ इसके अनन्तर आगे चलकर श्री कृष्ण ने एक मनोहर मालाकार को देखा था जोकि माला के समूहों को लिये हुए राजमन्दिर को जारहा था ॥२७॥ उसने जब श्री कान्त का दर्शन प्राप्त किया तो भूमि में मस्तक टेक कर उनको प्रणाम किया और परमात्मा कृष्ण को मालाऐं समर्पित की थीं ॥२८॥ कृष्ण ने अति दुर्लभ अपने

दास्य यह पद प्राप्त करने का वरदान दिया और मालाऐं ग्रहण कर वह परम श्रेष्ठ प्रभु राजमार्ग में आगे चल दिये ।।२६।।

ततो ददर्श रजकं बिभ्रन्तं वस्त्रपुञ्जकम् ।
अहङ्कृतं बलिष्ठञ्च सततं यौवनोद्धतम् ।।३०
वस्त्रं ययाचे तं कृष्णो विनयेन महामुने ।
स तस्मै न ददौ वस्त्रं तमुवाच च निष्ठुरम् ।।३१
गोरक्षकाणां त्वयोग्यं वस्त्रमेतत् सुदुर्लभम् ।
राजयोग्यञ्च हे मूढ़ हे गोपजनवल्लभ ।।३२
गृहीत्वा गोपकन्याश्च कन्यालोलुपलम्पट ।
यद्विहारः कृतस्तत्र वृन्दारण्येऽप्यराजके ।।३३
न चात्र तादृशं कर्म राज्ञः कंसस्य वर्त्मनि ।
विद्यमानोऽत्र राजेन्द्र शास्ता दुष्टस्य तत्क्षणम् ।।३४
रजकस्य वचः श्रुत्वा जहास मधुसूदनः ।
जहास बलदेवश्च साक्रूरो गोपवर्गकः ।।३५
तं निहत्य चपेटेन जग्राह वस्त्रपुञ्जकम् ।
वस्त्रं संधारयामास श्रीकृष्णः सगणस्तथा ।।३६
रत्नयानेन गोलोकं पार्षदैर्वेष्टितेन च ।
ययौ रजकराजश्च धृत्वा दिव्यकलेवरम् ।।३७
शश्वद्यौवनयुक्तञ्च जरामृत्युहरं वरम् ।
पीतवस्त्रसमायुक्तं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ।।३८
बभूव सोऽपि गोलोके पार्षदेषु च पार्षदः ।
कृष्णस्यागमनं तत्र सस्मार सततं वशी ।।३९
अस्तं गतो दिनकरोऽप्यक्रूरः स्वगृहं ययौ ।
कृष्णस्यानुमतिं प्राप्य कृष्णोऽपि कस्यचिद् गृहम् ।।४०
वैष्णवस्य कुविन्दस्य तस्मिन् न्यस्तधनस्य च ।
सानन्दो नन्दसहितो बलदेवादिभिर्युतः ।।४१
स भक्तः पूजयामास प्रणम्य श्रीनिकेतनम् ।
तस्मै ददौ स्वदास्यञ्च ब्रह्मादिदेव दुर्लभम् ।।४२

इसके उपरान्त एक धोबी को देखा जो वस्त्रों का एक पुंज ले जारहा था ! वह बड़ा अहङ्कार से युक्त—अत्यन्त बल वाला और निरन्तर अपने यौवन के मद से उद्धत हो रहा था ।।३०।। हे महामुने ! श्री कृष्ण ने विनय पूर्वक उससे वस्त्रों की याचना की किन्तु उसने उनको वस्त्र नहीं दिये और उनसे अत्यन्त निष्ठुर वचन कहने लगा ।।३१।। धोबी ने कहा—ये वस्त्र बहुत ही सुदुर्लभ हैं और गायों के चराने वाले ग्वालाओं के योग्य नही हैं । हे गोपजनों के वल्लभ ! हे मूढ़ ! ये वस्त्र राजा के योग्य हैं ।।३२।। आप तो कन्याओं के लोलुप और लम्पट हैं । आप अहर्निश गोपों की कन्याओं को अपने साथ लेकर वहाँ वृन्दावन में आपने विहार किया है जहाँ कोई भी राजा नहीं है।३३। यहाँ पर कंस महाराज के मार्ग में वैसा कर्म नही होसकता है । यहाँ पर तो राजाओं का भी स्वामी दुष्टों को उसी समय शासन करने वाला विद्यमान है ।।३४।। रजक (धोबी) के इस वचन को श्रवण करके कृष्ण उसी समय हँस गये । साथ हो में बलराम और अक्रूर के सहित समस्त गोपों का समूह हँस पड़ा ।।३५।। उसको एक चपेट से मारकर उसके वस्त्रों के पुञ्ज को ले लिया और फिर श्री कृष्ण ने अपने गण वालों के साथ वस्त्रों का धारण किया ।।३६।। वह रजक राज दिव्य कलेवर धारण करके पार्षदों से वेष्टित रत्नों से निर्मित यान के द्वारा गो लोक धाम को चला गया ।।३७।। वह रजक भी फिर निरन्तर यौवन से युक्त—जरा और मृत्यु को हरण करने वाला—परम श्रेष्ठ—पीत वस्त्रों से युक्त—स्मित से संयुत—श्याम के समान सुन्दर गोलोक में पाषदों में एक प्रवर पार्षद गोलोक में जाकर होगया और वहाँ पहुंच कर कृष्ण के आगमन का वह वशी सदा वहाँ स्मरण किया करता ।।३८-३९।। भुवन भास्कर सूर्य देव भी अस्ताचल को गये और अक्रूर भी अपने घर चले गये और कृष्ण की अनुमति प्राप्त करली । फिर कृष्ण भी किसी एक अपने भक्त के घर चले गये ।।४०।। वहाँ परम वैष्णव एक कुविन्द था जो उसमें अपने धन को न्यस्त कर चुका था । श्री कृष्ण नन्द और बलराम आदि के सहित परम आनन्द के साथ वहाँ गये ।।४१।। उस परम भक्त ने श्री निकेतन को प्रणाम करके उनकी पूजा की । श्रीकृष्ण

ने उसको भी अपना दास्य पद प्रदान कर दिया जो ब्रह्मादि को भी देव दुर्लभ पद होता है ॥४२॥

पर्य्यङ्के सुषुपुः सर्वे भुक्त्वा तिष्टान्नमुत्तमम् ।
निद्राञ्च लेभे सा कुब्जा निद्रेशोऽपि ययौ मुदा ॥४३
गत्वा ददर्श कुब्जां तां रत्नतल्पे च निद्रिताम् ।
दासीगणैः परिवृतां सुन्दरीं कमलामिव ॥४४
बोधयामास तां कृष्णो न दासीश्चापि निद्रिताः ।
तामुवाच जगन्नाथो जगन्नाथप्रियां सतीम् ॥४५
त्यज निद्रां महाभागे शृङ्गारं देहि सुन्दरि ।
पुरा शूर्पणखा त्वञ्च भगिनी रावणस्य च ॥४६
तपःप्रभावान्मां कान्तं भज श्रीकृष्णजन्मनि ।
रामजन्मनि मद्धेतोस्त्वया कान्ते तपःकृतम् ॥४७
अधुना सुखसम्भोगं कृत्वा गच्छ ममालयम् ।
सुदुर्लभञ्चगोलोकं जरामृत्युहरं परम् ॥४८

वहाँ सबने उत्तम मिष्ठान्न का भोजन करके पर्यंकों पर शयन किया। कुब्जा उस समय निद्रा को प्राप्त कर चुकी थी किन्तु निद्रा के ईश वहाँ सानन्द पहुँच गये ॥४३॥ वहाँ पहुँच कर भी उन्होंने रत्नों की तल्प (शय्या) पर निद्रित दशा में प्राप्त कुब्जा को देखा जो कि दासी गणों से परिवृत्त कमला के तुल्य परम सुन्दरी थी ॥४४॥ कृष्ण ने उसको वहाँ जगाया और दासियाँ भी निद्रित नहीं हुई थी। जगत के स्वामी ने जगन्नाथ की प्रिया उससे कहा ॥४५॥ भगवान् ने कहा—हे महाभागे ! अब निद्रा का त्याग कर दो। हे सुन्दरि ! अब अपने शृङ्गार को मुझे दो। पहिले जन्म में तुम रावण की बहिन शूर्पणखा थीं ॥४६॥ अपने तपस्या के प्रभाव से अब श्रीकृष्ण के जन्म में मुझको अपना कान्त सेवन करो। राम जन्म में मेरे ही लिये कान्ते ! तपस्या की थी ॥४७॥ इस समय यथेच्छ सुख-पूर्वक सम्भोग करके फिर मेरे आलय में चली जाओ जोकि गो लोक अत्यन्त दुर्लभ स्थान है और वह जरामृत्यु का हरण करने वाला है ॥४८॥

तत्राजगाम तां तन्द्रा कृष्णवक्षःस्थलस्थिताम् ।
बुबुधे न दिवारात्रं स्वर्गं मर्त्यं जलं स्थलम् ।।४९
सुप्रभाता च रजनी बभूव रजनीपतिः ।
पत्युर्व्यतिक्रमेरणैव लज्जयैव मलीमसः ।।५०
अथाजगाम गोलोकात् रथो रत्नविनिर्मितः ।
जगाम तेन तं लोकं धृत्वा दिव्यकलेवरम् ।।५१
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ।
प्रतप्तकाञ्चनभासं नित्यं जन्मादिवर्जितम् ।।५२
सा बभूव च तत्रैव गोपी चन्द्रमुखी मुने ।
गोप्यः कतिविधास्तस्या बभूवः परिचारिकाः ।।५३
भगवानपि तत्रैव क्षणं स्थित्वा स्वमन्दिरम् ।
जगाम यत्र नन्दश्च सानन्दो नन्दनन्दनः ।।५४
अथ कंसो निशायाञ्च निद्रायां भयाविह्वलः ।
ददर्श दुःखदुःस्वप्नमात्मनो मृत्युसूचकम् ।।५५
ददर्श सूर्य्यं भूमिस्थं चतुःखडं नभश्च्युतम् ।
दशखण्डं चन्द्रविम्बं भूमिस्थं खाच्च्युतं मुने ।।५६

उस कुब्जा को वहीं पर श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर स्थित रहने वाली को निद्रा होगई और उस समय उसको दिन–रात्रि, स्वर्ग–मनुष्य लोक, जल और स्थल किसी का भी ज्ञान नहीं रहा ।।४९।। रजनी सुप्रभात वाली होगई और रजनीपति भी पति के व्यतिक्रम से मानों लज्जा से ही मलीन होगया ।।५०।। फिर गोलोक से रत्नों से निर्मित रथ आगया । उस रथ के द्वारा ही वह दिव्य कलेवर धारण करके उस गोलोक को चली गई ।।५१।। उस समय उसका दिव्य कलेवर वह्नि शुद्ध वस्त्र को धारण करने वाला—रत्नों से विरचित भूषणों से भूषित, प्रसप्त सुवर्ण की आभा के समान आभा से युक्त—नित्य और जन्म–मरण आदि से रहित था ।।५२।। हे मुने ! वहाँ पर ही चन्द्र के तुल्य मुख वाली गोपी होगई और कितने ही प्रकार की गोपियाँ वहाँ पर भी परिचारिकाऐं थीं ।।५३।। भगवान् भी वहाँ थोड़ी देर स्थित रहकर वहीं पर चले गये जहाँ सानन्द

नन्द थे ॥५४॥ इसके उपरान्त जब रात्रि होगई तो कंस ने निद्रा में भय से विह्वल होकर अपनी आत्मा की मृत्यु का सूचक अत्यन्त दुःख पूर्ण दुःस्वप्न देखा ॥५५॥ उसने सूर्य को चार खण्डों वाला होकर नभो मण्डल से च्युत हुआ और भूमि पर स्थित देखा। उस कंस ने हे मुने ! इसी भाँति चन्द्रमा को भी आकाश मण्डल से पतित और दश खण्डों वाला भूमि में पड़ा हुआ देखा ॥५६॥

पुरुषान् विकृताकारान् रज्जुहस्तान् दिगम्बरान् ।
विधवां शूद्रपत्नीञ्च नग्नाञ्च छिन्ननासिकाम् ॥५७
हसन्तीं चूर्णतिलकां श्वेतकृष्णोद्ध्वमूर्द्धजाम् ।
खड्गखर्परहस्ताञ्च लोलजिह्वाञ्च बिभ्रतीम् ॥५८
मुण्डमालासमायुक्तां गदर्भं महिषं वृषम् ।
शूकरं भल्लुकं काकं गृध्रं कङ्कञ्च वानरम् ॥५९
विरजं कुक्कुरं नक्रं शृगालं भस्मपुञ्जकम् ।
अस्थिराशिं तालफलं केशं कार्पासमुल्वणम् ॥६०
निर्वाणाङ्गारमुल्काञ्च शवं मर्त्यं चिताश्रितम् ।
कुलालतैलकाराणां चक्रं वक्रं कपर्दकम् ॥६१
श्मशानं दग्धकाष्ठञ्च शुष्ककाष्ठं कुशं तृणम् ।
गच्छन्तञ्च कबन्धञ्च नदन्तं मृतमस्तकम् ॥६२
दग्धस्थानं भस्मयुतं तड़ागं जलवर्जितम् ।
दग्धमत्स्यञ्च लोहञ्च निर्वाणदग्धकाननम् ॥६३

उस कंस ने ऐसे विकृत आकृति वाले भयङ्कर पुरुषों को देखा जिनके हाथों में बाँधने के लिये रज्जु का पाश था और वे बिल्कुल नग्न थे। उसने विधवा एवं नग्न तथा नाक कट जाने वाली शूद्र की पत्नी को स्वप्न में देखा ॥५७॥ उसने उस शूद्रपत्नी को चूर्ण तिलक से युक्त—हँसते हुए—श्वेत और कृष्ण श्रंग के ऊपर को उठे हुए केशों वाली हाथ में खड्ग और खप्पर लिये हुए—चंचल जिह्वा को धारण करने वाली देखा जिसके गले में मुण्डों की माला पड़ी हुई थी—उसने स्वप्न में गधा—भैंसा—वृषभ—शूकर—काक—गिद्ध—कंक और बन्दर को भी देखा ॥५८-५९॥ विरज—

कुत्ता—नक्र—गीदड़ और भस्म का एक बड़ा समूह देखा। हड्डियों का ढेर—ताल के फल—केश और उल्वण कपास को देखा ॥६०॥ निर्वाण अङ्गार-उल्का—शव(मुर्दा)और चिता में स्थित मनुष्य को देखा। कुम्हार और तेलियों का चक्र देखा ॥६१॥ कंस ने स्वप्न में श्मशान—जला हुआ काष्ठ—सूखा काष्ठ—कुश—तृण—मृतमस्तक वाला तथा नाद करने वाला जाता हुआ कबन्ध देखा ॥६२॥ जला हुआ स्थान जो भस्म से रहित तालाब—दग्ध मत्स्य—लोहा—निर्वाण दग्ध वन को देखा ॥६३॥

गलत्कुष्ठञ्च वृषलं नग्नञ्च मुक्तमूर्द्धजम् ।
अतीवरुष्टं विप्रञ्च शपन्तं गुरुमीदृशम् ।
अतीवरुष्टं भिक्षुञ्च योगिनं वैष्णवं नरम् ॥६४

एवं दृष्ट्वा समुत्थाय कथयामास मातरम् ।
पितरं भ्रातरं पत्नीं रुदन्तीं प्रेमविह्वलाम् ॥६५
मञ्चकान् कारयामास स्थापयामास हस्तिनम् ।
मल्लं सैन्यञ्च योद्धारं कारयामास मङ्गलम् ॥६६

सभांच कारयामास पुण्यं स्वस्त्ययनं शिवम् ।
यत्नेन योजयामास योगेयुक्तं पुरोहितम् ॥६७
उवास मंचके रम्ये धृत्वा खड्गं विलक्षणम् ।
रणे नियोजयामास योद्धारं युद्धकोविदम् ॥६८

वासयामास राजेन्द्रान् ब्राह्मणांश्च मुनीश्वरान् ।
ब्राह्मणांश्च सुहृद्वर्गान् धर्मिष्ठान् रणकोविदान् ॥६९

कंस ने स्वप्न में गलित कुष्ठ के रोग वाला—वृषल को जो नग्न था और अपने केशों को खोले हुए देखा तथा अत्यन्त रुष्ट विप्र—शाप देते हुए गुरु—बहुत ही क्रोधित भिक्षु—योगी और वैष्णव नर को देखा ॥६४॥ इस प्रकार के अत्यन्त अशुभ का सूचक स्वप्न देखकर उठ बैठा और उसने इसको अपनी माता-पिता-भाई और प्रेम से विह्वल रुदन करती हुई पत्नी से कहा ॥६५॥ उस कंस ने बड़े-बड़े ऊँचे मंचों की रचना कराई और हाथी को वहाँ स्थापित कर दिया। बड़े-बड़े मल्ल, सेना और

योद्धाओं को नियुक्त कर दिया तथा मङ्गल कराया ॥६६॥ कंस ने सभा की रचना कराई और पुण्य-शिव स्वस्त्ययन की व्यवस्था भी की। वहाँ पर यत्न पूर्वक योग में युक्त पुरोहित को योजित करा दिया ॥६७॥ कंस स्वयं विलक्षण एक खंग धारण करके रम्य मञ्च पर स्थित होगया और रण में युद्ध विद्या के परम दक्ष योधा को नियोजित करा दिया ॥६८॥ कंस ने वहाँ पर राजेन्द्रों को—ब्राह्मणों को—मुनीश्वरों को—धर्मिष्ठ विप्रों को—मित्र वर्गों को और रण के पण्डितों को उन मञ्चों पर बिठा दिया था ॥६९॥

अथाजगाम गोविन्दो रामेण सह नारद ।
महेशस्य धनुर्मध्यं बभञ्ज तत्र लीलया ॥७०
शब्देन तस्य मथुरा वधिरा च बभूव ह ॥७१
विषादं प्राप कंसश्च मुदञ्च देवकीसुतः ।
उपस्थितः सभामध्ये गजमल्लं निहत्य च ॥७२
योगो ददर्श तं देवं परमात्मानमीश्वरम् ।
यथा हृत्पद्ममध्यस्थं तादृशं बहिरेव च ॥७३
राजेन्द्ररूपं राजानः शास्तारं दण्डधारिणम् ।
पिता माता दुग्धमुखं स्तनान्धं बालकं यथा ॥७४
कामिन्यः कोटिकन्दर्पलीलालावण्यधारिणम् ।
कंसश्चकालपुरुषं वैरिणं तस्यबान्धवाः ।
मल्ला मृत्युपदञ्चैव प्राणतुल्यञ्च यादवाः ॥७५
नमस्कृत्य मुनीन् विप्रान् पितरं मातरं गुरुम् ।
जगाम मञ्चकाभ्यासं हस्तेकृत्वासुदर्शनम् ॥७६
दृष्ट्वा भक्तं भक्तबन्धुः कृपया च कृपानिधिः ।
आकृष्य मञ्चकात् कंसं जघान लीलया मुने ॥७७

हे नारद ! इसके अनन्तर उस धनुष मख शाला में बलराम के साथ गोविन्द आ गये। वहाँ पर उनने महेश के धनुष को मध्य भाग में से लीला के ही साथ भग्न कर दिया ॥७०॥ जिस समय महेश के धनुष का भञ्जन किया उससे ऐसी महान् भयङ्कर ध्वनि हुई कि समस्त मथुरा पुरी

बधिर जैसी हो गई ॥७१॥ कंस को बड़ा विषाद हुआ और देवकी नन्दन आनन्द को प्राप्त हुए। फिर वह उस सभा के मध्य में हाथी और मल्ल का हनन करके उपस्थित हो गये ॥७२॥ उस समय जो योगी जन वहाँ पर थे उन्होंने उस देव परमात्मा ईश्वर को ऐसे ही देखा जैसा कि उनके हृदय के मध्य में स्थित कमल में विराजमान था। उन्होंने वही स्वरूप बाहिर भी देखा ॥७३॥ राजा लोगों ने एक राजेन्द्र के स्वरूप वाले शासन करने वाले दण्ड धारी स्वरूप में उनका दर्शन किया। माता—पिता ने श्याम सुन्दर को ऐसे देखा जैसे कोई स्तन पीने वाला दुधमुहाँ छोटा शिशु हो ॥७४॥ जो कामिनी नारियाँ वहाँ पर सभा स्थल में विद्यमान थीं उन्होंने कृष्ण के स्वरूप को करोड़ों कामदेवों के लीला—लावण्य के धारण करने वाला देखा। कंस को श्री कृष्ण का स्वरूप साक्षात् कालरूप दिखाई दिया और उसके बन्धुओं ने एक वैरी के स्वरूप में देखा ॥७५॥ मल्लों ने मृत्यु के स्थान के समान और यादवों ने अपने प्राणों के तुल्य प्रिय स्वरूप में कृष्ण का दर्शन किया। श्री कृष्ण ने मुनियों—विप्रों—माता—पिता और गुरु को प्रणाम करके वह फिर हाथ में सुदर्शनचक्र लेकर उस मच के समीप में गये थे जहाँ कंस स्थित था। भक्तों के बन्धु और कृपा के निधि श्री कृष्ण भक्त को देखकर कृपा कर हे मुने! मंच से कंस को खींच कर उसका हनन लीला ही से कर दिया ॥७६-७७॥

राजा ददर्श विश्वञ्च सर्वं कृष्णमयं परम्।
पुरतो रत्नयानञ्च हीराहारविभूषितम् ॥७८
ययौ विष्णुपदं स्फीतो दिव्यरूपं विधाय च।
तेजो विवेश परमं कृष्णपादाम्बुजे मुने ॥७९
निर्वृत्य तस्य सत्कारं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ।
ददौ राज्यं राजच्छत्रमुग्रसेनाय धीमते ॥८०
स बभूव नृपेन्द्रश्च चन्द्रवंशसमुद्भवः।
विललाप कंसमाता पत्नीवर्गश्च तत्पिता ॥८१

बान्धवा मातृवर्गश्च भगिनी भ्रातृकामिनी
दर्शनं देहि राजेन्द्र समुत्तिष्ठ नृपासने ॥८२
राज्यं रक्ष धनं रक्ष बान्धवं बलमेव च।
क्व यासि बान्धवान् हित्वा त्वमनाथान् महाबल ॥८३

उस समय राजा कंस ने इस समस्त विश्व को परम कृष्ण मय ही देखा और अपने सामने एक रत्न निर्मित यान को देखा जो हीरे और हीरों से विभूषित हो रहा था ॥७८॥ वह फिर दिव्य स्वरूप धारण कर फैल फूटकर विष्णु लोक में चला गया। हे मुने ! वह तेज फिर कृष्ण के चरण कमल में प्रविष्ट हो गया ॥७९॥ इसके उपरान्त उसके सत्कार से निवृत्त हो कर श्री कृष्ण ने ब्राह्मणों को धन का दान दिया। तथा धीमान् उग्रसेन को वहाँ का राजछत्र और राज्य दे दिया ॥८०॥ वह फिर चन्द्र वंश में समुत्पन्न नृपेन्द्र हो गया। कंस की माता और उसकी पत्नियों का समुदाय तथा उनके पिता ने बड़ा विलाप किया ॥८१॥ उस कंस के बान्धव—मातृ वर्ग—भगिनी—भाई की कामिनी विलाप करती हुई कह रहीं थीं कि हे राजेन्द्र ! तुम उठकर हमको अपना दर्शन दो और नृपासन पर विराजमान हो जाओ ॥८२॥ आप अपने राज्य—धन—बान्धवगण और अपनी सेना की रक्षा करो। आप हम सब बान्धवों का त्याग करके हे महाबल ! कहाँ को चले जा रहे हैं। हम सब अब आपके बिना यहाँ अनाथ हैं ॥८३॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तमसंख्यं विश्वमेव च।
सर्वं चराचराधारं यः सृजत्येव लीलया ॥८४
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च दिनेशश्च गणेश्वरः।
मुनीन्द्रवर्गो देवेन्द्रो ध्यायते यमहर्निशम् ॥८५
वेदाः स्तुवन्ति यं कृष्णं स्तौति भीता सरस्वती।
स्तौति यं प्रकृतिर्हृष्टा प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥८६
स्वेच्छामयं निरीहञ्च निर्गुणञ्च निरञ्जनम्।
परात्परतरं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥८७

नित्यं ज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ।
नित्यानन्दञ्चनित्यञ्च नित्यमक्षरविग्रहम् ॥८८

सोऽवतीर्णो हि भगवान् भारावतरणाय च ।
गोपालबालवेशश्च मायेशो मायया प्रभुः ॥८९

स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान् ।
स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च ॥९०

ब्रह्मा से आदि स्तम्ब पर्यन्त असंख्य विश्व हैं। सब का चर और अचर का जो आधार है और जो इस सबका सृजन अपनी सामान्य लीला से ही किया करता है। ब्रह्मा—ईश शेष और धर्म—दिनेश—गणेश्वर—मुनिगण—देवों का स्वामी इन्द्र ये सब जिसका अहर्निश ध्यान किया करते हैं ॥८४-८५॥ समस्त वेद जिस कृष्ण का स्तवन किया करते हैं और सरस्वती देवी भी परम भीत होकर जिसकी स्तुति किया करती है। प्रकृति देवी अति हर्षित होती हुई जिसका स्तवन करती है और प्रकृति से पर और प्राकृत भी है ॥८६॥ जो अपनी ही इच्छा से परिपूर्ण है—बिना ईहा वाला—गुणों से रहित और निरञ्जन है। जो पर से भी पर—ब्रह्म—परमात्मा और ईश्वर हैं ॥८७॥ जो नित्य ही ज्योति के स्वरूप वाला और भक्तों की सुरक्षा के लिये ही शरीर को धारण करने वाला है। जो नित्य ही आनन्दमय—नित्य एवं अक्षर विग्रह वाला है। ॥८८॥ वह साक्षात् भगवान् पूर्ण स्वरूप अवतीर्ण हुआ है और इस वसुन्धरा के भार के हटाने के लिये उस प्रभु ने अवतार लिया है। वह एक गोपाल के बालका वेश धारण किये हुए हैं। वह स्वय माया का अधिपति होते हुए भी माया से ही प्रभु जन्म धारण किये हुए हैं। नित्य ही आनन्द रूप सर्वेश वह जिसका हनन करते हैं उसकी रक्षा करने कौन पुरुष हो सकता है ? और सर्वात्मा वह जिसकी रक्षा किया करते हैं उसके हनन करने वाला भी कोई नहीं है ॥८९-९०॥

इत्येवमुक्त्वा सर्वश्च विरराम महामुने ।
ब्राह्मणान् भोजयामास तेभ्यः सर्वं धनं ददौ ॥९१

भगवानपि सर्वात्मा जगाम पितुरन्तिकम् ।
छित्त्वा च लोहनिगड़ं तयोर्मोक्षं चकारसः ॥९२
ननाम दण्डवद्भूमौ मातरं पितरं तथा ।
तुष्टाव भक्त्या देवेशो भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥९३
पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरुमेव च ।
यो न पुष्णाति पुरुषो यावज्जीवं च सोऽशुचिः ॥९४
सर्वेषामपि पूज्यानां पिता वन्द्यो महान् गुरुः ।
पितुःशतगुणैर्माता गर्भधारणपोषणात् ॥९५
माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी ।
नास्ति मातुः परो बन्धुः सर्वेषांजगतीतले ॥९६
विद्यामन्त्रप्रदः सत्यं मातुः परतोगुरुः ।
न हि तस्मात्परः कोऽपि वन्द्यः पूज्यश्चवेदतः ॥९७
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो बलभद्रो ननाम च ।
माता चकार तौ क्रोड़े पिता च सादरं मुने ॥९८
मिष्टान्नं परमं तौ च भोजयामास सादरम् ।
नन्दञ्च भोजयामास गोपालान्परमादरम् ॥९९
मङ्गलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान् ।
वसुर्वसुसमूहञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥१००

हे महा मुने ! इस प्रकार से यह कहकर सब विरत हो गये। ब्राह्मणों को भोजन कराया और उनको समस्त धन दान कर दिया। ॥९१॥ सबकी आत्मा भगवान् कृष्ण भी अपने पिता के पास चले गये। वहाँ उनके जो लोह के निगड़ (बेड़ियाँ) थे उनके छेदन करके उनने उनका मोक्ष किया ॥९२॥ इसके अनन्तर अपने माता—पिता (देवकी—वसुदेव) के चरणों में दण्ड की भाँति भूमि पड़ कर प्रणाम किया। भक्ति भाव से नम्र कन्धरा करके देवेश ने उन दोनों का स्तवन किया। भगवान् ने कहा—जो पुरुष अपने माता—पिता को—विद्या प्रदान करने वाले तथा मन्त्र प्रदान करने वाले गुरु को पोषण नहीं करता है वह जब तक भी जीवित रहता है अशुचि होता है ॥९३-९४॥ समस्त पूज्यों के

योग्य पुरुषों में पिता अधिक वन्दनीय और महान् गुरु होता है। गर्भ के धारण करने से और पोषण करने के कारण माता पिता से भी सौ गुनी अधिक वन्दनीय होती है ॥९५॥ माता पृथिवी के स्वरूप वाली होती है जो सबके हित की इच्छा रखने वाली होती है। माता के समान कोई भी बन्धु नहीं होता है इस जगती तल में सबमें अधिक हित चाहने वाली वही होती है ॥९६॥ विद्या और मन्त्र के प्रदान करने वाला सचमुच माता से भी परतर गुरु होता है। उससे परतर वेद के अनुसार अन्य कोई भी पूज्य और वन्दनीय नहीं होता है ॥९७॥ इतना कहकर श्री कृष्ण और बलभद्र ने माता—पिता को पुनः प्रणाम किया। हे मुने ! माता और पिता ने बड़े ही आदर पूर्वक उन दोनों को अपनी गोद में बिठा लिया ॥९८ इसके अनन्तर माता—पिता ने उन दोनों को मिष्टान्न का भोजन कराया। इनके अतिरिक्त नन्द तथा गोपालों को भी परम आदर के साथ वसुदेव—देवकी ने भोजन कराया ॥९९॥ मङ्गल कृत्य कराया था और ब्राह्मणों को भोजन कराया। वसुदेव ने ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान में दिया था और बड़ी प्रसन्नता से वह दान किया ॥१००॥

८८—नन्दाय ज्ञानकथनम्

अथकृष्णश्च सानन्दं नन्द तं पितरंबलः ।
बोधयामासशोकार्तं दिव्यैराध्यात्मिकादिभिः ॥१
उच्चै रुदन्त निश्श्रेष्टं पुत्रविच्छेदकातरम् ।
गत्वा तस्मै मुनिश्रेष्ठमित्युवाच जगत्पतिः ॥२
निबोध नन्द सानन्दं त्यज शोकं मुदं लभ ।
ज्ञानं गृहाण मद्दत्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥३
यद्यद्दत्तञ्च शेषाय गणेशायेश्वराय च ।
दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे ॥४
कः कस्य पुत्रः कस्तातः का माता कस्यचित् कुतः ।
आयान्ति यान्ति संसारं परं स्वकृतकर्मणा ॥५
कर्मानुसाराज्जन्तुश्च जायते स्थानभेदतः ।
कर्मणा कोऽपि जन्तुश्च योगीन्द्राणां नृपस्त्रियाम् ॥६

द्विजपत्न्यांक्षत्रियायां वैश्यायांशूद्रयोनिषु ।
तिर्यग्योनिषुकश्चिच्च कश्चित्पश्वादियोनिषु ॥७
ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च ।
देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च ।८

इस अध्याय में नन्द के लिये ज्ञान के कथन का निरूपण किया जाता है । नारायण ने कहा—इसके अनन्तर बलदेव ने और कृष्ण को आनन्द युक्त नन्द को और अपने पिता वसुदेव को जो शोक से आर्त्त हो रहे थे दिव्य आध्यात्मिकादि योगों के द्वारा बोधन कराया ॥१॥ ऊँचे स्वर से रुदन करते हुए—चेष्टा रहित और पुत्र के वियोग से अत्यन्त कातर मुनियों में श्रेष्ठ के पास जाकर जगत्पिति ने उनसे यह कहा ॥२॥ श्री भगवान् ने कहा—हे नन्द ! ज्ञान प्राप्त करो, आनन्द के साथ शोक का त्याग कर दो और हर्ष का लाभ करो । मेरे दिये हुए ज्ञान को ग्रहण करो जो कि पहिले ब्रह्मा के लिये दिया था ॥३॥ जो शेष को दिया था तथा गणेश के लिये और शिव के लिये दिया । पुष्कर में दिनेश—मुनीश और योगीश के लिये जो ज्ञान दिया वही अब मैं आपको दे रहा हूँ ॥४॥ कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता है तथा कौन किसकी माता है । सब जीव इस संसार में अपने ही किये हुए कर्म से आते हैं और यहाँ से चल बसा करते हैं ॥५॥ यह जन्तु अपने कर्म के अनुसार ही स्थान भेद से उत्पन्न हुआ करता है । कोई जन्तु अपने ही कर्म से योगीन्द्रों के यहाँ तथा कोई नृप की स्त्रियों में, ब्राह्मण की पत्नी में, क्षत्रिया में, वैश्या में, शूद्रयोनियों में, तिर्यक् योनियों में और कोई पशु आदि की योनियों में उत्पन्न हुआ करता है ॥६-७॥ यह मेरी ही माया है जिससे सब ही जन्तु विषयों में आनन्द सहित लिपटे रहा करते हैं और देह का जब त्याग करते हैं तो बहुत ही विषाद युक्त हो जाया करते हैं तथा अपने बान्धव के विच्छेद होने पर भी इन्हें बड़ा दुःख हुआ करता है ॥८॥

प्रजाभूमिधनादीनां विच्छेदो मरणाधिकः ।
नित्यं भवति मूढ़श्च न च विद्वान् शुचा यु ॥९

मद्भक्तौ भक्तियुक्तश्च माद्याजी विजितेन्द्रियः ।
मन्मन्त्रोपासकश्चैव मत्सेवानिरतःशुचिः ॥१०
मद्भयाद्वाति वातोऽयं रविर्भाति च नित्यशः ।
भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति ॥११
वह्निर्दहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु ।
बिभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च ॥१२
निराधारश्च वायुश्च वाय्वाधारश्च कच्छपः ।
शेषश्च कच्छपाधारः शेषाधाराश्च पर्वताः ॥१३
तदाधाराश्च पातालाः सप्त एव हि पङ्क्तितः ।
निश्चलञ्च जलं तस्माज्जलस्था च वसुन्धरा ॥१४

प्रजा, भूमि और धन आदि का विच्छेद मरण से भी अधिक प्रतीत हुआ करता है किन्तु यह दुःख नित्य मूढ़ जन्तु को ही होता है किन्तु विद्वान् कभी शोक एवं दुःख से युक्त नहीं हुआ करता है ॥९॥ जो मेरा भक्त होता है, मेरी भक्ति से युक्त होता है, मेरा ही यजन करने वाला तथा इन्द्रियों को जीतने वाला होता है। मेरे मन्त्र की उपासना करने वाला और मेरी ही सेवा में सर्वदा निरत रहने वाला होता है वह शुचि हुआ करता है। उसे कभी शोकादि नहीं होता है ॥१०॥ मेरे ही भय से यह वायु वहन किया करता है और यह रवि भी मेरे ही भय से नित्य प्रकाश दिया करता है। चन्द्र का प्रकाश मेरे भय से होता है और महेन्द्र काल भेद से वर्षा किया करता है ॥११॥ अग्नि दाह किया करता है और मृत्यु जन्तुओं में चरण करता है। वृक्ष समय पर पुष्पों और फलों को उत्पन्न किया करते हैं ॥१२॥ यह वायु तो बिना आधार वाला है किन्तु कच्छप वायु के आधार वाला होता है। शेष कच्छप का आधार लिया करता है और शेष के आधार वाले समस्त पर्वत होते हैं ॥१३॥ उसके आधार वाले सात पाताल पंक्ति से रहा करते हैं। उससे यह जल निश्चल रहता है और जल में ही यह वसुन्धरा स्थित रहा करती है ॥१४॥

सप्तस्वर्गं धराधारं ज्योतिश्चक्रं ग्रहाश्रयम् ।
निराधारश्च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डेभ्यः परोवरः ।।१५
तत्परश्चापि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।
उर्ध्वं निराश्रयश्चापि रत्नसारविनिर्मितः ।१६
सप्तद्वारः सप्तसारः परिखासप्तसंयुतः ।
लक्षप्राकारयुक्तश्च नद्या विरजया युतः ।।१७
वेष्टितो रत्नशलेन शतश्रृङ्गेणचारुणा ।
योजनायुतमानञ्च यस्यैकं श्रृंगमुज्ज्वलम् ।।१८
शतकोटियोजनश्च शैल उच्छ्रित एव च ।
दैर्घ्यं तस्य शतगुणं प्रस्थञ्च लक्षयोजनम् ।।१९
योजनायुतविस्तीर्णास्तत्रैव रासमण्डलः ।
अमूल्यरत्ननिर्माणो वर्तुलश्चन्द्रबिम्बवत् ।।२०
पारिजातवनेनैव पुष्पितेन च वेष्टितः ।
कल्पवृक्षसहस्रेण पुष्पोद्यानशतेन च ।।२१
नानाविधैः पुष्पवृक्षैः पुष्पितेन च चारुणा ।
त्रिकोटिरत्नभवनो गोपीलक्षैश्च रक्षितः ।।२२

सात स्वर्ग धरा के आधार वाले हैं तथा ज्योति शुक्रग्रहों के आश्रय से संस्थित रहता है। ब्रह्माण्डों से परोवर वैकुण्ठ निराधारहोता है ।१५। उस वैकुण्ठ से भी ऊपर पचास करोड़ योजन दूर नित्य गो लोक धाम है। वह बिल्कुल बिना आश्रय वाला है तथा रत्नों से जो सार भूत रत्न है उनसे उसका निर्माण हुआ है ।।१६।। यह गो लोक सात द्वारों वाला—सात सारों से समन्वित तथा सात परिखाओं से युक्त है। इसमें एक लक्ष प्रकार हैं और विरजा नाम धारिणी नदी से युक्त है ।।१७।। यह गो लोक धाम सुन्दर सौ श्रृङ्गों वाले रत्नों के शैल से वेष्टित है। इसका दश सहस्र योजन का मान है और जिसका एक उज्वल शिर वट है ।।१८।। यह शैल सौ करोड़ योजन ऊँचा है। उसकी लम्बाई ऊंचाई, से सौ गुनी है तथा इसका प्रस्थ एक लक्ष योजन है ।।१९।। वहाँ पर दश सहस्र योजन विस्तार वाला रास मण्डल है जो अमूल्य रत्नों के द्वारा निर्माण वाला है

और चन्द्रमा के विम्ब की भाँति वर्त्तुल (गोल) आकार वाला है। उसके चारों ओर पारिजातों का वन है जिसमें पुष्प बराबर विकसित रहा करते हैं। वहाँ सहस्रों कल्प वृक्ष हैं जो मनमें समुत्पन्न मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं और सैकड़ों ही पुष्पों के उद्यान बने हुए हैं ॥२०-२१॥ नाना प्रकार के पुष्पों के वृक्षों से युक्त पुष्पित एवं तीन करोड़ रत्नों के भवनों वाला वह रास मण्डल है। उसकी रक्षा एक लक्ष गोपियाँ किया करती हैं ॥२२॥

श्वेतचामरहस्ताभिस्तत्तुल्याभिश्च सर्वतः।
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषिताभिश्च भूषणैः ॥२३
मत्प्राणाधिष्ठातृदेवी देवीनां प्रवरा वरा।
सुदाम्नः सा च शापेन वृषभानसुताऽधुना ॥ २४
शताब्दिको हिविच्छेदोभविष्यतिमयासह ।
तेन भारावतरणं करिष्यामि भुवःपिता॥२५
तदा यास्यामि गोलोकं तया सार्द्धं सुनिश्चितम्।
त्वया यशोदया चापि गोपैर्गोपीभिरेव च ॥२६
वृषभानेनतत्पत्न्या कलावत्या च बान्धवैः।
एवं च नन्दं सानन्दंयशोदां कथयिष्यति ॥२७
त्यज शोकं महाभाग ब्रजैःसार्द्धं व्रजं व्रज।
अहमात्माचसाक्षीच निर्लिप्तः सर्वजीविषु ॥२८

वहाँ रास मण्डल में श्वेत चमर हाथों में लेने वाली और अमूल्य रत्नों के निर्माण करने वाले भूषणों से विभूषित सब प्रकार से राधा के तुल्य गोपियों से युक्त एवं परि सेवित मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवी समस्त देवियों में प्रवर एवं श्रेष्ठ राधा है जो इस समय सुदामा के शाप से वृषभानु की सुता होकर ब्रज में अवतीर्ण हुई हैं ॥२३-२४॥ मेरे साथ उसका एक शताब्दी तक विच्छेद होगा। इससे मैं भू का पिता होकर उसके भार का निराकरण करूंगा ॥२५॥ फिर इसके अनन्तर मैं उसी राधा के साथ में सुनिश्चित रूप से गो लोक में चला जाऊंगा। उस समय तुम—यशोदा और व्रज के सखा गोप एवं गोपियाँ भी मेरे साथ होंगे।

।।२६।। वृषभानु—उसकी पत्नी कलावती तथा उनके वान्धव भी मेरे साथ रहेंगे। इस प्रकार से आनन्द युक्त नन्द और यशोदा को कहेगा ।।२७।। हे महा भाग ! शोक को त्याग दो और अब व्रज वासियों के साथ व्रज में जाओ। मैं तो आत्मा और सबका साक्षी हूँ। मैं समस्त जीवियों में निर्लिप्त हूँ ।।२८।।

जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च इत्येवं सर्वसम्मतम् ।
प्रकृतिर्मद्विकारा च साप्यहं प्रकृतिः स्वयम् ।।२९
यथा दुग्धे च धावल्यं न तयोर्भेद एव च ।
यथा जले तथाशैत्य यथा वह्नौ च दाहिका ।।३०
यथाऽऽकाशे तथा शब्दो भूमौ गन्धोयथा नृप ।
यथाशोभा च चन्द्रेच यथादिनकरे प्रभा ।।३१
यथा जीवस्तथात्मानं तथैव राधया सह ।
त्यज त्वं गोपिकाबुद्धि राधायां मयि पुत्रताम् ।।३२
अहं सर्वस्य प्रभवः साच प्रकृतिरीश्वरी ।
श्रूयतां नन्द सानन्दं मद्विभूतिसुखावहाम् ।।३३
पुरा या कथिता तातब्रह्मणेऽव्यक्तजन्मने ।
कृष्णोऽहंदेवतानाञ्च गोलोके द्विभुजः स्वयम् ।।३४
चतुर्भुजाऽहं वैकुण्ठेशिवलोके शिवः स्वयम् ।
ब्रह्मलोकेचब्रह्माऽहंसूर्य्यस्तेजस्विनामहम् ।।३५
पवित्राणामहं वह्निजलमेव द्रवेषु च ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि समीरः शीघ्रगामिनाम् ।।३६

यह जीव तो मेरा प्रतिबिम्ब स्वरूप है—यही सिद्धा सर्व सम्मत भी है। प्रकृति मेरा ही विकार रूप वाली है और वह प्रकृति भी मैं ही स्वयं हूँ ।।२९।। जिस तरह दुग्ध में धवलता होती है और उन दोनों में कोई भी भेद नहीं होता है जिस प्रकार से जल में शीतलता होती है और वह्नि में दाहिका शक्ति होती तथा आकाश में शब्द होता है एवं भूमि में गन्ध होती है। हे नृप ! जिस तरह चन्द्र में शोभा और दिनकर में प्रभा होती है तथा जिस प्रकार से जीव और आत्मा हैं उसी भाँति मैं राधा के साथ

रहता है। आप राधा में एक सामान्य गोपिका की बुद्धि का तथा मुझमें पुत्र भावना को त्याग देवें ॥३०-३१-३२॥ मैं सबका प्रभुंव अर्थात् उत्पत्ति —कारण हूँ और वह राधा साक्षात् ईश्वरी प्रकृति हैं। हे नन्द ! आप आनन्द के साथ मेरी सुख देने वाली विभूति का श्रवण करो ॥३३॥ हे तात ! पहिले अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्मा के लिये जो कही गई थी। मैं देवों का कृष्ण हूँ जो गो लोक में स्वयं दो भुजाओं वाला रहता हूँ ॥३४॥ मैं वैकुण्ठ लोक में चार भुजाओं से युक्त रहता हूँ और शिव लोक में स्वयं ही शिव के स्वरूप में विद्यमान रहा करता हूँ। ब्रह्म लोक में ब्रह्मा और तेजस्वियों में मैं दिनकर के स्वरूप में रहता हूँ ॥३५॥ पवित्रों में मेरा वह्नि स्वरूप होता हैं तथा द्रवों में जल भी मेरा स्वरूप है। इन्द्रियों में मैं इन्द्रियों का राजा मन हूँ तथा शीघ्र गामियों में मैं वायु हूँ ॥३६॥

यमोऽहं दण्डकर्तृणां कालः कलयतामहम् ।
अक्षराणामकारोऽस्ति साम्नाञ्च साम एव च ॥५५
इन्द्रश्चतुर्दशेन्द्रषु कुबेरो धनिनामहम् ।
ईशानोऽहं दिगीशानां व्यापकानां नभस्तथा ॥३८
सर्वान्तरात्मा जीवेषु ब्राह्मणश्चाश्रमेषु च ।
धनानाञ्च रत्नमहममूल्यं सर्वदुर्लभम् ॥३९
तैजसानां सुवर्णोऽहं मणीनां कौस्तुभः स्वयम् ।
शालग्रामस्तथार्च्यानां पत्राणां तुलसीति च ॥४०
पुष्पाणां पारिजातोऽहं तीर्थानां पुष्करः स्वयम् ।
वैष्णवानां कुमारोऽहं योगीन्द्राणां गणेश्वरः ॥४१
सेनापतीनां स्कन्दोऽहं लक्ष्मणोऽहं धनुष्मताम् ।
राजेन्द्राणाञ्च रामोऽहं नक्षत्राणामहं शशी ॥४२
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनामस्मि माधवः ।
वारेष्वादित्यवारोऽहंतिथिष्वेकादशीतिव । ४३
सहिष्णुनाञ्च पृथिवी माताहं बान्धवेषु च ।
अमृतं भक्ष्यवस्तूनां गव्येष्वाज्यमहं तथा ॥४४

कल्पवृक्षश्च वृक्षाणां सुरभी कामधेनुषु ।
गंगाऽहं सरितां मध्ये कृतपापविनाशिनी ॥४५

दण्ड करने वालों में मैं यमराज हूँ और कलपन करने वालों में काल मेरा ही एक स्वरूप है । अक्षरों में अकार मेरा रूप है और सामों में साम वेद मेरा स्वरूप होता है ॥३७॥ चौदह इन्द्रों में मैं इन्द्र हूँ तथा धनियों में मैं कुवेर हूँ । दिगीशों में ईशान मेरा ही स्वरूप है तथा व्यापक पदार्थों में मैं नभ हूँ ॥३८॥ जीवों में सबका अन्तरात्मा हूँ तथा आश्रमों में ब्राह्मण का आश्रम मेरा ही साक्षात् स्वरूप है । धनों में मैं रत्न हूँ जो सबको दुर्लभ एवं अमूल्य होता है ॥३९॥ तैजस पदार्थों में मैं सुवर्ण हूँ तथा मणियों में कौस्तुभमणि मेरा एक रूप होता है । जो अर्चना करने के योग्य हैं उनमें मेरा शालग्राम स्वरूप होता है और पत्रों में तुलसी दल मेरा ही रूप है ॥४०॥ वैष्णवों में कुमार तथा योगीन्द्रों में मैं गणेश्वर हूँ । सेनापतियों में स्कन्द और धनुष धारियों में मैं लक्ष्मण हूँ । राजेन्द्रों में राम मेरा साक्षात् स्वरूप है तथा नक्षत्रों में मैं चन्द्र हूँ ॥४१-४२॥ मासों में मैं मार्ग शीर्ष हूँ और ऋतुओं में माधव वसन्त मेरा ही स्वरूप है । वारों में आदित्य वार मैं हूँ तथा तिथियों में एकादशी हूँ ॥४३॥ सहन शीलों में पृथ्वी मेरा स्वरूप है तथा बान्धवों में माता के रूप में मैं ही रहा करता हूँ । भक्षण करने के योग्य वस्तुओं में मैं अमृत हूँ और गव्यों में घृत मेरा ही स्वरूप होता है । कल्प वृक्ष वृक्षों में मेरा स्वरूप है तथा कामधेनुओं में सुरभी मेरा रूप होता है । नदियों में गंगा मैं हूँ जो कि समस्त पापों के विनाश करने वाली है ॥४४-४५॥

वाणीति पण्डितानाञ्च मन्त्राणां प्रणवस्तथा ।
विद्यासु बीजरूपोऽहं शस्यानां धान्यमेव च ॥४६
अश्वत्थ. फलिनामेव गुरूणां मन्त्रदः स्वयम् ।
कश्यपश्च प्रजेशानां गरुड़:पक्षिणां तथा ॥४७
अनन्तोऽहञ्च नागानां नराणाञ्च नराधिपः ।
ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं देवर्षीणाञ्च नारदः ॥४८

राजर्षीणांच जनको महर्षीणाञ्च शुकस्तथा ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिला मुनिः ॥४९

पण्डितों में वाणी—मन्त्रों में प्रणव—विद्याओं में बीज का स्वरूप और शस्यों में धान्य मेरा ही स्वरूप होता है ॥४६॥ फल देने वालों में पीपल और गुरुओं में मन्त्र की दीक्षा देने वाला स्वयं मैं हूँ। प्रजेशों में मैं कश्यप—पक्षियों में गरुड़ तथा नागों में अनन्त मेरा ही स्वरूप है एवं नरों में नराधिप मैं ही हूँ। ब्रह्मर्षियों में मैं भृगु हूँ और देवर्षियों में नारद मेरा ही स्वरूप है ॥४६-४८॥ राजर्षियों में जनक तथा महर्षियों में शुक—गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि मेरा ही स्वरूप होता है ॥४९॥

बृहस्पतिर्बुद्धिमतां कवीनां शुक्र एव च ।
ग्रहाणांच शनिरहं विश्वकर्मा च शिल्पिनाम् ॥५०
मृगाणांच मृगेन्द्रोऽहं वृषाणां शिववाहनम् ।
ऐरावतो गजेन्द्राणां गायत्री छन्दसामहम् ॥५१
वेदाश्च सर्वशास्त्राणां वरुणो यादसामहम् ।
उर्वश्यप्सरसामेव समुद्राणां जलार्णवः ॥५२
सुमेरुः पर्वतानांच रत्नवत्सु हिमालयः ।
दुर्गा च प्रकृतीनांच देवीनां कमलालया ॥५३
शतरूपा च नारीणां मत्प्रियाणांच राधिका ।
साध्वीनामपि सावित्री वेदमाता च निश्चितम् ॥५४
प्रह्लादश्चापि दैत्यानां बलिष्ठानां बलिः स्वयम् ।
नारायणर्षिर्भगवान् ज्ञानिनांमध्य एव च ॥५५
हनूमान् वानराणांच पाण्डवानां धनंजयः ।
मनसा नागकन्यानां वसूनां द्रोण एव च ॥५६

बुद्धिमानों में वृहस्पति मैं हूँ तथा कवियों में शुक्र मेरा स्वरूप है। ग्रहों में शनि और शिल्प ज्ञाताओं में विश्व कर्मा मेरा रूप समझना चाहिए ॥५०॥ मृगों में मृगेन्द्र सिंह मैं हूँ तथा वृषों में शिव का वाहन वृष मेरा स्वरूप होता है। गजेन्द्रों ऐरावत नाम धारी मैं हूँ तथा छन्दों में 'गायत्री'

मेरा रूप है ॥५१॥ सम्पूर्ण शास्त्रों में वेद मेरे ही रूप हैं एवं यादवों में वरुड़ मैं हूँ। अप्सराओं में उर्वसी तथा समुद्रों में जलार्णव मेरा स्वरूप होता है ॥५२॥ पर्वतों में सुमेरु पर्वत मेरा स्वरूप है तथा रत्नवानों में हिमालय मैं हूँ। प्रकृतियों में दुर्गा तथा देवियों में लक्ष्मी मेरा स्वरूप होता है ॥५३॥ नारियों में शतरूपा एवं मेरी प्रियाओं में राधिका मेरा ही साक्षात् स्वरूप समझना चाहिए। साध्वियों में सावित्री निश्चित वेदों की जानकी मेरा ही स्वरूप है ॥५४॥ दैत्यों में प्रह्लाद और वलिष्टों में स्वयं वलि एवं ज्ञानियों के विषय में भगवान् नारायण ऋषि मैं ही हूँ ॥५५॥ वानरों में सुमान् और पाण्डवों में धनञ्जय—नाग कन्याओं में मनसा तथा वसुओं में द्रोण मेरा ही स्वरूप है ॥५६॥

द्रोणो जलधराणांच वर्षाणां भारतं तथा।
कामिनां कामदेवोऽहं रम्भा च कामुकीषुच ॥५७
गोलोकश्चास्मि लोकानामुत्तमः सर्वतः परः।
मातृकासु शान्तिरहं रतिश्च सुन्दरीषु च ॥५८
धर्मोऽहं साक्षिणां मध्ये सन्ध्या च वासरेषु च।
देवेष्वहंच माहेन्द्रो राक्षसेषु विभीषणः ॥५९
कालाग्निरुद्रो रुद्राणां संहारो भैरवेषु च।
शंखेषु पांचजन्योऽहं अङ्गेष्वपि च मस्तकः ॥६०
परं पुराणसूत्रेषु चाहं भागवतं वरम्।
भारतं चेतिहासेषु पंचरात्रेषु कापिलम् ॥६१
स्वायम्भुवो मनुनांच मुनीनां व्यासदेवकः।
स्वधाऽहं पितृपत्नीषु स्वाहा वह्निप्रियासुच ॥६२
यज्ञानां राजसूयोऽहं यज्ञपत्नीषु दक्षिणा।
शस्त्रास्त्रज्ञेषु रामोऽहं जमदग्निसुतो महान् ॥६३

जलधरों में द्रोण—वर्षों में भारत—कामियों कामदेव तथा कामुकियों में रम्भा मेरा रूप होता है ॥५७॥ लोकों में सर्वोत्तम और सब से पर गोलोक धाम है सो वह भी एक मेरा ही स्वरूप है। मातृकाओं में मैं शान्ति हूँ तथा परम सुन्दरियों रति मैं ही हूँ ॥ ५८॥ साक्षियों के मध्य में मैं धर्म

हूं और वासरों में सन्ध्या मेरा स्वरूप होता है। देवों में माहेन्द्र तथा राक्षसों में विभीषण मेरा ही स्वरूप है ॥५६॥ रुद्रों में कालाग्नि रुद्र तथा भैरवों में संहार—शङ्खों में पांचजन्य तथा अङ्गों में मस्तक मेरा स्वरूप है ॥६०॥ पुराण सूत्रों में परमोत्तम एवं श्रेष्ठतम भागवत साक्षात् मेरा ही रूप होता है। इतिहास ग्रन्थों में भारत एवं पंचरात्रों में कापिल पंच रात्र मैं हूँ ॥६१॥ मनुओं में स्वायंभुव मनु और मुनियों में व्यास देव—पितृ पत्नियों में स्वधा एवं अग्नि की प्रियाओं में स्वाहा मेरा रूप समझना चाहिए ॥६२॥ यज्ञों में राज सूय यज्ञ तथा यज्ञपत्नियों में दक्षिणा—शस्त्रास्त्र के ज्ञाताओं में महान् जमग्नि का पुत्र राम मेरा ही स्वरूप है ॥६३॥

अहं च सर्वभूतेषु मयि सव च सन्ततम् ।
यथा वृक्षे फलान्येव फलेषु चांकुरस्तरोः ॥६४
सर्वकारणरूपोऽहं न च मत्कारणं परम् ।
सर्वेशोऽहं न मेऽपीशो ह्यहं कारणकारणम् ॥६५
सर्वेषां सर्वबीजानां प्रवदन्ति मनीषिणः ।
मन्मायामोहितजना मां न जानन्ति पापिनः ॥६६
पापग्रस्तेन दुर्बुद्ध्या विधिना वंचितेन च ।
स्वात्माहं सवजन्तूनां स्वात्माहं नादृतः स्वयम् ॥६७
यत्राहं शक्तयस्तत्र क्षुत्पिपासादयस्तथा ।
गते मयि तथा यान्ति नरदेहे यथानुगाः ॥६८
हे व्रजेश नन्द तात ज्ञानं ज्ञात्वा व्रजं व्रज ।
कथयस्व च तां राधां यशोदां ज्ञानमेव च ॥६९
ज्ञात्वा ज्ञानं व्रजेशश्च जगाम स्वानुगैः सह ।
गत्वा च कथयामास ते द्वे च योषितांवरे ॥७०
ते च सर्वेजहुः शोकं महाज्ञानेन नारद ।
कृष्णो यद्यपि निर्लिप्तो मायेशो मायया रतः ॥७१
यशोदया प्रेरितश्च पुनरागत्य माधवम् ।
तुष्टाव परमानन्दं नन्दश्च नन्दनन्दनम् ॥७२

सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन ब्रह्मणा पुरा ।
पुत्रस्य पुरतः स्थित्वा रुरोद च पुनः पुनः ।।७३

समस्त प्राणियों में मैं विद्यमान रहता हूँ और सम्पूर्ण भूत मुझ में निरन्तर रहा करते हैं। जिस तरह से वृक्ष में फल रहते हैं और फलों में तरु का अंकुर रहा करता है ।।६४। मैं सब का कारण स्वरूप हूँ किन्तु मेरा पर कोई कारण नहीं होता है। मैं सबका ईश हूँ और मेरा कोई भी ईश्वर नहीं है। मैं कारण रूपों का कारण हूँ ।।६५।। मुझको ही सबका तथा सब बीजों का कारण मनीशी लोग बताते हैं। जो मेरी माया से मोहित जन हैं वे पापी मुझको नहीं जानते हैं ।।६६।। पापों के द्वारा ग्रस्त दुष्ट बुद्धि वाला एवं विधि से वंचित के द्वारा समस्त जन्तुओं का स्वात्मा मैं स्वयं समाहृत नहीं किया गया हूँ ।।६७।। जिस स्थान में मैं रहता हूँ वहाँ पर ही शक्तियाँ हैं और क्षुत्पिपासा आदि भी हैं। मेरे चले जाने पर ये समस्त शक्तियाँ नर देह में ऐसे चली जाया करती हैं जैसे अनुचर स्वामी के पीछे चल दिया करते हैं ।।६८।। हे व्रजेश ! हे नन्द ! हे तात ! उस ज्ञान को समझ-बूझ कर अब आप व्रज भूमि में चले जाओ। और वहाँ पहुंच कर इस ज्ञान को माता यशोदा और राधा से भी कह देना ।।६९।। इस तरह से कृष्ण के द्वारा कहे गये ज्ञान को समझकर नन्द व्रजेश अपने अनुगों के साथ वहाँ से चले गये वहाँ जाकर उन दोनों नारियों में श्रेष्ठों से वह ज्ञान दिया ।।७०।। हे नारद ! फिर उन सबने इस महाज्ञान के द्वारा शोक का त्याग कर दिया था। कृष्ण यद्यपि निर्लिप्त थे किन्तु माया के ईश वह माया के साथ रत थे। यशोदा के द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर नन्द फिर वापिस आये और परम नन्द नन्दन माधव की उन्होंने स्तुति की थी ।।७१-७२।। नन्द ने साम वेद में कथित स्तोत्र के द्वारा, जो कि ब्रह्मा ने पहिले किया था, उनका स्तवन किया था और पुत्र के आगे स्थित होकर व्रजेश नन्द बार-बार रुदन करने लगे थे ।।७३।।

८६—भगवन्नन्दसंवादवर्णनम् ।

श्रीकृष्णः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः ।
परमात्मा च परमो भक्तानुग्रहकातरः ।।१

भवो भारावतरणे निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
परात्परस्तु भगवान् ब्रह्मेशशेषवन्दितः ।।२

तुष्टो नन्दस्तवं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः ।
आगच्छन्तं गोकुलाच्च विरहज्वरकातरम् ।।३

गच्छ नन्द व्रजं नन्दा त्यज शोकं भ्रमं भुवि ।
शृणु सत्यं परं ज्ञानं शोकग्रन्थिनिकृन्तनम् ।।४

वायुश्च भूमिराकाशो जलं तेजश्च पंचकम् ।
उक्तः श्रुतिगणैरेतैः पंचभूतैश्च नित्यशः ।।५

सर्वेषांदेहिनां तात देहश्छपांचभौतिकः ।
मिथ्याभ्रमः कृत्रिमश्च स्वप्नवन्माययान्वितः ।।६

देहं गृह्णन्ति सर्वेषां पंचभूतानि नित्यशः ।
माया सङ्केतरूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकम् ।।७

इस अध्याय में भगवान् और नन्द के सम्वाद का वर्णन किया गया है। नारायण ने कहा—श्रीकृष्ण परम आनन्द के स्वरूप और परिपूर्णतम प्रभु हैं। यह परमात्मा और सर्वोपरि तथा भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने में कातरता पूर्वक शीघ्रता करने वाले हैं ।।१।। इस वसुन्धरा के भार को हटाने के लिये ही अवतार धारण करने वाले हैं। यह निर्गुण तथा प्रकृति से भी पर हैं भगवान् पर से भी पर और ब्रह्मा—ईश तथा शेष के द्वारा वन्दित हैं ।।२।। नन्द के स्तवन का श्रवण करके जगत्पति अत्यन्त तुष्ट हुए थे और गोकुल से आये हुए एवं विरह के ज्वर से कातर उस नन्द से भगवान् बोले ।।३।। भगवान् ने कहा—हे नन्द ! व्रज में जाओ, हे नन्द ! शोक का त्याग कर दो। इस भूतल में इस भ्रम को त्याग दो। आप शोक की ग्रन्थि का निकृन्तन करने वाले ज्ञान का श्रवण करो जो सत्य एवं पर है ।।४।। वायु—भूमि—आकाश—जल और पाँचवा तेज है। श्रुति गणों के द्वारा इन पाँच भूतों के द्वारा ही नित्य इस देह की रचना कही गई है ।।५।। हे तात ! समस्त देह धारियों का देह पंच भौतिक होता है। यह मिथ्या भ्रम है—कृत्रिम है और स्वप्न की भाँति माया से अन्वित है ।।६।।

ये पाँच भूत ही नित्य सबके देह को ग्रहण किया करते हैं। यह माया का संकेत रूप और भ्रमात्मक अभिज्ञान है ॥७॥

को वा कस्य सुतस्तात का स्त्री कस्य पतिस्तु वा।
कर्मणा भ्रमणं शश्वत् सर्वेषां भुवि जन्मनि ॥८
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणा च प्रपद्यते ॥९
केषां वा जन्म स्वर्गेषु केषां वा ब्रह्मणो गृहे।
केषां विप्रेषु क्षत्रेषु केषां वा वैश्यशूद्रयोः ॥१०
अतिनीचेषु केषां वा केषां वा कृमिषु विट्सु च।
पशुपक्षिषु केषां वा केषां वा क्षुद्रजन्तुषु ॥११
पुनः पुनर्भ्रमन्त्येव सर्वे तात स्वकर्मणा।
करोति कर्म निर्मूलं मद्भक्तो मत्प्रियः सदा ॥१२
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम्।
पंचविंशत्सहस्राणां युगान्ते निधनं मनोः ॥१३
मनोःसमं महेन्द्रस्य परमायुर्विनिर्मितम्।
चतुर्दशेन्द्रविच्छित्तौ ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥१४

हे तात ! कौन किसका पुत्र है और किसकी कौन स्त्री अथवा कौन किसका पति है? इस भूतल में जन्म लेकर उसमें कर्म के द्वारा ही निरन्तर सबका भ्रमण होता रहता है ॥८॥ कर्म के वश ही यह जन्तु जन्म ग्रहण किया करता है और कर्म के द्वारा सी इसका विलय होता है। यह जन्तु अपने कर्म के ही द्वारा यहाँ संसार में आकर सुख-दुःख-भय और शोक की प्राप्ति किया करता है ॥९॥ कुछ का जन्म स्वर्ग लोक में होता है— कुछ ब्रह्म लोक में जाकर समुत्पन्न होते हैं—कुछ जन्तु क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्रों के घर में उद्भव प्राप्त किया करते हैं ॥१०॥ कुछ जीव अत्यन्त नीच कुल में उत्पन्न होते हैं और कुछ कृमियों में तथा बिट् में जन्म ग्रहण करते हैं। कुछ ऐसे भी जन्तु हैं जो पशु एवं पक्षियों में एवं क्षुद्र योनियों में उत्पन्न होते हैं ॥११॥ इस तरह से हे तात ! ये सब एक बार ही नहीं, बारम्बार भ्रमण करते रहते हैं और कर्म के वश ही उनका जनन-मरण

एवं भ्रमण होता रहता है। जो मेरा भक्त तथा मेरा प्रिय होता है वह ही सदा इस प्रबलतम कर्म को निर्मूल कर दिया करता है ॥१२॥ कृत—त्रेता—द्वापर और कलि ये चार युग होते हैं। पच्चीस हजार युगों के अन्त में एक मनु का समय पूरा होकर उसका निधन होता है ॥१३॥ मनु के समान ही महेन्द्र की परमायु बनाई गई है। जब चौदह इन्द्रों की विच्छित्ति हो जाती है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥१४॥

एवं परिमिता रात्रिः कालविद्भिर्विनिर्मिता ।
एवं परिमिता मासा वर्षंच परिनिश्चितम् ॥१५
ब्रह्मणश्च वर्षशतं परमायू विनिश्चितम् ।
निमेषमात्रं कालोऽयं ब्रह्मणो निधने मम ॥१६
ब्रह्मणादि तृणपर्य्यन्तं सर्वं विश्वे विनिश्चितम् ।
सत्योऽहं परमात्मा च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥१७
मन्मन्त्रोपासकः सत्यो देहं त्यक्त्वा वरासु च ।
यास्यत्येव हि गोलोकं चित्त्वा कर्म पुरातनम् ॥१८
असंख्यब्रह्मणां पाते न भवेत्तस्य पातनम् ।
गृह्णाति नित्यं स्वं देहं जन्ममृत्युजरापहम् ॥१९
न नन्द मम भक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
नित्यं सुदर्शनं तांश्च परिरक्षति सर्वतः ॥२०
भक्तोहि बलवान् भक्तिश्चिन्तितोऽहं न चिन्तितः ।
अहं स्वामी च तस्यैव न मे स्वामी पिता प्रसूः ॥२१

इसी प्रकार से इतने ही परिमाण की काल के वेत्ताओं ने, ब्रह्मा की रात्रि हुआ करती है—ऐसा बताया है। इस तरह से दिनों के मास तथा मासों के वर्ष परि निश्चित होते हैं ॥१५॥ इसी हिसाब वाले सौ वर्षों की ब्रह्मा की आयु निर्मित की गई है। ब्रह्मा अपनी पूर्ण आयु जब समाप्त कर लेता है तब मेरा एक निमेष मात्र समय हुआ करता है ॥१६॥ ब्रह्मा से आदि लेकर तृण पर्यन्त सब इस विश्व में विनिश्चित है। मैं ही भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये विग्रह धारण करने वाला परमात्मा सत्य हूँ ॥१७॥ मेरे मन्त्र की उपासना करने वाला पुरुष भी सत्य होता है जो

धरा में अपने देह का त्याग करके अपने पुरातन कर्मों का छेदन करके नित्य गो लोक धाम में निश्चय ही चला जाता है ॥१८॥ असंख्यों ब्रह्माओं का पतन हो जाने पर भी उस मेरे मन्त्रोपासक भक्त का पतन कभी नहीं होता है। वह तो अपना वहां गो लोक में नित्य देह ग्रहण करता है जो जन्म—मरण और जरा सब का अपहरण करने वाला होता है ॥१६॥ हे नन्द ! जो मेरे भक्त हैं उनका कहीं भो कभो कोई अशुभ नहीं होता है। उनकी रक्षा मेरा नित्य सुदर्शन अस्त्र सब ओर से किया करता है ॥२०॥ मेरा भक्त तो मुझ से भी अधिक बलवान् होता है क्योंकि मुझे सर्वदा उस के योग क्षेम की चिन्ता रहा करती है और वह सदा निश्चिन्त ही रहता है। मैं उसका ही स्वामी हूँ और मेरा स्वामी पिता उत्पन्न करने वाला नहीं होता है ॥२१॥

पुत्रबुद्धि परित्यज्य भज मां ब्रह्मरूपिणम् ।
छित्वा च कर्म निगडं गोलोकं तद् व्रजस्वयम् ॥२२
कथयस्व यशोदांच गोपीं गोपगणं व्रज ।
तैश्च सर्वैर्जनैः शोकं त्यज स्वमन्दिरं व्रज ॥२३
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च संसदि ।
पप्रच्छ पुनरेवं तं नन्दश्चानन्दसंप्लुतः ॥२४
वद सांसारिकं ज्ञानं येन यास्यामि त्वत्पदम् ।
मूढोऽहं परमानन्द श्रुतीनां जनको भवान् ॥२५
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञो भगवान् स्वयम् ।
आह्निकं कथयामास श्रुतिभिनश्रुतंहियत् ॥२६

हे नन्द ! अब आप मुझमें पुत्र की बुद्धि का त्याग करदो, अब तो ब्रह्मस्वरूप वाले मेरा भजन करो। अपने कर्मों के निगड़ (बन्धन) का छेदन करके आप स्वयं गोलोक धाम में चले जाओ ॥२२॥ ब्रज में जाकर माता यशोदा से भी यह ज्ञान कह देना तथा गोपी और गोप गणों को भी यही ज्ञान समझा देना। उन समस्त जनों के सहित शोक का एक दम परित्याग कर दो और अब ब्रज में चले जाओ ॥२३॥ इस प्रकार से इतना कह कर भगवान् उस संसद में विरत होगये थे। फिर नन्द ने आनन्द से

विभोर होकर उनसे इस प्रकार से पूछा था ॥२४॥ नन्द ने कहा—हे भगवान् ! मैं तो मूढ़ हूँ और आप परम आनन्द स्वरूप हैं तथा श्रुतियों के जनक हैं। अब आप मुझको सांसारिक ज्ञान को बतादो जिससे मैं आपके पद को प्राप्त हो जाऊँगा ॥२५॥ श्रवण कर सर्वज्ञ भगवान् ने स्वयं आह्निक बताया था जिसको कि श्रुतियों ने भी कभी नहीं सुना था ॥२६॥

६०—आह्निकवर्णनम् ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि ज्ञानञ्च परमाद्‌भुतम् ।
सुगोपनीयं वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम् ॥१
नित्यञ्च प्रातरुत्थाय रात्रिवासो विहाय च ।
अभीष्टदेवं हृत्पद्मे ब्रह्मरन्ध्रे गुरुं परम् ॥२
विचिन्त्य मनसा प्रातःकृत्यं कृत्वा सुनिश्चितम् ।
स्नानं करोति सुप्राज्ञो निर्मलेषु जलेषु च ॥३
न सङ्कल्पञ्च कुरुते भक्तः कर्मनिकृन्तनः ।
स्नात्वा हरिं स्मरेद् सन्ध्यां कृत्वा यातिगृहं प्रति ॥४
प्रक्षाल्य पादौ प्रविशेन्निधाय धौतवाससी ।
पूजयेत् परमात्मानं मामेव मुक्तिकारणम् ॥५
शालग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमायां जलेऽपि च ।
तथा च विप्रे गवि च गुरुष्वेवाविशेषतः ॥६
घटेऽष्टदलपद्मे च पात्रे चन्दननिर्मिते ।
आवाहनञ्च सर्वत्र शालग्रामे जलेन च ॥७

अब आह्निक का वर्णन किया जाता है। श्री भगवान् ने कहा—हे नन्द आप श्रवण करो। मैं परम अद्‌भुत ज्ञान का वर्णन करता हूँ। यह ज्ञान वेदों में भी अत्यन्त गोपनीय है तथा पुराणों में भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥१॥ नित्य प्रातःकाल में उठकर और रात्रि के वस्त्र का त्याग करके अपने हृदय रूपी पद्म में ब्रह्मरन्ध्र में अपने अभीष्ट देव परम गुरु का मन से विचिन्तन करे। इस सुनिश्चित प्रातः काल में किये जाने वाले कृत्य को समाप्त करके सुप्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह निर्मल जल में स्नान करता है ॥२-३॥ जिस मेरे भक्त ने कर्मों का निकृन्तन कर दिया है वह

कोई उस समय संकल्प नहीं किया करता है। वह तो केवल हरि का स्मरण ही करता रहता है और सन्ध्या करके फिर वह अपने गृह को चला जाया करता है ॥४॥ घर पर पहुंच कर अपने पैरों को धोकर उसमें प्रवेश करना चाहिए। फिर धौत वस्त्र धारण करके मुक्ति के कारण स्वरूप मुझ परमात्मा का ही पूजन करना चाहिए ॥५॥ शालग्राम शिला में—मणि निर्मित मूर्ति में—यन्त्र में—प्रतिमा में—जल में—विप्र में—गौ में और अविशेष रूप से गुरु में—घर में—अष्टदल पद्म में तथा चन्दन निर्मित पात्र में सर्वत्र शालग्राम में और जल में आवाहन करे ॥६-७॥

मन्त्रानुरूपध्यानेन ध्यात्वा मां पूजयेद् व्रती।
षोड़शोपचारद्रव्याणि दद्यान्मूलेन भक्तितः ॥८
श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च।
वीरभानुं शूरभानुं गोपान् पञ्च प्रपूजयेत् ॥९
सुनन्दनन्दकुमुदं पार्षदं मे सुदर्शनम्।
लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां राधां गङ्गां वसुन्धराम् ॥१०
गुरुञ्च तुलसीं शम्भुं कार्त्तिकेयं विनायकम्।
नवग्रहांश्च दिक्पालाद् परितः पूजयेत् सुधीः ॥११
देवषट्कञ्च सम्पूज्य सर्वादौ विघ्नविघ्नतः।
गणेशञ्चदिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥१२
श्रुतौ विनिर्मितान् देवान् मोक्षदान् कर्मकृन्तनान्।
गणेशं विघ्ननाशाय सूर्यं व्याधिविनाशने ॥१३
वह्निप्राप्तिनिमित्तेन शान्तौ शुद्धौ भवेद्ध्रुवम्।
विष्णुं मोक्षनिमित्तेन ज्ञानदानाय्शङ्करम् ॥१४

मन्त्र के अनुरूप ध्यान के द्वारा व्रती को पहिले मेरा ध्यान करके फिर मेरा पूजन करना चाहिए। मूल मन्त्र के द्वारा भक्ति भाव से षोड्श उपचारों को समर्पित करे ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, वीर भानु और शूर भानु इन पाँच गोपों का पूजन करे ॥९॥ फिर सुनन्द—नन्द—कुमुद ये मेरे पार्षद हैं इनका पूजन करे। सुदर्शन—लक्ष्मी—सरस्वती—दुर्गा—राधा—गङ्गा—वसुन्धरा—गुरु—तुलसी—

शम्भु—स्वामि कार्तिकेय—गणेश—नवग्रह और दिक्पालों का सुधी को समर्चन करना चाहिए ॥१०-११॥ छः देवों का भली भाँति पूजन करके सबके आदि में विघ्नों के विघ्न से गणेश का—दिनेश का—वह्नि—विष्णु—शिव—शिवा का पूजन करना चाहिए ॥१२॥ श्रुति विनिर्मित देवों का जो कि मोक्ष देने वाले और कर्मों का निकृन्तन करने वाले हैं यजन करे। विघ्नों के विनाश करने के लिये गणेश और व्याधियों के नाश करने के लिये सूर्य का पूजन करे ॥१३॥ प्राप्ति के निमित्त होने से वह्नि का यजन होता है जो कि शान्त एवं शुद्धि निश्चित रूप से देता है। विष्णु मोक्ष प्राप्त करने के कारण से पूजा के योग्य होते हैं और शङ्कर ज्ञान का दान करने के लिये अवश्य पूजने चाहिए ॥१४॥

बुद्धिमुक्तिनिमित्तेन पार्वती पूजयेत्सुधीः।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा स्वस्तोत्रं कवचं पठेत् ॥१५
गुरुं प्रणम्य संपूज्य तत्पश्चात् प्रणमेत्सुरम्।
कृत्वाह्निकञ्च संपूज्य यथासुखमुदीरितम् ॥१६
समाचरेत् स्वकर्मैतत् वेदोक्तं स्वात्मशुद्धये।
विष्ठां न पश्येत् प्राज्ञश्च व्याधिबीजस्वरूपिणम् ॥१७
मूत्रञ्चव्याधिबीजञ्च परं नरककारणम्।
लिङ्गयोनि पापदुःखव्याधिदारिद्र्यदायिनीम् ॥१८
उरोमुखं स्तनं स्त्रीणां कटाक्षं हास्यमेव च।
विनाशबीजं रूपञ्च विपदां कारणं सदा ॥१९
दिवाभोगञ्च स्वस्त्रीणां स्वलोपं परिवर्जयेत्।
रोगाणां कारणञ्चैव चक्षुषोः कर्णयोस्तथा ॥२०
एकतारञ्चगगनं न पश्येत्तु रुजां भयात्।
देवान् दृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा सप्तधा नारद जपेत् ॥२१
अस्तकाले रविं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम्।
खड्गं समुदितं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम् ॥२२

बुद्धि और मुक्ति की प्राप्ति करने के लिये विद्वान पुरुष को पार्वती का पूजन करना चाहिए। तीन पुष्पों की अञ्जलि देकर अपना स्तोत्र और

कवच का पाठ करे ॥१५॥ गुरु को प्रणाम करके और भली भांति पूजन करके उसके पीछे देव को प्रणाम करना चाहिए। अपना आह्निक करके और यथा सुख उदीरित का पूजन करके फिर अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये वेद में कहा हुआ अपना यह कर्म करना चाहिए। प्राज्ञ पुरुष को व्याधि-बीज के स्वरूप वाली विष्ठा को नहीं देखना चाहिए ॥१६-१७॥ मूत्र भी व्याधि का बीज होता है। यह परम नरक का कारण है। लिङ्ग और योनि पाप—दुःख—व्याधि तथा दरिद्रता के देने वाले होते हैं ॥१८॥ स्त्रियों का उरःस्थल—मुख—स्तन—कटाक्ष और हास्य विनाश के बीज होते हैं और उनका रूप—लावण्य तो सदा ही विपत्तियों का कारण है ॥१९॥ अपनी स्त्रियों का स्वत्व के लोप करने वाला दिन के समय में भोग करना तो परिवर्जित कर देवे। यह नेत्रों के और कानों के रोगों का कारण होता है ॥२०॥ एक ही तारा वाले नभो मण्डल को कभी नहीं देखना चाहिए क्योंकि इससे बहुत से रोगों के होने का भय रहा करता है। यदि कभी देख भी ले तो उसका प्रायश्चित यही है कि देवों का स्मरण एवं दर्शन करे—हरि का स्मरण करे और सात बार नारद का जाप करना चाहिए ॥२१॥ अस्ताचल गामी रवि को तथा चन्द्र को कभी नहीं देखना चाहिए क्योंकि उस समय में इनका देख लेना व्याधि का कारण होता है। खङ्ग—समुदित चन्द्र को भी नहीं देखे—यह भी व्याधि का कारण है ॥२२॥

एकत्रशयनस्थानं भोजनञ्च गतिं तथा।
न कुर्य्यात् पापिना सार्द्धं सर्वं नाशस्य लक्षणम् ॥२३
आलापाद्गात्रसस्पर्शाच्छयनाश्रयभोजनात्।
संवरन्तिध्रुवं पापास्तैलविन्दुरिवाम्भसा ॥२४
हिंस्रजन्तुसमीपंच न गच्छेद्दुःखकारणम्।
खलेन सार्द्धं मिलनं न कुर्य्याच्छोककारणम् ॥२५
देवदेवलविप्राणां वैष्णवाणां तथैव च।
वित्त धनंच न हरेत् सर्वनाशस्य कारणम् ॥२६

स्वदत्तं परदत्तं वा ब्रह्मवित्तं हरेत्तु यः ।
षष्टिवषसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ।।२७

एक ही स्थान में पापी पुरुष के साथ शयन स्थान—भोजन और गमन नहीं करना चाहिए क्योंकि ये सब नाश के लक्षण होते हैं ।।२३।। आलाप करने से—गात्र के संस्पर्श से–शयन से—आश्रय से और भोजन से पाप जल से तेल की विन्दु की भाँति निश्चय ही संचरण किया करते हैं ।।२४।। हिंसक जन्तु के समीप में कभी नहीं जावे क्योंकि वह दुःख का कारण होता है । खल के साथ कभी मिलन नहीं करे क्योंकि यह शोक का कारण है ।।२५।। देव—देवल और विप्रों का तथा वैष्णवों का वित्त और धन कभी हरण नहीं करना चाहिए । यह सर्व नाश कर देने का कारण होता है ।।२६।। अपना दिया हुआ अथवा पर के द्वारा दिया हुआ जो ब्रह्म वित्त है उसका जो कोई हरण करता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा का कृमि उत्पन्न होकर रहा करता है ।।२७।।

या स्त्री मूढ़ा दुराचारा स्वपतिं हरिरूपिणम् ।
न पश्येत्तर्जनं कृत्वा कुम्भीपाके व्रजेद् ध्रुवम् ।।२८
वाक्तर्जनाद्भवेत् काको सिंहासनात् शूकरो भवेत् ।
सर्पो भवति कोपेन दर्पेण गर्दभो भवेत् ।
कुक्कुरी च कुवाक्येनाप्यन्धश्च विषदर्शनात् ।।२९
पतिव्रता च वैकुण्ठं पत्या सह व्रजेद् ध्रुवम् ।
शिवं दुर्गां गणपतिं सूर्य्यं विप्रञ्च वैष्णवम् ।।३०
विष्णुं निन्दति यो मूढ़ो स महारौरवं व्रजेत् ।
पितरं मातरं पुत्रं सतीं भार्यां गुरुं तथा ।।३१
अनाथां भगिनीं कन्यां विनिन्द्य नरकं व्रजेत् ।
विप्रभक्तिविहीनाश्च क्षत्रविट्शूद्रयोनिजाः ।।३२
हरिभक्तिविहीनाश्च पच्यन्ते नरके ध्रुवम् ।
पतिभक्तिविहीनाश्च युवत्यश्च नराधमाः ।।३३
मत्स्यांश्च कामतो दग्ध्वा चोपवास वसेद् द्विजः ।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्य्याद् व्रतं चान्द्रायणञ्चरेत् ।।३४

एकादशीं ये कुर्वन्ति कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
शतजन्मकृतात् पापान् मुच्यतेनात्र संशयः ।।३५
एकादशीदिने भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमाव्रते ।
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपिभुङ्क्ते न संशयः ।।३६

जो स्त्री मूढ़ तथा दुराचार वाली अपने पति को हरि के स्वरूप वाला नहीं देखती है और तर्जना किया करती है वह कुम्भी पाक नाम वाले नरक में निश्चित रूप से जाया करती है ।।२८।। वाणी के द्वारा तर्जन करने से काक,हिंसन करने से शूकर,कोप करने से सर्प और दर्प करने से गधा होता है । कुवाक्य कहने से कूकरी और विष दर्शन से अन्ध होता है ।।२९।। जो पतिव्रता स्त्री होती है वह अपने पति के साथ निश्चय ही वैकुण्ठ लोक को जाती है । जो मूढ़ शिव—दुर्गा—गण पति—सूर्य—विप्र—वैष्णव और विष्णु की निन्दा करता है वह महा रौरव नरक में जाया करता है । पिता—माता—पुत्र—सती भार्या—गुरु—अनाथ—भगिनी और कन्या की जो निन्दा करता है वह भी नरक में जाता है, क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र योनियों में उत्पन्न होने वाले लोग जो विप्र की भक्ति से रहित होते हैं वे निश्चय ही नरक में जाकर दुःख भोगा करते हैं । इसी प्रकार से युवतियाँ जो पति की भक्ति से विहीन होती हैं वे नराधमा नरक गामिनी होती हैं ।।३०-३३।। जो द्विज मत्स्यों को स्वेच्छया दग्ध करके उपवास करता है उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए और चान्द्रायण व्रत का समाचरण करे ।।३४।। जो पुरुष एकादशी को व्रत करते हैं तथा कृष्ण जन्माष्टमी का उपवास करते हैं वे सौ जन्मों के प पों से भी मुक्त हो जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।३५।। जो एकादशो के दिन तथा कृष्ण जन्माष्टमी के व्रत के दिन भोजन कर लेता है वह त्रैलोक्य में उत्पन्न हुए पापों को भोगता है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।।३६।।

आतुरे नियमो न स्यादतिवृद्धे च बालके ।
भक्तस्य द्विगुणंदत्त्वा ब्राह्मणायशुचिभवेत् ।।३७
यो भुङ्क्ते शिवाराज्ञौ च श्रीरामनवमीदिने ।
उपवासे समर्थश्च स महारौरवं व्रजेत् ।।३८

रजस्वलान्नं वेश्यान्नं मन्दिरान्नं व्रजेश्वर।
यो भुङ्क्ते ब्राह्मणो दैवात् विट्भोजी स भवेद् ध्रुवम्॥३९
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्।
राममन्त्रविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥४०
नदीगर्भे च गर्ते च वृक्षमूले जलान्तिके।
देवान्तिके शस्यभूमौ पुरीषं नोत्सृजेद् बुधः॥४१

जो आतुर (रोगी) हो—अत्यन्त वृद्ध हो और बालक हो उसके लिये यह नियम लागू नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति को द्विगुण भक्त ब्राह्मण को देने से शुद्धता हो जाती है॥३७॥ जो शिवरात्रि के दिन और श्रीराम नवमी के दिन उपवास करने में समर्थ होते हुए भी भोजन कर लेता है वह महा रौरव नरक में पतित होता है॥३८॥ हे व्रजेश्वर! जो रजस्वला का वेश्या का तथा मन्दिर का अन्न खाता है वह ब्राह्मण दैव से विट्भोजी निश्चय ही होता है॥३९॥ जो सन्ध्या हीन होता है, वह नित्य ही अशुचि एवं अयोग्य समस्त कर्मों में होता है। ऐसा ब्राह्मण दिन में जो भी कुछ कर्म करता है वह सब फल हीन ही होता है अर्थात् उसे उसका कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता है॥४०॥ राम मन्त्र से विहीन ब्राह्मण नरक में जाता है। बुध को नदी के गर्भ में—वृक्ष के मूल में—जल के समीप में—देव के निकट में और शस्य की भूमि में पुरीष (मल) का त्याग नहीं करना चाहिए॥४१॥

दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसम्भोगं करोति यः।
सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु॥४२
उदिते जगतीनाथे यः कुर्य्याद्दन्तधावनम्।
स पापिष्ठः कथंब्रूते पूजियामि जनार्दनम्॥४३
मृद्भस्मगोशकृत्पिडैस्तथा वालुकयापि वा।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत् कल्पशतंदिवि॥४४
जीवन्मुक्तो भवेद्विप्रो लिङ्गमभ्यर्च येत्तु यः।
शिवपूजाविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥४५

मत्पूजितं प्रियतमं शिवं निन्दन्ति ये नराः ।
पच्यन्ते निरये तावद्यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥४६
सर्वेषु प्रियमात्रेषु ब्राह्मणश्च मम प्रियः ।
ब्राह्मणाच्च प्रिया लक्ष्मीः सततं वक्षसि स्थिता ॥४७
ततोऽधिका प्रिया राधा प्रिया भक्तास्ततोऽधिकाः ।
ततोऽधिकः शङ्करो मे नास्ति मे शङ्करात् प्रियः ॥४८
महादेव महादेव महादेवेति वादिनः ।
पश्चाद्यामि च संतृप्तो नामश्रवणलोभतः ॥४९

जो दिन में तथा दोनों सन्ध्याओं के समय में निद्रा तथा स्त्री के साथ सम्भोग करता है वह सात जन्म पर्यन्त रोगी होता है और सात जन्मों तक दरिद्र भी हुआ करता है ॥४२॥ जगत् के नाथ के (सूर्य के) उदित हो जाने पर जो दन्त धावन करता है वह अधिक पापी है । वह पापिष्ठ कैसे बोलता है कि मैं जनार्दन की पूजा करता हूँ, क्योंकि उसका अधिकारी नहीं रहता है ॥४३॥ मृत्तिका—भस्म—गोवर तथा बालुका से शिव का लिङ्ग बनाकर जो एक बार भी पूजा करता है वह सौ कल्प तक देवलोक में निवास करता है ॥४४॥ जो विप्र शिव की लिंग प्रतिमा को पूजित करता है वह जीवन्मुक्त हो जाता है । शिव की पूजा से रहित ब्राह्मण नरक में जाया करता है ॥४५॥ जो मनुष्य मेरे समर्चित एवं प्रियतम शिव की निन्दा करते हैं वह सौ ब्रह्मा के समय समाप्त होने तक नरक में यातना भोगते हैं ॥४६॥ यों तो मेरे सभी प्रिय हैं किन्तु समस्त प्रिय मात्रों में ब्राह्मण मेरा अधिक प्रिय होता है । ब्राह्मण से अधिक प्रिय मेरी लक्ष्मी है जो निरन्तर मेरे वक्षः स्थल में संस्थित रहा करती है ॥४७॥ उस लक्ष्मी से भी अधिक प्रिय मुझे राधा है और मेरे भक्त मुझे उस राधा से भी अधिक प्रिय होते हैं । उन भक्तों से भी ज्यादा अधिक प्रिय मुझे शङ्कर हैं और शङ्कर से अधिक मेरा अन्य कोई भी प्रिय नहीं होता है ॥४८॥ महादेव—महादेव—हे महादेव—इस प्रकार से बोलने वाले के पीछे २ मैं शिव के सुनाम के श्रवण करने के लोभ से संतृप्त होकर चलता रहता हूँ ॥४६॥

मनो मे भक्तमूले च प्राणा राधात्मिका ध्रुवम् ।
आत्मा मे शङ्करस्थानां शिवः प्राणाधिकश्च यः ॥५०
आद्या नारायणी शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
करोमि च यया सृष्टिं यया ब्रह्मादिदेवताः ॥५१
यया जयति विश्वञ्च यया सृष्टिःप्रजायते ।
यया विना जगन्नास्ति मया दत्ताशिवाय सा ॥५२
दया निद्रा च क्षुत्तृप्तिस्तृष्णा श्रद्धा क्षमा धृतिः ।
तुष्टिः पुष्टिस्तथा शान्तिर्लज्जाधिदेवता हि सा ॥५३
वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका सती ।
मर्त्ये लक्ष्मीश्च क्षीरोदे दक्षकन्या सती च सा ॥५४
सा वाणी सा च सावित्री विद्याधिष्ठातृदेवता ।
वह्नौ सा दाहिका शक्तिः प्रभाशक्तिश्च भास्करे ॥५५
शोभाशक्तिः पूर्णचन्द्रे जले शक्तिश्च शीतता ।
शस्यप्रसूता शक्तिश्चधारणाचधरासु सा ॥५६
ब्राह्मण्यशक्तिर्विप्रेषु देवशक्तिः सुरेषु सा ।
तपस्विनां तपस्या सा गृहिणां गृहदेवता ॥५७
मुक्तिशक्तिश्च मुक्तानामाशा सांसारिकस्य सा ।
मद्भक्तानां भक्तिशक्तिर्मयि भक्तिप्रदा सदा ॥५८

भक्त के मूल में मेरा मन रहा करता है। निश्चय ही मेरे प्राण राधात्मक होते हैं अर्थात् राधिका मेरे प्राणों के ही स्वरूप वाली होती है। जिनके हृदय में शङ्कर की भक्ति है और जिनको शिव प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है वे ही मेरी आत्मा हैं ॥५०॥ नारायणी शक्ति सबसे आद्य शक्ति है जो सृष्टि—स्थिति और अन्त के करने वाली होती है। मैं उसके द्वारा ही सृष्टि करता हूँ और ब्रह्मा आदि देवों की रचना किया करता हूँ ॥५१॥ वह शक्ति मैंने शिव को देदी है जिसके द्वारा विश्व की जय होती है और जिससे सृष्टि समुत्पन्न होती है और जिसके बिना यह जगत् नहीं होता है ॥५२॥ वही शक्ति दया—निद्रा—क्षुधा—तृप्ति—तृष्णा—श्रद्धा—धृति—तुष्टि—पुष्टि और शान्ति इनकी अधिष्ठात्री देवी

होती है ॥५३॥ वही शक्ति वैकुण्ठ में महालक्ष्मी है, गोलोक धाम में सती राधिका है, मर्त्य लोक में लक्ष्मी है तथा क्षीर सागर में दक्ष की कन्या सती है ॥५४॥ वही सरस्वती है—वही सावित्री है—वही विद्या की अधिष्ठात्री देवी है—वह्नि में वह दाहिका शक्ति है और प्रभाकर में वही प्रभा शक्ति है ॥५५॥ पूर्ण चन्द्रमा में वही शोभा शक्ति है और जल में शीतलता की शक्ति है। वह ही शस्य में प्रसूता शक्ति है और धारा में धारण शक्ति होती है ॥५६॥ वह ही विप्रों में ब्राह्मण्य शक्ति होती है और सुरों में वही देव शक्ति है। तपस्वियों में वही तपस्या है और गृहियों में गृह देवता भी वही होती है ॥५७॥ मुक्त जनों में वही मुक्त शक्ति होती है और सांसारिक पुरुष में वह ही आशा होती है तथा मेरे भक्तों में वही भक्ति के रूप में रहा करती है जो मुझ में सदा भक्ति प्रदा होती है ॥५८॥

८१—आध्यात्मिकज्ञानवर्णनम्

श्रीकृष्ण जगतां नाथ सुखस्वप्नश्च श्रुतोमया।
वेदसारो नीतिसारो लौकिको वैदिकस्तथा ॥१
अधुना श्रोतुमिच्छामि पापं तेषाञ्चदर्शने।
यस्मिन् कर्मणिवा वत्सतन्मां कथितुमर्हसि ॥२
हे नन्द जनकश्रेष्ठ सर्वश्रेष्ठ व्रजेश्वर।
चेतनं कुरु कल्याण ज्ञानञ्च परमं शृणु ॥३
परमाध्यात्मिकं ज्ञानं ज्ञानिनाञ्च सुदुर्लभम्।
वेद शास्त्रे गोपनीयं तुभ्यमेव ददाम्यहम् ॥४
निबोध श्रूयतां नन्द सानन्दः सुसमाहितः।
जन्ममृत्युजराव्याधि यदभ्यासान्न जायते ॥५
स्थिरो भव महाराज व्रजनाथ व्रजं व्रज।
ज्ञानं लब्ध्वा सदानन्दः शोकमोहविवर्जितः ॥६

इस अध्याय में आध्यात्मिक ज्ञान का वर्णन किया जाता है। नन्द ने कहा—हे जगतों के स्वामी श्रीकृष्ण ! मैंने सुस्वप्न का श्रवण

कर लिया है और वेदों का सार—रीति का सार लौकिक और वैदिक यह सभी सुन लिया है ॥१॥ अब मैं उनके दर्शन में पाप का श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ। हे वत्स ! जिस कर्म में जो होता है। अब आप उसे बताने के योग्य होते हो ॥२॥ भगवान् ने कहा—हे जनक श्रेष्ठ नन्द ! आप तो व्रज के राजा और सब में श्रेष्ठ हैं। चेतना करो और परम कल्याण का ज्ञान सुनो ॥३॥ यह परम आध्यात्मिक ज्ञान है जो ज्ञानियों के लिये भी बड़ा दुर्लभ होता है और यह वेद शास्त्रों में भी गोपनीय है। इसे मैं तुमको ही देता हूँ ॥४॥ हे नन्द ! तुम इसका श्रवण करो और खूब समझ लो। आनन्द के सहित सावधान हो जाओ। यह ऐसा ज्ञान है जिसके अभ्यास से मानव को जन्म—मृत्यु —जरा और व्याधि कुछ भी नहीं होते हैं ॥५॥ हे महाराज ! हे व्रजनाथ ! आप स्थिर हो जावें और व्रज को चले जाओ। पहिले आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति करलो और सर्वदा शोक—मोह से रहित होकर आनन्द स्वरूप हो जाइये ॥६॥

जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारं सचराचरम् ।
प्रभाते स्वप्नवन्मिथ्या मोहकारणमेव च ॥७
मिथ्याकृत्रिमनिर्माणहेतुश्च पाञ्चभौतिकः ।
मायया सत्यबुद्ध्या च प्रतीतिं जायते नरः ॥८
कामक्रोधलोभमोहैर्वेष्टितः सर्वकर्मसु ।
मायया मोहितः शश्वत् ज्ञानहीनश्च दुर्बलः ॥९
निद्रातन्द्राक्षुत्पिपासाक्षमाश्रद्धादयादिभिः ।
लज्जा शान्तिर्धृतिः पुष्टिस्तुष्टिश्चाभिश्च वेष्टितः ॥१०
मनोबुद्धिचेतनाभिः प्राणज्ञानात्मभिः सह ।
संसक्तः सर्वदेवैश्च यथा वृक्षश्च वायसैः ॥११
अहमात्मा च सर्वेशः सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः ।
मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बद्धिरूपा सनातनी ॥१२
प्राणा विष्णुश्चेतना सा पद्मा तु चाधिदेवता ।
मयि स्थिते स्थिताः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि ॥१३

अस्माभिश्च विना देहः सद्यः पततिनिश्चितम् ।
पाञ्चभूतो विलीनश्च पञ्चभूतेषुतत्क्षणम् ॥१४
नाम संकेतरूपञ्च निष्फलं मोहकारणम् ।
शोकश्चाज्ञानिनां तात ज्ञानिनां नास्ति किञ्चन ॥१५

यह समस्त चराचर संसार जल के बुलबुला के तुल्य है । यह प्रातः काल में स्वप्न की भाँति ही मिथ्या होता है और केवल मोह का कारण ही होता है ॥७॥ यह पाञ्चभौतिक देह एवं जगत् मिथ्या कृत्रिम निर्माण का हेतु है जो मेरी माया से ही सत्य बुद्धि की तरह मनुष्य को प्रतीत हुआ करता है ॥८॥ समस्त कर्मों में काम, क्रोध,लोभ और मोह से वेष्टित होता हुआ मानव माया से मोहित रहा करता है क्योंकि वह ज्ञान से हीन और दुर्बल होता है ॥९॥ यह मनुष्य निद्रा—तन्द्रा—क्षुधा—पिपासा—क्षमा—श्रद्धा—दया—लज्जा—शान्ति—धृति पुष्टि और तुष्टि इनसे वेष्टित रहा करता है ॥१०॥ मन—बुद्धि—चेतना—प्राण—ज्ञान और आत्मा के साथ तथा समस्त देवों के साथ यह मानव वायसों के द्वारा वृक्ष की भाँति निरन्तर संसक्त रहा करता है ॥११॥ मैं ही सबका ईश और आत्मा हूँ जो सर्व ज्ञान का स्वरूप होता है—ऐसा कहा गया है । मन ब्रह्मा है—बुद्धि के रूप वाली सनातनी प्रकृति है ॥१२॥ प्राण विष्णु हैं और चेतना अधिष्ठात्री देवी पद्मा है । ये सब मेरे स्थित रहने पर ही स्थित रहा करते हैं और मेरे चले जाने पर वे सब भी चले जाया करते हैं । ॥१३॥ हम सब के बिना मानवों का यह देह तुरन्त ही निश्चत, रूप से पतित हो जाता है अर्थात् गिर जाया करता है । जिन पाँच भूतों से इस देह का निर्माण होता है वे सब अपने स्वरूप में उसी क्षण में मिल कर विलीन हो जाया करते हैं ॥१४॥ यह नाम तो एक सङ्केत का ही स्वरूप होता है, अतः मोह का कारण यह निष्फल ही होता है । जो ज्ञान हीन अज्ञानी पुरुष होते हैं उन्हें ही शोक हुआ करता है और ज्ञान युक्त पुरुषों को यह शोक आदि कुछ भी नहीं होते हैं ॥१५॥

निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः ।
लोभादयोह्यधर्मांशास्तथाहङ्कारएवच मः ॥१६

ते ब्रह्मविष्णुरुद्रांशागुणा:सत्वादयस्त्रय: ।
ज्ञानात्मक:शिवो ज्योतिरहमात्माच्च निर्गुण: ॥१७

यदा विशामि प्रकृतौ तदाहं सगुणः स्मृतः ।
सगुणा विषया विष्णुब्रह्मारुद्रादयस्तथा ॥१८
धर्मोमदंशो विषयी शेष: सूर्य्यः कलानिधिः ।
एवंसर्वे मत्कलांशा मुनिमन्वादय:सुराः ॥१९

सर्वदेहे प्रविष्टोऽहं न लिप्तः सर्वकर्मसु ।
जीवन्मुक्तश्च मद्भक्तो जन्ममृत्युजराहरः ॥२०

सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान् कीर्तिमान् पण्डितः कवि ।
चतुस्त्रिंशद्विधः सिद्धः सर्वकर्मोपहारकः ॥२१

निद्रा आदि जो शक्तियाँ मानव में होती हैं वे सब प्रकृति की ही कलाऐं हैं। लोभ आदि सब अधर्म के अंश होते हैं और पाँचवाँ अहङ्कार भी होता है ॥१६॥ सत्त्व आदि तीन ब्रह्मा विष्णु और रुद्र के अंश होते हैं। ज्ञानात्मक शिव हैं–ज्योति मैं हूँ और आत्मा निर्गुण होता है ॥१७॥ जब मैं प्रकृति में प्रवेश करता हूँ उसी समय मैं सगुण हो जाता हूँ। ब्रह्मा—विष्णु और रुद्र आदि सब सगुण विषय होते हैं ॥१८॥ धर्म मेरा अंश विषय वाला है। शेष—सूर्य—कलानिधि—मुनि और मनु आदि समस्त सुर इस प्रकार से ये सभी मेरी ही कला के अंश होते हैं ॥१९॥ मैं सब के देह में प्रविष्ट रहता हुआ भी समस्त कर्मों में लिप्त नहीं होता हूँ। मेरा भक्त जन्म—मृत्यु और जरा के हरण करने वाला जीवन्मुक्त होता है ॥२०॥ वह मेरा भक्त सर्व सिद्धों का ईश्वर—श्रीमान्—कीर्त्तिमान्—पण्डित—कवि होता है। समस्त कर्मों का उपहारक सिद्ध चौबीस प्रकार का हुआ करता है ॥२१॥

तमुपैमिस्वयं सिद्धं भक्तस्त्वन्यन्नवाञ्छति ।
द्वाविंशतिविधं सिद्धं सिद्धसाधनकारणम् ॥२२
मन्मुखाच्छ्रूयतां वन्द सिद्धमन्त्रं गृहाण च ।
अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा ॥२३

ईशित्वञ्च वशित्वं च तथा कामावसायिता ।
दूरश्रवणमेवेति परकायप्रवेशनम् ॥२४
मनोयायि त्वमेवेति सर्वज्ञत्वमभीप्सितम् ।
वह्निस्तम्भं जलस्तम्भं चिरजीवित्वमेव च ॥२५
कायव्यूहंच वाक्सिद्धि मृतानयनमीप्सितम् ।
सृष्टीनां करणंचैव प्राणाकर्षणमेव च ॥२६
ओं सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहेति
अयं मन्त्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः ।
सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्व सिद्धिदः ॥२७
अनेन योगिनः सिद्धा मुनीन्द्राश्च सुरास्तथा ।
शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्सताम् ॥२८

मैं उस सिद्ध के निकट स्वयं जाता हूँ क्योंकि मेरा भक्त तो और कुछ भी नहीं चाहता है । बाईस प्रकार का सिद्ध होता है जो सिद्ध के साधन का कारण है ॥२२॥ हे नन्द ! मेरे मुख से उसका श्रवण करो और सिद्ध मन्त्र का ग्रहण करो । अणिमा—लघिमा—व्याप्ति—प्राकाम्य महिमा—ईशत्व—वशित्व और कामावसायिता—दूर श्रवण—परकाय प्रवेशन और मनोयायी आप ही हैं—अभीप्सित—सर्वज्ञत्व—वह्निस्तम्भ—जलस्तम्भ-चिरजीवित्व—कायव्यूह—वाक्सिद्धि—ईप्सित—मृतको आनयन—सृष्टियों का करना—और प्राणों का आकर्षण ये बाईस सिद्ध साधन के कारण होते हैं ॥२३-२६॥ सिद्ध मन्त्र का स्वरूप यह है—"ओं सर्वेश्वरेश्वराय सर्व विघ्न विनाशिने मधुसूदनाय स्वाहा"—अर्थात् समस्त ईश्वरों के भी ईश्वर—सम्पूर्ण विघ्नों के विनाश करने वाले मधुसूदन के लिये स्वाहा है अर्थात् समर्पित है । यह मन्त्र महान् गूढ़ है और सबके मनोरथों को सफल करने के लिये कल्प वृक्ष के समान है । इस महामन्त्र को साम वेद में कहा गया है । यह मन्त्र सिद्धों में समस्त प्रकार की सिद्धियों का प्रदान करने वाला है ॥२७॥ इस सिद्ध महा मन्त्र के द्वारा योगी लोग—सिद्ध गण—मुनीन्द्र तथा देवगण इन सब सत्पुरुषों को इसके सौ लाख जप से ही मन्त्र की सिद्धि होती है ॥२८॥

६२—गोकुले उद्धवस्य प्रेषणम् ।

निषेकेन परिष्वङ्गो विभेदस्तेन वा भवेत् ।
क्षणेन दर्शनं तेन निषेकः केन वार्यते ॥१
गमनागमनार्थञ्चाप्युद्धवः कथयिष्यति ।
प्रस्थापयामि तं शीघ्रं विज्ञास्यसि ततः पितः ॥२
यशोदां रोहिणीञ्चैव गोपिका गोपबालकान् ।
प्राणाधिकां राधिकां तां गत्वा सम्बोधयिष्यति ॥३
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसुदेवश्च देवकी ।
बलदेवश्चोद्धवश्च तथाऽक्रूरश्च सत्वरम् ॥४
नन्द त्वं बलवान्ज्ञानी सद्बन्धुश्च सखा मम ।
त्यज्य मोहं गृहं गच्छवत्सस्तेऽयं यथाममं ॥५
द्वारभूता गोकुलाच्च मथुरा नास्ति बान्धवः ।
महोत्सवे सदानन्दे नन्द द्रक्ष्यसि पुत्रकम् ॥६

इस अध्याय में गोकुल में उद्धव के प्रेषण करने का वर्णन किया जाता है। श्री भगवान् ने कहा—निषेक से परिष्वङ्ग होता है अथवा विभेद होता है। क्षण भर के लिये उससे दर्शन होता है। अतः निषेक का किसके द्वारा वारण किया जा सकता है ॥ १ ॥ गमन और आगमन के अर्थ को उद्धव कह देगा। अतः उसको ही वहाँ शीघ्र भेजता हूँ। हे पिता! इस से आप जान लेंगे ॥२॥ यशोदा— रोहिणी— गोपिकाऐं— गोप बालक और मेरे प्राणों से भी अधिक उस राधा को वह जाकर भली-भाँति ज्ञान करा देगा ॥३॥ इसी बीच में वहाँ पर वसुदेव— देवकी— बलदेव— उद्धव और अक्रूर शीघ्र आगये थे। वसुदेव ने कहा—हे नन्द! आप तो बलवान् ज्ञानी, सद्बन्धु और मेरे सखा हैं। आप मोह का त्याग कर देवें और अपने घर जाइये। यह तो जैसा मेरा पुत्र है वैसा ही आपका भी वत्स है। मथुरा तो गोकुल से द्वार भूत ही है। मेरा अन्य कोई बान्धव नहीं है।

महोत्सव में और सदानन्द के समय में हे नन्द ! आप अपने पुत्र को देखते रहेगे ॥४-६॥

यथायमावयोः पुत्रस्तथैव भवतो ध्रुवम् ।
सालसः केन हे नन्द शुचा देहो हि लक्ष्यते ॥७
एकादशाब्दं सबलः स्थित्वा ते मन्दिरे सुखम् ।
कथं स्वल्पदिनेनैव शोकग्रस्तो भविष्यसि ॥८
तिष्ठ पुत्रेण सार्द्धञ्च मथुरायां कियद्दिनम् ।
पूर्णचन्द्राननं पश्य जन्म त्वं सफलं कुरु ॥९
गच्छोद्धव सुखं भद्र भविष्यति तव प्रियम् ।
प्रहर्षं गोकुलं गत्वा यशोदां रोहिणींप्रसूम् ॥१०
गोपबालसमूहञ्च राधिकां गोपिकागणम् ।
प्रबोधयाध्यात्मिकेन मद्दत्तेन च शुच्छिदा ॥११
नन्दतिष्ठतु सानन्दं मन्मातुराज्ञया शुचा ।
नन्दस्थितिं मद्विनयं यशोदां कथयिष्यसि ॥१२
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः पित्रा मात्रा बलेन च ।
अक्रूरेण समं तूर्णं ययावाभ्यन्तरं गृहम् ॥१३
उद्धवो रजनीं स्थित्वा मथुरायाञ्च नारद ।
प्रभाते प्रययौ शीघ्रं रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥१४

देवकी ने कहा—यह कृष्ण जैसा हम दोनों का पुत्र है वैसा ही यह आप दोनों का भी पुत्र है। हे नन्द ! आप का सालस एवं फिर किस चिन्ता से ग्रस्त यह देह दिखलाई दे रहा है ? ॥७॥ ग्यारह वर्ष तक बलराम के सहित आपके मन्दिर में यह सुख पूर्वक स्थित रहा था। अब थोड़े से ही दिन में ही आप इतने शोक ग्रस्त क्यों हो जाओगे ? ॥८॥ आप पुत्र के साथ मथुरा में कुछ दिन तक ठहरिये। इस पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाले पुत्र को देखिये और अपना जन्म सफल करिये ॥९॥ भगवान् ने कहा—हे उद्धव ! आप सुख पूर्वक ब्रज में जाओ। हे भद्र ! आपका वहाँ प्रिय ही होगा। हर्ष पूर्वक गोकुल में जाकर यशोदा—रोहिणी माता—गोपाल बालों का समूह—राधिका और गोपिकाओं का समूह—

को शोक के छेदन करने वाले मेरे दिये हुए आध्यात्मिक ज्ञान से प्रबोधन करो ॥ १०-११ ॥ नन्द मेरी माता देवकी की आज्ञा से आनन्द के साथ यहाँ ठहरें। शोक से नन्द की स्थिति और मेरी विनती आप यशोदा से कह देंगे ॥१२॥ इस प्रकार से यह कहकर श्री कृष्ण पिता—माता—बलराम और—अक्रूर के साथ शीघ्र नन्द के घर में चले गये थे ॥१३॥ हे नारद ! उद्धव उस रात्रि में मथुरा में ठहर कर प्रातःकाल होते ही शीघ्र ही परम रम्य वृन्दावन को चले गये थे ॥१४॥

६३—गोकुलं गत्वा तत् शोभादिदर्शनम् ।

श्रीकृष्णप्रेरितो हृष्टः प्रणम्य च गणेश्वरम् ।
स्मरन्नारायणं शम्भुं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥१
गङ्गाञ्च मनसि ध्यात्वा दिगीशं तं महेश्वरम् ।
प्रजगामोद्धवश्चैव दृष्ट्वा मङ्गलसूचकम् ॥२
शुश्रावदुन्दुभि घण्टा नादं शङ्खध्वनिं तथा ।
हरिशब्दंच संगीतं शुश्राव मङ्गलध्वनिम् ॥३
पतिपुत्रवतीं साध्वीं प्रदीपमाल्यदर्पणम् ।
परिपूर्णतमं कुम्भं दधिलाजफलानि च ॥४
दूर्वांकुरं शुक्लधान्यं रजतं काञ्चनं मधु ।
ब्राह्मणानां समूहंच कृष्णसारं वृषं घृतम् ॥५
सद्यमांसं गजेन्द्रंच नृपेन्द्रं श्वेतघोटकम् ।
पताकां नकुलं चाषं शुक्लपुष्पंच चन्दनम् ॥६
दृष्ट्वैवं पथि कल्याणं प्राप वृन्दावनं वनम् ।
ददर्श पुरतो वृक्षं भाण्डीरवटमक्षयम् ॥७

अब गोकुल जाकर वहाँ की शोभा आदि का दर्शन का वर्णन है—श्री कृष्ण से प्रेरित होकर उद्धव प्रसन्न होता हुआ गणेश्वर को प्रणाम करके तथा नारायण—शम्भु—दुर्गा—लक्ष्मी और सरस्वती का स्मरण किया था ॥१॥ गङ्गा का मन में ध्यान करके और दिगीश महेश्वर की

ध्यान में लाये थे। इसके अनन्तर उद्धव मङ्गल सूचक शकुन देखकर रवाना हो गये थे ॥२॥ उद्धव ने उस प्रस्थान करने के समय में दुन्दुभि और घण्टा का शब्द श्रवण किया था। तथा शङ्ख की ध्वनि—हरि नाम का उच्चारण—सङ्गीत और मङ्गल ध्वनि को सुना था ॥३॥ उद्धव ने अपनी यात्रा के मार्ग में पति और पुत्र वाली सती—साध्वी—प्रदीप—माला—दर्पण—जल से भरा हुआ घट—दधि—लाजा (खील)—फल—दूर्वा के अंकुर—शुक्ल धान्य—रजत (चाँदी)—कांचन—मधु—विप्रों का समूह—काला हिरन—वृष—घृत—ताजा मांस—गजेन्द्र—नृपेन्द्र—सफेद घोड़ा—पताका—न्यौला—चाष—शुक्लपुष्प—चन्दन इन सबको राह में देख कर उद्धव को अत्यन्त कल्याण प्राप्त हुआ था। इसके पश्चात् वह वृन्दावन के निकुञ्ज वन में प्राप्त हो गये थे। सामने ही अक्षय वृक्ष भाण्डीर वट को उद्धव ने देखा था ॥४-७॥

स्निग्धपूर्णं रक्तवर्णं पुण्यदं तीर्थमीप्सितम्।
सुवेषान् बालकांश्चैव रक्तभूषणभूषितम् ॥८

वदतो बलकृष्णेति रुदतश्च शुचान्वितान्।
तानाश्वास्य ययौ दूरं प्रविश्य नगरं मुदा ॥९

ददर्श नन्द शिविरं रचितं विश्वकर्मणा।
मणिरत्नविनिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥१०

परिच्छिन्नं मनोरम्यं सद्रत्नकलशान्वितम्।
द्वारं चित्रं विचित्राढ्यं दृष्ट्वा च प्रविवेश सः ॥११

अवरुह्य रथात्तूर्णं तस्थौ तत्प्राङ्गणे मुदा।
यशोदा रोहिणी शीघ्रं पप्रच्छ कुशलं परम् ॥१२

आसनंच जलं गांच मधुपर्कं ददौ मुदा।
क्व नन्दः क्व बलः कृष्णः सत्यं तत् कथयोद्धव ॥१३

उद्धवः कथयामास सर्वं भद्रं क्रमेण च।
सार्द्धं च बलकृष्णाभ्यां नन्दः सानन्दपूर्वकम् ॥१४

आयास्यति विलम्बेन कृष्णोपनयनावधि ।
युष्माकं कुशलं तत्त्वं विज्ञाय विधिपूर्वकम् ।।१५

स्निग्धता से परिपूर्ण रक्त वर्ण वाला, पुष्प प्रदाता, अपना इच्छित तीर्थ देखा था और वहाँ पर परम सुन्दर वेष वाले रत्नों के आभूषणों से विभूषित बालको को देखा था ।८। वे बालक बलराम और कृष्ण के नाम को पुकाररहे थे तथा शोक से युक्त होकर रुदन कर रहे थे । उद्धव ने उन बालकों को आश्वासन दिया था और फिर वह आनन्द से नगर में प्रविष्ट हुए थे ।।६।। वहाँ गोकुल में नन्द के शिविर का अवलोकन किया था जा कि विश्व कर्मा के द्वारा निर्मित किया गया था । वह शिविर मणि, रत्नों से विरचित किया हुआ था तथा उसमें मुक्ता, माणिक्य और हीरे जड़े हुए थे । वह मन को बहुत ही अधिक रम्य लगने वाला था । उसमें अच्छे रत्नों के कलश लगे हुए थे । उसके द्वार चित्र विचित्र पदार्थों से युक्त थे । इस सबका अवलोकन करते हुए उद्धव ने अन्दर प्रवेशकिया था।।१०-११।। उद्धव अपने रथ से शीघ्र ही अन्दर पहुंच कर उतर पड़े और उस नन्द-भवन के आँगन में संस्थित हो गये थे । वहाँ पर इनको देखते ही यशोदा और रोहिणी आगई थीं । उन्होंने इनसे कुशल पूछा था ।।१२।। फिर इनको आसन, जल, गौ और मधुपर्क उन्होंने प्रसन्नता से समर्पित किया था । फिर इसके अनन्तर उन्होंने पूछा था—हे उद्धव ! यह हमको बिल्कुल सत्य-सत्य बताओ कि इस समय नन्द कहाँ हैं और मेरे परम लाड़िले कृष्ण और बलराम कहाँ पर हैं ? ।।१३।। उद्धव ने संपूर्ण कुशल क्रम से कह सुनाया था कि बलराम और कृष्ण के साथ नन्द आनन्दपूर्वक मथुरा में हैं ।।१४।। नन्द कुछ विलम्ब से यहाँ पर आयेंगे क्योंकि वहाँ श्रीकृष्ण का उपनयन संस्कार होगा उस समय तक वे वहाँ पर ही रहेंगे । मैं आप सबका कुशल-मंगल जानकर विधि पूर्वक वहाँ चला जाऊँगा ।।१५।।

अहं दास्यामि मथुरां यशोदे शृणु साम्प्रतम् ।
श्रुत्वा मङ्गलवार्तां च यशोदा रोहिणी मुदा ।।१६
ब्राह्मणाय ददौ रत्नं सुवर्णं वस्त्रमीप्सितम् ।
उद्धवं भोजयामास मिष्टान्नं च सुधोपमम् ।।१७

मणिश्रेष्ठं च रत्नं च ददौ तस्मै च हीरकम् ।
वाद्यं च वादयामास भद्र नानाविधं तथा ॥१८
ब्राह्मणान् भोजयामास कारयामास मंगलम् ।
वेदांश्च पाठयामास परमान्दपूर्वकम् ॥१९
शङ्करं पूजयामास विप्रद्वारा परं विभुम् ।
नानोपहारैर्नैवेद्यैःपुष्पधूपप्रदीपकैः ॥२०
चन्दनैर्वस्त्रताम्बूलैर्मधुगव्यघृतादिभिः ।
भवानीं पूजयामास श्रीवृन्दारण्यदेवताम् ॥२१

हे यशोदे ! मैं अब मथुरा वापिस जाऊँगा, अतः अब आप मेरा सन्देश सुनलो । यशोदा और रोहिणी दोनों हो ने आनन्द के साथ मंगल वार्त्ता का श्रवण किया था ॥१६॥ ब्राह्मण को रत्न–सुवर्ण और इच्छित वस्त्र का दान दिया तथा उद्धव को अमृत के तुल्य मिष्ठान्न का भोजन कराया था ॥१७॥ यशोदा ने श्रेष्ठ मणि–रत्न और हीरा उद्धव को दिये थे । वाद्यों को बजवाया तथा नाना प्रकार के मङ्गल कृत्य कराये थे ॥१८॥ ब्राह्मणों को भोजन कराया–मङ्गल कार्य किया तथा कराया था और परम आनन्द के साथ वेदों का पाठ कराया था ॥१९॥ शङ्कर भगवान् की पूजा विप्र के द्वारा कराई जो कि परम विभु हैं । अनेक उपहारों से–नैवेद्यों से पुष्प, धूप और दीपों से, चन्दन, वस्त्र ताम्बूल, मधु गव्य और घृतादि से श्री वृन्दारण्य की अधिष्ठात्री देवी भवानी का पूजन कराया था ॥२१॥

समाश्वास्य यशोदां च रोहिणीं गोपबालकान् ।
वृद्धान् गोपालिकाः सर्वाः प्रययू रासमण्डलम् ॥२२
ददर्श रासं रुचिरं चन्द्रमण्डलवर्तुलम् ।
श्रीरामकदलीस्तम्भैः शतकैरुपशोभितम् ॥२३
युक्तैश्च स्निग्धवसनैश्चन्दनानां च पल्लवैः ।
पट्टसूत्रनिबद्धैश्च श्रीयुक्तमाल्यजालकैः ॥२४
दधिलाजफलैः पट्टैः पुष्पैर्दूर्वांकुरैरपि ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमैः परिसंस्कृतम् ॥२५

वेष्टितं रक्षितं यत्नाद्गोपिकानां त्रिकोटिभिः ।
त्रिलक्षैः सुन्दरै रम्यैः संसिक्तं रतिमन्दिरैः ॥२६
लक्षगोपैः परिवृतं कृष्णागमनशङ्कितैः ।
यमुनां दक्षिणां कृत्वा प्रययौ मालतीवनम् ॥२७

उद्धव ने यशोदा, रोहिणी और गोप बालकों को समाश्वासन किया था तथा वृद्धों और गोप बालिकाओं को आश्वासित किया था। फिर सब रासमण्डल में चले गये थे ॥२२॥ वहाँ आम्र और सैकड़ों कदली के स्तम्भों से उप शोभित, परम रम्य, चन्द्रमण्डल के समान गोल आकार वाले रास मण्डल को देखा था ॥२३॥ वह रास मण्डल सुस्निग्ध वसनों से, चन्दनों के पल्लवों से,पद सूत्रों से,श्री युक्त मालाओं के जाल से, दधि, लाजा और फलों से, पट्टों से पुष्पों से दूर्वा के अकुरों से और चन्दन, अगरु, कस्तूरी और कुंकुम से परिसंस्कृत एवं सुशोभित था ॥२४-२५॥ रास मण्डल तीन करोड़ गोपिकाओं से घिरा हुआ तथा यत्न पूर्वक सुर-क्षित था और उसमें परम सुन्दर तीन लाख रति मन्दिर बने हुए थे ॥२६॥ श्री कृष्ण के आगमन से शङ्कित एक लाख गोपों से वह रास मण्डल परिवृत था। इसके पश्चात् यमुना को दक्षिण में करके वह उद्धव मालती वन में गया था ॥२७॥

कृत्वा निर्मञ्छनं शीघ्रमुद्धवं प्रियमागतम् ।
हृष्टाप्रवेशयामास राधाभ्यन्तरमुत्तमम् ॥२८
अमूल्यरत्ननिर्माणं गत्वा मन्दिरमुत्तमम् ।
ददर्श पुरतो राधां कुहूवां चन्द्रकलोपमाम् ॥२९
सुपक्वपद्मनेत्राञ्च शयानां शोकमूर्च्छिताम् ।
रुदन्तीं रक्तवदनां क्लिष्टाञ्च त्यक्त भूषणाम् ॥३०
निश्चेष्टाञ्च निराहारां सुवर्णवर्ण कुण्डलाम् ।
शुष्किताधरकण्ठाञ्च किंचिन्निःश्वाससंयुताम् ॥३१
प्रणनाम च तां दृष्ट्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गा भक्त्या भक्तः स उद्धवः ॥३२

इसके अनन्तर निर्मञ्छन करके राधा ने आये हुए प्रिय उद्धव को परम हर्षित होते हुए शीघ्र ही अति उत्तम अन्दर के भाग में प्रवेश कराया था ॥२८॥ अमूल्य रत्नों के द्वारा निर्माण वाले उत्तम मन्दिर में जाकर उद्धव ने वहाँ सामने चन्द्रकला के तुल्य कुह्वा राधा का दर्शन किया था ॥२९॥ वहाँ राधा का स्वरूप सुपक्व पद्म के समान नेत्रों से युक्त था। वह शयन किये हुए थी और कृष्ण वियोग के शोक से मूच्छित हो रही थी। रोती हुई—रक्त मुख वाली—क्लेश से युक्त और भूषणों का त्याग करने वाली थी। वह चेष्टा से रहित—बिना आहार वाली—सुवर्ण के वर्ण वाले कुण्डलों को धारण करने वाली—सूखे हुए अधर और कण्ठ से समन्वित और कुछ कुछ निःश्वासों से संयुत राधा को देखकर भक्तिभाव विनम्र कन्धरा वाला होकर उसको उद्धव ने प्रणाम किया था स्वयं परम भक्त वह उद्धव भक्ति के उद्रेक के कारण पुलकायमान सम्पूर्ण अङ्गों वाला होगया था ॥३०-३२॥

उद्धवस्तवनं श्रुत्वा चेतनं प्राप्य राधिका।
विलोक्य कृष्णाकारञ्च तमुवाच शुचान्विता ॥३३
किन्नाम भवतो वत्स केन वा प्रेरितो भवान्।
आगतो वा कुत इति ब्रूहि मां केन हेतुना ॥३४
कृष्णाकृतिस्त्वं सर्वाङ्गैर्मन्ये त्वां कृष्णपार्षदम्।
कृष्णस्यकुशलं ब्रूहिबलदेवस्यसाम्प्रतम् ॥३५
नन्दस्तिष्ठति तत्रैव हेतुना केन तद्वद।
समायास्यति गोविन्दो रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥३६॥
पुनर्द्रक्ष्यामि तस्यैव पूर्णचन्द्रमुखं शुभम्।
पुनः क्रीड़ां करिष्यामि तेनाहं रासमण्डले ॥३७
जले च विहरिष्यामि पुनर्वा सखीभिः सह।
श्री नन्दनन्दनांगे च पुनर्दास्यामि चन्दनम् ॥३८
उद्धवेत्यभिधानं मे क्षत्रियोऽहं वरानने।
प्रेषितः शुभवार्तार्थं कृष्णेन परमात्मना ॥३९

तवान्तिकं समायातः पार्षदोऽहं हरेरपि ।
कृष्णस्य बलदेवस्य शिवं नन्दस्य साम्प्रतम् ॥४०

इस अध्याय में राधा और उद्धव के सम्वाद का निरूपण किया जाता है । नारायण ने कहा—राधा का दर्शन करके उद्धव ने जो राधा की स्तुति की थी उस स्तवन का श्रवण कर राधा ने चेतना की प्राप्ति की थी । राधा ने कृष्ण के ही तुल्य आकार वाले उस उद्धव का अवलोकन करके चिन्ता से युक्त होते हुए उस उद्धव से कहा—॥३३॥ श्री राधिका ने कहा—हे वत्स ! आपका क्या नाम है ? आपको यहाँ किसने भेजा है ? आप कहाँ से आये हैं और मुझे यह भी बताओ कि आपके यहाँ आने का क्या हेतु है ? ॥३४॥ तुम कृष्ण के ही तुल्य आकृति वाले हो । इस लिये मैं ऐसा समझती हूँ कि तुम कोई कृष्ण के ही पार्षद हो । मुझे आप कृष्ण का और बलराम का इस समय कुशल बताओ ॥३५॥ नन्द भी इस समय वहाँ पर ही ठहरे हुए हैं सो उनके वहाँ ठहरने का क्या कारण है ? यह भी आप मुझे बताओ । क्या गोविन्द इस परम रम्य वृन्दावन की निकुञ्जों के वन में फिर लौटकर आयेंगे ? ॥३६॥ मैं फिर उनके परम शुभ पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख को देखूंगी । मैं फिर उनके साथ क्रीड़ा करूंगी और उसी रास मण्डल में उनके साथ मैं रास करूंगी । ॥३७॥ मैं यमुना के जल में फिर उनके साथ अथवा अपनी सखियों के साथ विहार करूंगी । मैं पुनः नन्द नन्दन के अङ्ग में चन्दन का लेपन करूंगी ॥३८॥ राधा के प्रश्नों को सुन कर उद्धव ने कहा— हे वरानने ! मेरा नाम उद्धव है । मैं क्षत्रिय वर्ण वाला हूँ । मुझे परमात्मा कृष्ण ने ही शुभ वार्त्ता करने के लिये यहाँ भेजा है ॥३९॥ मैं हरि का पार्षद भी हूँ और आप के ही समीप में आया हूँ । इस समय कृष्ण—बलदेव और नन्द का सब प्रकार से शुभ है ॥४०॥

अस्ति तद् यमुनाकूलं सुगन्धिपवनोऽस्ति सः ।
तस्य केलिकदम्बानां मूलमस्त्येव साम्प्रतम् ॥४१
पुण्यं वृन्दावनं रम्यं तद्विद्यमानमीप्सितम् ।
पुंस्कोकिलानां विरतं तल्पं चन्दनचर्चितम् ॥४२

चतुर्विधञ्च भोज्यञ्च मधुपानञ्चसुन्दरम् ।
दुरन्तोदुःखदोऽप्यस्ति पापिष्ठो मन्मथस्तथा ॥४३

ते च रत्नप्रदीपाश्च ज्वलन्ति रासमण्डले ।
मणीन्द्रसारनिर्माणमस्त्येव रतिमन्दिरम् ॥४४

गोपाङ्गनागणोऽस्त्येव पूर्णचन्द्रोऽस्ति शोभितः ।
सुगन्धिपुष्परचितं तल्पं चन्दनचर्चितम् ॥४५

सुगन्धिपुष्पोद्यानञ्च पद्मश्रेणी मनोहरम् ।
अस्त्येव सर्वविभवः प्राणनाथः कुतो मम ॥४६

हा कृष्ण हा रमानाथ क्वासि मे प्राणवल्लभ ।
क्व वापराधो दास्याश्च दासीदोषः पदे पदे ॥४७

श्रीराधा ने कहा—यमुना का तट वही है और सुगन्धि से युक्त पावन भी वैसा ही बह रहा है। उसके केलि के कदम्बों का मूल भी इस समय विद्यमान ही है ॥४१॥ ईप्सित परम पुण्य एवं अति रम्य वृन्दावन भी वही विद्यमान है। पुंस्कोकिलों का विरुत भी वही है। तथा तल्प भी चन्दन से चर्चित उपस्थित है ॥४२॥ चारों प्रकार के भोज्य और सुन्दर मधुपान भी विद्यमान है तथापि यह महान् पापिष्ठ दुरन्त दुःखद यह मन्मथ है जो मुझे इस समय उत्पीडित कर रहा है ॥४३॥ रत्नों के प्रदीप वे ही हैं जो कि रास मण्डल में जलते हैं और मणीन्द्र सारों के निर्माण वाला रति मन्दिर भी वही है ॥४४॥ गोपाङ्गनाओं का समुदाय भी वैसा ही उपस्थित है और पूर्ण चन्द्र भी शोभा युक्त है तथा सुगन्ध वाले पुष्पों के द्वारा विरचित एवं चन्दन से चर्चित तल्प भी विद्यमान है ॥४५॥ सुगन्धित पुष्पों का उद्यान जो पद्मों की श्रेणियों से परम सुन्दर है, विद्यमान है। मैं अधिक क्या बताऊं सम्पूर्ण वैभव पूर्णतया वही इस समय में विद्यमान है किन्तु मेरे प्राणों के स्वामी कहाँ चले गये ? ॥४६॥ हे कृष्ण ! हा रमानाथ ! हे मेरे प्राण वल्लभ ! आप कहाँ हो ? इस दासी का क्या महान् अपराध हो गया है जो कि आप मुझे त्याग कर चले गये हो ? दासी का दोष तो पद–पद में हुआ ही करता है ॥४७॥

जाने त्वां देवदेवीशां सुस्निग्धां सिद्धयोगिनीम् ।
सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥४८
श्रीदामशापाद्धरणीं प्राप्तां गोलोककामिनीम् ।
कृष्णप्राणाधिकां देवि तद्वक्षःस्थलवासिनीम् ॥४९
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शुभवार्तामभीप्सिताम् ।
सुस्थिरं सखीभिः सार्द्धं हृदयस्निग्धकारिणीम् ॥५०
दुःखदावाग्निदग्धायाः सुधावर्षणरूपिणीम् ।
विरहव्याधियुक्तायाः रसायनसमां शुभाम् ॥५१
तत्र तिष्ठति नन्दोऽयं सानन्दो मुदितः सदा ।
निमित्रतश्च वसुना कृष्णोपनयनावधि ॥५२
गृहीत्वा स बलं कृष्णं सांगे मङ्गलकर्मणि ।
स नन्दो परमानन्दो मुदा यास्यति गोकुलम् ॥५३
आगत्य कृष्णो मुदितः प्रणम्य मातरं पुनः ।
नक्तमायास्यति मुदा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥५४
अचिराद्रक्ष्यसि सति श्रीकृष्णमुखपङ्कजम् ।
सर्वं विरहदुःखञ्च सन्त्यक्ष्यसि च साम्प्रतम् ॥५५
सुस्थिरा भव मातस्त्वं त्यज शोकं सुदारुणम् ।
वह्निशुद्धां शुकं रम्यं परिधाय प्रहर्षिता ॥५६

उद्धव ने कहा—हे देवि ! मैं आपको भली भाँति जानता हूँ । आप सम्पूर्ण देव और देवियों की ईश्वरी हैं-आप सुस्निग्ध हैं और आप सिद्ध योगिनी हैं । आप समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली हैं एवं मूल प्रकृति तथा ईश्वरी हैं—मैं आपके स्वरूप को खूब अच्छी तरह जानता हूँ ॥४८॥ आप श्रीदामा के शाप को धारण करने वाली हैं तथा उस कारण से इस वसुन्धरा में प्राप्त हुई हैं अन्यथा आप तो गोलोक धाम में निवास करने वाली कामिनी हैं । हे देवि ! मैं आपको कृष्ण की प्राणाधिका प्रिया तथा उनके वक्षः स्थल में निवास करने वाली जानता हूँ ॥४९॥ हे देवि ! अब आप मेरी अभीप्सित शुभ वार्त्ता का श्रवण करो जिसको कि मैं आपसे अभी कहूँगा । वह वार्त्ता हृदय को स्निग्ध करने वाली है । आप अपनी

सहेलियों के साथ सुस्थिर होकर श्रवण करो ॥५०॥ वह मेरी वार्ता दुःख दावाग्नि से दग्धा आपके लिये सुधा की वर्षा के स्वरूप वाली है और विरह रूपी व्याधि से युक्त आपको शुभ रसायन के तुल्य है ॥५१॥ वहाँ पर यह व्रजेश नन्द सानन्द एवं सदा प्रसन्न होकर ठहरे हुए हैं । उनको वसुदेव ने कृष्ण के उपनयन संस्कार होने की अवधि तक के लिये निमन्त्रित कर लिया है ॥५२॥ वह नन्द इस मङ्गल कर्म के साङ्ग सम्पन्न हो जाने पर बलराम और कृष्ण को साथ लेकर परम आनन्द से युक्त होते हुए प्रसन्नता से गोकुल को जाँयगे ॥५३॥ कृष्ण मुदित होते हुए यहाँ आकर पुनः अपनी माता यशोदा को प्रणाम करके रात्रि के समय में परम हर्ष से इस पुण्य वृन्दावन के निकुञ्ज वन में आयंगे ॥५४॥ हे सति ! आप शीघ्र ही श्री कृष्ण के मुख कमल को देख लेंगी और अब इस सम्पूर्ण विरह के दुःख को त्याग देंगी ॥५५॥ हे माता ! अब आप सुस्थिर हो जाइये और इस सुदारुण शोक का त्याग करदो । आप वह्नि के समान शुद्ध वस्त्र धारण करके परम प्रहर्षित हो जावें ॥५६॥

सत्यमायास्यति हरिःसत्यं निष्कपटं वद ।
वद तथ्यं भय त्यक्त्वा सत्यं ब्रूहि सुसंसदि ॥५७

वरं कूपशताद्वापी वरं वापीशतात् क्रतुः ।
वरं क्रतुशतात् पुत्रः सत्यं पुत्रशतात्किल ।
न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥५८

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं द्रक्ष्यसिसुन्दरि ।
ध्रुवंत्यक्ष्यसि सन्तापं दृष्ट्वा चन्द्रमुखंहरेः ॥५९

मद्दर्शनान्महाभागे गतस्ते विरहज्वरः ।
नानाभोगं सुखं भुंक्ष्व त्यज चिन्तां दुरत्ययाम् ॥६०

अहं प्रस्थापयिष्यामि गत्वा मधुपुरींहरिम् ।
विधाय तत्प्रबोधञ्च कार्यमन्यत्करिष्यति ॥६१

विदाय कुरु मे मातर्यास्यामि हरिसन्निधिम् ।
सर्वं तं कथयिष्यामि तद्वृत्तान्तं यथोचितम् ॥६२

राधिका ने कहा—हे उद्धव ! क्या सचमुच हरि आयेंगे ? तुम निष्कपट भाव से बिल्कुल सत्य बतलाओ । भय का त्याग करके जो भी तथ्य बात हो वह बोल दो । इस सुन्दर संसद में सत्य बात ही कर दो । ॥५७॥ सौ कूपों के निर्माण से एक वापी (वावड़ी) का निर्माण अधिक श्रेष्ठ होता है । सौ पापियों से एक ऋतु श्रेष्ठ है और सौ ऋतुओं से एक पुत्र श्रेष्ठ होता है तथा सौ पुत्रों से एक सत्य भाषण श्रेष्ठ होता है । सत्य भाषण से पर कोई धर्म नहीं होता है और अनृत से अधिक अन्य कोई भी पातक नहीं है ॥५८॥ उद्धव ने कहा—सचमुच ही हरि आयेंगे । हे सुन्दरि ! यह सत्य बात है कि आप उनके मुख कमल का दर्शन करेंगी । आप निश्चय ही अपने सन्ताप का त्याग कर देंगी जब कि आप हरि के चन्द्रमुख को देखेंगी ॥५९॥ हे महाभागे ! मेरे ही दर्शन से आपका यह विरह ज्वर चला गया है । अब आप नाना प्रकार के सुखों का उपभोग करो और इस दुरत्यय चिन्ता का त्याग करदो ॥६०॥ मैं अब मधुपुरी में जाकर हरि को वहाँ से भिजवा दूंगा । उनका प्रबोध करके फिर अन्य कार्य करेंगे ॥६१॥ हे माता ! अब आप मुझे विदा करदो । मैं यहाँ से हरि की सन्निधि में जाऊंगा । वहां उनको मैं वह समस्त वृत्तान्त यथोचितरूप से कह दूँगा ॥६२॥

९४—कृष्णोद्धवसम्वादवर्णनम्

अथोद्धवो यशोदाञ्च प्रणम्य त्वरया मुदा ।
खर्जूरकाननं वामे कृत्वा च यमुनां ययौ ॥१
स्नात्वा भुक्त्वा च तत्रैव जगाम मथुरां पुनः ।
ददर्श वटमूले च गोविन्दं रहसिस्थितम् ॥२
प्रफुल्लोऽप्युद्धवं दृष्ट्वा संस्मितं तमुवाच सः ।
रुदन्तं शोकदग्धञ्च साश्रुनेत्रञ्च कातरम् ॥३
आगच्छोद्धव कल्याणं राधा जीवति जीवति ।
कल्याणयुक्ता गोप्यश्च जीवन्ति विरहज्वरात् ॥४
शुभं गोपशिशूनाञ्च वत्सानाञ्च गवामपि ।
माता मे पुत्रविरहाद्यशोदा कीदृशी च सा ॥५

वद बन्धो यथार्थं तत्त्वां दृष्ट्वा किमुवाच सा ।
त्वयोक्ता जननी किं वा पुनः सा किमुवाच माम् ॥६
दृष्टं तद्यमुनाकूलं पुण्यं वृन्दावनं वनम् ।
निर्जनो पवनोघैश्च सुरम्यं रासमण्डलम् ॥७
रम्यं कुञ्जकुटीरौघै रम्यं क्रीड़ासरोवरम् ।
पुष्पोद्यानं विकसितं सङ्कुलञ्च मधुव्रतैः ॥८

इस अध्याय में कृष्णोद्धव से सम्वाद का वर्णन किया गया है । श्री नारायण ने कहा—इसके अनन्तर उद्धव शीघ्रता से हर्ष के साथ यशोदा को प्रणाम करके खजूर वन को वाम भाग में करके यमुना के तट पर चला गया था ॥१॥ वहाँ पर ही स्नान और भोजन करके फिर मथुरा को चला गया था । वहाँ वट के मूल में एकान्त स्थान में स्थित गोविन्द का दर्शन किया था । उद्धव को देखकर प्रफुल्ल होते हुए वह मन्द मुस्कराहट के साथ उससे बोले जो कि उद्धव रुदन करते हुए—शोक से दग्ध—अश्रुओं से परिपूर्ण नेत्रों वाले और कातर दशा में अवस्थित थे ॥२-३॥ श्री भगवान् ने कहा—हे उद्धव ! आओ, कल्याण की बात है । राधा जीवित है, जीवित है । कल्याण से युक्त गोपियाँ विरह के ज्वर से जीवित रह रही हैं ॥४॥ गोप शिशुओं का शुभ है ? वत्सों का और गौओं का भी कुशल है न ? मेरी माता यशोदा पुत्र के विरह से किस प्रकार की हो रही है ? ॥५॥ हे बन्धो ! सही-सही बतलाओ उस समय तुमको देखकर उस माता ने क्या कहा था ? तुम ने मेरी माता से मेरा सम्वाद स्वयं कहा था अथवा उसने ही मेरे विषय में कुछ कहा था ? ॥६॥ तुमने वह यमुना का तट देखा था ? क्या तुमने परम पुण्य स्थल वृन्दावन का निकुञ्ज वन अवलोकित किया था ? वह स्थान कैसा निर्जन है ? पवन के झोकों से रास मण्डल कितना सुरम्य है क्या तुमने उसको देखा था ? ॥७॥ वह रास मण्डल कुञ्ज कुटीरों के समूहों से कितना सुरम्य है ? वहाँ का क्रीड़ा सरोवर भी अत्यन्त रम्य है न ? रास मण्डल का पुष्पों का उद्यान एक दम विकसित है और मधु व्रतों से सङ्कुल रहा करता है क्या वे सब तुमने देखे थे ? ॥८॥

भाण्डीरे च वटो दृष्टः सुस्निग्धो बालकान्वितः ।
दृष्टो गोष्टो गवां दृष्टं गोकुलं गोकुलव्रजम् ॥९
यदि जीवति राधा सा दृष्ट्वा तां किमुवाच माम् ।
तत्सर्वं वद हे बन्धो चान्दोलयति मे मनः ॥१०
किमूचुर्गोपिकाःसर्वाःकिमूचुर्गोपबालकाः ।
गोपाश्च वृद्धाःकिंवोचुवयस्याजनकस्य मे ॥११
बलदेवस्य जननी किमूचे रोहिणी सती ।
कमूचुरपरास्तात बन्धूवल्लभवल्लवाः ॥१२
किं भुक्तं किमपूर्वं वा दत्तं मात्रा च राधया ।
कीदृक् वाक्यं सुमधुरं सम्भाषा कीदृशीति च ॥१३
गोपानां गोपिकानाञ्च शिशूनां मातुरेव च ।
राधायाश्चापि कीदृग्वा मयि प्रेमोद्धवादिकम् ॥१४

हे उद्धव ! भाण्डोर वन में तुमने क्या वट वृक्ष देखा था जो अत्यन्त सुस्निग्ध और बालकों से युक्त रहता है ? क्या तुमने वृन्दावन में गौओं का गोष्ठ—गोकुल और गोकुल व्रज को देखा था ? ॥९॥ यदि वह मेरी प्राणेश्वरी राधा जीवित रह रही है तो उसको तुमने जब देखा तो उसने मेरे विषय में क्या कहा था ? हे भाई ! उस समस्त वृत्तान्त को बतलाओ । मेरा मन आनन्दोलित हो रहा है ॥१०॥ समस्त गोपाङ्गनाओं ने क्या कहा था ? गोप बालकों ने क्या कहा था ? गोपों और वृद्ध वर्ग ने जो कि मेरे पिता के वयस्य हैं क्या कहा था ? ॥११॥ बलदेव की माता सती रोहिणी क्या बोली थी ? हे तात ! अन्य बन्धु वल्लभ वल्लवों ने क्या-क्या कहा था ? ॥१२॥ आपने वहाँ क्या खाया था—क्या कुछ अपूर्व माता के द्वारा या राधा के द्वारा दिया हुआ खाया था ? वहाँ की वाक्यावली कैसी थी और व्रज की सम्भाषा किस प्रकार की सुमधुर थी ? ॥१३॥ वहाँ गोपों का-गोपिकाओं का—शिशुओं का और माता का तथा राधा का भी मुझ में कैसा प्रेम आदि तुमने उद्धव ! देखा था ? ॥१४॥

माञ्चस्मरति माता मे माञ्चस्मरति रोहिणी ।
माञ्चस्मरति सा राधा मत्प्रेमविरहाकुला ॥१५

माञ्च स्मरन्ति गोप्यश्च गोपाश्च गोपबालकाः ।
भाण्डीरे वटमूले च बालाः क्रीडन्ति मां विना ॥१६
दत्तमन्नं ब्राह्मणीभिर्यत्र भुक्तं सुधोपमम् ।
प्रमदाबालकैः सार्द्धं यत्तद्दृष्टं परीप्सितम् ॥१७
इन्द्रयागस्थलं दृष्टं दृष्टं गोवर्धनं वरम् ।
ब्राह्मणा च हृता गावो यत्र तद् दृष्टमुत्तमम् ॥१८
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शोकोक्तं मधुरान्वितम् ।
उद्धवः समुवाचेदं भगवन्तं सनातनम् ॥१९

क्या मेरी माता यशोदा मेरा स्मरण किया करती है ? क्या रोहिणी मुझे याद करती रहती है ? क्या वह राधा मेरे प्रेम के विरह से बेचैन रहती है ? ॥१५॥ क्या गोपियाँ मेरा स्मरण करती हैं ! क्या गोप और गोपों के बालक मुझे याद किया करते है ? क्या वहाँ भाण्डीर वन में वट वृक्ष के मूल के तले में बालक मेरे बिना क्रीड़ा करते हैं ? ॥१६॥ जिस स्थान पर ब्राह्मणियों के द्वारा सुधा के तुल्य अन्न हमने खाया था, जहाँ कि प्रमदा और बालक भी साथ में थे, क्या वह स्थल जो परीप्सित है तुमने देखा था ? ॥१७॥ क्या तुमने इन्द्र के याग का स्थल और श्रेष्ठ गोवर्द्धन पर्वत को अवलोकित किया था ? क्या वह उत्तम स्थान तुम ने देखा था जहाँ पर ब्रह्मा ने हमारी गौओं का हरण किया था ? ॥१८॥ श्री कृष्ण के इस शोक से कहे हुए माधुर्य से परिपूर्ण वचन को सुनकर उद्धव ने सनातन भगवान् से कहा था ॥१९॥

यद्यदुक्तं त्वया नाथ सर्वं दृष्टं यथेप्सितम् ।
सफलं जीवनं जन्म कृतमत्रैव भारते ॥२०
दृष्टं भारतसारञ्च पुण्यं वृन्दावनं वनम् ।
तत्सारं व्रजभूमौ च सुरम्यं रासमण्डलम् ॥२१
तत्सारभूता गोलोकवासिन्यो गोपिका वराः ।
दृष्टा तत्सारभूता च राधारासेश्वरीपरा ॥२२
कदलीवनमध्ये च निर्जने सुहृदम्थले ।
पङ्कस्थे पङ्कजदले सजले चन्दनार्चिते ॥२३

शयनेऽतिविषण्णा सा रत्नभूषणवर्जिता ।
अतीवमलिना क्षीणा छादिता शुक्लवाससा ॥२४
सेविता सखीभिस्तत्र सततं श्वेतचामरैः ।
कृशोदरी निराहारा क्षणं श्वसिति च क्षणम् ॥२५
क्षणं जीवति किं सा वा विरहज्वरपीड़िता ।
किं वा जलं स्थलं किंवा नक्तं किं वा दिनं हरे ॥२६
परं पशुं न जानाति किं परं किमु बान्धवम् ।
बाह्यज्ञानविरहिता ध्यायमाना पदं तव ॥२७
त्रैलोक्ये यशसाभाति सन्मृत्युर्यशसम्भवः ।
स्त्रीहत्यां नैव वाञ्छन्ति ज्ञानहीनाश्चदस्यवः ॥२८

उद्धव ने कहा—हे नाथ ! आपने जो जो भी कहा है वह मैंने सभी देखा है और इच्छा भरकर सब का अवलोकन किया है मैंने तो इस भारत देश में ही अपना जीवन सफल कर लिया है ॥२०॥ मेंने भारत देश के सार स्वरूप उस परम पुण्य स्थल वृन्दावन के निकुञ्ज वन को अवलोकन किया है । व्रजभूमि में उसका भी सार रूप अत्यन्त सुरम्य रास मण्डल है जिसको मैंने देखा है ॥२१॥ उसमें सारभूत गोलोक के निवास करने वाली श्रेष्ठ गोपिकाऐं हैं । उनमें भी परम सार स्वरूपा परतमा रासेश्वरी श्री राधा हैं जिनका मैंने दर्शन प्राप्त किया है ॥२२॥ कदली वन के मध्य में अति निर्जन सुहृद स्थल में पङ्कस्थ चन्दन से अर्चित सजल पंकज दल में जो शय्या थी उस पर वह अत्यन्त ही विषाद से युक्त रत्नों के भूषणों से रहित थी । उनका स्वरूप अत्यन्त मलिन था, वह अत्यधिक क्षीण थी और शुक्ल वस्त्र से छादित थी ॥२३-२४॥ वहाँ पर वह राधा सखियों के द्वारा निरन्तर श्वेत चमरों से सेवित हो रही थीं । वह कृश उदर वाली, निराहार और क्षण-क्षण में श्वास लेरहीं थीं ॥२५॥ क्या वह क्षण भर को ही जीवित रहती है अथवा विरह के ज्वर से अत्यन्त उत्पीड़ित थीं ? हे हरे ! क्या जल है अथवा क्या स्थल है, कब दिन होता है और किस समय रात होती है । वह पशु को भी नहीं जानती है फिर पर बान्धव को तो क्या जान सकती हैं ? वह राधा ऐसी दशा में है कि

उसको बाह्य ज्ञान कुछ भी नहीं है। वह तो केवल आपके ही चरण का ध्यान करती रहती है ॥ २६-२७ ॥ वह इस त्रिलोकी में यश से प्रकाशमान है। उस की मृत्यु भी यश से हो हो सकती है। ज्ञान से हीन दस्युगण भी कभी स्त्री की हत्या करना कहीं चाहा करते हैं ॥२८॥

गच्छशीघ्रं जगन्नाथ कदलीवनमीप्सितम् ।
बहिर्भूता न जगतां सा राधा त्वत्परायणा ॥२९
अतीवभक्ता न त्याज्या प्रभुणा रक्षिता सदा ।
न हि राधापरा भक्ता न भूता न भविष्यति ॥३०
मन्मथः शङ्कराद्भीतो भवांश्च तत्पुरः सरः ।
भविद्विधं पतिं प्राप्य कामदग्धा च राधिका ॥३१
तस्मात्सर्वपरं कर्म तच्च केनापि वार्यते ।
मधुर्दहति चन्द्रश्च सततं किरणेन च ॥३२
शश्वत्सुगन्धिवायुश्चाप्यनाथा सर्वपीड़िता ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा साधुना कज्जलोपमा ॥३३
सुवर्णावर्णकेशी च वासोवेशविवर्जिता ।
स्वयं विधाता त्वद्भक्तः सुराणां प्रवरो विभुः ॥३४
त्वद्भक्तः शंकरो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।
सनत्कुमारस्त्वद्भक्तो गणेशो ज्ञानिनांवरः ॥३५

हे जगन्नाथ ! उस अभीप्सित कदली वन में शीघ्र ही जाइये। वह जगतों के बहिर्भूत नहीं है। वह राधा आप में ही परायण है ॥२९॥ वह अतीव आपकी भक्त है अतः उसका त्याग नहीं करना चाहिए। आप प्रभु हैं आपके द्वारा वह सर्वदा रक्षिता रहनी चाहिए राधा से पर अन्य कोई भी भक्त नहीं है वह तो ऐसी है कि उस जैसी अब तक न कोई हुई है और न भविष्य में ही होगी ॥३०॥ मन्मथ शङ्कर से भीत है और आप तो उसके अग्रणी हैं। आप जैसे पति को प्राप्त करके वह राधिका विचारी काम से दग्ध हो रही है—यह बहुत आश्चर्य एवं खेद की बात है ॥३१॥ इससे सर्व पर कर्म किसी के भी द्वारा वारण नहीं किया जाता। उसे मधु और चन्द्र भी निरन्तर दाह करता है। सुगन्धित वायु भी दाह करती है।

वह इस समय अनाथा है और सब प्रकार से पीड़ित है। तप्तकाञ्चन के वर्ण वाली वह इस समय कज्जल के समान कृष्ण वर्णा होरही हैं।३२।वह राधा सुवर्ण के समान केशों वाली है और सब प्रकार के वसन तथा वेशों से रहित है। स्वयं विधाता भी जो समस्त सुरों में श्रेष्ठतम एवं विभु है आपका भक्त है ॥३३-३४॥ योगीन्द्रों के गुरुओं के भी गुरुदेव शङ्कर भी आपके भक्त हैं। सनत्कुमार आपके भक्त हैं तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ गणेश भी आपके भक्त हैं ॥३५॥

मुनीन्द्राश्च कतिविधास्त्वद्भक्ता धरणीतले।
त्वद्भक्ता यादृशीराधा न भक्तस्तादृशोऽपरः ॥३६
ध्यायते यादृशी राधा स्वयं लक्ष्मीर्नतादृशी।
हरिरायाति चेत्येवं राधाग्रे स्वीकृतं मया।
शीघ्रं गच्छ महाभाग तदेव सार्थकं कुरु ॥३७
उद्धवस्य वचः श्रुत्वा जहासोवाच माधवः।
वेदोक्तं कथयामास सहितं सत्यमुत्तमम् ॥३८
स्त्रीषु धर्मविवाहेषु वृत्यर्थं प्राणसंकटे।
गवामर्थे ब्राह्मणार्थे नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥३९
तत्स्वीकारविहीनेन कुतस्त्वं नरकं कुतः।
गोलोकं यातिमद्भक्तो नरकं न हि पश्यति ॥४०
त्वदङ्गीकारसाफल्यंकरिष्यामि तथापि च।
यास्यामि स्वप्ने तन्मूलंगोपीनांमातुरेव च ॥४१
इत्याकर्ण्य ययौ गेहमुद्धवश्च महायशाः।
हरिर्जगाम स्वप्ने च गोकुलं विरहाकुलम् ॥४२
स्वप्ने राधां समाश्वास्य दत्त्वा ज्ञानं सुदुर्लभम्।
सन्तोष्य क्रीड़या ताञ्च गोपिकाश्च यथोचितम् ॥४३
बोधयित्वा यशोदाञ्च स्तनं पीत्वा च निद्रिताम्।
गोपान् गोपशिशूंश्चैव बोधयित्वा ययौ पुनः ॥४४

इस धरणी तल में कितने ही प्रकार के मुनीन्द्र आपके भक्त हैं किन्तु जैसी राधा आपकी भक्त है वैसा अन्य दूसरा कोईभी भक्त नहीं है ॥३६॥

जैसी राधा आपका ध्यान किया करती है स्वयं लक्ष्मी भी उस प्रकार के ध्यान के करने वाली नहीं है। मैंने तो राधा के आगे हरि आ रहे हैं—इस प्रकार से स्वीकार किया है। हे महाभाग ! अब आप शीघ्र ही वहाँ जाइये और मेरा कथन सफल करिये ।।३७।। उद्धव के इस वचन का श्रवण करके माधव हँस पड़े और बोले—आपने वेदोक्त हित से युक्त, सत्य और सुव्रत ही कहा था ।।३८।। श्री भगवान् ने कहा—स्त्रियों के विषय में, धर्म विवाहों में, वृत्ति के लिये प्रयोजन में, प्राणों के संकट होने में, ब्राह्मण के हित में मिथ्या भी निन्दित नहीं हुआ करता है ।।३९।। आपके स्वीकार किये हुए के रहित होने से नरक होगा, यह नहीं है। कहाँ तो तुम और कहाँ नरक है ? मेरा भक्त गोलोक में जाया करता है। वह नरक को कभी नहीं देखता है ।।४०।। तथापि आपके द्वारा अङ्गीकार किये हुए की सफलता करूँगा। मैं स्वप्न में उस गोपियों के मूल में तथा माता के भी निकट जाऊँगा ।।४१।। इतना सुनकर महान् यश वाला उद्धव गृह को चला गया था और हरि उस विरह से बेचैन गोकुल में स्वप्न में गये थे ।।४२।। हरि ने स्वप्न में राधा को समाश्वासन दिया था और अति दुर्लभ ज्ञान भी प्रदान किया था। उसको क्रीड़ा के द्वारा पूर्णतया सन्तुष्ट किया और अन्य गोपिकाओं को भी यथोचित रूप से सन्तोष प्रदान किया था ।।४६।। फिर अपनी यशोदा को ज्ञान देकर निद्रित अवस्था में ही उस के स्तन का पान भी किया था। गोपों को और गोपों के शिशुओं को भी प्रबोधन देकर पुनः चले गये थे ।।४४।।

८५—भगवदुपनयनवर्णनम्

एतस्मिन्नन्तरे गर्गो वसुदेवाश्रमं ययौ।
दण्डी क्षत्री च जटिलो दीप्तश्च ब्रह्म तेजसा ।।१

शुक्लयज्ञोपवीती च तपस्वी संयतः सदा।
शुक्लदन्तः शुक्लवासा यदोः कुलपुरोहितः ।।२

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देवकी प्रणनाम च।
वसुदेवश्च भक्तया च रत्नसिंहासनं ददौ ।।३

मधुपर्कं कामधेनुं वह्निशुद्धांशुकं तथा ।
दत्त्वा गन्धं पुष्पमाल्यं पूजयामास भक्तितः ॥४
मिष्टान्नं परमान्नञ्च पिष्टकं मधुरं मधु ।
भोजयामास यत्नेन ताम्बूलं वासितं ददौ ॥५
प्रणम्य कृष्णं मनसा सबलञ्च विलोक्य च ।
उवाच वसुदेवंच देवकींच पतिव्रताम् ॥६
वसुदेव निबोधेदं सबलं पश्य पुत्रकम् ।
उपनीतोचितं शुद्धं वयसा साम्प्रतं वरम् ॥७
शुभक्षणं कुरु गुरो यदूनां पूज्यदैवते ।
उपनीतोचितं शुद्धं प्रशस्यंच सतामपि ॥८

इस अध्याय में भगवान् के उपनयन संस्कार का वर्णन है । नारायण ने कहा—इसी बीच में गर्ग आचार्य वसुदेव के आश्रम में गये थे । गर्ग का स्वरूप दण्ड धारण करने वाला, क्षत्रधारी, जटिल और ब्रह्म तेज से अत्यन्त दीप्त था ॥१॥ वह शुक्ल यज्ञोपवीत वाले, तपस्वी, सदा संयत, शुक्ल दाँतों वाले और शुक्ल वस्त्र धारण करने वाले थे जो कि यह कुल के पुरोहित थे ॥२॥ उन गर्ग मुनि को आते हुए देखकर देवकी सहसा उठकर खड़ी होगई थी और उनको प्रणाम किया था । वसुदेव ने बड़े ही भक्ति-भाव से उनको बैठने के लिए रत्नों का सिंहासन दिया था ॥३॥ इसके अनन्तर वसुदेव ने मधुपर्क, कामधेनु, वह्नि के तुल्य शुद्ध वस्त्र देकर गन्ध पुष्पों की माला के द्वारा भक्तिभाव से उनका पूजन किया था ॥४॥ इसके उपरान्त मिष्टान्न, परमान्न, पिष्टक, मधुर मधु का उन्हें भोजन कराया था तथा सुवासित ताम्बूल समर्पित किया था ॥५॥ कृष्ण को प्रणाम करके और उनको सबल देखकर गर्ग मुनि वसुदेव से तथा पतिव्रता पत्नी देवकी से बोले—॥६॥ गर्ग मुनि ने कहा—हे वसुदेव ! आप अब यह समझ लेवें और अपने पुत्र को सबल देखें । अब यह शुद्ध एवं अवस्था से अति श्रेष्ठ उपनयन संस्कार के योग्य हैं ॥७॥ वसुदेव ने कहा—हे गुरो ! हे यदुओं के कुल देवता ! आप शुभ मुहूर्त्त देखें । उपनीत होने के

योग्य—शुद्ध और सत्पुरुषों के लिए प्रशस्य जो भी हो वही क्षण देखिये ॥८॥

सर्वेभ्यो बान्धवेभ्योऽपि देह्यामन्त्रणपत्रिकाम् ।
संभारं कुरु यत्नेन वसुदेव ! वसूपम ! ॥९
परश्वः शुभमेवास्ति चोपनेतुमिहार्हसि ।
दिनं सतामपि मतं विशुद्धं चन्द्रतारयोः ॥१०
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा वसुदेवो वसूपमः ।
प्रस्थापयामास सर्वान् बन्धून्मङ्गलपत्रिकाम् ॥११
घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां दधिकुल्यां मनोहराम् ।
मधुकुल्यां गुड़कुल्यां प्रचकारसमन्वितः ॥१२
राशिं नामोपहाराणां मणिरत्नं सुवर्णकम् ।
नानालंकारवस्त्रं च मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥१३
श्रीकृष्णो देवगर्गश्च मुनीन्द्रान्सिद्धपुङ्गवान् ।
सस्मारमनसाभक्त्याभक्तांश्चभक्तवत्सलः ॥१४

गर्ग मुनि ने कहा—आप अब समस्त अपने बान्धवों के लिये आमन्त्रण पत्रिकाऐं भेज दो। हे वसूपम ! हे वसुदेव ! अब यत्न पूर्वक आप सब सामान एकत्रित करो ॥९॥ परसों का दिन परम शुभ है और यहाँ पर उपनयन संस्कार कराने के लिए तुम योग्य होते हो। यह दिन सत्पुरुषों को भी मान्य है और चन्द्र ताराओं से भी अत्यन्त शुद्ध है ॥१०॥ वसूपम वसुदेव ने गर्ग के इस वचन का श्रवण कर अपने सभी बन्धुओं को मङ्गल पत्रिकाओं को भिजवा दिया था ॥११॥ घृत कुल्या, दुग्ध कुल्या, दधि कुल्या, मनोहर मधु कुल्या और समन्वित होकर गुड कुल्या प्रकर्ष रूप से की थी ॥१२॥ नामोपहारों की राशि, मणि रत्न, सुवर्ण, अनेक आभूषण, विविध वस्त्र, मुक्ता, माणिक्य और हीरे वहाँ लायेगये थे ॥१३॥ श्री कृष्ण ने देव गर्गों को, मुनीन्द्रों को, सिद्धों में श्रेष्ठों को और भक्त गण को भक्तवत्सल ने मन से तथा भक्ति के भाव से स्मरण किया था ॥१४॥

शुभेदिने च संप्राप्ते च सर्वे समाययुः ।
मुनीन्द्रा बान्धवा देवा राजानो बहुशस्तथा ॥१५
देवकन्या नागकन्या राजकन्याश्च सर्वशः ।
विद्याधर्य्यश्च गन्धर्वाश्चाययुर्वाद्यभाण्डकाः ॥१६
ब्राह्मणा भिक्षुका भट्टा यतयो ब्रह्मचारिणः ।
सन्न्यासिनश्चावधूता योगिनश्च समाययुः ॥१७
स्त्रीबान्धवाःस्वबन्धूनांवर्गा मातामहस्य च ।
बन्धूनां बान्धवाःसर्वे स्वाययुःशुभकर्मणि ॥१८
भीष्मो द्रोणश्चकर्णश्चाप्यश्वत्थामाकृपो द्विजः ।
सपुत्रो धृतराष्ट्रश्चसभार्य्यश्च समाययौ ॥१९
कुन्ती सपुत्रा विधवा हर्षशोकसमाप्लुता ।
नानादेशोद्भवा योग्या राजानो राजपुत्रकाः ॥२०

शुभ दिन के समाप्त होने पर वे सभी वहाँ पर आगये थे उनमें मुनीन्द्र थे—बान्धव—देवगण—राजा लोग बहुत से थे ॥१५॥ वहाँ उस श्रीकृष्ण के उपनयन संस्कार के महोत्सव में देवकन्या—नागकन्या—और सब ओर से राज कन्या—विद्याधरी—गन्धर्व और वाद्यभाण्डक आये थे ॥१६॥ ब्राह्मण—भिक्षुक—भट्ट—यतिगण—ब्रह्मचारी—संन्यासी—अवधूत और योगी लोग आये थे ॥१७॥ अपने बन्धुओं की स्त्रियों का समुदाय तथा मातामह (नाना) के बन्धुओं के समस्त बान्धव उस शुभ कर्म में समुपस्थित हुए थे ॥१८॥ उस शुभावसर पर भीष्म—द्रोण—कर्ण—अश्वत्थामा—कृपाचार्य द्विज और पुत्रों के सहित धृतराष्ट्र अपनी पत्नियों को साथ में लेकर वहाँ आये थे ॥१९॥ विधवा कुन्ती भी वहाँ अपने पुत्रों के सहित आई थी जो हर्ष एवं शोक से युक्त हो रही थी । इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से अनेक देशों में होने वाले योग्य राजा लोग तथा राजपुत्र भी वहाँ आये थे ॥२०॥

अत्रिर्वशिष्ठश्चच्यवनो भरद्वाजो महातपाः ।
याज्ञवल्क्यश्च भीमश्च गार्ग्यो गर्गो महातपाः ॥२१

वत्स. सपुत्रश्च धर्मो जैगीषव्यः पराशरः ।
पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यश्चापि सौभरिः ॥२२
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ।
सनत्कुमारो भगवान् वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥२३
दुर्वासाश्चाङ्गिरा व्यासो व्यासपुत्रः शुकस्तथा ।
कुशिकः कौशिको राम ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥२४
शृङ्गी च वामदेवश्च गौतमश्च गुणार्णवः ।
क्रतुर्यतिश्चारुणिश्च शुक्राचार्य्यो बृहस्पतिः ॥२५
अष्टावक्रो वामनश्च पारिभद्रश्च वाल्मिकिः ।
पैलो वैशम्पायनश्च प्रचेताः पुरुजित् तथा ॥२६
भृगुर्मरीचिर्मधुजित् कश्यपश्च प्रजापतिः ।
अदितिर्देवमाता च दितिर्दैत्यप्रसूस्तथा ॥२७
सुमन्तुश्च सुभानुश्च एकः कात्यायनस्तथा ।
मार्कण्डेयो लोमशश्च कपिलश्च पराशरः ॥२८
पाणिनिः पारियात्रश्च पारिभद्रश्च पुङ्गवः ।
संवर्त्तश्चाप्युतथ्यश्च नरोऽहञ्चापि नारदः ॥२९

उस महोत्सव में अत्रि—वशिष्ठ—च्यवन—महान् तपस्वी भरद्वाज—याज्ञवल्क्य—भीम—गार्ग्य और महा तप गर्ग आये थे ॥२१॥ सपुत्र वत्स—धर्म जैगीषव्य—पराशर—पुलह—पुलस्त्य—अगस्त्य—और सौभरि ऋषि वहाँ उपस्थित हुए थे ॥२२॥ सनक—सनन्द और तीसरे सनातन-सनत्कुमार भगवान् वोढु और पञ्चशिख उस शुभ कर्म के उत्सव में आये थे ॥२३॥ दुर्वासा—अङ्गिरा—व्यास—व्यास के पुत्र शुकदेव—कुशिक—कौशिक राम—ऋष्य शृङ्ग—विभाण्डक—शृङ्गी—वामदेव—गुणों के सागर गौतम—क्रतु—यति—अरणि—शुक्राचार्य—बृहस्पति—अष्टावक्र—वामन—पारिभद्र—बाल्मीकि—पैल—वैशम्पायन—प्रचेता—पुरुजित—भृगु—मरीचि—मधुजित—कश्यप प्रजापति—देवों की माता अदिति तथा दैत्यों की जननी दिति—ये सभी वहाँ श्रीकृष्ण के उपनयन संस्कार के शुभ अवसर में

सम्मिलित हुए थे ॥२४-२७॥ सुमन्त–सुभानु–एक–कात्यायान–मार्कण्डेय —लोमश—कपिल–पराशर—पाणिनि–पारियात्र—पारिभद्र—पुंगव—सम्वर्त्त–उतथ्य–नर और हे नारद ! मैं भी (नारायण) उसमें सम्मिलित हुए थे ॥२८-२९॥

विश्वामित्रः शतानन्दो जाबालिस्तैतिलस्तथा ।
सान्दीपिनिश्च ब्रह्मांशो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥३०
उपमन्युर्गौरमुखो मैत्रेयश्च श्रुतश्रवाः ।
कठः कचश्च करखो भरद्वाजश्च धर्मवित् ॥३१
सशिष्या मुनयः सर्वे वसुदेवाश्रम ययुः ।
वसुदेवश्च तान् दृष्ट्वा ववन्दे दण्डवद्भुवि ॥३२
अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सस्मितो हंसवाहनः ।
रत्ननिर्माणयानेन पार्वत्या सह शङ्करः ॥३३
नन्दी स्वयं महाकालो वीरभद्र सुभद्रकः ।
मणिभद्रः पारिभद्रः कार्तिकेयो गुणेश्वरः ॥३४
गजेन्द्रेण महेन्द्रश्च धर्मश्चन्द्रो रविस्तथा ।
कुबेरो वरुणश्चैव पवनो वह्निरेव च ॥३५

विश्वामित्र–जाबालि—शतानन्द–तैतिल–सान्दीपनि जो ब्रह्मा का ही अंश है और योगियों का तथा ज्ञानियों का गुरु है ॥३०॥ उपमन्यु–गौर-मुख–श्रुतश्रवा—कठ—कच–करख–धर्म के विद्वान् भरद्वाज भी वहाँ आये थे, ये समस्त मुनिगण अपने २ शिष्यों को साथ लेकर वसुदेव के आश्रम में गये थे। वसुदेव ने जिस समय में इन महानुभावों का दर्शन प्राप्त किया तो उसने सबको भूतल में दण्ड की भाँति पड़कर प्रणाम किया था ॥३१-३२॥ इसी अनन्तर में हंस पर समारूढ़ होकर ब्रह्माजी मुस्कराते हुए वहाँ आये थे। रत्नों के निर्माण वाले एक अति दिव्य यान के द्वारा पार्वती के साथ भगवान् शङ्कर वहाँ पर पधारे थे ॥३३॥ नन्दी–स्वयं महाकाल—वीरभद्र—सुभद्रक—मणिभद्र—पारिभद्र—स्वामि कार्त्तिकेय गणेश्वर—वहाँ आकर सम्मिलित हुए थे ॥३४॥ गजेन्द्र के द्वारा महेन्द्र,

धर्म, चन्द्र, रवि, कुबेर, वरुण, पवन, वह्नि देवता भी वहाँ शुभोत्सव में आये थे ॥३५॥

यमः संयमिनीनाथो जयन्तो नलकूबरः ।
सर्वे ग्रहाश्च वसवो रुद्राश्च सगणास्तथा ॥३६
आदित्याश्च तथा शेषो नानादेवाः समाययुः ।
वसुदेवश्च भक्त्या च ववन्दे शिरसा भुवि ॥३७
तुष्टाव परया भक्त्या देवेन्द्रांश्च तथा सुरान् ।
भक्तिनम्रात्ममूर्ध्ना च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥३८
परं ब्रह्म परं धाम पदमेशः परात्परः ।
स्वयं विधाता मद्गेहे जगतां परिपालकः ॥३९
वेदानां जनकः स्रष्टा सृष्टिहेतुः सनातनः ।
सुराणाञ्च मुनीन्द्राणां सिद्धेन्द्राणांगुरोर्गुरुः ॥४०
स्वप्ने यत्पादपद्मञ्च क्षणं द्रष्टुं सुदुर्लभम् ।
शिवस्मरणमात्रेण सर्वानिष्टाः पलायिताः ॥४१
सर्वसङ्कटमुत्तीर्य्य कल्याणं लभते नरः ।
सर्वाग्रे पूजनं यस्य देवानामग्रणीः परः ॥४२
घटेषु मङ्गलं मन्त्रैर्भक्त्या चावाहनेन च ।
स्वयं गणेशो भगवान् स साक्षाद्विघ्ननायकः ॥४३

संयमिनी के स्वामी यमराज, जयन्त, नलकूवर, समस्त ग्रह, समग्र वसुगण, सम्पूर्ण रुद्र अपने गणों के सहित वहाँ वसुदेव के आश्रम में आये थे ॥३६॥ आदित्य, शेष भगवान्, तथा अनेक देवगण वहाँ सम्मिलित हुए थे, वसुदेव ने अत्यन्त भक्ति की भावना से भूमि में अपना मस्तक टेक कर सबकी वन्दना की थी ॥३७॥ वसुदेव ने उन समस्त देवेन्द्र सुरों की परम भक्ति से भक्ति के कारण नम्र अपना शिर करके रोमाञ्चित अंग वाला होते हुए स्तुति की थी ॥३८॥ वसुदेव ने कहा– परब्रह्म, परम धाम, परमेश और पर से भी पर जगतों के पूर्णतया परि पालन करने वाले विधाता स्वय मेरे घर पर आज पधारे हैं ॥३९॥ जो सम्पूर्ण वेदों को जन्म देने वाले पिता हैं, संसार का सृजन करने वाले, सृष्टि के हेतु

और सनातन हैं। जो समस्त सुरों के और सम्पूर्ण मुनीन्द्रों के तथा सिद्धेन्द्रों के गुरु के भी गुरु हैं ॥४०॥ स्वप्न में भी जिनके चरण कमल का दर्शन प्राप्त करना एक क्षण भर के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। शिव के तो शुभ नाम एवं स्वरूप के स्मरण मात्र से ही सब अनिष्ट भाग जाया करते हैं और सम्पूर्ण सङ्कटों से पार होकर मनुष्य कल्याण की प्राप्ति किया करते हैं। जिनका पूजन सबसे प्रथम हुआ करता है और जो सब देवों के अग्रणी हैं तथा पर हैं। जिनको घरों में मङ्गल भक्ति से, मन्त्रों से और आवाहन के द्वारा किया जाता है वह भगवान् गणेश स्वयं साक्षात् विघ्नों के विनायक यहाँ मेरे घर पर पधारे हैं ॥४१-४३॥

वाद्यं नानाविधं रम्यं वादयामास कौतुकात् ।
मङ्गलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान् ॥४४
भैरवीं पूजयामास मथुराग्रामदेवताम् ।
उपचारैः षोड़शभि षष्ठ्यां मङ्गलचण्डिकाम् ॥४५
पुण्यं स्वस्त्ययनं शुद्धं कारयामास मङ्गलम् ।
वेदांश्च पाठयामास वसुदेवस्य वल्लभा ॥४६
स्वर्गङ्गासुजलेनैव सुवर्णकलशेन च ।
स्नापयामास सबलं श्रीकृष्णं पुत्रवत्सला ॥४७
वस्त्रचन्दनमाल्यैश्च तयोर्वेशञ्चकार सा ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणभूषणैश्च मनोहरैः ॥४८
मातृभूषणभूषाढ्यः सबलः कृष्ण एव च ।
आययौ च सभां देवमुनीन्द्राणाञ्च नारद ! ॥४९

इस प्रकार से वसुदेव ने सबका स्तवन करके और पूजनार्चन करके फिर नाना भाँति के वाद्यों को जो कि अत्यन्त रम्य थे कौतुक से बजवाया था। मङ्गल कृत्य कराया तथा ब्राह्मणों को भोजन कराया था ॥४४॥ मथुरा पुरी की ग्राम देवता भैरवी का पूजन किया था। षष्ठी में मङ्गल चण्डिका का षोडश उपचारों के द्वारा यजन किया था ॥४५॥ पुण्य स्वस्त्ययन, शुद्ध मङ्गल कराया था। वेदों का पाठ करवाया था। फिर वसुदेव के वल्लवों ने स्वर्गङ्गा के सुन्दर जल से सुवर्ण के कलशों के द्वारा

पुत्रों पर प्यार करने वालों ने श्रीकृष्ण और बलराम को स्नान कराया था ।।४६-४७।। पुत्र वत्सला माता देवकी ने इसके अनन्तर वस्त्र, चन्दन, माल्य आदि से उन दोनों भाइयों की वेश, रचना की थी। उसने उन कृष्ण तथा बलराम को रत्नों के परम सार स्वरूप दिव्यातिदिव्य रत्नों के द्वारा विशेष रूप से निर्मित आभूषणों से जोकि अत्यन्त ही मनोहर थे समलंकृत किया था ।।४८।। माता के द्वारा भूषणों एवं भूषा से युक्त होकर बलराम और कृष्ण हे नारद ! देवों और मुनीन्द्रों की सभा में आये थे ।।४९।।

दृष्ट्वा तं जगतांनाथमुत्तस्थौ प्रजवेन च ।
स्वयं विधाता शम्भुश्च शेषो धर्मश्च भास्करः ।।५०
देवाश्च मुनयश्चैव कार्त्तिकेयो गणेश्वरः ।
पृथक् पृथक् क्रमेणैव तुष्टाव परमेश्वरम् ।।५१
नाथानिर्वचनीयोऽसि भक्तानुग्रह विग्रह ।
वेदानिर्वचनीयञ्च कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।।५२
देहेषुदेहिनंशश्वत् स्थितं निर्लिप्तमेव च ।
कर्मिणां कर्मणां शुद्धं साक्षिणं साक्षतं विभुम् ।
किं स्तौमि रूपशून्यञ्च गुणशून्यञ्च निर्गुणम् ।।५३
त्वामनन्तं यदि स्तोतुं देवोऽनन्तो न हीश्वरः ।
न हि स्वयं विधाता च न हि ज्ञानात्मकः शिवः ।।५४
सरस्वती जड़ीभूता किं कुर्मः स्तवनं वयम् ।।५५
वेदा न शक्ता स्तोतुञ्चेत्त्वाञ्चैवज्ञातुमीश्वरम् ।
वयं वेदविदः सन्तः किं कुर्मः स्तवनं तव ।।५६
इदंस्तोत्रं महापुण्यं देवैश्च मुनिभिःकृतम् ।
यः पठेत्संयतः शुद्धः पूजा काले च भक्तितः ।।५७
इहलोके सुखंभुक्त्वा लब्ध्वा ज्ञानं निरञ्जनम् ।
रत्नयानंसमारुह्य गोलोकं स च गच्छति ।।५८

जैसे ही आते हुए उन जगतों के स्वामी को देखा था वैसे ही बड़े ही वेग से सब खड़े होगये थे। स्वयं विधाता, शम्भु, शेष भगवान्, धर्म और

भुवन भास्कर सूर्यदेव, देवगण, सम्पूर्ण मुनि वर्ग, स्वामि कार्त्तिकेय, गणेश ये सभी उस समय अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो गये थे और गात्रोत्थान द्वारा स्वागत सत्कार करके फिर क्रम से सबने पृथक्-पृथक् उन परमेश्वर का स्तवन किया था ॥५०-५१॥ ब्रह्मा ने कहा—हे नाथ आप तो अनिर्वचनीय हैं अर्थात् आपके स्वरूप तथा गुणों को वचनों के द्वारा कहा ही नहीं जा सकता है। आप अपने भक्तों पर अनुग्रह करके ही विग्रह धारण करने वाले हैं। आपको वेद भी नहीं बतला सकते हैं तो ईश्वर आपका यहाँ कौन स्तवन करने में समर्थ हो सकता है। महादेव ने कहा—देहों में देही को निरन्तर स्थित रखते हुए भी आप निर्लिप्त ही रहते हैं। आप कर्म करने वालों के कर्मों के शुद्ध साक्षी साक्षात और विभु हैं। ऐसे रूप से तथा गुण से शून्य निराकार निर्गुण आपकी मैं स्तुति करूं तो क्या करूं?॥५२-५३। देवों ने कहा—हे भगवन्! जब अनन्त आपका स्तवन करने में अनन्त देव ही समर्थ नहीं हैं और स्वयं विधाता भी स्तवन करने को सामर्थ्य से हीन हैं एवं ज्ञान के स्वरूप साक्षात् भगवान् शंकर भी शक्ति हीन हैं और वाग्देवता वाणी और बुद्धि की अधिष्ठात्री सरस्वती भी असमर्थ हैं तो हम लोग आपकी स्तुति क्या कर सकते हैं? ॥५४-५५॥ मुनीन्द्रों ने कहा—हे भगवन्! यदि वेद स्वयं आपका स्तवन करने में अशक्त हैं और आप के ईश्वर स्वरूप को जानने में उनकी भी सामर्थ्य नहीं है तो हम तो उसी वेद को जानने वाले ही हैं। ऐसे हम विचारे आपका क्या स्तवन कर सकते हैं? ॥५६॥ यह स्तोत्र महान् पुण्य है जो देवों ने तथा मुनियों ने किया है जो इसका संयत और शुचि होकर पूजा के समय में भक्तिभाव से पाठ करता है वह इस लोक में सुख-सौभाग्य का उपभोग करके तथा निरञ्जन ज्ञान का लाभ लेकर रत्नों के विमान में समारूढ़ होकर अन्त समय में नित्य गोलोक धाम को चला जाता है ॥५७-५८॥

संस्तूय देवा मुनयो विरेमुश्चैव मानसे।
ददृशुः प्राङ्गणे कृष्णं शोभितं पीतवाससा ॥५९

यथा सौदामिनीयुक्तं नवीनजलदं मुने ! ।
बकपङ्क्तियुतञ्चैव मालती मालया तथा ॥६०
कपाले मण्डलाकारकस्तूरीयुक्तचन्दनम् ।
सकलङ्कं मृगांकञ्च शोभितं जलदे तथा ॥६१
द्विभुजं श्यामलं कान्तं राधाकान्तं मनोहरम् ।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥६२
चकार वसुदेवश्चाप्यज्ञयासुरविप्रयोः ।
दत्त्वा सुवर्णशतकं ब्राह्मणाय च सादरम् ॥६३

इस प्रकार से देवगण और मुनिमण्डल ने उन का स्तवन करके फिर वे सब मानस में ही विरत हो गये थे । फिर उन सबने पीत वस्त्र से शोभित कृष्ण को वसुदेव के प्राङ्गण में देखा था ॥५६॥ हे मुने ! वह ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे कोई नूतन मेघ विद्युत् से युक्त है । मालती के पुष्पों की माला ऐसी दिखलाई दे रही थी जैसे बगुलों की पंक्ति उस मेघ से संयुत हो ॥६०॥ उनके कपाल में कस्तूरी से युक्त चन्दन का विन्दु मण्डल के आकार वाला लगा हुआ था वह ऐसा शोभित हो रहा था मानों जलद में कलंक से युक्त मृगांक हो ॥६१॥ श्रीकृष्ण का स्वरूप दो भुजाओं वाला, श्याम वर्ण से युक्त था जो परम कान्त और राधा के मनोहर कान्त थे । मन्द मुस्कान से युक्त परम प्रसन्न मुख वाले और वह भक्तों पर अनुग्रह के लिये विग्रह धारण करने वाले थे । इस प्रकार की शोभा से सयुत कृष्ण का सब ने दर्शन किया था ॥६२॥ फिर वसुदेव ने सुरगण और विप्रों की आज्ञा से शुभ कर्म का समारम्भ किया था । ब्राह्मणों को सुवर्ण की सौ मुद्राऐं आदर के साथ समर्पित की थीं ॥६३॥

देवेन्द्रांश्च मुनीन्द्रांश्च नमस्कृत्य पुरोहितम् ।
गणेशंच दिनेशंच वह्निंच शंकरं शिवाम् ॥६४
सम्पूज्य देवषट्कंच साक्षतं देव संसदि ।
उपचारैः षोडशभिः संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥६५
पुत्राधिवासनं चक्रे वेदमन्त्रेण संसदि ।
सम्पूज्य नानादेवांश्च दिक्पालांश्च नवग्रहान् ॥६६

दत्त्वा पञ्चोपचारांश्च भक्त्या षोड़शमातृकाः ।
दत्त्वा च वसुधारांञ्च सप्तवारान् घृतेन च ॥६७
चेदिराजं वसुं नत्वा सम्पूज्य प्रययौ पुनः ।
वृद्धिश्राद्धं सुनिर्वाप्य यत्किचिद्दैविकंतथा ॥६८
यज्ञं कृत्वा तु वेदोक्तं यज्ञसूत्रं ददौ मुदा ।
बलदेवाग्रजायैव कृष्णाय परमात्मने ॥६९
गायत्रींच ददौ ताभ्यां मुनिः सांदीपिनिस्तथा ।७०
भिक्षां ददौ च प्रथमं पार्वती परमादरात् ॥७१

देवेन्द्रों को, मुनीन्द्रों को, पुरोहित को नमस्कार करके गणेश, दिनेश, वह्नि, शंकर, शिवा और छं देवों का भलीभाँति पूजन करके देवों की संसद में अक्षतों के सहित सोलह उपचारों के द्वारा अर्चन किया था और फिर भक्ति भाव पूर्वक संयत हो गये थे ॥६४-६५॥ इसके उपरान्त वसुदेव ने अनेक देवों की, दिक्‌पालों की और नव ग्रहों की अर्चा करके संसद में वेद के मन्त्रों के द्वारा पुत्र का अधिवासन किया था ॥६६॥ भक्ति से षोड़श मातृकाओं को पंच उपचार देकर और सप्तवार घृत से वसुधारा देकर चेदिराज वसु को नमस्कार करके औरभलीभाँति पूजन करके फिर गये थे। वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दी मुख श्राद्ध को अच्छी तरह सम्पन्न करके तथा जो कुछ दैविक कर्म था उसको पूर्ण करके वसुदेव ने यज्ञ करके प्रसन्नता से वेदोक्त यज्ञ सूत्र दिया था। जो पहिले अग्रज बलदेव को दिया गया और फिर परमात्मा कृष्ण को दिया था ॥६७-६९॥ फिर सान्दीपिनि मुनि ने उन दोनों को गायत्री मन्त्र की दीक्षा तथा उपदेश दिा था। पार्वतो देवी ने सर्व प्रथम परम आदर के साथ उनको भिक्षा दो थी ॥७०-७१॥

प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां रत्नभूषणभूषिताम् ।
भिक्षां गृहीत्वा भगवान् सबलो भक्तिपूर्वकम् ॥७२
किंचिद्ददौ च गर्गाय किंचित् स्वगुरवे तथा ।
वैदिकं कर्म निर्वाप्य गर्गाय दक्षिणां ददौ ॥७३

देवांश्च भोजयमास ब्राह्मणांश्चापि सादरम् ।
ये ये समाययुर्यज्ञे ते च दत्वा शुभाशिषम् ॥७४
कृष्णाय बलदेवाय प्रहृष्टाः प्रयुगृहम् ।
नन्दः सभार्य्यो निर्वाप्य शुभकर्म सुतस्य वै ॥७५
क्रोड़े कृत्वा बलं कृष्णं चुचुम्ब वदनं तयोः ।
उच्चै रुरोद नन्दश्च यशोदा च पतिव्रता ॥
श्रीकृष्णस्तं समाश्वास्य बोधयामास यत्नतः ॥७६

प्रत्येक को रत्नों के भूषणों से भूषित भिक्षा दी थी । बलराम के सहित भगवान् कृष्ण ने भक्ति पूर्वक वह भिक्षा ग्रहण की थी ॥७२॥ उस भिक्षा में से कुछ तो गर्ग मुनि को दी थी जो आचार्य एवं उनके पुरोहित थे और कुछ अपने गुरु सान्दीपिनि को दी थी । इस प्रकार से इस वैदिक कर्म निर्वापित करके गर्गाचार्य को दक्षिणा दी थी ॥७३॥ देव गण को और ब्राह्मणों का आदर के सहित भोजन कराया था । इस उत्सव में जो जो भी यहाँ आये थे उन सबने इस यज्ञ में कृष्ण और बलदेव के लिये शुभ आशीर्वाद देकर परम प्रसन्न होते हुए वे सब अपने-अपने घर चले गये थे । नन्द ने भार्या के सहित अपने पुत्र का शुभ कर्म सम्पन्न करके कृष्ण और बलराम को अपनी गोद में बिठाकर उन दोनों के मुख चुम्बन किया था । फिर नन्द और पतिव्रता यशोदा बहुत ऊँचे स्वर से रुदन करने लगे थे । श्रीकृष्ण ने उनको समाश्वासन देकर यत्न पूर्वक समझाया था ॥७४-७६॥

सानन्दं गच्छ हे मातर्यशोदे तात ! सत्वरम् ।
त्वमेव माता पोष्ट्री त्वं पिता च परमार्थतः ॥७७
अवन्तिनगरं तात ! यास्यामि सबलोऽधुना ।
मुनेः सांदीपिनेः स्थानं वेदपाठार्थमीप्सितम् ॥७८
तत आगत्य सुचिरं काले भवति दर्शनम् ।
कालः करोति कलनं स च भेदं करोति च ॥७९
सर्वं कालकृतं मातर्भेदं संमीलनं नृणाम् ।
सुखं दुःखञ्च हर्षञ्च शोकं च मङ्गलालयम् ॥८०

मया दत्तञ्च तत्त्वंच योगिनामपि दुर्लभम् ।
सर्वं नन्दश्च सानन्दं त्वामेव कथयिष्यति ।।८१
इत्युक्त्वा जगतां नाथो वसुदेवसभां ययौ ।
तदाज्ञया क्षणं प्राप्य ययौ सांदीपिनेर्गृहम् ।।८२
वसुदेवं देवकीञ्च सम्भाष्य विनयेन च ।
नन्दः सभार्य्यः प्रययौ हृदयेन विदूयता ।।८३
मुक्तामणिं सुवर्णञ्च माणिक्यहीरकं तथा ।
वह्निशुद्धांशुकं रत्नं नन्दाय दवकी ददौ ।।८४

श्रीकृष्ण ने कहा—हे माता यशोदा ! हे तात ! आप दोनों आनन्द के साथ शीघ्र जाइये । आप ही मेरे पोषण करने वाली माता है और हे नन्द ! आप ही मेरे परमार्थ से पिता हैं ।।७७।। हे तात ! अब मैं भाई बलराम के सहित अवन्ति नगर में जाऊँगा और वहाँ पर सान्दीपिनि मुनि के स्थान पर अभीप्सित वेदों के अध्ययन के लिये जाना आवश्यक है ।।७८।। वहाँ से आकर बहुत अधिक काल में दर्शन होता है यह काल ही कलन किया करता है और यही भेद भी कर देता है ।।७९।। हे माता! मनुष्यों का भेद और संमीलन यह सभी काल के द्वारा ही कृत होता है । सुख, दुःख, हर्ष, शोक और मङ्गलालय सभी काल कृत है यह यागियों को भी अति दुर्लभ तत्व सब मैंने नन्द को दे दिया है । वह नन्द सब तुमको आनन्द के साथ कह देंगे ।।८१।। इतना कह कर जगतों के नाथ कृष्ण वसुदेव की सभा में चले गये थे फिर उनकी आज्ञा से शुभ समय पाकर सान्दीपिनि गुरु के घर को चले गये थे ।।८२।। इसके उपरान्त अपनी भार्या के साथ नन्द विनय पूर्वक वसुदेव और देवकी से सम्भाषण करके विदूयमान हृदय के साथ वहाँ से प्रस्थान कर गये थे ।।८३।। देवकी ने प्रस्थान करने के समय में नन्द को मुक्तामणि, सुवर्ण, माणिक्य, हीरक और वह्नि के समान शुद्ध वस्त्र विदाई में दिये थे ।।८४।।

श्वेताश्वंच गजेन्द्रंच सुवर्णं रथमुत्तमम् ।
नन्दाय कृष्णः प्रददौ वसुदेवश्च सादरम् ।।८५

तयोरनुव्रजम् विप्रा देवकीप्रमुखाः स्त्रियः ।
वसुदेवस्तथाक्रूरोऽप्ययुद्धवश्च ययौ मुदा ॥८६
कालिन्दीनिकटं गत्वा ते सर्वे रुरदुः शुचा ।
परस्परं च सम्भाष्य ते सर्वे स्वालयं ययुः ॥८७
कुन्ती सपुत्रा विधवा वसुदेवाज्ञया मुने ।
नानारत्नमणिं प्राप्य प्रययौ स्वालयं मुदा ॥८८
वसुदेवो देवकी च पुत्रकल्याणहेतवे ।
नानारत्नमणिं वस्त्रं सुवर्णं रजतं तथा ॥८९
मुक्तामाणिक्यहारं च मिष्टान्नं च सुधोपमम् ।
भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रददौ सादरं मुदा ॥९०
महोत्सवं वेदपाठं हरेर्नामैकमङ्गलम् ।
विप्राणां भोजनंचैव कारयामास यत्नतः ॥९१
ज्ञातीनां बान्धवानांच पुरस्कारं यथोचितम् ।
चकार मणिमाणिक्यमुक्तावस्त्रैर्मनोहरैः ॥९२

वसुदेव और कृष्ण ने नंद के लिये श्वेत अश्व, गजेन्द्र, सुवर्ण, उत्तम रथ बहुत आदर के साथ प्रदान किये थे ॥८५॥ जिस समय नन्द और यशोदा वहाँ से जाने लगे तो उन दोनों को विदा करने के लिये विप्र, देवकी प्रमुख जिनमें थी ऐसी अनेक स्त्रियाँ, वसुदेव, अक्रूर और उद्धव भी प्रसन्नता के साथ गये थे ॥८६॥ यमुना के निकट पहुँचकर वे सभी शोक से रुदन करने लगे थे और परस्पर में सम्भाषण करके वे सब अपने घरों को चले गये थे ॥८७॥ वसुदेव और देवकी ने अपने पुत्र के कल्याण के लिये अनेक रत्न मणियाँ, वस्त्र, सुवर्ण, रजत, मुक्ता माणिक्य के हार और अमृत के तुल्य मिष्टान्न भट्टों के लिये तथा ब्राह्मणों के लिये आदर और हर्ष के साथ दिये थे ॥८८-९०॥ महोत्सव, वेदों का पाठ, हरि के नाम का मङ्गल पाठ, विप्रों का भोजन यत्नपूर्वक कराया था ॥९१॥ जो अपनी ज्ञाति के लोग थे तथा जो बान्धवगण थे उन सबको वसुदेव, देवकी ने यथोचित मणि, माणिक्य, मुक्ता और मनोहर वस्त्रों के द्वारा पुरस्कार दिया था ॥९२॥

६६—सान्दीपिनिगुरुसमीपे श्रीकृष्णस्यगमनम्

कृष्णः सान्दीपिनेर्गेहं गत्वा च सबलो मुदा।
नमश्चकार स्वगुरुं गुरुपत्नीं पतिव्रताम् ॥१
शुभाशिषं गृहीत्वा च दत्त्वा रत्नं मणि हरिम्।
गुरुवे तस्य भार्य्यायै तमुवाच यथोचितम् ॥२
त्वत्तो विद्यां लभिष्यामि वांछितां वांछितं मम।
कृत्वा शुभक्षणं विप्र मां पाठय यथोचितम् ॥३
ओमित्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठः पूजयामास तं मुदा।
मधुपर्कप्राशनेन गवा वस्त्रेण चन्दनैः ॥४
मिष्टान्नं भोजयामास ताम्बूलञ्च सुवासितम्।
सुप्रियं कथयामास तुष्टाव परमेश्वरम् ॥५
परं ब्रह्म परं धाम हरमीश परात्पर।
स्वेच्छामयं स्वयं ज्योतिर्निर्लिप्तैको निरंकुशः ॥६
भक्तैकनाथ भक्तेष्ट भक्तानुग्रह विग्रह।
भक्तवाञ्छाकल्पतरो भक्तानां प्राणवल्लभ ॥७

इस अध्याय में विद्या का अध्ययन करने के लिये सान्दीपिनि गुरु के समीप में श्री कृष्ण के गमन का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—बलराम के साथ कृष्ण ने सान्दीपिनि के घर में पहुंचकर बड़े हर्ष के साथ अपने गुरु की परम पतिव्रता गुरुपत्नी को नमस्कार किया था ॥१॥ रत्न तथा मणि गुरु को समर्पित करके उनसे हरि ने शुभ आशीर्वाद प्राप्त किया था। इसके अनन्तर श्री कृष्ण ने उनकी भार्या से यथोचित कहा था। श्री कृष्ण ने कहा—हे विप्र! मैं आपसे अपनी इच्छित विद्या को प्राप्त करूँगा। आप शुभ क्षण में वाञ्छित करने की कृपा करें और मुझे यथोचित पाठन करें ॥२-३॥ मुनि ने 'ओम्' यह कह कर अर्थात् स्वीकार करके कृष्ण को प्रसन्नता से पूजित किया था। उनका मुनिश्रेष्ठ सान्दीपिनि ने मधुपर्क के प्राशन, गो, वस्त्र और चन्दन के द्वारा सत्कार किया था तथा मिष्टान्न का भोजन कराया था एवं सुवासित

ताम्बूल समर्पित किया था। सुप्रिय वचन कहे और परमेश्वर का स्तवन किया था ॥४-५॥ सान्दीपिनि ने कहा—आप तो साक्षात् परब्रह्म हैं—आप परम धाम—परमीश और पर से भी पर हैं। आप अपनी ही इच्छा से परिपूर्ण—स्वयं ज्योति स्वरूप—निर्लिप्त—एक और निरङ्कुश है ॥६॥ आप अपने भक्तों के एक मात्र स्वामी हैं—भक्तों के इष्टदेव और भक्तों के ऊपर ही अनुग्रह करने के लिये शरीर धारण करने वाले हैं। हे भगवन् ! आप भक्तों की वाञ्छा को पूर्ण करने के लिये कल्प वृक्ष के समान हैं और भक्तों के प्राणों के वल्लभ हैं ॥७॥

मायया बालरूपोऽसि ब्रह्मेशशेषवन्दितः।
मायया भुवि भूपालो भुवो भारक्षयाय च ॥८
योगिनो यं विदन्त्येवं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
ध्यायन्ते भक्तिनिवहा ज्योतिरभ्यन्तरे मुदा ॥९
द्विभुजं मुरलीहस्तं सुन्दरं श्यामरूपकम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं भक्तवत्सलम् ॥१०
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ।
लीलापांगतरंगैश्च निन्दितानंगमूर्च्छितम् ॥११
अलक्तभवनं तद्वत्पादपद्मं सुशाभनम् ।
कौस्तुभोद्भासितांगञ्च दिव्यमूर्ति मनोहरम् ॥१२
ईषद्धास्यप्रसन्नञ्च सुवेशं प्रस्तुतं सुरैः।
देवदेवं जगन्नाथं त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥१३
कोटिकन्दर्पलीलाभं कमनीयमनीश्वरम् ।
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणौघै न भूषितम् ।
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामभीप्सितम् ॥१४

आप ब्रह्मा—शेष—ईश के द्वारा वन्द्यमान होते हुए भी अपनी माया से ही इस बाल रूप में विद्यमान हैं। माया से ही इस भूतल में भूपाल हैं और इस वसुन्धरा के बढ़े हुए भार का क्षय करने के लिये ही अवतीर्ण हुए हैं ॥८॥ जिस आपको योगी लोग ब्रह्म ज्योति एवं सनातन जानते हैं। भक्त समुदाय प्रसन्नता से अपने ही अभ्यन्तर में ज्योति का ध्यान किया

करते हैं ॥९॥ आपके भक्तगण आपका ध्यान दो भुजाओं से युक्त, हाथ में मुरलिका लिये हुए सुन्दर श्याम रूप वाला किया करते हैं। उनके ध्यान में आपका स्वरूप चन्दन से उक्षित समस्त अंगों वाला, स्मित से अन्वित, भक्तों पर प्यार करने वाला, पीताम्बर धारण करने वाला और वनमाला से विभूषित है। आपका स्वरूप लीला से अपांगों की तरंगों द्वारा अनंग के मूच्छित को भी पराजित करने वाला है ॥१०-११॥ आपके चरण कमल अलक्त के भवन एवं अत्यन्त शोभा से युक्त है। कौस्तुभ मणि से आपका अंग उद्भासित है, आपकी परम सुन्दर दिव्य मूर्त्ति है ॥१२॥ मन्द हास्य से आपका मुख अत्यन्त प्रसन्न रहता है। आप सुन्दर वेश से युक्त तथा देवों के द्वारा स्तुत हैं। आप देवों के भी देव हैं, समस्त जगतों के नाथ हैं और त्रिलोकी को मोहित करते हैं ॥१३॥ आपका स्वरूप करोड़ों कामदेव की लीला की आभा वाला है, अनीश्वर तथा परम कमनीय है। आपका स्वरूप अमूल्य रत्नों के द्वारा निर्माण वाले भूषणों के समूह से भूषित नहीं है। आपका स्वरूप वर, वरेण्य, वरदान प्रदान करने वाला और वरदों का भी अभीप्सित है ॥१४॥

चतुर्णामपि वेदानां कारणानाञ्च कारणम्।
पाठार्थमतिप्रियस्थानमागतोऽसि च मायया ॥१५
पाठं ते लोकशिक्षार्थं रमणं गमनं रणम्।
स्वात्मारामस्य च विभोः परिपूर्णतमस्य च ॥१६
अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम।
पातिव्रत्यञ्च सफलं सफलञ्च तपोवनम् ॥१७
मद्वृक्षहस्तः सफलो दत्तं येनान्नमीप्सितम्।
तदाश्रमं तीर्थपरं तीर्थपादपदांकितम्।
तत्पादरजसा पूता गृहाः प्रांगणमुत्तमम् ॥१८
यस्य त्वत्पादपद्मञ्चैवावयोर्जन्मखण्डनम्।
तावद् दुःखञ्च शोकश्च तावद्भोगश्च रोगकः ॥१९
तावज्जन्मानि कर्माणि क्षुत्पिपासादिकानि च।
यावत्त्वत्पादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम् ॥२०

हे कालकाल भगवन् स्रष्टुः संहर्तुरीश्वरः।
कृपां कुरु कृपानाथ मायामोहनिकृन्तन ॥२१
इत्युक्त्वा साश्रुनेत्रा सा क्रोड़े कृत्वा हरिं पुनः।
स्वस्तनं पाययामास प्रेम्णा च देवकी यथा ॥२२

हे भगवन् ! आप चारों वेदों के तथा कारणों के भी कारण है। आप जो वेदों का अध्ययन करने के लिये मेरे प्रिय स्थान पर पधारे हैं, यह भी सबकी एक माया ही है। स्वात्माराम, परिपूर्णतम और विभु आपका यह पाठ, रमण, गमन और रण सभी लोक की शिक्षा के लिये ही है ॥१५-१६॥ गुरु पत्नी ने कहा—हे भगवन् ! आज मेरा जन्म और जीवन दोनों सफल एवं कृतार्थ हो गये हैं। मेरा यह पतिव्रत धर्म और तपोवन भी आज ही सफल हुआ है। मेरा यह दाहिना हाथ जिससे मैंने अभीप्सित अन्न दिया है। अब सफल हो गया है। तीर्थ के तुल्य आपके चरणों के चिह्न से अङ्कित यह आश्रम अब तीर्थ से भी कहीं अधिक पुण्य प्रद एवं पवित्र है आप के पादों की धूलि से मेरे गृह और यह प्रांगण उत्तम एवं परम पूत हो गया है ॥१७-१८॥ आपके यह चरण कमल हम दोनों पति-पत्नी के जन्म के खण्डन करने वाले हैं अर्थात् जन्म, मरण के भव, बन्धन से मुक्त कर देने वाले हैं। इस मानव के दुःख, शोक, भोग और रोग, जन्म, कर्म, क्षुधा, पिपासा आदि सभी तभी तक रहा करते हैं और इसे सताया करते हैं जब तक आपके चरणों के दर्शन नहीं होते हैं और आपका भजन नहीं होता है ॥१९-२०॥ हे भगवन् ! आप तो इस महा बलवान् काल के भी काल हैं और सृजन करने वाले तथा संहार करने वाले के भी ईश्वर हैं। हे कृपा नाथ ! अब हमारे ऊपर आप कृपा करियें आप इस सांसारिक माया के मोह का छेदन कर देने वाले हैं ॥२१॥ इस प्रकार से यह गुरु पत्नी ने श्रीकृष्ण से कहकर फिर उन्हें अपनी गोद में बिठा लिया था और बहुत ही प्रेमोद्रेक के साथ देवकी की भाँति अपना स्तन पिलाया था ॥२२॥

मातस्त्वं मां कथं स्तौषि बालं दुग्धमुखं सुतम्।
गच्छ गोलोकमिष्टञ्च स्वामिना सह साम्प्रतम् ॥२३

त्यक्त्वा प्राकृतिकं मिथ्या नश्वरञ्च कलेवरम् ।
विधायं निर्मलं देहं जन्ममृत्युजराहरम् ॥२४
इत्युक्त्वा चतुरो वेदान् पठित्वा मुनिपुंगवात् ।
मासेन परया भक्त्या दत्त्वा पुत्रं मृतं पुरा ॥२५
रत्नानाञ्च त्रिलक्षञ्च मणीनां पञ्चलक्षकम् ।
हीरकाणां चतुर्लक्षं मुक्तानां पञ्चलक्षकम् ॥२६
माणिक्यानां द्विलक्षञ्च वस्त्रं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
हारञ्च दुर्गया दत्तं हस्तरत्नांगुलीयकम् ॥२७

श्रीकृष्ण ने कहा -हे माता ! आप दुध मुँहे इस अपने पुत्र की जो एक बालक है क्यों इस प्रकार से स्तुति कर रही हैं ? अब आप अपने स्वामी के साथ अभीष्ट गो लोक नित्य धाम में जाइये ॥२३॥ अब आप इस मिथ्या, प्राकृतिक और नश्वर शरीर का त्याग करके जरा, मृत्यु और जन्म के अपहरण करने वाले निर्मल दिव्य देह धारण करिये । इतना कह कर श्रीकृष्ण ने एक ही मास में परम भक्ति के भाव से उस मुनियों में परम श्रेष्ठ सान्दीपिनि से चारों वेदों को पढ़ लिया था और इसके पूर्व मरे हुए उसके पुत्र को वापिस लाकर दे दिया था ॥२४-२५॥ श्रीकृष्ण ने अपना अध्ययन समाप्त कर गुरु की सेवा में परम पुष्कल दक्षिणा के रूप में तीन लाख रत्न, पाँच लाख मणि, चार लाख हीरे, पाँच लाख मुक्ता, दो लाख माणिक्य, तीनों लोकों में दुर्लभ वस्त्र, दुर्गा देवी के द्वारा दिया हुआ हार और हाथों की रत्नों की अंगूठी और दश लाख सुवर्ण की मुद्राऐं दी थीं ॥२६-२७॥

दशकोटि सुवर्णानां गुरवे दक्षिणां ददौ ।
अमूल्यरत्ननिर्माणं नारीसर्वांगभूषणम् ॥२८
गुरुप्रियायै प्रददौ बह्निशुद्धांशुकं वरम् ।
मुनिर्दत्त्वा च पुत्राय तत्सर्वं प्रियया सह ॥२९
सद्रत्नरथमारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम् ।
तमद्भुतं हरिं दृष्ट्वा प्रययौ स्वालयं मुदा ॥३०

एवं ब्रह्मण्यदेवस्य चरित्रं शृणु नारदम् ।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेद्भक्तिपूर्वकम् ।।३१
श्रीकृष्णे निश्चलां भक्ति लभते नात्र संशयः ।
अस्पष्टकीर्त्तिः सुयशा मूर्खोभवति पण्डितः ।।३२
इह लोके सुखं प्राप्य यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ।
तत्र नित्यं हरेर्दास्यं लभते नात्र संशयः ।।३३

अपने गुरु की पत्न को अमूल्य रत्नों के द्वारा निर्मित नारी के समस्त अंगों के सम्पूर्ण आभूषण, वह्नि के तुल्य परम शुद्ध एवं श्रेष्ठ वस्त्र दक्षिणा में श्रीकृष्ण ने दिये थे। मुनि ने यह सम्पूर्ण धन राशि अपने पुत्र को सौंप दी और अपनी प्रिय पत्नी के साथ सद्रत्नों से निर्मित रथ में समारूढ़ होकर हरि के अद्भुत दर्शन प्राप्त कर बहुत ही हर्ष के साथ उस अपने धाम उत्तम गो लोक में वह चले गये थे।२८-३०। हे नारद ! इस प्रकार से तुम ब्रह्मण्य देव के चरित्र को सुनो। यह स्तोत्र महान् पुण्य प्रद एवं पवित्र है। इसका जो भी कोई भक्ति पूर्वक पाठ किया करता है वह श्रीकृष्ण में निश्चल भक्ति की प्राप्ति किया करता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो अस्पष्ट कीर्त्ति वाला है वह सुन्दर यश वाला हो जाता है और मूर्ख इसके पाठ से महान् पण्डित हो जाता है। इस स्तोत्र का पाठक इस लोक में सुख प्राप्त करके अन्त समय में श्री हरि के पद की प्राप्ति करता है और वहाँ पर नित्य हरि को दासता का लाभ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।३१-३३।।

९७—द्वारकानिर्माणवर्णनम्

अथागत्य मधुपुरीं प्रणम्य पितरं विभुः ।
सबलो वटमूले च सस्मार गरुड़ं हरिः ।।१
सादरं लवणोदञ्च विश्वकर्माणमीप्सितम् ।
तत्याज गोपवेशञ्च नृपवेश दधार सः ।।२
एतस्मिन्नन्तरे चक्रमाजगाम हरिं स्वयम् ।
परं सुदर्शनं नाम सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ।।३

तेजसा हरिणा तुल्यं परं वैरिविमर्दनम् ।
तव्यर्थमस्त्रमस्त्राणां प्रवरं परमं परम् ॥४
रत्नयानं परःकृत्वा गरुड़ो हरिसन्निधिम् ।
विश्वकर्मासिशिष्यश्च जलधिःकम्पितस्तथा ॥५
हरिं प्रणेमुस्ते सर्वे मूर्ध्ना च भक्तिपूर्वकम् ।
सस्मितं सादरं यत्नात्तानुवाच क्रमाद्विभुः ॥६

इस अध्याय में द्वारका पुरी के निर्माण करने का वर्णन किया गया है। श्रीनारायण ने कहा—इसके अनन्तर विभु श्रीकृष्ण ने मधुपुरी में आकर अपने पिता वसुदेव को प्रणाम किया था और फिर बलराम के सहित वट के मूल में हरि ने गरुड़ को स्मरण किया था ॥१॥ आदर के सहित लवण सागर और इप्सित विश्वकर्मा का स्मरण भी किया था। उनने फिर अपना वह गोप वेश त्याग दिया था और एक राजा का वेश धारण कर लिया था ॥२॥ इसी बीच में सुदर्शन चक्र स्वयं ही हरि के समीप में आगया था। जिसकी प्रभा करोड़ों सूर्यों के समान थी और शुभ नाम सुदर्शन था ॥३॥ वह चक्र तेज से बिल्कुल हरि के समान था और वैरियों के मर्दन करने में परम प्रधान था। समस्त अस्त्र और शस्त्रों में वह अव्यर्थ था और सभी से परम श्रेष्ठ एवं सुन्दर था ॥४॥ रत्नों के यान को आगे करके हरि की सन्निधि में गरुड़ उपस्थित हुआ था तथा अपने शिष्य वर्ग को साथ लेकर विश्वकर्मा वहाँ उपस्थित हुआ था एवं कम्पित होता हुआ जलधि वहाँ आकर उपस्थित हो गया था ॥५॥ उन सबने हरि को भक्ति भाव के साथ मस्तक के द्वारा प्रणाम किया था। फिर विभु हरि स्मित के सहित तथा आदर पूर्व मन्त्र से उन सबसे बोले ॥६॥

हे समुद्र महाभाग स्थलञ्च शतयोजनम् ।
देहि मे नगरार्थञ्च पश्चाद्दास्यामि निश्चितम् ॥७
नगरं कुरु हे कारो त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
रमणीयञ्च सर्वेषां कमनीयञ्च योषिताम् ॥८

वाञ्छितंचापि भक्तानां वैकुण्ठसदृशं परम् ।
सर्वेषामपि स्वर्गाणां परम्परारमभीप्सितम् ॥९
दिवानिशं स्वर्गश्रेष्ठ सन्निधौ विश्वकर्मणः ।
स्थितिं कुरु महाभाग यावन्निर्मांति द्वारकाम् ॥१०
दिवानिशच मत्पार्श्वे चक्रश्रेष्ठ स्थितिं कुरु ।
ओ मत्युक्त्वा तु प्रययुः सर्वे चक्रं विना मुने ॥११
कंसस्य पितरं भद्रमुग्रसेनं महाबलम् ।
नृपं चकार नगरे क्षत्रियाणां सतामपि ॥१२
विजित्य च जरासन्धं निहत्य यवनं तथा ।
उपायेन महाभाग निर्माणक्रममीश्वरः ॥१३

श्रीकृष्ण ने कहा—हे महान् भाग वाले समुद्र देव ! इस समय मुझे एक नगर का निर्माण करने के लिये एक सौ योजन स्थल तुम देदो । इसके पीछे मैं निश्चित् दूँगा ॥७॥ हे कारो ! मेरे लिये तुम एक ऐसे सुन्दर एवं दिव्य नगर का निर्माण करो जो कि तीनों लोकों में दुर्लभ हो । वह नगर सबसे अधिक रमणीय होना चाहिए और नारियों के लिये बहुत ही कमनीय उस का निर्माण आवश्यक है ॥८॥ मेरे भक्तों के लिये भी वह वाच्छित होना चाहिए । यह नगर परम वैकुण्ठ के सदृश होवे । समस्त स्वर्गों की परम्परा में भी अभीप्सित इसकी रचना होनी चाहिए ॥९॥ हे श्रेष्ठ स्वर्ग ! एक दिवानिश तुम विश्वकर्मा की सन्निधि में अपनी स्थिति करो । हे महाभाग ! जब तक कि यह विश्वकर्मा द्वारका नगर का निर्माण करता है । ॥१०॥ हे श्रेष्ठ चक्र ! तुम भी एक अहो-रात्र पर्यन्त मेरे ही समीप में रहो । हे मुने ! सबने "ओम्"—अर्थात् स्वीकार है—ऐसा कहकर चक्र के अतिरिक्त वहाँ से प्रस्थान कर दिया था ॥११॥ कंस के पिता महान् बलवान् एवं परम भद्र उग्रसेन को समस्त ऋषियों के रहते हुए उनका नगर में श्रीकृष्ण ने नृप बना दिया था । ॥१२॥ जरासन्ध को पराजित करके और यवन का हनन करके हे महा-भाग ! उपाय के द्वारा निर्माण क्रम में ईश्वर ने सबका ध्वस्त कर दिया था ॥१३॥

शतयोजनपर्यन्तं नगरं सुमनोहरम् ।
पद्मरागैर्मरकतैरिन्द्रनीलैरनुत्तमैः ।।१४
दिवानिशं करिष्यन्ति यावन्निर्माणपूर्वकम् ।
यक्षैश्च सप्तभिर्लक्षैः कुबेरप्रेरितैरपि ।।१५
वेताललक्षैः कुष्माण्डलक्षैः शंकरयोजितैः ।
दानवैर्ब्रह्मरक्षोभिः शैलकन्यानियोजितैः ।।१६
करु दिव्यंच पत्नीनां सहस्राणांच षोड़श ।
अन्यपत्नीजनस्यापि चाष्टाधिकशतस्य च ।।१७
शिविरं परिखायुक्तमुच्चैः प्राकारवेष्टितम् ।
युक्तद्वादशशालं च सिंहद्वारपरिष्कृतम् ।।१८
युक्तं चित्रैर्विचित्रैश्च कृत्रिमैश्च कपाटकैः ।
निषिद्धवृक्षरहितं प्रसिद्धैश्च परिष्कृतम् ।।१९
सुलक्षणं चन्द्रवेधं प्रांगणंच तथैव च ।
यदूनामाश्रमं दिव्यं किंकराणां तनैव च ।।२०
सर्वप्रसिद्धं निलयमुग्रसेनस्य भूभृतः ।
आश्रमं सर्वतोभद्रं वसुदेवस्य मत्पितुः ।।२१

जब तक अहोरात्र तक नगर का निर्माण करेंगे तब तक जरासन्ध आदि के पराजय का कार्य समाप्त कर दिया था । श्रीकृष्ण ने आदेश दिया था कि कुबेर के द्वारा भेजे हुए सात लाख यक्षों—एक लाख बेताल—एक कूष्माण्ड—शङ्कर के द्वारा योजित दानव—ब्रह्म राक्षस जो शैल कन्या के द्वारा प्रेरित किये गये थे। इनके द्वारा नगर का सुन्दर निर्माण करो ।।१४—१६।। उस द्वारका नगरी में सोलह सहस्र पत्नियों तथा अन्य एक सौ आठ पत्नियों के लिये दिव्य शिविर होने चाहिए। जो परिखाओं से युक्त हों और ऊंचे २ प्राकारों से वेष्टित हों। इसके सिंह द्वार में द्वादश शालाऐं होवें और बहुत ही परिष्कृत होनी चाहिए ।।१७-१८।। इन सबमें चित्र—विचित्र और कृत्रिम कपाट रहने चाहिए । इनमें कोई भी निषिद्ध वृक्ष नहीं होंवे और जो प्रसिद्ध एवं उत्तम वृक्ष होते हैं उनकी शोभा से ये परिष्कृत बनाये जावें ।।१९।। सुन्दर लक्षण वाले

चन्द्रवेध इनमें प्राङ्गण की रचना करो। यदुओं के तथा सेवकों के साथ भी अत्यन्त दिव्य निर्मित किये जावें ॥२०॥ राजा उग्रसेन का जो आवास स्थान है वह इस नगरी में सबसे प्रसिद्ध एवं सुन्दर निर्मित होना चाहिए। मेरे पिता वसुदेव का आश्रम तो सर्व प्रकार से परम भद्र विरचित किया जावे ॥२१॥

के ते वृक्षाः प्रशस्ताश्च निषिद्धाश्चापि केचन।
भद्राभद्रप्रदाश्चापि तान् वदस्व जगद्गुरो ॥२२
केषामस्थिनियुक्तञ्च शिविरञ्च शुभाशुभम्।
दिशि कुत्र जल भद्रमभद्रञ्च वद प्रभो ॥२३
भद्रप्रदश्च को वृक्षो दिशि कुत्र प्रवर्त्तते।
किं प्रमाण गृहाणाञ्च प्राङ्गणानां सुरेश्वर ॥२४
मंगलं कुसुमोद्यानं दिशि कुत्र तरोस्तथा।
प्राकाराणां किं प्रमाणं परिखानां सुरेश्वर ॥२५
द्वाराणाञ्च गृहाणाञ्च प्राकाराणां प्रमाणकम्।
कस्य कस्य तरोः काष्ठं प्रशस्तं शिविरे प्रभो।
अमंगलं वा केषाञ्च सर्वं मां वक्तुमर्हसि ॥२६

विश्वकर्मा ने कहा—हे जगद्गुरो! प्रसिद्ध वृक्ष कौन—कौन से कहे जाते हैं और निषिद्ध वृक्ष कौन—से होते हैं। इनमें भद्र एवं अभद्र के प्रदान करने वाले जो भी हों उन्हें कृपा करके बताइये ॥२२॥ हे प्रभो! किनकी अस्थियां युक्त है और किस प्रकार का शिविर शुभ एवं अशुभ होता है? किस दिशा में जल अच्छा होता है और किस दिशा में वह जल का रहना अभद्र होता है ॥२३॥ कौन सा वृक्ष भद्रता के प्रदान करने वाला है और वह किस दिशा में रहना चाहिए। हे सुरेश्वर! गृहों का क्या प्रमाण होना चाहिए और प्राङ्गण कितने लम्बे—चौड़े होने चाहिए—यह भी बताने की कृपा करें ॥२४॥ किस वृक्ष का किस दिशा में कुसुमोद्यान होना चाहिए? प्राकारों (चहार दिवारी) का कितना प्रमाण होना चाहिए और प्राङ्गण का भी क्या प्रमाण भद्र होता है? ॥२५॥ हे

प्रभो ! आप कृपा करके यह बताइये कि द्वारों का—गृहों का और प्राकारों का प्रमाण कितना और क्या होना चाहिए जो शुभ और उत्तम होता है। शिविर में किस—किस वृक्ष का काष्ठ शुभ एवं प्रशस्त होता है तथा किन वृक्षों का काष्ठ अमङ्गल कारक होता है—यह सब मुझे बताने को आप योग्य हैं ॥२६॥

आश्रमे नारिकेलश्च गृहिणांच धनप्रदः ।
शिविरस्य यदीशाने पूर्वे पुत्रप्रदस्तरुः ॥२७
सर्वत्र मगलार्हश्च तरुराजो मनोहरः ।
रसालवृक्षः पूर्वस्मिन् नृणां सम्पत्प्रदस्तथा ॥२८
शुभप्रदश्च सर्वत्र सूरकारो निशामय ।
विल्वश्च पनसश्चव जम्बीरो बदरी तथा ॥२९
प्रजापदश्च पूवस्मिन् दक्षिणे धनदस्तथा ।
सम्पत्प्रदश्च सर्वत्र यतो हि वर्द्धते गृही ॥३०
जम्बूवृक्षश्च दाड़िम्बः कदल्यांम्रातकस्तथा ।
बन्धुप्रदश्व पूर्वस्मिम् दक्षिणे मित्रदस्तथा ॥३१
सर्वत्र शुभदश्चैव धनपुत्रशुभप्रदः ।
हर्षप्रदो सुवाकश्च दक्षिणे पश्चिमे तथा ॥३२
ईशाने सुखदश्चैव सवत्रैव निशामय ।
सर्वत्र चम्पकः शुद्धो भुवि भद्रप्रदस्तथा ॥३३
अलाम्बुश्चापि कूष्माण्डमायाम्बुश्च सकिशुकः ।
खर्जुरी कर्कटी चापि शिविरे मंगलप्रदा ॥३४
वास्तूककारविल्वश्च वार्त्ताकुश्च शुभप्रदः ॥३५

श्री भगवान् ने कहा—गृहियों के आश्रमों में नारियल का वृक्ष धन के प्रदान करने वाला होता है यह शिविर के ईशान दिशा में होना चाहिए, यदि पूर्व दिशा में होता है तो यह वृक्ष पुत्र के प्रदान करने वाला है ॥२७॥ वृक्षों का राजा रसाल (आम्र) का वृक्ष परम मनोहर और सभी जगह मङ्गल प्रद होता है। यह मनुष्यों को सम्पत्ति के प्रदान करने वाला है ॥२८॥ इसी तरह से सूरकार, विल्व, पनस, जम्बीर और बदरी

का वृक्ष सर्वत्र शुभ प्रद होते हैं ।।२९।। पूर्व में प्रजा का दाता, दक्षिण में धन के प्रदान करने वाला और सभी जगह सम्पत्ति का प्रदाता होता है। इससे गृही की वृद्धि हुआ करती है ।।३०।। जम्बू वृक्ष,दाड़िम वृक्ष, कदली और आम्र तरु पूर्व दिशा में बन्धु प्रदाता और दक्षिण में मित्रदाता होते हैं ।।३१।। सर्वत्र शुभ प्रद है और धन, पुत्र और शुभ का प्रदान करने वाला है। दक्षिण और पश्चिम में हर्षप्रद और सुवाक होता है ।।३२।। ईशान में सुखदाता और सर्वत्र ही है यह निशामय अर्थात् श्रवण करो। चम्पक का तरु सर्वत्र शुद्ध और भूतल में मङ्गप्रद होता है ।।३३।। अलाम्बु, कूष्ठमाण्ड मायाम्बु तथा किंशुक, खजूरी, कर्कटी के वृक्ष भी शिविर में मंगल के प्रदान करने वाले होते हैं ।।३४।। वास्तूक, कारविल्व और वान्ताकु के वृक्ष भी शुभप्रद होते हैं ।।३५।।

लताफलं च शुभदं सर्वं सर्वत्र निश्चितम् ।
प्रशस्तं कथित कारो निषिद्धंच निशामय ।
वन्यवृक्षो निषिद्धश्च शिविरे नगरेऽपि च ।।३६
वटो निषिद्धः शिविरे नित्यं चोरभयं यतः ।
नगरेषु प्रसिद्धश्च दर्शनात् पुण्यदस्तथा ।।३७
नषिद्धः शाल्मलिश्चैव शिविरे नगरे पुरे ।
दुःखप्रदश्च सततं भूमिपानां सदापि च ।।३८
न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च ।
विद्यामतिनिषिद्धश्च सततं दुःखदस्तथा ।।३९
हे कारो तिन्तिड़ीवृक्षो यत्नात्त परिवर्जयेत् ।
शतेन धनहानिः स्यात् प्रजाहानिर्भवेद् ध्रुवम् ।।४०
शिविरेऽतिनिषिद्धश्च नगरे किंचिदेव च ।
न निषिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च ।।४१
विद्यामतिनिषिद्धश्च प्राज्ञस्तं परिवर्जयेत् ।
खर्जूरश्च गहुश्चैव निषिद्धः शिविरे तथा ।।४२

हे कारो ! लता फल सभी सर्वत्र निश्चित रूप से शुभ देने वाले हुआ करते हैं। अब तक मैंने जो वृक्ष प्रशस्त होते हैं उनका वर्णन कर दिया

है। अब जो निषिद्ध है उनका श्रवण करो ।।३६।। शिविर और नगर में भी जो जंगली वृक्ष होते हैं वे निषिद्ध माने जाते हैं। वट का वृक्ष शिविर में निषिद्ध होता है क्यों कि उससे नित्य ही चोरों का भय रहा करता है। नगर में यही वट का वृक्ष प्रसिद्धि है क्योंकि इसके दर्शन से पुण्य होता है ।।३७।। शालमलिका वृक्ष शिविर, नगर और पुर सर्वत्र निषिद्ध कहा जाता है, यह सर्वदा राजाओं को दुःख प्रदान करने वाला होता है ।।३८।। ग्रामों में और नगरों में यह निषिद्ध नहीं होता है और न प्रसिद्ध ही है । यह विद्या, मति को निषिद्ध है और निरन्तर दुःख देता है ।।३९।। हे कारो ! तिन्तडीक के वृक्ष का ये यत्न पूर्वक परिवर्तन कर देना चाहिए। इस से सैकड़ों के धन की हानि होतो है और निश्चय ही प्रजा की हानि भी इससे हुआ करती है ।।४०।। इस वृक्ष का शिविर में होना तो अत्यन्त ही निषिद्ध होता है और नगर में भी यह कुछ ही निषेध होता है । ग्रामों में और नगरों मं तिन्तड़ीक तरु का निषेध नहीं होता है और न वहाँ यह प्रसिद्ध ही होता है ।।४१।। यह विद्यामति निषिद्ध है। अतः प्राज्ञ पुरुष को इसका परिवर्जन ही कर देना चाहिए। खजूर और गहु के वृक्षों का शिविर में निषेध होता है ।।४२।।

गजानामस्थिशुभदमश्वानांच्र तथैवच ।
कल्याणमुच्चैःश्रवसां वास्तौ स्थापनकारिणाम् ।।४३
न शुभप्रदमन्येषामुच्छिन्नकारणं परम् ।
वानराणां नराणांच गर्दभानां गवामपि ।।४४
कुक्कुटानां शृगालानां मार्जाराणामभद्रकम् ।
भेटकानां शूकराणां सर्वेषांच शुभप्रदम् ।।४५
ईशाने चापि पूर्वस्मिन् पश्चिमे च तथोत्तमे ।
शिविरस्य जलं भद्रमन्यत्राशुभमेव च ।।४६
दीर्घे प्रस्थे समानंच न कुर्य्यान्मन्दिरं बुधः ।
चतुरस्रे गृहे कारो गृहिणां धननाशनम् ।।४७
दीर्घः प्रस्थः परिमितो नेत्रांकेनापि संहृतम् ।
शून्येन रहितं भद्रं शून्यं शन्यप्रदं नृणाम् ।।४८

प्रस्थे हस्तद्वयात् पूर्वं दीर्घे हस्तत्रयं तथा।
गृहाणां शुभदं द्वारं प्राकारस्य गृहस्य च ॥४९

गजों की अस्थि शुभ प्रदान करने वाली होती है। इसी प्रकार से अश्वों की अस्थियाँ भी शुभ प्रद होती हैं। वास्तु में स्थापन कारी उच्चैःश्रवाओं की अस्थि कल्याणकर है। अन्यों की अस्थि शुभप्रद नहीं है किन्तु परम उच्छिन्न कारक है। बानरों, नरों, गर्दभों, गौओं कुक्कुटों, शृगालों तथा मार्जारों की अस्थि अभद्र करने वाली है। मेढक, शूकर और अन्य सबकी शुभप्रद होती हैं ॥४३-४५॥ ईशान, पूर्व और पश्चिम में शिविर के अन्दर जल का स्थान उत्तम एवं भद्र होता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान में अशुभ हुआ करता है ॥४६॥ बुध पुरुष को दीर्घ प्रस्थ में समान मन्दिर नहीं करना चाहिए। हे कारो! चतुरस्र गृह में धन का नाश होता है ॥४७॥ दीर्घ प्रस्थ परिमित होना चाहिए जो नेत्राङ्ग के द्वारा संहृत हो और शून्य से रहित होवे। भाग देने पर यदि शून्य शेष हो तो मनुष्यों को वह शून्य प्रद ही हुआ करता है ॥४८॥ प्रस्थ में दो हाथ से पूर्व और दीर्घ में तीन हाथ गृहों का द्वार शुभ देने वाला होता है। इसी प्रकार से प्राकार का और गृह दोनों का होता है ।४९।

न मध्यदेशे कर्त्तव्यं किञ्चिन्न्यूनाधिके शुभम्।
चतुरस्रं चन्द्रवेधं शिविरं मंगलप्रदम् ॥५०
अभद्रदं सूर्य्यवेधं शिविरं मङ्गलप्रदम्।
अभद्रदं सूर्य्यवेधं प्रांगणंच तथैव च ॥५१
शिविराभ्यन्तरे भद्रा स्थापिता तुलसी नृणाम्।
धनपुत्रप्रदात्री च पुण्यदा हरिभक्तिदा ॥५२
प्रभाते तुलसीं दृष्ट्वा स्वर्णदानफलं लभेत्।
मालती यूथिका कुन्दमाधवी केतकी तथा ॥५३
नागेश्वरं मल्लिकांच कांचनं वकुलं शुभम्।
अपराजिता च शुभदा तेषामुद्यानमीप्सितम् ॥५४
पूर्वे च दक्षिणेचैव शुभदं नात्र संशयः।
ऊर्ध्वं षोड़शहस्तेभ्यो नैव कुर्य्याद् गृहं गृही ॥५५

ऊर्ध्वं विंशतिहस्तेभ्यः प्राकारं न शुभप्रदम् ।
सूत्रधारं तैलकारं स्वर्णकारं च हीरकम् ॥५६

द्वार मध्य देश में कभी नहीं रखना चाहिए। कुछ थोड़ा सा न्यून वा अधिक होना चाहिए। चतुरस्र और चन्द्रवेध शिविर मंगल के प्रदान करने वाला होता है ॥५०॥ मंगलप्रद शिविर यदि सूर्य वेध होता है तो अभद्र का दाता होता है। इसी प्रकार से सूर्यवेध प्रांगण भी अभद्र दाता है ॥५१॥ शिविर के अन्दर में मनुष्यों के लिये तुलसी की स्थापना बहुत ही भद्रा होती है। यह स्थापित की हुई तुलसी मानवों को धन और पुत्र की प्रदान करने वाली—पुण्य देने वाली और हरि की भक्ति प्रदान करने वाली होती है ॥५२॥ प्रातः काल में तुलसी का दर्शन करने से स्वर्ण के दान क पुण्य का फल होता है। मालवी—यूथिका—कुन्द—माधवी—केतकी—नागेश्वर—मल्लिका—काञ्चन और बकुल तथा अपराजिता शुभद होते हैं। उनका ही उद्यान भी अभीप्सित होता है ॥५३-५४॥ उद्यान पूर्व दिशा में तथा दक्षिण दिशा में शुभ—प्रदायक होता है—इसमें कुछ भी संशय नही है। गृही को अपना गृह सोलह हाथ से ऊंचा कभी नहीं बनवाना चाहिए ॥५५॥ बीस हाथ से ऊंचा प्राकार शुभप्रद नहीं होता है। सूत्रधार—तैलकार—स्वर्णकार और हीरक को ग्राम के मध्य में स्थापित नहीं करना चाहिए ॥५६॥

एतेषामतिरिक्तानां शिविरे काष्ठमीप्सितम् ।
वृक्षं च वज्रहस्तं च भूधरो वर्जयेद्बुधः ॥५७
पूत्रदारधनं हन्यादित्याह कमलोद्भवः ।
कथितं लोकशिक्षार्थं कुरु काष्ठं विना पुरीम् ॥५८
शुभक्षणंचाप्यधुना गच्छ वत्स यथा सुखम्
विश्वकर्मा हरिं नत्वा जगामपक्षिणासह ॥५९
समुद्रस्य समीपंच वटमूलं मनोहरम् ।
सुष्वाप तत्र नक्तं च कारुश्च पक्षिणा सह ॥६०
स्वप्ने द्वारवतीं रम्यां ददर्श गरुड़स्तथा ।
यत्किंचित् कथितं कृष्णेन परमात्मना ॥६१

तदेव लक्षणं सर्वं ददर्श नगरे मुने ।
कारुं हसन्ति स्वप्ने च सर्वे ते शिल्पकारिणः ॥६२
गरुड़ं गरुड़ाश्चान्ये बलवन्तश्च पक्षिणः ।
बुद्धो ददर्श गरुड़ो विश्वकर्मा च लज्जित ॥६३
अतीव द्वारकां रम्यां शतयोजनविस्तृताम् ।
ब्रह्मादीनांच नगरं विजित्य च विराजिताम् ।
तेजसाच्छादितं सूर्यं रत्नानांच परिष्कृताम् ॥६४

निम्ब—वट—शालमलि—एरण्ड आदि के अतिरिक्त वृक्षों का काष्ठ शिखिर में ईप्मित होता है। बुध पुरुष को वृक्ष वज्रहस्त और भूधर वर्जित कर देना चाहिए ॥५७॥ कमलोद्भव ब्रह्मा ने कहा है कि ये पुत्र—द्वारा और धन का हनन कर देते हैं। हमने यह सब लोक की शिक्षा के लिये कह दिया है। हमारी पुरी का निर्माण बिना ही काष्ठ के करो ॥५८॥ इसी समय तुम हे वत्स ! जाओ क्यों कि यहो इसके निर्माण आरम्भ करने का शुभ क्षण है। तुम सुख पूर्वक यहाँ से वहाँ चले जाओ। विश्वकर्मा भी हरि को प्रणाम करके पक्षी गरुड़ के साथ उसी समय चला गया था ॥५९॥ समुद्र के समीप में एक परम सुन्दर वट का मूल है। वहाँ पर वह कारुविश्वकर्मा पक्षी के सहित रात्रि में सो गया था ॥६०॥ गरुड़ ने स्वप्न में परम रम्य द्वारावती को देखा था जैसी कि परमात्मा कृष्ण ने कारु से निर्माण करने के लिये आज्ञा दी थी और जो कुछ भी उससे कहा था ॥६१॥ हे मुने ! नगर में वही सब लक्षण देखे थे। वे सभी शिल्पकारी कारु की स्वप्न में हँसी उड़ा रहे थे ॥६२॥ और बलवान् पक्षी तथा गरुड़ को हँसा रहे थे। जगकर गरुड़ ने देखा था कि विश्वकर्मा बहुत ही लज्जित—सा हो रहा था ॥६३॥ गरुड़ ने उस द्वारका को भी देखा जो अतीव रम्य और सौ योजन विस्तार वाली थी। वह द्वारका इतनी सुन्दर एवं सुशोभित थी कि उसने ब्रह्मा आदि की पुरियों को भी जीत कर पराजित कर दिया था। वह अति उत्तम जाति के रत्नों से पूर्ण तया परिष्कृत थी और उसने अपने तेज से सूर्य को भी समाच्छादित—सा कर दिया था ॥६४॥

६८—रुक्मिण्युद्वाहप्रस्तावर्णनम्

अथ वैदर्भराजेन्द्रो महाबलपराक्रमः ।
विदर्भदेशे पुण्यात्मा सत्यशीलश्च भीष्मकः ॥१
राजा नारायणांशश्च दाता च सर्वसम्पदाम् ।
धर्मिष्ठश्च गरीयांश्च वरिष्ठश्चापि पूजितः ॥२
तस्य कन्या महालक्ष्मी रुक्मिणी योषितां वरा ।
अतीवसुन्दरी रम्या रमा रामासुपूजिता ॥३
नवयौवनसम्पन्ना रत्नाभरणभूषिता ।
तप्तकांचनवर्णाभा तेजसोज्ज्वलिता सती ॥४
शुद्धसत्वस्वरूपा सा सत्यशीला पतिव्रता ।
शान्ता दान्ता नितान्ता चाप्यनन्तगुणशालिनी ॥५
शरत्पूर्णेन्दुशोभाढ्यां शरत्कमललोचनाम् ।
विवाहयोग्यां युवतीं लज्जानम्राननां शुभाम् ॥६
सहसा चिन्तितो धर्मो धर्मशीलश्च सुव्रतः ।
सुतां पप्रच्छ पुत्रांश्च ब्राह्मणांश्च पुरोहितान् ॥७

इस अध्याय में रुक्मिणी के उद्वाह के प्रस्ताव का निरूपण किया जाता है । नारायण ने कहा—इसके अनन्तर वैदर्भ देश का राजेन्द्र महान् बल और पराक्रम वाला था । विदर्भ देश में वह भीष्मक परम पुण्यात्मा तथा सत्यशील था ॥१॥ वह राजा नारायण का अंश था और समस्त सम्पदाओं को दान करने वाला था । वह बहुत ही अधिक धर्मिष्ठ—गरीयान्—वरिष्ठ और पूजित था ॥२॥ उस राजा की एक कन्या रुक्मिणी नाम वाली थी जो महालक्ष्मी रूपिणी और योषितों में सर्व श्रेष्ठ थी । यह रुक्मिणी अत्यन्त सुन्दरी रूप—लावण्य से परम रम्य—रमा तथा रामाओं में पूजित थी ॥३॥ यह नूतन यौवन से युक्त थी तथा रत्नों के आभूषणों से विभूषित थी । इस सती का वर्ण तपे हुए सुवर्ण के वर्ण के तुल्य था और अपने तेज से उज्ज्वलित हो रही थी ॥४॥ यह शुद्ध सत्त्व के स्वरूप से सम्पन्न थी—सत्य शील वाली एवं परम पतिव्रता नारी

थी। यह नितान्त शान्त एवं दान्त थी तथा अनन्त गुणों से शोभा सम्पन्न थी ॥५॥ शरत्काल के पूर्ण चन्द्र की शोभा से समन्वित और शरत्काल में विकसित कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों वाली—लज्जा से विनम्र मुख वाली विवाह कर देने के योग्य शुभ युवती के रूप में रहने वाली अपनी पुत्री को देख कर राजा भीष्मक सहसा अतीव चिन्तित हो गया था क्यों कि वह धर्म के स्वरूप वाला—धर्म के शील स्वभाव से संयुत और सुव्रत था। उसने अपने पुत्रों से-ब्राह्मणों से और पुरोहितों से पूछा था ॥६-७॥

कं वृणोमि सुतार्थञ्च वरार्हं प्रवरं वरम्।
मुनिपुत्रं देवपुत्रं राजेन्द्रसुतमीप्सितम् ॥८
विवाहयोग्या कन्या मे वर्द्धमाना मनोहरा।
शीघ्रं पश्य वरं योग्यं नवयौवनसंस्थितम् ॥९
धर्मशीलं सत्यसन्धं नारायणपरायणम्।
वेदवेदाङ्गविज्ञंच पण्डितं सुन्दरं शुभम् ॥१०
शान्तं दान्तं क्षमाशीलं गुणिनं चिरजीविनम्।
महाकुलप्रसूतञ्च सर्वत्रैव प्रतिष्ठितम् ॥११
राजेन्द्र त्वञ्च धर्मज्ञो धर्मशास्त्रविशारद।
पूर्वाख्यानञ्च वेदोक्तं कथयामि निशामय ॥१२
भुवो भारावतरणे स्वयं नारायणो भुवि।
वसुदेवसुतः श्रीमान् परिपूर्णतमः प्रभुः ॥१३
विधातुश्च विधाता स ब्रह्मेशशेषवन्दितः।
ज्योतिः स्वरूपः परमो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥१४

राजा भीष्मक ने कहा—मैं अपनी पुत्री के लिये वर होने के योग्य परम श्रेष्ठ वर किसको वरण करूं ? मैं किसी मुनि के पुत्र को—देव-तनय को या किसी अभीप्सित राजेन्द्र के सुत को इसके वर के लिये वरण करूं ? आपकी क्या सम्मति है ? ॥८॥ मेरी कन्या यह रुक्मिणी परम सुन्दरी बड़ी होकर विवाह कर देने के योग्य हो गई है। इस कन्या के लिये नव यौवन से सुसम्पन्न कोई श्रेष्ठतम एवं सुयोग्य वर शीघ्रातिशीघ्र देखो ॥९॥ वर इसके लिये कोई ऐसा वर देखो जो धर्मशील—सत्य

प्रतिज्ञा वाला—नारायण में परायण—वेद और वेदाङ्गों का ज्ञाता—पण्डित–अत्यन्त सुन्दर—शुभ—शान्त स्वभाव वाला–दमन शील–क्षमा के स्वभाव वाला—गुणों से सम्पन्न—चिरजीवी—महान् कुल में समुत्पन्न और सर्वत्र अपनी प्रतिष्ठा रखने वाला होना चाहिए ॥१०-११॥ शतानन्द ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप तो स्वयं धर्म के ज्ञाता और धर्मशास्त्र के भी महान् मनीषी हैं। मैं एक पूर्व का आख्यान कहता हूँ उसका आप श्रवण करिये जो कि वेदोक्त है ॥१२॥ इस वसुन्धरा के भार को हटाने के लिये स्वयं नारायण इस भूतल में आये हैं जो कि श्रीमान् परिपूर्णतम प्रभु वसुदेव के सुत के स्वरूप में हैं ॥१३॥ वे इस जगत् के विधाता के भी विधाता और ब्रह्मा—ईश तथा शेष के द्वारा परम वन्दित चरण हैं। वे ज्योतिः स्वरूप तथा अपने भक्तों पर परम अनुग्रह करने के लिय ही शरीर धारण करने वाले हैं ॥१४॥

परमात्मा च सर्वेषां प्राणिनां प्रकृतेः परः।
निर्लिप्तश्च निरीहश्च साक्षी च सर्वकर्मणाम् ॥१५
राजेन्द्र तस्मै कन्याञ्च परिपूर्णतमाय च।
दत्त्वा यास्यसि गोलोकं पितृभिः शतकैः सह ॥१६
लभ सारूप्यमुक्तिञ्च कन्यां दत्त्वा परत्र च।
इहैव सर्वपूज्यश्च भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥१७
सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा महालक्ष्मीञ्च रुक्मिणीम्।
समर्पणं कुरु विभो कुरुष्व जन्मखण्डनम् ॥१८
विधात्रा लिखितो राजन् सम्बन्धः सर्वसम्मतः।
द्वारका नगरे कृष्णं शीघ्रं प्रस्थापय द्विजम् ॥१९
बालकोऽहं महाराज तद्गुणं कथयामि किम्।
शतानन्दवचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नपः ॥२०
एतस्मिन्नन्तरे रुक्मिश्चुकोप नृपनन्दनः।
कम्पितो धर्मयुक्तश्च रक्तास्यो रक्तलोचनः ॥२१
उवाच पितरं विप्रं सभायामस्थिरस्तदा।
उत्थाय तिष्ठन् पुरतः सर्वेषाञ्च सभासदाम् ॥२२

वह सभी प्राणियों के परमात्मा हैं तथा प्रकृति से भी पर हैं। वे निर्लिप्त-निरीह एवं सम्पूर्ण कर्मों के साक्षी हैं ।।१५।। आप मेरी सम्मति से तो उनको इस कन्या को देकर सारूप्य मुक्ति परलोक में प्राप्त करें। इस सत्कर्म करने से आप यहाँ लोक में भी सबके पूज्य हो जायँगे। अतएव विश्व के गुरु के भी आप गुरु बन जाइये। हे रान्जेद्र ! परिपूर्णतम वसुदेव सुत श्रीकृष्ण के लिये अपनी कन्या समर्पित करके आप अपने पितृगणों के शतकों के सहित नित्य गोलोक धाम को प्राप्त करेंगे ।।१६-१७।। हे विभो ! महालक्ष्मी रुक्मिणी के साथ अपना सर्वस्व दक्षिणा में देकर यह उत्तम समर्पण आप करिये और अपने जन्म का खण्डन अर्थात् आवागमन से छुटकारा करिये ।।१८।। हे राजन् ! यह सर्व सम्मत उत्तम सम्बन्ध है जो कि विधाता ने पहिले से ही लिख दिया है। अब आप शीघ्र ही द्वारका नगरी में श्रीकृष्ण के समीप ब्राह्मण को भेज दीजिए ।।१९।। हे महाराज ! मैं तो एक बाल जैसा हूँ उनके गुण गण का क्या वर्णन कर सकता हूँ। शतानन्द के हर्ष वचन का श्रवण करके नृप प्रफुल्ल मुख वाला अर्थात् परम प्रसन्न हो गया था ।।२०।। इसी बीच में नृप का पुत्र रुक्मि अत्यन्त कुपित हो गया था। वह क्रोध के आवेश में कांप रहा था—उसका मुख लाल हो गया था तथा उसके नेत्र भी रक्त वर्ण वाले हो गये थे एवं धर्म से युक्त होकर खड़ा हो गया था ।।२१।। वह रुक्मि उस सभा में समस्त सभासदों के सामने उठ कर खड़ा हो गया था और उस समय वह अस्थिर होते हुए अपने पिता से बोला तथा विप्र से भी कहने लगा ।।२२।।

शृणु राजेन्द्र वचनं हितं तथ्यं प्रशंसितम् ।
त्यज वाक्यं भिक्षुकाणां लोभिनां क्रोधिनामहो ।।२३

नर्त्तकानाञ्च वैश्यानां भट्टानामर्थिनामपि ।
कायस्थानांच भिक्ष्णामसत्यं वचनं सदा ।।२४

घटकानां नाटकानां स्त्रीलुब्धानांच कामिनाम् ।
दरिद्राणांच मूर्खाणां स्तुतिपूर्वं वचः सदा ।।२५

निहत्य कालयवनं राजेन्द्रं पुरतो भिया ।
उपायेन महाबाहो लब्धं कृष्णेन तद्धनम् ॥२६

द्वारकायां धनी कृष्णो यवनस्य धनेन च ।
जरासन्धभयेनैव समुद्राभ्यन्तरे गृही ॥२७

जरासन्धशतं चैव क्षणेनैव च लीलया ।
क्षमोऽहं हन्तुमेकाकी राज्ञश्चान्यस्य का कथा ॥२८

रुक्मि ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप मेरा हितकर—तथ्य और परम प्रशस्त वचन श्रवण कीजिए । इन भिक्षुक ब्राह्मणों के वचन का त्याग कर देवें । ये लोग तो लोभी और परम क्रोधी हुआ करते हैं ॥२३॥ जो नृत्य किया करते हैं उनका—वेश्याओं का—भाटों का—याचकों का—कायस्थों का और भिक्षुकों का वचन सदा असत्य ही हुआ करता है ॥२४॥ घटकों का—नाटकों का—स्त्रियों के लुब्धकों का—कामियों का—दरिद्रों का और मूर्खों का वचन सर्वदा स्तुति से परिपूर्ण होता है ॥२५॥ हे महाबाहो ! कृष्ण ने सामने भय से उपाय के द्वारा राजेन्द्र कालयवन को मार कर उसका समस्त धन प्राप्त कर लिया है ॥२६॥ इस समय उसी कालयवन के धन से द्वारका में कृष्ण धनवान् बना हुआ है और जरासन्ध के भय से ही समुद्र के अन्दर अपना गृह बना कर रहा करता है ॥२७॥ जरासन्ध जैसे सैकड़ों को एक ही क्षण मात्र में मैं लीला से ही मार देने में समर्थ हूँ अन्य राजा की तो बात ही क्या है ॥२८॥

दुर्वाससश्च शिष्योऽहं रणशास्त्रविशारदः ।
ध्रुवं भीष्मक तेनैव विश्वं संहर्तुमीश्वरः ॥२९
मत्समः परशुरामश्च शिशुपालश्च मत्समः ।
सखा च बलवान् शूरः स्वर्गं जेतुं स च क्षमः ॥३०

महेन्द्रं सगणं जेतुमहमीशः क्षणेन च ।
जित्वा युद्धे जरासन्धं दुर्बलं योगिनं नृप ॥३१
अहङ्कारयुतः कृष्णो वीरं स्वं मन्यते धिया ।
यद्यायास्यति मद्ग्रामं विवाहं कर्त्तुमीप्सितम् ॥३२

ध्रुवं प्रस्थापयिष्यामि क्षणेन यममन्दिरम् ।
अहो नन्दस्य वैश्यस्य तस्मै गोरक्षकाय च ॥३३
साक्षाज्जाराय गोपीनां गोपालोच्छिष्टभोजिने ।
करोषि कन्यां स्वीकारं देवयोग्यांच रुक्मिणीम् ॥३४
दातुमिच्छसि वाक्येन भिक्षुकस्य द्विजस्य च ।
राजेन्द्रबुद्धिहीनोऽसिवचनाद्वद्गलस्यच ॥३५

मैं दुर्वासा मुनि का शिष्य हूँ और रण करने के शास्त्र का पूर्ण पण्डित हूँ । हे भीष्मक ! मैं उसी अपने कौशल के बल से निश्चय ही इस विश्व का संहार करने की सामर्थ्य रखने वाला हूँ ॥२९॥ मेरे ही समान परशुराम है तथा मेरी समानता रखने वाला शिशुपाल है । वह मेरा सखा भी है—अत्यन्त बलशाली—शूर और स्वर्ग को भी जीत लेने में वह समर्थ है ॥३०॥ इस स्वर्ग के राजा महेन्द्र को तो मैं एक ही क्षण में जीत लेने की क्षमता रखता हूँ । हे नृप ! उस दुर्बल योगी जरासन्ध को युद्ध में जीत कर कृष्ण बहुत ही अधिक अहङ्कारी हो गया है और अपने मन में अपने आपको बड़ा वीर मानता है । यदि मेरे इस नगर में वह विवाह करने के लिये आ जायगा तो मैं उसको एक ही क्षण में यमराज के घर में भिजवा दूंगा । वह तो एक नन्द नामक वैश्य का पुत्र है उस गायों के चराने वाले—साक्षात् गोपियों के जार—और गोपालों के भूठन खाने वाले के लिये इस देवों के योग्य रुक्मिणी कन्या को देना स्वीकार करते हैं ॥३१-३४॥ क्या इस भिक्षुक ब्राह्मण के वचन से ही कृष्ण को रुक्मिणी देना चाहते हैं ? हे राजेन्द्र ! यदि ऐसा ही है तो बहुत ही बुद्धिहीन हैं तथा वचन से बहक जाने वाले हैं ॥३५॥

मा राजपुत्रो मा शूरो मा कुलीनश्च मा शुचिः ।
मा दाता मा धनाढ्यश्च मा योग्यो मा जितेन्द्रियः ॥३६
कन्यां देहि सुपुत्राय शिशुपालाय भूमिप ।
बलेन रुद्रतुष्टाय राजेन्द्रतनयाय च ॥३७
निमन्त्रणं कुरु नृप नानादेशभवान् नृपान् ।
बान्धवांश्च मुनीन्द्रांश्चपत्रद्वारा त्वरान्वितः ॥३८

अङ्गं कलिङ्गं मगधं सौराष्ट्रं वल्कलं वरम् ।
राटं वरेन्द्रं वङ्गञ्च गुर्जराटिञ्च पेठरम् ॥३९
महाराष्ट्रं विराटञ्च मुद्गलं च मुरंगकम् ।
भल्लक गल्लकं खर्वं दुर्गं प्रस्थापय द्विजम् ॥४०
घृतकुल्यासहस्रं च मधुकुल्यासहस्रकम् ।
दधिकुल्यासहस्रं च दुग्धकुल्यासहस्रकम् ॥४१
तैलकुल्यापंचशतं गुड़कुल्याद्विलक्षकम् ।
शर्कराणां राशिशतं मिष्टान्नानां चतुर्गुणम् ॥४२
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टराशिशतं शतम् ।
पृथुकानां राशिलक्षमन्नानाञ्च चतुर्गुणम् ॥४३

वह कृष्ण न तो कोई राज पुत्र ही है—न शूर है—न वह कुलीन हीं है—न वह शुचि है—वह दाता भी नहीं है—वह कोई धन सम्पन्न नहीं है—वह न योग्य है और न जितेन्द्रिय ही है ॥३६॥ हे राजन् ! आप अपनी कन्या रुक्मिणी को सुपुत्र शिशुपाल को देवें जो कि इतना बलवान् है कि उसने अपने बल से रुद्र को भी सन्तुष्ट कर दिया था और एक राजेन्द्र का सुपुत्र भी है ॥३७॥ हे नृप ! आप अनेक देशों के राजाओं को निमन्त्रित करो। आप शीघ्रता से संयुत होकर पत्रों के द्वारा अपने बान्धवों को और मुनीन्द्रों को इस विवाहोत्सव में आमन्त्रित करिये ॥३८॥ आप सभी देशों में सूचना भेजिए जैसे अङ्ग, कलिङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, श्रेष्ठ बल्कल, राट, वरेन्द्र, वंग, गुर्जराटि, पेठर, महाराष्ट्र, विराट, मुद्गल, मुरंगक, भल्लक, गल्लक, खर्व और दुर्ग का द्विज को भेजिए। इसके साथ ही सभी सम्भार एकत्रित कराइये। एक सहस्र घृत कुल्या, एक सहस्र मधुकुल्या, एक सहस्र दधि कुल्या, एक सहस्र दुग्धकुल्या, पांच सौ तैलकुल्या, दो लाख गुडकुल्या, राशिशत शर्करा और चतुर्गुण मिष्ठान्न की व्यवस्था कराइये। इस प्रकार से सभी व्यञ्जनों की परिपूर्ण सामग्री कराइये ॥३९-४३॥

अथ श्रुत्वा च तद्वाक्यं राजेन्द्रः सपुरोहितः ।
चकारामन्त्रणं पूर्णं निर्जने मन्त्रिणा सह ॥४४

द्विजं प्रस्थापयामास द्वारकां योग्यमाप्सितम् ।
कृत्वा च शुभलग्नञ्च सर्वेषामभिवाञ्छितम् ॥४५

राजा सम्भृतसम्भारो बभूव सत्वरं मुदा ।
निमन्त्रणं च सर्वत्र चकार च सुताज्ञया ॥४६

विप्रः सुधर्मां संप्राप्य नृपैर्देवैश्च वेष्टिताम् ।
प्रददौ पत्रिकां भद्रामुग्रसेनाय भूभृते ॥४७

प्रफुल्लवदनो राजा श्रुत्वा पत्रं सुमगलम् ।
सुवर्णानां सहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥४८

दुन्दुभि वादयामास द्वारकायांच सर्वतः ।
देवान् मुनीन् नृपाश्चैव ज्ञातिवर्गांश्च बान्धवान् ॥४९

भट्टांश्चभिक्षुकांश्चैव भोजयामास सादरम् ।
श्रीकृष्णस्य सुवेशं च कारयामास भूपतिः ॥५०

इसके अनन्तर अपने पुरोहित शतानन्द के सहित राजेन्द्र भीष्मक ने अपने पुत्र के वाक्य को सुन कर फिर बिल्कुल एकान्त निर्जन स्थान में मन्त्री के साथ पूर्ण आमन्त्रण किया था ॥४४॥ और एक द्विज को जो अतियोग्य था एवं इच्छित था द्वारका भिजवा दिया था और सबको अभिवाञ्छित जो शुभ लग्न था वह भी निर्णीत करा लिया था ॥४५॥ फिर राजा ने शीघ्र ही हर्ष के साथ सम्पूर्ण सम्भार एव सामग्री एकत्रित करना आरम्भ कर दिया था। अपने सुत की आज्ञा से सर्वत्र निमन्त्रण भी भिजवा दिये थे ॥४६॥ वह विप्र नृप और देवों से वेष्टित सुधर्मा में पहुंचा और उसने वह भद्र पत्रिका राजा उग्रसेन को दे दी थी ॥४७॥ राजा उग्रसेन ने जब उस परम भद्र मङ्गल पत्र को सुना तो उसे बहुत ही अधिक प्रसन्नता हुई और उसका मुख प्रफुल्ल होगया था। उस उग्रसेन ने उस ब्राह्मण को एक सहस्र स्वर्ण मुद्राऐं दे दीं थीं ॥४८॥ राजा ने द्वारका पुरी में सर्वत्र दुन्दुभि का वादन करा लिया था। फिर सब मुनियों को, देवों को, नृपों को, ज्ञाति वर्ग के जनों और बान्धवों को तथा भट्टगण को और भिक्षुकों को बड़े ही आदर के साथ भोजन कराया

था। फिर राजा ने श्री कृष्ण को दूल्हा का उपयोगी सुवेश करवाया था ॥४९-५०॥

अतीवरम्यमतुलं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
यात्राञ्च कारयामास जगतां प्रवरं वरम् ॥५१
वेदमन्त्रेण रम्येण माहेन्द्रे सुमनोहरे ।
आदौ ब्रह्मा रथस्थश्च सावित्र्या सहितो ययौ ॥५२
रथस्थश्च महाहृष्टो भवान्या च भवः स्वयम् ।
शेषश्चापि दिनेशश्च गणेशश्चापिकीर्त्तितः ॥५३
महेन्द्रश्च तथा चन्द्रो वरुणः पवनस्तथा ।
कुवेरश्च यमो वह्निरीशानोऽपि ययौमुदा ॥५४
देवानाञ्च त्रिकोटयश्च मुनीनां षष्टिकोटयः ।
गजेन्द्राणां त्रिलक्षञ्च श्वेतक्षत्रं त्रिलक्षकम् ॥५५
उग्रसेनो बभौ राजा नक्षत्रेषु यथा शशी ।
ययौ प्रसन्नवदनः कुण्डिनाभिमुखो बली ॥५६
रत्ननिर्माणयानेन बलदेवो महाबलः ।
वसुदेवश्चोद्धवश्चनन्दोऽक्रूरश्च सात्यकिः ॥५७

श्री कृष्ण का उस समय वह सुवेश अतीव रमणीक था जैसा कि तीनों लोकों में भी अत्यन्त दुर्लभ था। इसके पश्चात् उस जगतों में प्रवर वर की वर यात्रा का गमन करा दिया था ॥५१॥ उस श्रीकृष्ण की वर यात्रा में वेद मन्त्रों की रम्य ध्वनि के सहित महेन्द्र थे जो परम मनोहर थे। फिर आदि में रथ पर समारूढ़ ब्रह्माजी थे जिनके साथ साथ सावित्री देवी भी थी ॥५२॥ इसके उपरान्त भवानी जगदम्बा को साथ में लेकर शिव शङ्कर स्वयं महान् प्रसन्न होते हुए रथ में विराजमान होकर गये थे। शेष, दिन के स्वामी भुवन भास्कर और विघ्नों के विनाश करने वाले गणेश भी थे ॥५३॥ उस श्री कृष्ण की बरात में सभी दिक्पाल उपस्थित थे। महेन्द्र, चन्द्र, वरुण, पवन कुवेर, यमराज, अग्निदेव, ईशान सभी परम हर्ष के साथ गये थे ॥५४॥ तीन करोड़ देवता थे और साठ करोड़ मुनिगण थे। उस बरात में तीन लक्ष गजेन्द्र और तीन लक्ष श्वेत क्षत्र

थे ॥५५॥ राजा उग्रसेन उस वरात में नक्षत्रों के मध्य में चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होरहे थे। वह बली कुण्डिनपुर की ओर अभिमुख होकर परम प्रसन्न मुख वाले होते हुए जारहे थे ॥५६॥ रत्नों के द्वारा निर्मित एक यान से महान् बलवान् बलदेव भी उसमें जारहे थे उस बरात में वसुदेव, नन्द, उद्धव, सात्यकि और अक्रूर भी सम्मिलित थे ॥५७॥

गोपाला यादवेन्द्राश्च चन्द्रवंश्याश्च ते ययुः।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे दुर्य्योधनपुरोगमाः ॥५८
युधिष्ठिरस्तथा भीमः फाल्गुनो नकुलस्तथा।
सहदेवश्च यानैश्च प्रययुः पञ्च पाण्डवाः ॥५९
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्चाप्यश्वत्थामा महाबलः।
कृपाचार्य्यश्च शकुनिः शल्यश्च प्रययौ मुदा ॥६०
भटानाञ्च त्रिकोटयश्च विप्राणां शत कोटयः।
सन्न्यासिनां सहस्रञ्च यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥६१
गन्धर्वाणां गायकानां लक्षमेवन्तु नारद।
तत्र कल्पे भवत्येव गन्धर्वश्चोपबर्हणः ॥६२
पञ्चाशत्कामिनीभिश्चत्वमेव तेषु मध्यगः।
विद्याधरीणां लक्षञ्च लक्षमप्सरसां तथा।
किन्नराणां त्रिलक्षञ्च गन्धर्वाणां त्रिलक्षकम् ॥६३

जितने गोपाल थे वे सम्पूर्ण यादवेन्द्र, धृतराष्ट्र के, दुर्योधन प्रभृति सब पुत्र और चन्द्रवंश में उत्पन्न होने वाले वे सभी गये थे ॥५८॥ युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव पाँचों पाण्डव यानों के द्वारा गये थे ॥५९॥ पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, महावीर कर्ण, महान् बलवान् अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शकुनि और शल्य भी परम हर्ष पूर्वक सब गये थे ॥६०॥ उस वर यात्रा में तीनकरोड़ भट थे और सात करोड़ विप्रों का समुदाय था तथा संन्यासी, यति और ब्रह्मचारी गण भी सहस्रों की संख्या में थे ॥६१॥ हे नारद ! गायक गन्धर्व एक लक्ष थे। उस कल्प में गन्धर्व उपबर्हण होता था ॥६२॥ पञ्चाशत् कामिनियों के सहित उनमें

सबके मध्य में तुम भी थे। एक लक्ष विद्याधारी थीं तथा एक लाख अप्सराऐं थीं। तीन लाख गन्धर्व थे ॥६३॥

९९—रेवतीबलयोर्विवाहवर्णनम्

एतस्मिन्नन्तरे राजा ककुद्मी च महाबलः।
वरार्थं कन्यकायाश्च ब्रह्मलोकात्समागतः ॥१
प्रददौ रेवतींकन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
अमूल्यरत्नभूषाढ्यां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥२
बलाय बलदेवाय सम्प्रदानेन कौतुकात्।
वयो यस्यागतं सत्ये युगानां सप्तविंशतिः ॥३
दत्त्वा कन्यां विधानेन मुनिदेवेन्द्र संसदि।
गजेन्द्राणां त्रिलक्षञ्च जामात्रे यौतुकं ददौ ॥४
दशलक्षं तुरङ्गाणां रथानां लक्षमेव च।
रत्नालङ्कारयुक्तानां दासीनाञ्चापि लक्षकम् ॥५
मणिलक्षं रत्नलक्षं स्वर्णकोटिञ्च सादरम्।
वह्निशुद्धांशुकं रम्यं मुक्तामाणीक्यहीरकम् ॥६

इस अध्याय में रेवती और बलराम के विवाह का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—इसी बीच में महान् बलवान् ककुद्मी नामक राजा अपनी कन्या के लिए वर की खोज में वहाँ ब्रह्मलोक से आया था ॥१॥ उसने अपनी रेवती नाम वाली अति सुस्थिर यौवन से संयुत, अमूल्य रत्नों के भूषणों से समलंकृत तथा रूप लावण्य एवं सौन्दर्य से तीनों लोकों में दुर्लभ कन्या को बली बलदेव के लिए कौतुक से सम्प्रदान के द्वारा मुनि और देवेन्द्रों की संसद में विधि, विधान के साथ दे दी थी जिसकी अवस्था सत्य युग में सत्ताईस युगों की होगई थी। ककुद्मी राजा ने अपने जामाता को यौतुक (दहेज) में तीन लाख गजेन्द्र, दशलाख अश्व, एक लक्ष रथ तथा रत्नों के अलङ्कारों से युक्त एक लाख दासियाँ दी थीं। एक लक्ष मणि, एक लक्ष रत्न और एक करोड़ स्वर्ण मुद्राऐं बड़े आदर के साथ दिये थे। वह्नि के समान शुद्ध वस्त्र तथा परम रम्य मुक्ता, माणिक्य और हीरे दिये थे ॥२-६॥

दत्त्वा कन्याञ्च राजेन्द्रो बलाय बलशालिने ।
रत्नेन्द्रसारयानेन तैः सार्द्धं कुण्डिनं ययौ ॥७
अथान्तरे च निर्बन्धे साङ्गे मङ्गलकर्मणि ।
रेवतीं वेशयामास योषितां कमलाकलाम् ॥८
देवकीं रोहिणीञ्चैव यशोदा नन्दगेहिनी ।
अदितिश्चदितिः शान्तिर्जयं कृत्वा च मन्दिरम् ॥९
ब्राह्मणाम् भोजयामास ददौ तेभ्यो धनं मुदा ।
मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य वल्लभा ॥१०
अथ देवाश्चमुनयो राजेन्द्राः कटकैः सह ।
सम्प्रापुर्लीलामात्रेण कुण्डिनं नगरं मुदा ॥११
ददृशुर्नगरं सर्वे ह्यतीवसुमनोहरम ।
सप्तभिः परिखाभिश्च गभीराभिश्च वेष्टितम् ॥१२
प्राकारैः सप्तभिर्युक्तं द्वाराणां शतकैस्तथा ।
नानारत्नैश्च मणिभिर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥१३
नगरस्य बहिर्द्वारं ददृशुर्वरयात्रिणः ।
रक्षितं रक्षकैः सार्द्धं चतुर्भिश्च महारथैः ॥१४

राजेन्द्र ककुद्मी ने बलशाली बलदेव को अपनी कन्या का दान करके फिर वह भी रत्नों के सार उत्तम रत्नों से निर्मित यान के द्वारा उन सबके साथ श्रीकृष्ण की बरात में कुण्डिन पुर गया था॥७॥ इसके अनन्तर इस अन्तर में सांग मंगल कर्म के निर्बन्ध में नन्द की गृहिणी यशोदा ने रेवती का वेष निर्माण अर्थात् श्रृंगार किया था जो कि स्त्रियों में कमला की कला थी। साथ २ देवकी और रोहिणी को वेष भूषित किया था। अदिति—दिति और शान्ति ने मन्दिर में जय किया था। वसुदेव की वल्लभा ने ब्राह्मणों को भोजन कराया था तथा परमहर्ष के साथ उन्हें पुष्कलधन का दान भी दिया था और मंगल कराया था ॥८-१०॥ इसके अनन्तर देवता—मुनिगण और राजा लोग अपने २ कटकों के सहित लीला मात्र से ही परम हर्ष से युक्त होते हुए कुण्डिन पुर में प्राप्त हो गये थे ॥११॥ वहाँ पहुँच कर सबने अतीव सुमनोहर, कुण्डिन नगर को देखा

था। वह नगर अतीव गम्भीर साथ परिखाओं से वेष्टित था। तथा उसके साथ प्राकार थे एवं सोद्वार वहाँ बने हुए थे। उस नगर को भी विश्व-कर्मा ने अनेक प्रकार के अत्युत्तम रत्नों से निर्माण किया था। वर-यात्रियों ने नगर के वहिर्द्वार को देखा था। वह प्रधान द्वार चार महा-रथी रक्षकों के द्वारा अनेक रक्षकों के सहित सुरक्षित था ॥१२-१४॥

रुक्मिश्च शिशुपालश्चदन्तवक्रो महाबली।
शाल्वोमायाविनां श्रेष्ठो युद्धशास्त्रविशारदः ॥१५
नानाशस्त्रैस्तथास्त्रैश्चरथस्थश्चरणोन्मुखः।
विलोक्यकृष्णसैन्यञ्च चुकोपनृपनन्दनः ॥१६
उवाच निष्ठुरं वाक्यं श्रुतितीक्ष्णं सुदुष्करम्।
उपहास्यं मुनीन्द्रांश्च देवांश्च मुनिपुङ्गवान् ॥१७
अहो कालकृतं कर्म दैवञ्च केन वार्य्यते।
किंवाहं कथयिष्मामि देवेन्द्राणाञ्च संसदि ॥१८
गृहीतुं रुक्मिणीं कन्यां देवयोग्यां मनोहराम्।
आयाति देवैर्मुनिभिर्नन्दस्य पशुरक्षकः ॥१९
साक्षाज्जारश्च गोपीनां गोपोच्छिष्टान्नभोजकः।
जातेश्च निर्णयो नास्ति भक्ष्यमैथुनयोस्तथा ॥२०

वहाँ पर रुक्मि—शिशुपाल—महान् बलवान् दन्त वक्र—शाल्व जो कि माया के बिना ही युद्ध शास्त्र का परम श्रेष्ठ पण्डित था, ये सब उप-स्थित थे। इन्होंने अनेक शस्त्र और अस्त्रों से युक्त होकर वे सब रणोन्मुख रथ में स्थित हो रह थे। श्रीकृष्ण की सेना को देखकर राजा का पुत्र बहुत ही कुपित हुआ था।१५-१६। उस रुक्मिने कानों को अत्यन्त तीक्ष्ण लगने वाले श्रवण करने में वहुत ही कटु निष्ठुर वचन कहे थे और समस्त देवों—मुनीन्द्रों और मुनियों में श्रेष्ठों का उपहास करने वाले थे ॥१७॥ रुक्मि ने कहा—अहो! कालकृत कर्म और दैव को कौन हरा सकता है अर्थात् किसी के द्वारा भी ये वारण नहीं किये जाया करते हैं। किम्वा मैं इस देवेन्द्रों की संसद में कहूँगा। देवों के योग्य और अत्यन्त मनोहर रुक्मिणी कन्या को ग्रहण करने के लिये देवों और मुनियों के साथ यह

नन्द का पुत्र पशु चराने वाला आ रहा है। यह तो गोपियों का साक्षात् जार है और गोपों के उच्छिष्ट का खाने वाला है ॥१८-१९॥ इसके भक्ष्य मैथुन का तथा जाति का कोई निर्णय ही नहीं है ॥२०॥

किन्नु राजेन्द्रपुत्रस्य किन्नु वा मुनिपुत्रकः ।
वसुदेवः क्षत्रियश्च भक्षण वैश्यमन्दिरे ॥२१
शिशुकाले च स्त्रीहत्याकृतानेनदुरात्मना ।
कुब्जा मृता सम्भोगात्वाससारजकोमृतः ॥२२
राजेन्द्रस्य वधाद्दुष्टो ब्रह्महत्यां लभेद् ध्रुवम् ।
मथुरायाञ्च धर्मिष्ठः सद्यः कंसो निपातित ॥२३
यदुक्तं रुक्मिणा देव किमसत्यञ्च तत्र वै ।
को वायं रुक्मिणीभर्ता नन्दस्य पशुपालकः ॥२४
अहो भुवि किमाश्चर्य्यं देवा ब्रह्मादयस्तथा ।
मुनीन्द्रा ब्रह्मणः पुत्राश्चाययुर्मानवाज्ञया ॥२५
सन्ततं ब्राह्मणा लुब्धा देवाश्च भक्तवत्सलाः ।
आययुर्ब्रह्मपुत्राश्च नन्दपुत्राज्ञया कथम् ॥२६
तेषाञ्च वचनं श्रुत्वा चुकोप देवसङ्घकः ।
मुनिराजेन्द्रसङ्घश्चलाङ्गलीत्यादिकं तथा ॥२७

यह नहीं कहा जा सकता है कि क्या यह किसी राजेन्द्र का पुत्र है या किसी मुनि का आत्मज है ? वसुदेव तो क्षत्रिय है जोकि वैश्य मन्दिर में भक्षण किया करता है। शिशुकाल में ही इस दुरात्मा ने स्त्री की हत्या करदी थी। कुब्जा इसके साथ सम्भोग करने के कारण से ही मर गई थी और वासों का साटर जक भी इसी के द्वारा मर गया था ॥२१-२२॥ राजेन्द्र कंस के वध करने से यह दुष्ट निश्चय ही ब्रह्म हत्या को प्राप्त करता है। मथुरा में परम धर्म निष्ठ कंस राजा को इसने तुरन्त ही मार डाला था ॥२३॥ शाल्व ने कहा—हे देव ! रुक्मि ने जो कुछ भी कहा है उसमें क्या कुछ भी असत्य है ? यह नन्द का पुत्र पशु चराने वाला रुक्मिणी का भर्त्ता होने के लिये क्या योग्यता रखने वाला है ? शिशुपाल ने कहा—अहो ! मुझे बहुत ही इस भूमि पर आश्चर्य हो रहा है कि इस

सामान्य मानव की आज्ञा स्वीकार करके ये समस्त देव तथा ब्रह्मा आदि महा विभूतियाँ—मुनीन्द्रगण तथा ब्रह्मा के पुत्र इस बरात में आये है। ॥२४-२५॥ दन्तवक्र ने कहा—ब्राह्मण तो सर्वदा लुब्ध होते ही हैं और देवता लोग अपने भक्तों पर प्यार करने वाले हुआ करते हैं किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि ब्रह्मा के पुत्र भी इस मानव की आज्ञा से जो कि नन्द पशुपालक का पुत्र है, कैसे इसके साथ में बरात में आ गये हैं ॥२६॥ उन लोगों के तीनों के इन वचनों का श्रवण कर देवसङ्घ बहुत ही अधिक कुपित हुआ था। मुनि और राजेन्द्रों का सङ्घ और वांगली आदि को भी बड़ा ही क्रोध आ गया था ॥२७॥

१००—रुक्मिणीविवाहे युद्धम्

अथ कोपपरीतश्च बलदेवो महाबलः।
हलेन रुक्मिमानञ्च बभञ्ज मुनिपुङ्गव ॥१
घोटकान् सारथिञ्चैव निहत्य जगतीपतिः।
भूमिष्ठञ्चापि पापिष्ठं रुक्मि हन्तुं जगाम सः ॥२
रुक्मी च शरजालेन वारयामास लीलया।
नागास्त्रं योजयामास बद्धुं हलिनमीश्वरम् ॥३
नागास्त्रं गरुड़ेनैव संजहार हली स्वयम्।
गृहाणा कोपाद्रुक्मी च परं पाशुपतं मुने ॥४
अव्यर्थं वीरमर्दञ्च शतसूर्य्यसमप्रभम्।
अभितो हलिना रुक्मी जृम्भणास्त्रेण जृम्भितः ॥५
भूमिष्ठः स्थाणुवद्रुक्मीनिद्रास्त्रेणैव निद्रितः।
शाल्वस्तं निद्रितं दृष्ट्वा शतबाणं मुमोचतम् ॥६
शैलवृष्टिं शिलावृष्टिं जलवृष्टिं चकार सः।
ज्वलदङ्गारवृष्टिञ्च शरवृष्टिं चकार ह ॥७

इस अध्याय में रुक्मिणी के विवाह में युद्ध का वर्णन वर्णित किया गया है। नारायण ने कहा—हे मुनि पुंगव ! इसके अनन्तर जब इन शिशुपाल आदि ने पर्याप्त रूप से बुरे शब्द कह दिये थे महान् बलवान्

बलदेव को बड़ा भारी क्रोध हुआ था और उनने अपने हल से रुक्मि के यान का भंजन कर दिया था ॥१॥ उसके रथ के अश्वों को–सारथि को जगती पति ने मार कर जब वह महा पापिष्ठ रुक्मि भूमि पर ही स्थित था उस रुक्मि को भी वह वीर बलदेव मारने के लिये गये थे ॥२॥ रुक्मिने अपने शरों के जाल से लीला के ही द्वारा वारण कर दिया था। फिर उस रुक्मि ने ईश्वर हलधर को बद्ध करने के लिये उन पर नागास्त्र का प्रयोग किया था। हलधर ने स्वयं उस प्रयुज्यमान नागास्त्र को अपने गारुड़ास्त्र के द्वारा ही संहार कर दिया था। हे मुने ! फिर क्रोध में भरकर रुक्मि ने परम पाशुपत अस्त्र को ग्रहण किया था ॥३-४॥ यह पाशुपत अस्त्र अव्यर्थ और वीर से भी वीर का मर्दन करने वाला एवं सौ सूर्यों की प्रभा के समन्वित था। इसी अन्तर में हलधर बलराम ने चारों ओर से अपने जृम्भास्त्र के द्वारा रुक्मि को जृम्भित कर दिया। इस अस्त्र के प्रभाव से वह रुक्मि भूमि पर एक स्थाणु की भाँति (काष्ठ ठूंठ के समान) निद्रास्त्र से ही निद्रित हो गया था। शाल्व ने जिस समय उसको निद्रितावस्था में देखा था तो उसने बलराम पर शतबाण को छोड़ दिया था। उसने शैलों की वृष्टि—शिलाओं की वर्षा और जल की वर्षा की थी तथा जलते हुए अंगारों की वृष्टि और शरों की वृष्टि की थी। ॥५-७॥

बलाच्चास्त्रेण सर्वाणि वारयामास लाङ्गली।
हलेन तद्रथं चूर्णं चकार रणमध्यतः ॥८
घोटकान् सारथिञ्चैव जघान चैव लीलया।
कोपाद् बलेन तं हन्तुं वाग् बभूवाशरीरिणी ॥९
त्यज शाल्वं कृष्णवध्यं तव किं पौरुषं रणे।
यस्य मूर्ध्नि च ब्रह्माण्डं शूर्पे च सर्षपं यथा ॥१०
तच्छ्रुत्वा बलदेवश्च हलेन तस्य मस्तकम्।
चकार चूर्णं व्यथितः पपात रणमूर्धनि ॥११
शाल्वस्य पतनं दृष्ट्वा शिशुपालो महाबली।
चकार शरवृष्टिञ्च जलवृष्टिं तथा भुवि ॥१२

हलोतस्य रथं चूर्णं चकार लाङ्गलेन च ।
अर्द्धचन्द्रेण तद्बाणान् वारयामास लीलया ।।१३
तं हन्तुं शङ्करः साक्षात् निषेधंच चकार तम् ।
कृष्णवध्यं त्यज बल पार्षदप्रवरं हरेः ।।१४

लांगली बलदेव ने बल से और अपने अस्त्र से इन सबका वारण कर दिया था और उस युद्ध भूमि के मध्य में अपने हल से उसके रथ को चूर्ण कर दिया था ।।८।। उसके रथ के अश्वों को और उस रथ के वाहक को लीला से मार दिया था । फिर जिस समय क्रोध में भरकर बलदेव उस शाल्व को मार देने के लिये आगे बढ़े थे उसी समय आकाश वाणी हुई थी कि इस शाल्व को तुम त्याग दो । यह तो कृष्ण के द्वारा ही वध करने के योग्य हैं । आपका रण में क्या पौरुष है जो इसका वध कर सको । जिसके मस्तक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शूर्प में सर्षप की भाँति रहता है ।।९-१०।। यह सुनकर बलदेव ने हल से उसके मस्तक को चूर्ण कर दिया था । मस्तक के चूर्ण होते ही वह व्यथित होकर रण के मध्य में ही भूमिपर गिर गया था ।।११।। इस तरह से शाल्व का पतन देखकर महान् बलवान् शिशुपाल आगे आ गया था । उसने भूमि में शरों की वृष्टि और जलकी वृष्टि की थी ।।१२।। हलधर ने अपने हलसे उसके रथ को भी चूर्ण कर दिया था और अर्धचन्द्र के द्वारा लीला से ही उसके प्रयुज्यमान वाणों का वारण कर दिया था । जैसे ही बलदेव उसे मारने को आगे बढ़े थे कि शङ्कर ने साक्षात् वहाँ उपस्थित होकर उसका निषेध कर दिया था । शिव ने कहा—हे बलराम ! तुम इसे छोड़ दो—यह हरि का पार्षद है और इसका वध श्रीकृष्ण के ही द्वारा होगा ।।१३-१४।।

दन्तवक्त्रस्य दन्तं च बभंज स हलेन च ।
सुप्रवृत्तस्य युद्धे न ते सर्वे जहसुश्च तम् ।।१५
बलस्य विक्रमं दृष्ट्वा सर्वे वीराः पलायिताः ।
चक्रुः प्रवेशनं सर्वे कुण्डिनं वरयात्रिकाः ।।१६
एतस्मिन्नन्तरे तत शतानन्दो महामुनिः ।
कोटिभिर्मुनिभिः सार्द्धमाजगाम हरेः पुनः ।।१७

पुरं प्रवेशयामास शतद्वारं च दुर्गमम् ।
अगम्यञ्चापि शत्रूणां मित्राणांच सुखप्रदम् ॥१८

देवकन्या नागकन्या राजकन्यास्तथैव च ।
मुनिकन्या वरं द्रष्टुं सस्मिताश्च समाययुः ॥१९

ददृशुर्योषितः सर्वा निमेषरहितेन च ।
प्रसन्नं कारयामास सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥२०

रत्नेंद्रसारनिर्माणरथस्थं परमेश्वरम् ।
सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥२१

फिर हलधर ने दन्तवक्त्र के दाँत का भञ्जन हल से कर दिया था। युद्ध में सुप्रवृत्त उसको वे सभी हंसी उड़ाने लगे थे ॥१५॥ बलदेव के इस प्रकार के विक्रम को देखकर उस युद्ध भूमि से सभी वीर भाग गये थे। इसके पश्चात् समस्त वर यात्रीगण ने कुण्डिन पुर में प्रवेश किया था ॥१६॥ इसी अनन्तर में वहाँ शतानन्द महामुनि करोड़ों मुनियों के साथ हरि के समीप में आ गये थे। उन्होंने उस शतद्वारों वाले दुर्गम पुर में सबका प्रवेश कराया था। वह पुर शत्रुओं के लिये बहुत ही अगम्य था किन्तु मित्र वर्ग के लिये वह अत्यन्त सुख प्रदान करने वाला था ॥१७-१८॥ उस समय वर यात्रा के वहाँ पहुंच जाने पर समस्त देवकन्याऐं—नाग कन्याऐं और राजाओं की कन्याऐं मन्दमुस्कराहट के सहित वर को देखने के लिये वहाँ आगईं थीं ॥१९॥ समस्त नारियों ने इकटक होकर देखा था। स्मित से युक्त चन्द्र शेखर ने सबको प्रसन्न कर दिया था। इसके अनन्तर सबने श्रीकृष्ण को देखा जो उत्तम रत्नों से विनिर्मित रथ में विराजमान थे। परमेश्वर—सबके परमात्मा—भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही शरीर को धारण करने वाले थे ॥२०-२१॥

नवीनजलदश्यामं शोभितं पीतवाससा ।
चन्दनोक्षितसर्वांगं वनमालाविभूषितम् ॥२२

रत्नकेयूरवलयरत्नमालाकुलोज्ज्वलम् ।
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥२३

रत्नेन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीरराजितम् ।
सस्मितं मुरलीहस्तं पश्यन्तं रत्नदर्पणम् ॥२४

श्री कृष्ण का स्वरूप नवीन मेघ के समान श्याम पीताम्बर से परम शोभा युक्त था। उनके सम्पूर्ण अङ्गों में चन्द्र न लगा हुआ था और उनका वक्षः स्थल वनमाला से विभूषित था ॥२२॥ रत्नों के केयूर—वलय तथा रत्नों की मालाओं के समूह से अत्यन्त उज्ज्वल था। उनके कानों के दो रत्नों के कुण्डल धारण हो रहे थे और उन कुण्डलों से गण्ड स्थल की अत्यन्त शोभा हो रही थी ॥२३॥ उत्तम रत्नों के द्वारा निर्मित ध्वनि करने वाले मञ्जीट से उनके चरण विराजित थे। उनके मुख पर मन्द २ मुस्कान थी और हाथ मुरली लिये हुए रत्नों के दर्पण को देख रहे थे ॥२४॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी ।
आजगाम सभामध्ये मुनिदेवादिभिर्युता ॥२५
रत्नसिंहासनस्था च रत्नालङ्कारभूषिता ।
वह्निशुद्धांशुकाधाना कबरीभारभूषिता ॥२६
पश्यन्ती सस्मिता साध्वी ह्यमूल्यरत्नदर्पणम् ।
कस्तूरीविन्दुभिर्युक्ता स्निग्धचन्दनचर्चिता ॥२७
सिन्दूरविन्दुना शश्वत् भालमध्यस्थलोज्ज्वला ।
तप्तकांचनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥२८
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा मालतीमाल्यशोभिता ।
सप्तभिर्नृपपुत्रैश्च समानीता च बालकैः ॥२९
देवेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा नृपपुङ्गवाः ।
ददृशू रुक्मिणीं देवीं महालक्ष्मीं पतिव्रताम् ॥३०
सप्तप्रदक्षिणाः कृत्वा प्रणम्य स्वपतिं सती ।
सिषेच शीततोयेन स्निग्धचन्दनपल्लवैः ॥३१

इसी अन्तर में वहाँ पर महालक्ष्मी देवी रुक्मिणी मुनिगण और देवगण के सहित उस सभा के मध्य में आगई थीं ॥२५॥ वह रुक्मिणी

रत्नों के सिंहासन पर संस्थित थीं—रत्नों के आभरणों से सुसमलंकृत हो रहीं थी वह्नि शुद्ध वस्त्रों के परीधान करने वाली तथा कबरी के भार से विभूषित थीं ॥२६॥ वह साध्वी देवी मन्द स्मित से समन्वित अमूल्य रत्नों के दर्पण को देख रही थीं। उनके मस्तक पर कस्तूरी का विन्दु लगा हुआ था और उनके सर्वाङ्ग स्निग्ध चन्दन से चर्चित थे ॥२७॥ उनके भाल के मध्य में निरन्तर सिन्दूर का विन्दु सुशोभित हो रहा था। उस रुक्मिणी देवी का वर्ण तपे हुए काञ्चन के वर्ण के तुल्य देदीप्यमान था और शत चन्द्रों के समान उसके अङ्गों की प्रभा थी। समस्त अङ्गों में चन्दन उक्षित हो रहा था तथा मालती के पुष्पों की सुगन्धित मालाओं से वह परम सुशोभित थीं। उस समय रुक्मिणी को सात नृपों के बालक पुत्र लेकर वहाँ आये थे ॥२८-२६॥ जिस समय में रुक्मिणी देवी वहाँ पधारी थीं तो सभी देवेन्द्र—मुनीन्द्र—सिद्धेन्द्र और नृप पुंगवों ने उस महालक्ष्मी पतियुता देवी रुक्मिणी को देखा था ॥३०॥ उस सती ने अपने पति देव श्रीकृष्ण को प्रणाम करके उनकी सात प्रदक्षिणा की थीं और स्निग्ध चन्दन पल्लवों के द्वारा शीतल जल से सेचन किया था। ॥३१॥

तां सिषेच जगत्कान्तः कान्तां शान्तांच सस्मिताम् ।
ददर्श कान्तः कान्तांच कान्तं कान्ता शुभक्षणे ॥३२
अथ देवी पितुः क्रोड़े समुवास शुभानना ।
लज्जया नम्रवदना ज्वलन्ती च स्वतेजसा ॥३३
राजा देवेश्वरीं तस्मै परिपूर्णतमाय च ।
प्रददौ सम्प्रदानेन वेदमन्त्रेण नारद ॥३४
वसुदेवाज्ञया कृष्णः स्वस्तीत्युक्त्वा स्थितो मुदा।
जग्राह देवीं देवश्च भवानींच भवो यथा ॥३५
सुवर्णानां पंचलक्षं कृष्णाय परमात्मने ।
दक्षिणां तां ददौ राजा परिपूर्णतमाय च ॥३६
शुभकर्माणि निष्पन्ने कृत्वा कन्यांच वक्षसि।
रुरोद राजा मोहेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि ॥३७

परीहारेण वचसा कृत्वा तस्मै समर्पणम् ।
सिषेच कन्यां धन्यांच नेत्रयुग्मजलेन च । ३८

जगत् के परम कान्त ने उस परम शान्त—सस्मित और कान्ता को सेचन किया था । उस शुभ क्षण में कान्त ने कान्ता को और कान्ता ने अपने कान्त को देखा था ।।३२।। इसके अनन्तर शुभ एवं सुन्दर मुख वाली वह देवी अपने पिता की गोद में जाकर बैठ गई थी । उस समय रुक्मिणी लज्जा से नम्र वदन वाली थी और अपने तेज से अत्यन्त दीप्ति मती हो रही थी ।।३३।। हे नारद ! राजा ने उस देवेश्वरी को परिपूर्ण-तम के लिये वेद के मन्त्रों के द्वारा सम्प्रदान विधि से दे दिया था ।।३४।। वसुदेव की आज्ञा से कृष्ण 'स्वस्ति'—यह कह कर परम हर्ष से वहाँ स्थित हो गये थे । उस मुहूर्त्त में देव श्रीकृष्ण ने देवी रुक्मिणी को शंभु ने भवानी की भाँति ही ग्रहण किया था ।।३५।। राजा ने परमात्मा श्री कृष्ण के लिये पाँच लाख सुवर्ण की मुद्राओं की दक्षिणा दी थी जो परम परिपूर्णतम थे उस शुभ कर्म के सम्पन्न हो जाने पर राजा ने उस मुनि और देवीन्द्रों की संसद में अपनी कन्या रुक्मिणी को वक्षःस्थल से लगा कर मोह से रुदन करने लगे । परिहार से वचन से उसका समर्पण करके उस परम धन्य कन्या का अपने नेत्र युग्म के जल से सेचन किया था ।।३६—३८।।

१०१—प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम्

वासुदेवो द्वारकायां वसुदेवाज्ञया मुने ।
प्रययौ रत्नरचितं रुक्मिणीमन्दिरं वरम् ।।१
शुद्धस्फटिकसङ्काशममूल्यरत्ननिर्मितम् ।
पुरतः परितोरम्यं नाना चित्रेणचित्रितम् ।।२
अमूल्यरत्नकलशं श्वेतचामरदर्पणैः ।
वह्निशुद्धांशुकैः शुद्धैः परितः परिशोभितम् ।।३
ददर्श रुक्मिणीं देवीमतीवनवयौवनाम् ।
रत्नमय्यङ्कमारुह्य शयानां सस्मितं मुदा ।।४

अप्रौढ़ाञ्च नवोढ़ाञ्च नवसङ्गमलज्जिताम् ।
अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणेन विभूषिताम् ॥५
सुचारुकवरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् ।
दृष्ट्वा कृष्णं भीष्मकन्या सहसा प्रणनाम सा ॥६
तां सम्भाष्य जगन्नाथो रत्नतल्पे उवास सः ।
शुभक्षणे च शुभया स रेमे रमया सह ॥७
सुखसम्भोगमात्रेण मूर्च्छामाप मुदा सती ।
तस्यां जज्ञे कामदेवो भस्मीभूतश्च शम्भुना ॥८

इस अध्याय में प्रद्युम्न के आख्यान का निरूपण किया गया है। नारायण ने कहा—हे मुने ! वसुदेव की आज्ञा प्राप्त करके वासुदेव ने द्वारकापुरी में परम श्रेष्ठ रत्नों के द्वारा विरचित रुक्मिणी के मन्दिर में प्रणाम किया था ॥१॥ वह रुक्मिणी का भवन शुद्ध स्फटिक मणि के समान था और बहुत ही अमूल्य रत्नों के द्वारा उसका निर्माण किया था। वह सामने से और सभी ओर से परम रम्य तथा नाना भाँति के चित्रों से विचित्र हो रहा था ॥२॥ उस भवन में अमूल्य रत्नों के कलश संलग्न हो रहे थे। श्वेत चमर और दर्पणों से तथा वह्नि शुद्ध वस्त्रों से सब ओर से परिशोभित था ॥३॥ वहाँ पर श्रीकृष्ण ने अतीव नवीन यौवन सेयुक्त—रत्नों के विरचित पर्यङ्क पर शयन करती हुई देवी रुक्मिणी को पर्यंक पर समारूढ़ होकर मुस्कान के साथ सहर्ष देखा था ॥४॥ वह रुक्मिणी उस समय अप्रौढा—नव विवाहिता—नूतन प्रिय के सङ्गम से लज्जित—अमूल्य रत्नों के द्वारा निर्माण किये जाने वाले आभूषणों से समलंकृत—सुन्दर कवरी के भार वाली—मालतीलता के सुगन्धित पुष्पों से रचित मालाओं से भूषित रुक्मिणी को देखा था और भीष्म की कन्या ने श्रीकृष्ण का दर्शन किया तथा उनको उसने सहसा प्रणाम किया था ॥५-६॥ जगत् के नाथ श्रीकृष्ण ने उस देवी रुक्मिणी से सम्भाषण किया और फिर वह उस रत्नों के तल्प पर विराजमान हो गये थे। शुभक्षण में उस परम शुभा रमा के साथ उनने रमण किया था ॥७॥ सुख पूर्वक सम्भोग मात्र से ही वह सती हर्षातिरेक से मूर्च्छा को

प्राप्त हो गई थी। उस देवी में शम्भु के द्वारा भस्मी भूत हुए कामदेव ने जन्म ग्रहण किया था ॥८॥

स शंवरं निहत्यैव तत्र प्राप रतिं सतीम् ।
रती मायावतीनाम्ना संकेतेन सुरस्य च ।
छायां दत्त्वा च शयने गृहणी शंबरालये ॥९
जहार शंबरं कामो दैत्यं केन प्रकारतः ।
कथयस्व महाभाग विस्तरेण शुभां कथाम् ॥१०
समतीते त्र सप्ताहे रुक्मिणी सूतिकागृहम् ।
गृहीत्वा बालक द्वैत्यो जगाम स्वालयं जवात् ॥११
अपुत्रकश्च दैत्येशः पुत्रं प्राप्य प्रहर्षितः ।
मायावत्यै ददौ हृष्टोहृष्टा मायावती सती ॥१२
अतीवपालनेनैव वर्धयामास बालकम् ।
सरस्वती तां रहसि कथयामास निर्जने ॥१३

उसने शम्बर का निहनन करके वहाँ सती रति की प्राप्ति की थी। रति मायामती के नाम से और सुर के संकेत के द्वारा शम्बरालय में शयन में छाया को देकर गृहिणी रही थी ॥६॥ नारद ने कहा—हे महाभाग ! कामदेव ने शम्बर दैत्य को किस प्रकार से मारा था ? आप इस शुभ कथा का वर्णन कीजिए ॥१०॥ नारायण ने कहा—एक सप्ताह के व्यतीत होने पर रुक्मिणी के सूति का-गृह में जाकर दैत्य ने बालक को उठा लिया था और फिर यह बड़ी शीघ्रता एवं वेग से अपने आवास स्थान में चला गया था। ॥११॥ वह दैत्येश बिना पुत्र वाला था अतएव उसे पुत्र की प्राप्ति होने से बहुत अधिक हर्ष हुआ था। उसने उस बालक को ले जाकर मायावती को दे दिया था और बहुत प्रसन्न हो रहा था। मायावती भी सती उसे पाकर अत्यन्त हर्षित हो गई थी ॥१२॥ उस बालक का अत्यधिक ध्यान से पालन-पोषण करने से उस बालक को बड़ा कर दिया था। जब बढ़ कर बड़ा हो गया तो उससे एकान्त में निर्जन में सरस्वती ने कहा था ॥१३॥

शिवकोपानले पूर्वं भस्मीभूतः पतिस्तव ।
स चायं रुक्मिणीपुत्रो दैत्येनैव समाहृतः ।।१४
माययापि च मायेशो रुक्मिणीसूतिकागृहात् ।
समानीय ददौ तुभ्यं पतिस्तेऽयं न चात्मजः ।।१५
कामञ्च कथयामास जगन्माता च सा सती ।
तव पत्नी रतिश्चेयं रमस्व रमया सह ।।१६
त्वमेव रुक्मिणीपुत्रो नान्यदैत्यस्य मन्मथः ।
कुररीव सती नित्यं रोदिति स्म त्वया विना ।।१७
इत्युक्त्वा च ययौ वाणी ब्रह्माणी ब्रह्मणः पदम् ।
स रेमे निर्जने नित्यं रामया सह सुन्दरः ।।१८
एकदा मन्मथं दैत्यो ददर्श रहसि स्थितम् ।
शृङ्गारं रामया सार्द्धं कुर्वन्तं कौतुकेन च ।।१९
सस्मितं सस्मितायाश्च मध्यवक्षःस्थलस्थितम् ।
रतिं ददर्श कामेन मूर्च्छितां सुरतोत्सुकाम् ।।२०
दृष्ट्वा चुकोप दैत्यश्च जग्राह खड्गमुत्तमम् ।
उवाच खड्गहस्तश्च कामदेवं रतिं सतीम् ।।२१

सरस्वती ने कहा—तुम्हारा पति शिव के कोपानल में पहिले भस्मी भूत हो गया था । यह वह ही तुम्हारा पति अब रुक्मिणी के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है और यह दैत्य उसे हरण करके ले आया है ।।१४।। माया के ईश ने अपनी माया से रुक्मिणी के सूतिका गृह से इसे लाकर तुमको दे दिया है । यह तुम्हारा पति है, आत्मज नहीं है ।।१५।। उस सती जगन्माता ने कामदेव से भी कहा था कि यह तेरी पत्नी रति है । इस रमा के साथ तू रमण कर ।।१६।। तू ही रुक्मिणी का पुत्र है जो कि मन्मथ ही इस रूप में उत्पन्न हुआ है, अन्य दैत्य का पुत्र नहीं है । तेरे बिना सती हिरणी के समान नित्य ही रुदन किया करती थी ।।१७।। इतना इन दोनों से कह कर वह ब्रह्माणी वाणी ब्रह्मा के स्थान को चली गई थी । फिर वह सुन्दर कामदेव नित्य ही उस रमा के साथ निर्जन स्थान में रमण किया करता था ।।१८।। एक बार उस दैत्य ने

उस मन्मथ को एकान्त में उसके साथ स्थित देख लिया था कि वह उस रामा के साथ कौतुक से शृङ्गार लीला कर रहा था ॥१९॥ उस दैत्य ने स्मित से युक्त रति के मध्य वक्षःस्थल में स्थित और मन्द मुस्कान से युक्त मन्मथ को तथा काम से मूच्छित एवं सुरत क्रीड़ा करने के लिये रति को देखा था ॥२०॥ इस भाँति उन दोनों को देख कर वह दैत्य बहुत कुपित हुआ और उसने अपना उत्तम खङ्ग हाथ में ग्रहण कर लिया था। खङ्ग हाथ में लिये हुए उस कामदेव और सती रति से वह बोला ॥२१॥

धिक् त्वां महाकामुकञ्च मूर्खं पण्डितमानिनम्।
महापातकिनां श्रेष्ठं प्रमत्तं मातृगामिनम् ॥२२
धिक् त्वाञ्च पुंश्चलीं मत्तां कामुकीं हृतचेतनाम्।
पुत्रं गृहीत्वा रहसि करोषि सुरतिं सति ॥२३
इत्येवमुक्त्वा खड्गञ्च तामेव हन्तुमुद्यतः।
जिघांसन्तं रतिं दैत्यं प्रेरयामास मन्मथः ॥२४
पपात दूरतो ब्रह्मन् मूर्च्छितः स्वाङ्गपीड़ितः।
पुनश्च चेतनां प्राप्य कोपेन प्रज्वलन्निव ॥२५
शिवदत्तञ्च शूलञ्च जग्राह निर्भरेण च।
शतसूर्य्यप्रभं शूलं प्रलयाग्निसमं मुने ॥२६
दृष्ट्वा जग्मुश्च देवाश्च ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः।
पवनः कथयामास कर्णे कामस्य यत्नतः ॥२७
स्मर स्मर महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।
पवनस्य वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार मन्मथः ॥२८
शूलं बभूव तस्याङ्गे रम्यं माल्यं मनोहरम्।
ब्रह्मास्त्रेण च तं दैत्यं जघान मन्मथो मुदा ॥२९

शम्बर ने कहा—महान् कामुक—महान् मूर्ख और अपने आपको पण्डित मानने वाले तुमको धिक्कार है। तू महा पातकियों में शिरोमणि है—अत्यन्त प्रमत्त और माता का गमन करने वाला है ॥२२॥ फिर सती से वह कहने लगा—पुंश्चली—मत्त हृत चेतना वाली और कामुकी

तुझको धिक्कार है। तू अपने पुत्र को एकान्त में लेकर हे सति ! सुरत क्रीड़ा किया करती है ॥२३॥ इतना कह कर उस खड्ग से उसी को मारने के लिये वह उद्यत हो गया था। रति को मारने के लिये प्रस्तुत दैत्य को देख कर मन्मथ ने उसे प्रेरित किया था ॥२४॥ हे ब्रह्मन् ! वह स्नांगों से पीड़ित होकर मूर्छित अवस्था में बहुत दूर जाकर गिर गया था। फिर चेतना प्राप्त करके कोप से जलता हुआ—सा वह उठ गया था और हे मुने ! निर्भर उसने शिव के द्वारा प्रदान किया हुआ शूल ग्रहण किया था जो सौ सूर्यों के समान प्रभा से युक्त और प्रलय काल की अग्नि के तुल्य शूल था ॥२५-२६॥ यह देख कर ब्रह्मा—ईश और शेष संज्ञा वाले देवगण चले गये थे। पवनदेव ने यत्न पूर्वक किसी तरह कामदेव के कान में कह दिया था कि तुम इस समय दुर्गार्त्ति के नाश करने वाली महा माया दुर्गा का स्मरण बार-बार करो। पवन के इस वचन का श्रवण करके मन्मथ ने जगदम्बा दुर्गा का उस समय में स्मरण किया था ॥२७-२८॥ दुर्गा के स्मरण से वह शूल उस मन्मथ के अंग में मनोहर एवं अति रम्य माल्य हो गया था क्यों कि दुर्गा को ध्यान में लाने पर शिव का अस्त्र उसके अंग में जो दुर्गा ध्यान रूप था प्रहार नहीं कर सकता था। फिर मन्मथ ने अपने ब्रह्मास्त्र के द्वारा बड़े ही हर्ष से उस दैत्य शम्बर का वध कर दिया था ॥२९॥

रतिं गृहीत्वा यानेन जगाम द्वारकां पुरीम् ।
प्रययुर्देवताःसर्वा स्तुत्वाच पार्वतींस्वयम् ॥३०
रुक्मिणीमंगलं कृत्वा प्रजग्राह रतिं सुतम् ।
उत्सवं कारयामास परं स्वस्त्ययनं हरिः ॥३१
ब्राह्मणान् भोजयामास पूजयामास पार्वतीम् ।
अथ कृष्णः क्रमेणैव वेदोक्ते मंगले दिने ॥३२
सप्तानां रमणीनाञ्च पाणिग्राहञ्चकार ह ।
कालिन्दीं सत्यभामाञ्च सत्यां नाग्निजितीं सतीम् ॥३३
जाम्बवतीं लक्ष्मणाञ्च समुद्वाहं चकार सः ।
ताभिः सार्द्धं क्रमेणैव पुत्रोत्पत्तिं चकारह ॥३४

एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च ।
निहत्य नरकं दैत्यं सपुत्रञ्च नृपेश्वरम् ।।३५

इसके पश्चात् वह मन्मथ रति को अपने साथ लेकर दान के द्वारा द्वारकापुरी को चला गया था । इसके अनन्तर समस्त देवगण स्वयं माता जगदम्बा पार्वती का स्तवन करके चले गये थे ।।३०।। रुक्मिणी ने रति और अपने सुत को प्राप्त करके मंगल कराया था । उसने बड़ा उत्सव कराया था और हरि ने भी परम स्वस्त्ययन कराया था ।।३१।। द्वारका में हरि ने ब्राह्मणों को भोजन करवाया था और देवी पार्वती का यजन कराया था । इसके अनन्तर वेदोक्त मंगल दिन में क्रम से श्रीकृष्ण ने सात रमणियों का पाणि-ग्रहण किया था । वे सात पत्नियाँ कालिन्दी-सत्यभामा—सत्या—नाग्नजितीसती—जाम्बवती और लक्ष्मणा नामों वाली थीं । उस भगवान् कृष्ण ने इन सबके साथ उद्वाह किया था । फिर उनने उन सबके साथ केलि करके क्रम से पुत्रों की उत्पत्ति की थी ।।३२—३४।। श्रीकृष्ण ने एक-एक में दश पुत्र और एक-एक कन्या क्रम से समुत्पन्न की थी । पुत्र के सहित नृपेश्वर दैत्य नरक का निहनन किया था ।।३५।।

बलवन्तं सुरं दैत्यं जघान रणमूर्धनि ।
ददर्श कन्यास्तत्रस्थाः सहस्राणाञ्च षोड़श ।।३६
शताधिका वयस्याश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनाः ।
प्रफुल्लवदनाः सर्वा रत्नभूषणभूषिताः ।।३७
शुभक्षणे च तासाञ्च पाणिं जग्राह माधवः ।
ताभिः सार्धं स रेमे च क्रमेण च शुभक्षणे ।।३८
एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च ।
हरेरेतान्यपत्यानि बभूवुश्च पृथक् पृथक ।।३९
एकदा द्वारकांरम्यां दुर्वासा मुनिपुंगवः ।
शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्द्धमाजगामावलीलया ।।४०
राजा महोग्रसेनश्च सपुत्रः सपुरोहितः ।
वसुदेवो वासुदेवोऽप्यक्रूरश्चोद्धवस्तथा ।।४१

नीत्वा षोडशोपचारं प्रणेमुर्मुनिपुंगवम् ।
शुभाशिषञ्च प्रददौ तेभ्यो ब्रह्मन् पृथक् पृथक् ॥४२

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण ने रणक्षेत्र में अत्यन्त बलवान् मुर दैत्य का हनन किया था और वहाँ उसकी सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं को स्थित देखा था जो सब समान अवस्था वाली और निरन्तर सुस्थिर यौवन से युक्त थीं । उन सबके मुख प्रफुल्लित थे और वे सभी रत्नों के आभूषणों से समलंकृत थीं ॥३६-३७॥ माधव ने शुभ लग्न में उन सब का पाणि ग्रहण किया था और उन सबके साथ शुभ क्षण में श्रीकृष्ण ने क्रम से रमण किया था ॥३८॥ उन सब में एक-एक में दश-दश पुत्र और एक-एक कन्या को उत्पन्न किया था । इस प्रकार से हरि के पृथक्२ इतनी अधिक सन्तान हुईं थीं ॥३९॥ एक बार मुनियों में परम श्रेष्ठ दुर्वासा अपने तीन करोड़ शिष्यों के साथ उस अत्यन्त रम्य द्वारकापुरी में अब लीला से ही आये थे ॥४०॥ उस समय में द्वारका के राजा महोग्रसेन अपने पुत्रों के सहित तथा पुरोहितों के साथ—वसुदेव—वासुदेव-अक्रूर और उद्धव ने सोलह उपचार लेकर उनसे मुनि श्रेष्ठ का पूजन किया था । हे ब्रह्मन् ! ऋषि ने उन सबको पृथक्२ शुभ आशीर्वाद दिया था ॥४१-४२॥

एकानंशाञ्च कन्यां तां ददौ तस्मै शुभक्षणे ।
मुक्तामाणिक्यहीरांश्च रत्नञ्च यौतुकं ददौ ॥४३

स रेमे रामया सार्धं माहेन्द्रे रत्नमन्दिरे ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददौ तस्मै शुभाश्रमम् ॥४४

एकदा स मुनिश्रेष्ठः समालोच्य स्वचेतसा ।
शयानं कुत्रचिद्रम्यपर्य्यङ्के रत्ननिर्मिते ॥४५

श्रुतवन्तं पुराणञ्च श्रद्धया कुत्रचिद्विभुः ।
महोत्सवे नियुक्तञ्च कुत्रचित् प्राङ्गणे शुभे ॥४६

ताम्बूलं भुक्तवन्तं च भक्त्या दत्तञ्च सत्यया ।
कुत्रचित्सेवितं तल्पे रुक्मिण्याश्वेतचामरैः ॥४७

कालिन्दी सेवितपदं शयानं कुत्रचिन्मुदा ।
सर्वत्र समसंभाषां चकार भगवान् मुनिः ॥४८
विस्मयं प्रययौ विप्रो दृष्ट्वा तत् परमद्भुतम् ।
तुष्टाव जगतीनाथं रुक्मिणीमन्दिरे पुनः ॥४९
वसन्तञ्च सुधर्मायां सतां संसदि सुन्दरम् ॥५०

इसके अनन्तर एक अनंशा उस कन्या को शुभ लग्न में उसको दिया तथा मुक्ता—माणिक्य—हीरे और रत्न यौतुक (दहेज) दिया ॥४३॥ उस रमा के साथ उसने माहेन्द्र रत्न मन्दिर में रमण किया । उसको एक उत्तम रत्नों से निर्मित परम शुभ आश्रम भी दिया ॥४४॥ एक बार उस मुनि श्रेष्ठ ने अपने ही चित्त से विचार किया था कि कृष्ण का दाम्पत्य जीवन देखना चाहिए कि यह कैसे इतनी अधिक पत्नियों के साथ निर्वाह करते हैं । मुनि ने देखा कि कहीं पर श्रीकृष्ण रत्न निर्मित पर्यङ्क पर शयन कर रहे थे ॥४५॥ किसी भवन में विभु बड़ी श्रद्धा से पुराण का श्रवण करते देखे गये थे । किसी भवन के प्रांगण में शुभ मुहुर्त्त में नियुक्त उनको देखा गया था ॥४६॥ कहीं पर सत्या पाटरानी के द्वारा भक्ति से दिये ताम्बूल का चर्वण करते पाये गये थे । किसी स्थान पर तल्प में रुक्मिणी के द्वारा श्वेत चामरों से सेवित उनको देखा था । कहीं पर सानन्द शयन करने वाले थे जिनके चरणों की कालिन्दी के द्वारा सेवा की जा रही थी । भगवान् मुनि ने उनके साथ सभी जगहों पर श्रीकृष्ण से सम्भाषण किया था । इस परम अद्भुत चरित्र को देख मुनि को अत्यन्त बिस्मय हुआ था और फिर दुर्वासा ने रुक्मिणी के मन्दिर में जाकर जगतीनाथ का स्तवन किया था तथा सुधर्मा देव सभा में सत्पुरुषों की संसद में सुन्दर निवास करने वाले भगवान् की स्तुति की थी ॥४७-५०॥

जय जय जगतां नाथ जितसर्व जनार्दन
सर्वात्मक सर्वेश सर्वबीज पुरातन ।
निर्गुण निरीह निर्लिप्त निरञ्जन निराकार
भक्तानुग्रहविग्रह सत्यस्वरूप सनातन ।

निःस्वरूप नित्यनूतन ब्रह्मेशशेषधनेशवन्दित
पद्मया सेवितपादपद्म ब्रह्मज्योतिः ।
अनिर्वचनीय वेदाविदितगुणरूप महाकाशसमा-
समानीय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ।।५१
इत्येवमुक्त्वा मनसा हरेरनुमतेन च ।
प्रणम्य तस्थौ विप्रेन्द्रस्तत्रैव पुरतो हरेः ।।५२
तमुवाच जगन्नाथो हितं सत्य पुरातनम् ।
ज्ञानञ्च वेदविहितं सर्वेषाञ्च सतां मतम् ।।५३
मा भैर्विप्र शिवांशस्त्वं किं न जानासि ज्ञानतः ।
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।।५४
अहमात्मा च सर्वेषां शवाः सर्वे मया विना ।
प्राणिदेहान् मयि गते यान्त्येव सर्वशक्तयः ।।५५

दुर्वासा ने इस प्रकार से श्री कृष्ण का स्तवन करते हुए कहा था—हे जगतों के नाथ ! आपका जय हो—जय हो । आप सबको जीतने वाले-जनों के दुःखों का नाश करने वाले और सबकी आत्मा हैं । आप सब के ईश—सब के बीज स्वरूप—परमपुरातन—निर्गुण—विना किसी ईहा वाले—निरञ्जन एवं निराकार हैं । आप भक्तों के ऊपर अनुग्रह करके ही विग्रह धारण करने वाले—सत्यस्वरूप वाले—सर्वदा से चले आये—बिना स्वरूप वाले और नित्य नूतन हैं । आप ब्रह्मा ईश—शेष और धनेश के द्वारा वन्दित हैं । आप पद्म के द्वारा सेवित चरण कमल वाले—ब्रह्म ज्योति और अनिर्वचनीय स्वरूप युक्त हैं अर्थात् वचनों से आपका स्वरूप नहीं कहा जा सकता है । आपके गुण—गण और रूप को वेद भी नहीं जान सकते हैं । आप महाकाश के तुल्य असमानीय हैं । हे परमात्मन् ऐसे आप के लिये मेरा प्रणाम है ।।५१।। इस भाँति से मन से कहकर हरि की अनुमति से प्रणाम करने के पश्चात् वह विप्रेन्द्र वहाँ पर ही हरि के समक्ष में स्थित हो गये थे ।।५२।। जगन्नाथ ने उस दुर्वासा को हित—सत्य—पुरातन—वेदविहित और सभी सत्पुरुषों के द्वारा अभिमत ज्ञान कहा ।।५३।। भगवान् ने कहा—हे विप्र ! तुम भय

मत करो। आप तो शिव के एक अंश हैं। क्या ज्ञान से आप नहीं जानते हैं ? मैं सब का प्रभव हूँ और मुझसे ही सब उत्पन्न होकर प्रवृत्त हुआ करते हैं ।।५४।। मैं ही सब का आत्मा हूँ और मेरे बिना सभी शव के समान हैं। प्राणियों के देहों से मेरे चले जाने पर सभी शक्तियाँ चली जाया करती हैं ।।५५।।

जातावप्येक एवाहं व्यक्ता एव पृथक् पृथक् ।
यो भुङ्क्ते तस्य तृप्तिः स्यान्नान्येषाञ्च कदाचन ।।५६
पृथक् जीवादिसर्वेषां प्रतिमानञ्च प्राणिनाम् ।
परिपूर्णतमोऽहञ्च गोलोके रासमण्डले ।।५७
श्रीदामशापाद्राधा सा मां द्रष्टुमक्षमाधुना ।
सर्वे चैवांशरूपेण कलया च तदंशतः ।।५८
रुक्मिणीमन्दिरे चांशोऽप्यन्यासां मन्दिरे कलाः ।
ममापि कुत्रचिच्चांशं कुत्रचिच्च कलाकलाः ।
कलाकलांशाः कुत्रापि प्रतिमासु च देहिषु ।।५९
इत्युक्त्वा जगतां नाथो गृहस्याभ्यन्तरं ययौ ।
दुर्वासाश्च प्रियां त्यक्त्वा श्रीहरेस्तपसे गतः ।।६०

जाति में भी मैं एक ही हूँ किन्तु पृथक—पृथक व्यक्त होता हूँ। जो भोजन करता है उसी को तृप्ति हुआ करती है, अन्यों की तृप्ति कभी भी नहीं होती है ।।५६।। जीव आदि समस्त प्राणियों की प्रतिभाऐं पृथक होती हैं और मैं परिपूर्णतम हूँ जो कि गोलोक नित्य धाम में रासमण्डल में विद्यमान रहा करता हूँ ।।५७।। श्रीदामा के शाप से वह राधा इस समय में मेरा दर्शन प्राप्त करने में असमर्थ हो रही है। सब अंश रूप से —कला से या उस कला के भी अंश से हैं ।।५८।। रुक्मिणी के मन्दिर में अंश है और अन्यों के मन्दिर में कला हैं। इसी प्रकार से मेरा भी किसी जगह पर अंश होता है और कहीं पर कला तथा कला की भी कला होती है। कहीं पर कला की कला का भी अंश हुआ करता है। कुछ प्रतिमाओं में और किन्हो देहियों में ऐसा ही होता है ।।५९।। इतना

कहकर जगतों के नाथ अपने गृह के अन्दर चले गये थे और दुर्वासा प्रिया का त्याग कर के श्री हरि के तप करने के चिले गये थे ॥६०॥

१०२—हस्तिनापुर गमन वर्णन

कृष्णो युधिष्ठिरध्यानात् प्रययौ हस्तिनापुरम् ।
कुन्तीं सम्भाष्य भूपञ्च भ्रातृंश्च प्रमुदान्वितः ॥१
उपायेन जरासन्धं निहत्य शाल्वमेव च ।
कारयामास यज्ञञ्च विधिबोधितदक्षिणम् ॥२
मुनीन्द्रैश्च नृपेन्द्रैश्च राजसूयमभीप्सितम् ।
शिशुपालं दन्तवक्रं तत्र यज्ञे जघान सः ॥३
अतीवनिद्रां कुर्वन्तं सभायां सुरभूपयोः ।
पपात तच्छरीरञ्च जीवो गत्वा हरेः पदम् ॥
न दृष्ट्वा तत्र सर्वेशं तुष्टावागत्य माधवम् ॥४
वेदानां जनकोऽसि त्वं वेदाङ्गानाञ्च माधव ।
सुराणामसुराणाञ्च प्राकृतानाञ्च देहिनाम् ॥५
सूक्ष्मां विधाय सृष्टिञ्च कल्पभेदं करोषि च ।
मायया च स्वयं ब्रह्माशङ्करः शेष एव च ॥६
मनवो मुनयश्चैव वेदाश्च सृष्टिपालकाः ।
कलांशेनापि कलया दिक्पालाश्च ग्रहादयः ॥७

इस अध्याय में श्री कृष्ण का हस्तिनापुर में गमन और युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का वर्णन किया जाता है। नारायण ने कहा—श्री कृष्ण ने कुन्ती से सम्भाषण करके और हर्ष से युक्त होते हुए राजा से तथा उसके समस्त भाइयों से सम्भाषण किया था ॥१॥ फिर उपाय के द्वारा जरासन्ध और शाल्व का निहनन करके विधिसे बोधित दक्षिणा वाला यज्ञ कराया था ।२॥ सभी मुनीन्द्रों के द्वारा और समस्त नृपेन्द्रों के द्वारा राजसूय यज्ञ ही अभीप्सित था। उन श्री कृष्ण ने उस यज्ञ में शिशुपाल और दन्तवक्त्र का वध किया था ॥३॥ देव और भूपों की सभा में अतीव निद्रा करते हुए उसको मारा था। उसका शरीर तो वहाँ पर ही गिर

गया था और उसका जीव हरि के पद में चला गया था। वहाँ पर सर्वेश को न देखकर फिर आकर माधव का उसने स्तवन किया था ॥४॥ शिशुपाल ने कहा—हे माधव ! आप तो समस्त वेदों के जनक हैं और सम्पूर्ण ज्योतिष, व्याकरणादि वेद के अंगों के भी जन्म देने वाले हैं। सभी सुर और असुरों के तथा प्राकृत देहधारियों के भी आप ही जन्म-दाता हैं ॥५॥ आप सूक्ष्म सृष्टि को करके कल्पों का भेद किया करते हैं। आपकी ही माया से यह ब्रह्मा, शङ्कर और शेष स्वयं ही हुआ करते हैं ॥६॥ समस्त मनुगण, मुनिमण्डल, वेद और सृष्टि के पालक दिक्पाल तथा ग्रह आदि सभी आपके कलांश से एवं कला से हुआ करते हैं ॥७॥

स्वयं पुमान् स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकः ।
कारणञ्च स्वयं कार्य्यं जन्यश्च जनकः स्वयम् ॥८
यन्त्रस्य च गुणो दोषो यन्त्रिणश्च श्रुतौ श्रुतम् ।
सर्वे यन्त्रा भवान् यन्त्री त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥९
मम क्षमस्वापराधं मूढ़स्य द्वारिणस्तव ।
ब्रह्मशापात् कुबुद्धेश्च रक्ष रक्ष जगद्गुरो ॥१०
इत्येवमुक्त्वा क्रमतो जयो विजय एव च ।
मुदा तौ ययतुः शीघ्रं वकुण्ठद्वारमीप्सितम् ॥११
शिशुपालस्य स्तोत्रेण सर्वे ते विस्मयं ययुः ।
परिपूर्णतमं कृत्वा मेनिरकृष्णमीश्वरम् ॥१२
कारयित्वा राजसूयं भोजयामास ब्राह्मणान् ।
कुरुपाण्डवयुद्धञ्च कारयामास भेदतः ॥१३
भुवो भारावतरणं चकार स कृपानिधिः ।
पुनर्ययौ द्वारकाञ्च चिरं स्थित्वा नृपाज्ञया ॥१४

आप स्वयं ही पुमान् हैं और स्वयं ही स्त्री हैं तथा स्वयमेव आप नपुंसक भी होते हैं। आप स्वयं ही कारण होते हैं और स्वयं ही कार्य, जन्य तथा जनक भी स्वयं आप ही हैं ॥८॥ वस्तुतः यन्त्र का गुण और श्रुति में यन्त्री का श्रुत होता है। ये स्तव तो यन्त्र ही होते हैं और एक मात्र आप ही यन्त्री हैं। आप में ही सब कुछ प्रतिष्ठित होता है ॥९॥ मैं

तो हे प्रभो ! आपका ही एक द्वारपाल सेवक हूँ। मैं तो मूढ़ हूँ अतः जो कुछ भी मेरा अपराध हुआ हो उसे अब आप क्षमा कर दीजिए। हे जगद्गुरो ! ब्रह्मशाप से इस दुष्ट बुद्धि वाले मेरी रक्षा करिये, रक्षा कीजिए ॥१०॥ इस तरह से यह निवेदन करके वे दोनों क्रम से जय और विजय ही होकर प्रसन्नता के साथ अपने अभीप्सित वैकुण्ठ के द्वार पर शीघ्र चले गये थे ॥११॥ शिशुपाल के द्वारा किये गये इस स्तोत्र से वे सब बहुत ही अधिक विस्मय को प्राप्त होगये थे। फिर वे सब परिपूर्णतम समझ कर श्री कृष्ण को ईश्वर मानने लगे थे ॥१२॥ श्री कृष्ण ने पांडवों से राजसूय यज्ञ कराया था तथा ब्राह्मणों को भोजन कराया था। फिर भेद करके कौरव और पाण्डवों का युद्ध करा दिया था ॥१३॥ उन कृपा के निधि ने भूमि के भार को उतारा था। इसके अनन्तर वे फिर द्वारका में गये थे और वहाँ राजा की आज्ञा से चिरकाल तक स्थिति की थी ॥१४॥

विप्राया मृतवत्साया जीवयामास पुत्रकान्।
मृतस्थानात् समानीय तन्मात्रे प्रददौ सुतान् ॥१५

तद् दृष्ट्वा देवकी तुष्टा ययाचे मृतपुत्रकान्।
मृतस्थानात् समानीय ददौ मात्रे सहोदरान् ॥१६
सद्यो जहार दारिद्रयं सुदाम्नो ब्राह्मणस्य च।
समागतस्यस्वगृहाद् द्वारकांशरणार्थिनः ॥१७

तस्मै ददौ राजलक्ष्मीं निश्चलां साप्तपौरुषीम्।
पृथुकानांकरणं भुक्त्वाभक्तस्यभक्तवत्सल ॥१८
यभूव तस्य राजञ्च यथेन्द्रस्यामरावती।
यथा धनेश्वरो देवो धनाढ्यः स बभूव ह ॥१९

निश्चलां हरिभक्तिञ्च ददौ दास्यं सुदुर्लभम्।
अविनाशिनि गोलोके यथेष्टं पदमुत्तमम् ॥२०

इसके उपरान्त मरे हुए पुत्रों वाली ब्राह्मणी के मृत पुत्रों को जीवित कर दिया और मृत स्थान से लाकर उनकी माता को पुत्रों को दे दिया

था। यह देखकर देवकी भी बहुत रुष्ट हुई थी और उसने भी अपने मृत पुत्रों को पुनः लाकर देने की याचना की थी तब उसको भी मृत अपने सहोदरों को लाकर मृत स्थान से माता को दे दिया था ॥१५-१६॥ सुदामा ब्राह्मण की दरिद्रता को भगवान् ने तुरन्त हरण कर लिया था जबकि वह अपने घर द्वारका में शरणार्थी होकर आगया था ॥१७॥ भक्त उसको फिर चावलों के कण खाकर ही भक्त वत्सल ने सात पुरुषों की राज लक्ष्मी जोकि निश्चल थी प्रदान कर दी थी ॥१८॥ फिर उसका राज्य ऐसा हो गया था जैसे इंद्र की अमरावती पुरी थी। धनेश्वर कुवेर के समान वह बहुत अधिक धनाढ्य होगया था ॥१९॥ उस सुदामा को प्रभु ने निश्चल हरि की भक्ति भी प्रदान कर दी थी और अपना सुदुर्लभ दास्य भी प्रदान कर दिया था ॥२०॥

जहार पारिजातञ्च शक्राहङ्कारमेव च।
सत्यां च कारयामास पुण्यक व्रतमीप्सितम् ॥२१
वधयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने।
तत्र व्रते कुमाराय स्वात्मानं दक्षिणां ददौ ॥२२
ब्राह्मणान् भोजयामास तेभ्यो रत्नं ददौ मुदा।
सत्यभामातिमानञ्च वधयामाससर्वतः ॥२३
रुक्मिण्याअतिसौभाग्यमन्यासाञ्च नवंनवम्।
वैष्णवानांसुराणाञ्च विप्राणामपिपूजनम् ॥२४
वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने।
परमाध्यात्मिकं ज्ञानमूद्धवाय ददौ प्रभुः ॥२५
अर्जुनं कथयामास गीतां च रणमूर्धनि।
कृत्वा निष्कण्टकञ्चैव कृपया च कृपानिधिः ॥२६
युधिष्ठिराय पृथिवीं राज्यलक्ष्मीं ददौ प्रभुः।
दुर्गाञ्च कारयामास वैष्णवीं ग्रामदेवताम् ॥२७

पारिजात और इन्द्र के अहङ्कार का हरण किया था और सत्या का ईप्सित पुण्य वाला व्रत पूर्ण कर दिया था ॥२१॥ हे मुने! फिर सर्वत्र उस नित्य और नैमित्तिक व्रत का वर्धन करा दिया था। उस व्रत

में कुमार के लिये अपनी आत्मा की दक्षिणा भी प्रदान की थी ।।२२।। ब्राह्मणों को भोजन कराया था और उनको परम हर्ष के साथ रत्नों की दक्षिणा दी थी । सत्यभामा के अत्यन्त मान को सभी ओर बढ़ा दिया था ।।२३।। रुक्मिणी का उचित सौभाग्य तथा अन्यों का भी नूतन-नूतन सौभाग्य वर्द्धित किया था । वैष्णवों का तथा सुरों का और विप्रों का भी पूजन—यजन हे मुने ! नित्य और नैमित्तिक सर्वत्र बढ़ा दिया था । आध्यात्मिक जो ज्ञान था वह प्रभु ने केवल उद्धव को ही प्रदान किया था ।।२४-२५।। अर्जुन से युद्ध की भूमि में गीता का ज्ञान कहा था । कृपा के सागर ने राज्य और भूमि को कृपा कर बिल्कुल निष्कण्टक करके युधिष्ठर को दी और उसे राज लक्ष्मी भी प्रदान की थी । दुर्गा को वैष्णवी ग्राम देवता प्रभु ने बना दिया था ।।२६।।

यज्ञञ्च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम् ।
नानाप्रकारनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः ।।२८

ब्राह्मणान् भोजयामास पार्वतीप्रीतये तथा ।
रैवते पर्वते रम्ये चामूल्यरत्नमन्दिरे ।।२९

गणेशं पूजयामास देवानामीश्वरं परम् ।
लड्डुकानां तिलानाञ्च सुस्वादु सुमनोहराम् ।।३०
परितुष्टि पञ्चलक्षं नैवेद्यञ्च ददौ मुदा ।
लड्डुकं स्वस्तिकानाञ्च सप्तलक्षं सुधोपमम् ।।३१
गणेश्वराय प्रददौ शर्कराशतराशिकम् ।
पक्वरम्भा फलानाञ्च दशलक्षमपूपकम् ।।३२
मिष्टान्नं पायसं रम्यं स्वादुस्वस्तिकपिष्टकम् ।
घृतञ्च नवनीतञ्च दधि दुग्धं सुधोपमम् । ३३
धूपं दीपं पारिजातपुष्पमाल्यमभीप्सितम् ।
सुगन्धि चन्दनं गन्धं वह्निशुद्धांशुकं ददौ ।।३४
यज्ञञ्च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम् ।
ब्राह्मणान् भोजयामास तुष्टाव स गणेश्वरम् ।।३५

वाद्यं दशविधञ्चैव वादयामास तत्र वै ।
सूर्यञ्च पूजयामास साम्बः कुष्ठक्षयाय च ॥३६
हविष्यं कारयामास तञ्च साम्बं समातरम् ।
परिपूर्णं वत्सरञ्चाप्युपहारैरनुत्तमैः ।
वरं ददौ च साम्बाय स्तोत्रञ्च भास्करः स्वयम् ॥३७

एक कोटि होम से युक्त परम शुभ यज्ञ करा दिया था । नाना प्रकार के नैवेद्यों के द्वारा और मनोहर धूप तथा दीपों के द्वारा उसकी सम्पन्नता करा दी थी ॥२८॥ पार्वती देवी की प्रीति के लिये ब्राह्मणों को भोजन कराया था जो कि परम रम्य रैवत पर्वत के अमूल्य रत्नों के मन्दिर में हुआ था ॥२९॥ देवों के परम ईश्वर गणेश का पूजन करवा दिया था । लड्डू—तिलों के सुन्दर स्वादयुक्त अति मनोहर तुष्टि कराई थी तथा हर्षपूवक पाँच लक्ष नैवेद्य दिये थे । लड्डू और स्वस्तिक जो सुधा के तुल्य थे सात लाख दिये थे ॥३०-३१॥ गणेश्वर के लिये शर्करा की शत राशि—पके हुए रंम्भा के फल तथा दश लाख अपप—मिष्टान्न—पायस—रम्य और स्वादु स्वस्तिक पिष्टक—घृत—नवनीत—दधि और अमृत तुल्य दुग्ध दिया था ॥३२-३३॥ धूप-दीप—पारिजात के पुष्पों की माला जो अत्यन्त अभीप्सित थीं—सुगन्धित चन्दन—गन्ध और वह्नि के तुल्य शुद्ध वस्त्र दिये थे ॥३४॥ इस प्रकार एक महान् कोटि होमों से संयुक्त परम शुभ यज्ञ कराया था । ब्राह्मणों को भोजन करवाया था गणेश्वर का स्तवन किया था ॥३५॥ वहाँ पर दश प्रकार के वाद्यों का वादन करवाया था । साम्ब ने सूर्य का पूजन कुष्ठ के क्षय के लिये किया था और समातर साम्ब को हविष्य कराया था जो अति उत्तम उपहारों के द्वारा वर्ष तक परिपूर्ण हुआ था ॥३६॥ भगवान् भुवन भास्कर ने स्वयं साम्ब को वरदान और स्तोत्र प्रदान किया था ॥३७॥

१०३—अनिरुद्धोपाख्यानम्

कृष्णपुत्रश्च प्रद्युम्नो महाबल पराक्रमः ।
तत् पुत्रोऽप्यनिरुद्धश्च विधातुरंश एव च ॥१

एकदासावनिरुद्धो नवयौवनसंयुतः।
सुप्तो रहसि पर्य्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते ॥२
स्वप्ने ददर्श युवतीं पुष्पोद्याने सुपुष्पिते।
सुगन्धिपुष्पतल्पे मस्निग्धचन्दनचर्चिते ॥३
शयानां सुस्मितां रम्यां नवयौवनसंयुताम्।
अमूल्यरत्ननिर्माण भूषणेनविभूषिताम् ॥ ४
चारुकेयूरवलयशङ्खकङ्कणशोभिताम्।
मणिकुंडलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥५
अतीवसूक्ष्मवसनां क्वणन्मञ्जीररञ्जिताम्।
पक्वबिम्बाधरौष्ठीञ्च शरत्कमललोचनाम् ॥६
शरत्पद्मप्रभामुष्टकोटीन्दुनिन्दिताननाम्।
मुक्तापङ्क्तिसमासारद्वयदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ॥७

इस अध्याय में अनिरुद्ध के उपाख्यान का निरूपण किया जाता है। नारायण ने कहा—श्री कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न महान् बलशाली और पराक्रम से युक्त था। उस प्रद्युम्न का पुत्र अनिरुद्ध हुआ था जो कि विधाता का ही एक अंश था ॥१॥ एक बार नवीन यौवन से संयुक्त अनिरुद्ध ने जब कि यह पुष्प एवं चन्दन से चर्चित पर्यङ्क पर एकान्त में शयन कर रहे थे उन्होंने सुप्त होकर स्वप्न में एक सुपुष्पित उद्यान में एक युवती को देखा था। वह उद्यान सुगन्धित पुष्पों के द्वारा वर्द्धित प्रेम और स्निग्ध चन्दन से चर्चित था ॥२-३॥ जो युवती स्वप्न में दिखाई दी थी वह अत्यन्त ही रम्य थी नवीन यौवन से युक्त—सुन्दर स्मित वाली शयन करती हुई और अमूल्य रत्नों के विरचित भूषणों से समलंकृत थी ॥४॥ वह परम सुन्दर केयूर—वलय और कङ्कणों की शोभा से समन्वित थी तथा मणियों के कुण्डल उसके गण्ड स्थल पर विराजमान थे ॥५॥ वह युवती बहुत ही बारीक वस्त्र पहिने हुए थी और बजने वाली मजीरों के द्वारा रञ्जित हो रही थी। उस युवती के अधर पके हुए बिम्ब के समान लाल वर्ण से युक्त थे। उसके नेत्र शरत्काल में विकसित कमलों के तुल्य परम सुन्दर थे ॥६॥ उसका मुख शरत्काल के पद्मों की प्रभा को हेच

कर देने वाला तथा करोड़ों चन्द्रों को पराजित कर देने वाला था। उसकी दन्त पंक्ति मुक्ता पंक्ति के समान सुमनोहर थी ॥७॥

त्रिवक्रकवरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् ।
कस्तूरीकुंकुमालक्तस्निग्धचन्दनकज्जलैः ॥८
पत्रावलीविरचितसुकपोलस्थलोज्ज्वलाम् ।
दाड़िम्बकुसुमाकारसिन्दूरविन्दुभूषिताम् ॥९
तां दृष्ट्वा कामपुत्रश्च कामोन्मथितमानसः ।
उवाच मधुर मत्तः काममत्तां सुकोमलाम् ॥१०
किं देवा किञ्च गान्धर्वी का त्वं कामिनि कानने ।
कस्य स्त्री कस्य कन्या वा कं वा वाञ्छसि सुन्दरि ॥११
त्रैलोक्यातुलसौन्दर्य्यान्मुनिमानसमोहिता ।
न बिभेषि कथंब्रूहि स्वयमेकाकिनीचमाम् ॥१२
अहं त्रैलोक्यनाथस्य पौत्र कामात्मजोऽधुना ।
कान्तेऽहमनिरुद्धश्च नवीनयौवनाहृतः ॥१३
प्रच्छाद्य लोचनास्यञ्च नत्रसङ्गमलज्जिता ।
विलोकयन्ती वक्राक्षिकोणेन तमुवाच सा ॥१४

वह परम सुन्दर युवती त्रिवक्र कवरी के भार से युक्त थी और मालती के पुष्पों की माला धारण किये हुए थी। कस्तूरी—कुंकुम—अलक्तक—स्निग्ध चन्दन—कज्जल से युक्त थी ॥८॥ पत्रावली जिन पर विरचित थी ऐसे परम सुन्दर कपोलों के स्थल से वह अत्यन्त समुज्वल थी। दाड़िम के पुष्प के आकार के तुल्य आकार वाले सिन्दूर के बिन्दू से भूषित थी ॥९॥ अनिरुद्ध ने उसे जिस समय स्वप्न में देखा तो स्वयं काम से उन्मथित चित्त वाला हो गया और वह उस परम कोमल युवती से मधुर वचन बोला ॥१०॥ अनिरुद्ध ने कहा—हे देवि ! क्या आप देवी हैं या गान्धर्वी हैं ? आप इस कानन में हे कामिनि कौन हैं ? आप किसकी स्त्री तथा किस की कन्या हैं ? हे सुन्दरि ! आप यहाँकि सके प्राप्त करने की इच्छा कर रही हैं ? ॥११॥ आपका सौन्दर्य तो इस त्रिलोकी में भी अत्यन्त अतुल है और ऐसा है कि मुनियों के मन को भी मोहित

कर देने वाला है। क्या आपको कुछ भय नहीं होता है? आप स्वयं एकादिनी यहां पर हैं मुझे अपना सारा हाल बताने की कृपा करें ॥१२॥ मैं भी त्रैलोक्य के नाथ का पौत्र और कामदेव का पुत्र हूँ। हे कान्ते! इस समय मैं नवीन यौवनाहत अनिरुद्ध हूँ ॥१३॥ उस युवती ने नव सङ्गम लज्जित होती हुई अपना मुख तथा नेत्रों को ढांक कर तिरछी नजर से उसे देखते हुए उससे कहा ॥१४॥

कामुकः कामपुत्रोऽसि कामेन व्याकुलोऽधुना ।
भवांश्चेत् कामुकीयोग्यो न कामश्चिन्तितः कथम् ॥१५
पौत्रस्त्रैलोक्यनाथस्य स्वतः सम्भावितस्य च ।
स्वयं योग्यो योग्यपुत्रो विवाहं न कथं कुरु ॥१६
विवाहिता यज्ञपत्नी सा च पुण्यव्रता सती ।
निश्चला सतत साध्या वर्धिनी साङ्गिनी सदा ॥१७
भयप्रीतिदानसाध्या गुप्तपत्नीत्वनिश्चला ।
नैमित्तिका न नित्या सा सा च वेदविवर्जिता ॥१८
सुशीला सुन्दरी शान्ता धर्मपत्नी प्रशंसिता ।
पतिव्रता सुसाध्या सा शश्वत्सुप्रियवादिनी ॥१९
कोमलाङ्गी विदग्धा च श्यामा रतिसुखप्रदा ।
एवम्भूतां परित्यज्य वैष्णवस्तपसे व्रजेत् ॥२०
साचेत् परिणता साध्वी शान्ता पुत्रवती यदा ।
अन्यथा च वृथा सर्वं तपसः स्खलनं भवेत् ॥२१

कामिनी बोली—आप काम के पुत्र हैं और इस समय काम से ही अत्यन्त व्याकुल कामुक हो रहे हैं। आप यदि कामुकी के योग्य हैं तो काम को चिन्तन क्यों नहीं किया था ॥१५॥ आप तो त्रैलोक्य नाथ श्रीकृष्ण के पौत्र हैं जो कि स्वतः ही बहुत सम्भावित हैं। आप स्वयं भी योग्य हैं और योग्य महापुरुष के पुत्र हैं फिर आप विवाह क्यों नहीं करते हैं? ॥१६॥ विवाहिता जो पत्नी होती है वह सती यज्ञ पत्नी होती है और पुण्य व्रत वाली होती है। वह निश्चल-सदा साध्य—वर्द्धनशील और सर्वदा सङ्ग रहने वाली होती है ॥१७॥ जो गुप्त पत्नी होती

है वह एक तो निश्चल नहीं हुआ करती हैं और वह भय-प्रीति तथा दान के द्वारा साध्य हुआ करती है। वह नैमित्तिका होती है कभी नित्य नहीं रहा करती है तथा वेद से भी विवर्जित उसे कहा गया है ॥१८॥ सुशीला सुन्दरी–शान्त स्वभाव वाली धर्म पत्नी प्रशस्त होती हैं। वह पतिव्रता सुसाध्य होती है और निरन्तर सुप्रिय बोलने वाली भी हुआ करती है ॥१६॥ कोमल अंगों वाली—विदग्धा और श्यामा स्त्री रति में सुख प्रदान किया करती है। इस प्रकार की पत्नी का त्याग करके वैष्णव को तप करने के लिये जाना चाहिए ॥२०॥ यदि वह परिणता हुई हो और वह साध्वी शान्त तथा जब पुत्रवती हो जावे तो तप करना ठीक है अन्यथा तपस्या भी निष्फल ही होती है और ऐसे तप का स्खलन हो जाया करता है ॥२१॥

अहमूषा बाणकन्या बाणः शङ्करकिङ्करः।
बाणस्त्रैलोक्यविजयी शङ्करो जगतां पतिः ॥२२
न स्वतन्त्रा पराधीना त्रिषु कालेषु कामिनी।
पुंश्चली या स्वतन्त्रा साप्यसद्वंशप्रसूतिका ॥२३
पिता ददाति कन्यां तां योग्याय च वराय च।
कन्या वरं न याचेत धर्म एष सनातनः ॥२४
त्वं च योग्योऽसि योग्याहं मामिच्छसि यदि प्रभो।
बाणं प्रार्थय शम्भुं वाप्यथवा पार्वतीं सतीम् ॥२५
इत्युक्त्वा सुन्दरी साध्वी सान्तर्धाना बभूव ह।
निद्रां तत्याज सहसा कामी कामात्मजो मुने ॥२६
बुद्ध्वा स्वप्नं स विज्ञाय कामेन व्यथितातुरः।
बभूव व्याकुलो शान्तो न दृष्ट्वा प्राणवल्लभाम् ॥२७
त्यक्त्वाहारमनिद्रश्च प्रमत्तश्च कृशोदरः।
क्षणं तिष्ठति शेते च क्षणं रहसि रोदिति ॥२८

मैं बाण की कन्या ऊषा हूं और मेरा पिता बाण शङ्कर भगवान् का सेवक है। बाण राजा त्रैलोक्य को विजय करने वाला है तथा शङ्कर भगवान् जगतों के पति हैं ॥२२॥ कामिनी तो कभी स्वतन्त्र होती हो

नहीं है। वह तो तीनों कालों में पराधीन ही रहती है। जो पुंश्चली नारी होती है वही स्वतन्त्र हुआ करती है और वह भी असत् वंश में समुत्पन्न होने वाली होती है ॥२३॥ सत्कुल प्रसूता कन्या को तो उसका पिता ही किसी योग्य वर को दान करके दिया करता है। कन्या स्वयं वर का कभी भी याचना नहीं करती है—यह ही सनातन धर्म है ॥२४॥ आप तो योग्य हैं और मैं भी योग्य हूँ। हे प्रभो ! यदि आप मुझे चाहते हैं तो आप बाण मेरे पिता से मेरे प्राप्त करने की प्रार्थना करो अथवा शम्भु या सती पार्वती की बिनती करो ॥२५॥ इतना कहकर वह साध्वी सुन्दरी अन्तर्धान हो गई थी। हे मुने ! फिर तो उस काम के पुत्र कामी ने सहसा निद्रा त्याग दी थी ॥२६॥ यह जानकर या होश-हवास में आकर उसने उसे स्वप्न समझ कर भी काम से वह कामी अत्यन्त व्यथित हो गया था। वह शान्त होते हुए भी उस प्राण वल्लभा को वहाँ न देख कर व्याकुल हो गया था ॥२७॥ उसने आहार और निद्रा का त्याग कर दिया था और अत्यन्त कृशोदर होकर प्रमत्त हो गया था। क्षणमात्र में वह बैठ जाता था और फिर क्षण भर में ही सो जाया करता था। और फिर एक ही क्षण में एकान्त में रुदन किया करता था ॥२८॥

पुत्रं दृष्ट्वा तु क्रन्दन्तं देवकीरुक्मिणी सती ।
अन्याश्चयोषितःसर्वाःकथयामासुरीश्वरम् ॥२९
तासां च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः ।
उवाच सर्वतत्त्वज्ञः कृष्णश्च पूर्णमानसः ॥३०
कामातुरा बाणकन्या रतिं दृष्ट्वा शिवेशयोः ।
वरं सम्प्राप दुर्गाया व्याकुला मदनास्त्रतः ॥३१
स्वप्नञ्च दर्शयामास सानिरुद्धञ्च पार्वती ।
मम पौत्रं प्रमत्तञ्च चकार कौतुकेन च ॥ ३२
तत्पुत्रीञ्च प्रमत्तां तां करोमि स्वप्नतोऽधुना ।
स्वच्छन्दं तिष्ठ न चिरं नास्ति चिन्ता मनोव्यथा ॥३३
इति कृष्णः समाश्वास्य सर्वात्मा सर्वसिद्धिवित् ।
स्वप्नञ्च दर्शयामास बाणपुत्रीञ्च कामुकीम् ॥३४

सुप्ता सुतल्पे बाला सा पुष्पचन्दनचर्चिते ।
नवयौवनसंयुक्ता रत्नभूषणभूषिता ॥३५
शयाना रत्नपर्य्यङ्के ददर्श स्वप्नमीप्सितम् ।
अतीवनिर्जने देशे रत्ननिर्माणमन्दिरे ॥३६

इस प्रकार से अपने पुत्र को रुदन करते हुए देख कर देवकी और सती रुक्मिणी ने तथा अन्य नारियों ने ईश्वर से कहा था। मधुसूदन ने उनके वचनों को श्रवण कर हास्य किया था और फिर सब तत्वों के ज्ञाता-पूर्ण मानस कृष्ण ने कहा था। श्रीभगवान् ने कहा—कामातुरा बाण की कन्या ने शिवा और ईश की रति को देखा था और मदनास्त्र से व्याकुल उसने दुर्गा से वर की प्राप्ति की थी ॥२६-३१॥ उस पार्वती ने स्वप्न में अनिरुद्ध को दिखा दिया और कौतुक से मेरे पौत्र को प्रमत्त कर दिया है ॥३२॥ अब मैं स्वप्न से उसकी पुत्री को सुमत्त कर देता हूँ। स्वच्छन्द होकर स्थित रहो, यह मन की व्यथा और चिन्ता अधिक समय तक की नहीं है ॥३३॥ इस प्रकार से श्री कृष्ण ने समाश्वासन करके फिर सर्वात्मा और समस्त सिद्धियों के ज्ञाता भगवान् ने कामुकी बाण की पुत्री को स्वप्न दिखा दिया था ॥३४॥ सुन्दर तल्प पर सोई हुई उस बाला ने जो कि पर्यङ्क पुष्प और चन्दन से चर्चित था, वह बाला भी नूतन यौवन से सम्पन्न और रत्नों द्वारा विरचित भूषणों से भूषित हो रही थी ॥३५॥ रत्नों के पर्यङ्क पर जब वह शयन कर रही थी, उसने एक इस तरह का स्वप्न देखा था कि वह अत्यन्त निर्जन देश में है जहाँ कि एक रत्नों के निर्माण वाला एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ है ॥३६॥

नवीननीरदश्याममतीवनवयौवनम् ।
कोटिकन्दर्पलीलाभं सस्मित सुमनोहरम् ॥३७
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ।
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥३८
चन्दनोक्षितसर्वांगं भूषितं पीतवाससा ।
सुचारुमालतीमाल्यवक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥३९

शयानं रत्नपर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते ।
तं दृष्ट्वा सहसा साध्वी तन्मूलं प्रययौ मुदा ॥४०
उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता ।
कामात्मजप्रिया कान्ता कामबाणप्रपीड़िता ॥४१
कस्त्वं कामुक भद्रं ते मां भजस्व स्मरातुराम् ।
अतिप्रौढ़ां नवोढ़ाञ्च नवसङ्गमलालसाम् ॥४२
तवानुरक्तां भक्ताञ्च गान्धर्वेण समुद्वह ।
विवाहाष्टप्रकारेषु गान्धर्वः सुलभो नृणाम् ॥४३
अनुरक्तां प्रियां प्राप्य त्यजेद्यः कपटीपुमान् ।
तस्माद्याति महालक्ष्मीः शाप दत्त्वा सुदारुणम् ॥४४

उस स्थान में उसने स्वप्न में देखा था कि एक नये मेघ के सदृश श्याम—अत्यन्त नवीन यौवन से सम्पन्न—करोड़ों कामदेवों की लीला को आभा वाला—मन्द मुस्कान से समन्वित—परम मनोहर—रत्नों के केयूर, वलय और रत्नों के मज्जीरों से रञ्जित—रत्नों के कुण्डलों के जोड़े से शोभित गण्ड स्थल वाला—चन्दन से उच्छित समस्त अंगों वाला पीताम्बर से विभूषित-सुन्दर मालतीलता के पुष्पों की माला से समुज्वल वक्षःस्थल वाला, रत्नों के पर्यङ्क पर जो कि पुष्प और चन्दन से चर्चित था शयन करते हुए उस वाण की पुत्री ने वहाँ पर देखा था उसको उस पर्यङ्क पर देख कर वह साध्वी स्वप्न में ही सहसा बड़े ही हर्ष से उसके निकट पर्यङ्क पर चली गई थी ॥३६-४०॥ और फिर स्वप्न में ही वह वाण की पुत्री जो कि कामात्मज की प्रिया कान्ता थी और काम के वाणों द्वारा अत्यन्त प्रपीड़ित हो रही थी अपने विदूयमान हृदय से उस कामात्मज से स्वप्न में ही बोली थी ॥४१॥ उषा ने स्वप्न में उससे कहा—हे कामुक ! आप कौन हैं ? आपका कल्याण हो—अब आप काम से परम पीड़ित एवं आतुर मेरे साथ केलि करिये, मैं अत्यन्त प्रौढ-नव-विवाहित और नवीन सङ्गम की लालसा वाली वधू हूँ। मैं आप में अत्यन्त अनुराग वाली—आपकी भक्त हूँ। मेरा गान्धर्व रीति से आप विवाह कर लेवें। आठ प्रकार के विवाहों में गान्धर्व विवाह ही मानवों

को सबसे अधिक सुलभ हुआ करता है ॥४२-४३॥ ऐसी अतिरक्त प्रिया को प्राप्त करके जो कपटी पुरुष उसका त्याग कर देता है उससे महालक्ष्मी सुदारुण शाप देकर दूर चली जाया करती है ॥४४॥

अहं कृष्णस्य पौत्रश्च कामदेवात्मजः स्वयम् ।
कथं गृह्णामि त्वां कान्ते तयोरनुमतिं विना ।।४५

इत्येवमुक्त्वा स पुमानन्तर्धानं चकार सः ।
कामेन व्याकुला कान्ता न दृष्ट्वा कान्तमीप्सितम् ।।४६

निद्रां त्यक्त्वा समुत्थाय तल्पादेव मनोहरात् ।
विषसाद् सखीमध्ये प्रमत्तारुदता भृशम् ।।४७
पप्रच्छ तां वरालीनां किं किमित्येव निश्चितम् ।
उवाच बोधयामास चित्रलेखा सुयोगिनी ।।४८

चेतनं कुरु कल्याणि कस्मात्ते भीतिरुल्वणा ।
स्वयं शम्भुः शिवासाक्षाद् दुर्लंघ्ये नगरे सति ।।४९

स्वप्न में ही उषा से वह पुरुष बोला—मैं श्रीकृष्ण का पौत्र और स्वयं कामदेव का पुत्र हूँ । हे कान्ते ! मैं उन दोनों की अनुमति के बिना तुम्हारा ग्रहण कैसे कर सकता हूँ ॥४५॥ इतना कह कर वह पुमान् अन्तर्धान हो गया था और काम से बेचैन उस कान्ता ने अपने अभीप्सित कान्त को फिर वहाँ नहीं देखा था ॥४६॥ उस बाण की पुत्री ने निद्रा का त्याग करके उस मनोहर तल्प का त्याग कर दिया था और उससे उठकर वह अपनी सखियों के मध्य में प्रमत्त एवं अत्यन्त रुदन करने वाली परम विषाद से युक्त हो गई थी ॥४७॥ उसकी सहेलियों में एक श्रेष्ठ सहेली चित्रलेखा थी जो कि सुयोगिनी भी थी, उसने उस उषा से उसके रुदन करने का क्या-क्या कारण था यह निश्चित रूप से उससे पूछा था और उसको बोधन कराया था ॥४८॥ चित्रलेखा ने कहा—हे कल्याणि ! चेतना प्राप्त करो, किससे तुमको यह ऐसी उल्वणभीति हो गयी है ? हे सति ? इस दुर्लङ्घ्य नगर में स्वयं शम्भु और शिवा साक्षात् विराजमान रहा करते हैं ॥४९॥

शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं पलायते ।
शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः ॥५०
ध्यानाद् दुर्गतिनाशिन्याः सर्वदुर्गं विनश्यति ।
ददाति मङ्गलं तस्मै सर्वमङ्गलमङ्गला ॥५१
चित्रलेखावचः श्रुत्वा रुरोदोच्चैर्भृशं सती ।
बाणश्च शङ्कराभ्यासे विषसाद प्रमूर्च्छितः ।
जहास शंकरो दुर्गा कार्त्तिकेयो गणेश्वरः ॥५२
यो ददाति ध्रुवं दुःखमन्यस्मै दम्भमोहितः ।
सूक्ष्मधर्मविचारेण स विन्दति चतुर्गुणम् ॥५३
शिवशयोश्च क्रीड़ाञ्च दृष्ट्वा या काममोहिता ।
वरं तस्मै ददौ दुर्गा वरमेव सुदुर्लभम् ॥५४
स्वप्ने गत्वा स्वयं देवी मत्तं कृत्वा स्मरात्मजम् ।
अधुना वामपार्श्वञ्च शम्भोस्तिष्ठति मूकवत् ॥५५
सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो भगवान् हरिरीश्वरः ।
स्वप्ने सुवेशं पुरुषं दर्शयामासकन्यकाम् ॥५६

भगवान् शिव के स्मरण मात्र से ही समस्त अरिष्ट भाग जाया करते हैं। शिव (कल्याण एवं मङ्गल) के आलय हैं अतएव सर्वत्र उनकी कृपा से कल्याण ही होता है ॥५०॥ दुर्गति के नाश करने वाली जगदम्बा के ध्यान करने से समस्त दुर्ग अर्थात् दुःखों का विनाश हो जाता है। वह सर्व मंगल मङ्गला अर्थात् समस्त मङ्गलों के भी मंगल करने वाली देवी उस मानव को मंगल प्रदान किया करती है जो उसका ध्यान—स्मरण करता है ॥५१॥ चित्रलेखा के इस वचन का श्रवण करके वह सती उषा बहुत अधिक ऊँचे स्वर से रुदन करने लगी थी। और बाण शङ्कर के समीप में विषाद को प्राप्त होकर प्रमूर्च्छित हो गया था। इसकी ऐसी दशा को देख कर शंकर—दुर्गा—स्वामि कार्त्तिकेय और गणेश सब हँस गये थे ॥५२॥ गणेश्वर ने कहा—जो दूसरे के लिये ध्रुव दुःख देता है वह दम्भ से मोहित होता हुआ सूक्ष्म धर्म के विचार से चतुर्गुण दुःख प्राप्त किया करता है ॥५३॥ जो शिवा और ईश को क्रीड़ा को

देख कर काम से मोहित हो गई थी उसको दुर्गा ने दुर्लभ वर का वरदान दिया है ॥५४॥ देवी स्वयं जाकर स्वप्न में स्मर के पुत्र को मत्त करके इस समय में शम्भु के वाम पार्श्व में मूक की भाँति स्थित हो गई है ॥५५॥ सब कुछ के ज्ञाता भगवान् ईश्वर हरि ने यह सब जानकर स्वप्न में एक सुन्दर वेश वाले पुरुष को कन्या के लिये दिखा दिया था ॥५६॥

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं युवती सती ।
परमेच्छा भवेत्तस्या धर्मभीत्या निवर्तते ॥५७
सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा पुंश्चली पापवंशजा ।
त्यजेन्निद्राञ्च स्वाहारं पतिं पुत्रं धनं गृहम् ॥५८
चेतनं गृहकार्यञ्च कुललज्जां कुलद्वयम् ।
युवानं रतिशूरञ्चाप्यतिनीचं न हि त्यजेत् ।
त्यजेज्जातिञ्च धर्मञ्च प्राणांश्च परिणामतः ॥५९
तस्मात् प्राज्ञः प्रयत्नेन प्राणेभ्यो युवतीं सदा ।
परिरक्षेच्च सततंमायायुक्तां न विश्वसेत् ॥६०
हृदयं क्षुरधाराभं नारीणां मधुरं वचः ।
तासां मनो न जानन्ति सन्तो वेदाश्च वैदिकाः ॥६१
प्रयातु द्वारकां सद्यश्चित्रलेखा सुयोगिनी ।
अनिरुद्धं समाहृत्य प्रमत्तमवलीलया ॥६२
इतिश्रुत्वा महादेवो गणेशं तमुवाच ह ।
न शृणोति यथा बाणः शुभकार्य्यं तथा कुरु ॥६३

उस सुन्दर वेश वाले युवा परम सुन्दर पुरुष कोसती पार्वती ने देखा था और उसके हृदय में उस युवक को प्राप्त करने की इच्छा प्राप्त हो गई थी किन्तु धर्म की भीति से वह निवृत्त हो रही हैं ॥ ५७ ॥ पापवंश में उत्पन्न होने वाली पुंश्चली स्त्री किसी भी सुन्दर वेश वाले पुरुष को देखकर वह निद्रा को-अपने आहार को-पति को-पुत्र को-धन को गृहको-चेतन को-गृह के कार्य को-कुल की लज्जा को और दोनों कुलों को त्याग दिया करती है और रति शूर युवा को चाहे वह अत्यन्त नीच ही क्यों न

हो, वह नहीं त्यागती है। वह स्त्री जाति-धर्म और परिणाम में अपने प्राणों को भी त्याग दिया करती है ॥५८-५९॥ इसलिये प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि पूर्ण प्रयत्न करके प्राणों से भी युवती की सहरक्षा करे और निरन्तर उसका परिरक्षण भी करना चहिये। यह माया से युक्त हुआ करती है-इसका कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥६०॥ नारियों का हृदय तो क्षुर (उस्तरा) की धारा के समान सतीक्ष्ण होता है और उसके वचन अत्यन्त मधुर हुआ करते हैं। उन नारियों के मन को साधारण व्यक्ति तो क्या बड़े बड़े सन्त पुरुष-वेद-और वेद का परम विज्ञ पुरुष भी नहीं जानते हैं ॥६१॥ अब तो यही सर्वोत्तम उपाय है कि सुयोगिनी चित्रलेखा तुरन्त ही द्वारकापुरी को चली जावे और अपनी अवलीला से उस महान प्रमत्त अनिरुद्ध को यहां ले आवे ॥६२॥ इस गणेश के वचन को श्रवण कर महादेव ने गणेश से कहा था कि जिस प्रकार से वाण इस सब का श्रवण न कर पावे वही शुभ कार्य तुम करो ॥६३॥

चित्रलेखा ययौ तूर्णं द्वारकाभवनं हरेः
सर्वेषामपि दुर्लंघ्या लीलया प्रविवेश सा ॥६४
निद्रितां चानिरुद्धञ्च समाहृत्य च योगतः।
रथमारोहयामास निद्रितं बालकं मुदा ॥६५
सा मनोयायिनी भद्रा गृहीत्वा बालकं मुने।
मुहूर्त्ताच्छोणितपुरं कृत्वा शङ्खध्वनिं ययौ ॥६६
अथाश्रमाभ्यन्तरे च रुरुदुः सर्वयोषितः।
अहो बाणहरो वत्सः क्व गतः प्राणवल्लभः ॥६७
कृष्णस्ताश्च समाश्वास्य सर्वज्ञः सर्वतत्त्ववित्।
साम्बः कामबलैः सार्धं कृष्णः सात्यकिना तथा ॥६८
गृहीत्वा गरुड़ं वीरं रथमारुह्य सत्वरः।
सुदर्शनं पाञ्चजन्यं पद्मं कौमोदकीं गदाम् ॥६९
पश्चाद्यास्यति देवेशो नगरं शोणितं तथा।
सगणैः शंकरेणैव पार्वत्या परिरक्षितुम् ॥७०

इसके अनन्तर चित्र लेखा शीघ्र ही हरि के द्वारका के भवन में गई थी । वह द्वारकापुरी सबके लिये बहुत ही दुर्लंङ्घ्य थी तो भी वह चित्र-लेखा अपनी लीला से उसमें प्रवेश कर गई थी ॥६४॥ वहां पर अनिरुद्ध निद्रित होरहे थे और वह चित्रलेखा अपने योग के बल से उसका समाहृत कर लाई थी । उस चित्रलेखा ने परम प्रसन्न उस निद्रित बालक अनिरुद्ध को रथ में आरूढ़ कर दिया ॥६५॥ हे मुने ! चित्रलेखा तो अपने मन की इच्छा के अनुसार ही गमन करने वाली थी । ऐसी शक्ति रखने वाली उस भद्रा ने बालक को एक मुहूर्त्त मात्र समय में ही शङ्ख की ध्वनि करके शोणितपुर को चली गई थी ॥६६॥ अनुरुद्ध के चले जाने पर द्वारकापुरी के आश्रम के अन्दर सभी स्त्रियां रुदन करने लगी थीं और कह रही थीं कि हमारा प्राणों से प्यारा वत्स वाणहर कहां चला गया है ॥६७॥ सर्वज्ञ और सम्पूर्ण तत्वों के ज्ञाता कृष्ण ने उन सबका समाश्वासन किया था और उन्होंने कहा था कि कुछ पीछे कृष्ण अम्बा के सहित काम बलों के साथ तथा सात्यकि के साथ जाँयगे ॥६८॥ वीर गरुड़ को लेकर तथा शीघ्र रथ पर सवार होकर, सुदर्शन-पाञ्चजन्य-पद्म और कौमोद की गदा को लेकर देवेश शोणितनगर में सगण शङ्कर के द्वारा तथा पार्वती के द्वारा परिरक्षित करने को कुछ पीछे से जांयेगे ॥६९-॥७०॥

अथ सा योगिनी धन्या पुण्या मान्या च योषिताम् ।
शिष्या दुर्वाससः शान्ता सिद्धयोगेन सिद्धिदा ॥७१
बालकं बोधयामास रुदन्तं मातरं स्मरन् ।
स्नापयित्वा ददौ तस्मै माल्यचन्दनभूषणम् ॥७२
कृत्वा सुवेशं बालस्य कन्यान्तः पुरमीप्सितम् ।
चक्रे प्रवेशं योगेन रक्षकैश्चापि रक्षितम् ॥७३
तामुषां रक्षितां दृष्ट्वा निराहारां कृशोदरीम् ।
शीघ्रञ्चबोधयामास सखीभिःपरिवारिताम् ॥७४
उषां कृत्वा च सुस्नातां वस्त्रभूषणभूषिताम् ।
वस्त्रैर्माल्यैश्चन्दनैश्च सिन्दूरपत्रकैः शुभैः ॥७५

द्वयोःसम्भाषणंतत्र माहेन्द्रे च शुभक्षणेः ।
कारयामास गोष्ठ्या च सखीनां सङ्गमेन च ॥७६

पतिव्रता पति दृष्ट्वा सा रेमे विगतज्वरा ।
गान्धर्वेण विवाहेन तामुवाह स्मरात्मजः ॥७७

रतिर्बभूव सुचिरमुभयोः सुखकारणम् ।
दिवानिशं न बुबुधे स्मरपुत्रः स्मरातुरः ॥७८

उषा कामातुरा प्रौढ़ा नवोढ़ा नवसंगमात् ।
मूर्च्छां सम्प्राप पुंसश्च स्पर्शमात्रेण कामुकी ॥७९

एवं नित्यञ्च रहसि संगमः सुमनोहरः ।
बभूव सुचिरं विप्र राजा शुश्राव रक्षकात् ॥८०

इसके अनन्तर वह धन्य-पुण्य और सम्पूर्ण नारियों में परम मान्य योगिनी चित्रलेखा जो दुर्वासा ऋषि की शिष्या-परमशान्त और सिद्धि के देने वाली थी। उसने रुदन करते हुए और अपनी माता का स्मरण करते बालक को बोधित किया था। स्नान कराकर उसको माल्य-चन्दन और भूषण दिये थे ॥७१-७२॥ उस बालक का सुन्दर वेश करके फिर उस चित्रलेखा ने रक्षको के द्वारा सुरक्षित अभीष्ट कन्या के अन्तःपुर में योग बलसे उस बालक का प्रवेश किया था ॥७३॥ वहां पर अतिरक्षित-निराहार और कृशोदरी उषा को देखकर जोकि सखियों के द्वारा परि-वारित हो रही थी, उस चित्रलेखा ने शीघ्र ही जगाया था ॥७४॥ फिर उषा को सुन्दर रीति से स्नान कराके और वस्त्र तथा भूषणों से समलंकृत करके एवं वस्त्र-माल्य चन्दन और शुभ सिन्दूर पत्रकों से विभूषित करके फिर उन दोनों अनिरुद्ध और उषा का माहेन्द्र शुभ क्षण में सम्भाषण करा दिया गया था। सखियों की गोष्ठी और उनके सङ्क्रम से सम्भाषण कराया था ॥७५-७६॥उस पतिव्रता ने पति का दर्शन करके वह विगत ज्वर अर्थात् ताप वाली हो गई और फिर उसके साथ उसने रमण किया था। काम के पुत्र ने गन्धर्व विवाह की विधि से उसके साथ अपना विवाह कर लिया था ॥७७॥ बहुत अधिक समय तक उन दोनों

की रति सुख का कारण हुई थी। स्मर से आतुर कामदेव के पुत्र ने दिन और रात को भी नहीं जाना था ॥७८॥ उषा बहुत ही कामातुर थी। वह प्रौढा थी और नव विवाहिता थी। वह कामुकी नवीन संगम से पुरुष के स्पर्श मात्र से ही मूर्छा को प्राप्त होगई थी ॥७९॥ इस प्रकार से एकान्त में नित्य सुमनोहर संगम हुआ था। हे विप्र! राजा ने रक्षक से यह सुना था ॥८०॥

१०४—बाणासुरयुद्धवर्णनम्

अथ भीता रक्षकास्ते समूचुर्बाणमीश्वरम्।
स्कन्दंगणेशं दुर्गाञ्च दण्डवत् प्रणिपत्य च ॥१
अहो दुष्टश्च कालोऽयमतीवदुरतिक्रमः।
स्वतन्त्रा बालिका प्रौढ़ा पतिमिच्छति साम्प्रतम् ॥२
असङ्गसङ्गमंनाथ साधूनां दुःखकारणम्।
संसर्गजा गुणा दोषा भवन्ति सन्ततंनृणाम् ॥३
चित्रलेखा स्वयं दूती समानीय परं वरम्।
रणशूरं महावीरं नृपेन्द्रञ्च महारथम् ॥४
युवानं व्याधिहीनञ्च कन्दर्पादपि सुन्दरम्।
सम्भोगं कारयामास बुबुधे न दिवानिशम ॥५
साम्प्रतं तव कन्यास्याप्युषा गर्भवती सती।
कुलजा कुलयोश्चैव तप्ताङ्गारस्वरूपिणी ॥६
दौहित्रो वापि दौहित्री बभूव साम्प्रतं तव।
कन्यां पश्य महाप्रौढ़ां नगरीं नागरान्विताम् ॥७

इस अध्याय में बाणासुर के युद्ध का वर्णन किया जाताहै नारायण ने कहा—इसके अनन्तर डरे हुए रक्षकों ने अपने स्वामी बाण से कहा था। कहने के पूर्व उन्होंने स्कन्द-गणेश-दुर्गा को दण्डवत प्रणाम किया था ॥१॥ रक्षकों ने कहा था—अहो! यह कैसा दुष्ट समय उपस्थित हो गया है जो अत्यन्त ही दुरति क्रम वाला है। इस समय में प्रौढ स्वतन्त्र बालिकाऐं पति की इच्छा किया करती हैं ॥२॥ हे नाथ! असंग के साथ

संगम का होना साधुओं के लिये दुःख का कारण होता है। मनुष्यों के गुण और दोष निरन्तर संसर्ग से ही उत्पन्न हुआ करते हैं ॥३॥ चित्रलेखा स्वयं दूती है। उसने ही परम श्रेष्ठ-रणशूर-महान वीर-महारथ-युवा व्याधिहीन और कामदेव से भी अधिक सुन्दर नृपेन्द्र को लाकर सम्भोग कराया था कि वे अब रात-दिन को भी नहीं जानते हैं और रति के लिये ही लिपटे रहते हैं ॥४–५॥ इस समय आपकी कन्या उषा भी सती गर्भवती है। वह सत्कुल में उत्पन्न होने वाली है। किन्तु दोनों कुलों के लिये तप्त अंगार के तुल्य है ॥६॥ अब तो आपके दौहित्र या दौहित्री हुई थी। आप महा प्रौढा कन्या और नागरों से अन्वित नगरी को देखिये ॥७॥

सस्मितां सकटाक्षञ्च चञ्चलेक्षणवीक्षिताम् ।
एवं श्रुत्वा लज्जितश्च बाणस्तत्र चुकोपह ॥८
युद्धाय च मतिं चक्रे वारितः शम्भुना भृशम् ।
वारितश्च गणेशेन स्कन्देन शिवया तथा ॥९
भैरव्या भद्रकाल्या च योगिनीभिश्च सन्ततम् ।
अष्टभिर्भैरवैश्चैव रुद्रैरेकादशात्मकैः ॥१०
भूतैः प्रेतैश्च कूष्माण्डैर्वेतालैर्ब्रह्मराक्षसैः ।
योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रै रुद्रैश्चण्डादिभिस्तथा ॥११
कोटचा च ग्रामदेव्या च यथा मात्रा हिताय च ॥१२
उवाच शङ्करो बाणं मूढं पण्डितमानिनम् ।
हितं सत्यं नीतिशास्त्रं परिणामसुखावहम् ॥१३

आपकी कन्या स्मित और कटाक्षों से युक्त है। और उसकी दृष्टि चंचल नेत्रों वाली है। इस प्रकार से दूत रक्षकों के वचन को सुनकर बाण लज्जित हुआ और उसे अत्यन्त कोप भी हुआ था ॥८॥ फिर तो बाण ने युद्ध करने के लिये अपना विचार स्थिर कर लिया था यद्यपि शम्भु भगवान ने बहुत अधिक वारण भी किया था। युद्ध को करने का निषेध गणेश-स्कन्द और शिवा ने भी किया था ॥९॥ भैरवी-भद्रकाली-योगिनियाँ-आठों भैरव-एकादश रुद्र-भूत-प्रेत- कूष्माण्ड-वेताल-ब्रह्मराक्षस

योगीन्द्र सिद्धेन्द्र-रुद्र और चण्डादि के द्वारा वाण को युद्ध करने के लिये वारित किया था ॥१०-११॥ एक करोड़ ग्राम देवियों ने भी माता की भाँति उसके हित के लिये वारण किया था। भगवान शंकर मूढ़ और अपने आपको पण्डित मानने वाले बाण से बोले थे जोकि उसका हितकर नीतिशास्त्र और परिणाम में सुखप्रद था ॥१२-१३॥

श्रृणु बाण प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ।
भुवो भारावतरणे भारते स्वयमीश्वरः ॥१४
निहत्य सर्वान् राजेन्द्रान् द्वारकायां विराजते ।
यस्य लोमसु विश्वानि तस्य वासोः सदीश्वरः ॥१५
वासुदेव इति ख्यातः कथ्यते तेन कोविदैः ।
धातुर्विधाता भगवान् चक्रपाणिः स्वयं भुवि ॥१६
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः ।
निर्गुणश्च निरीहश्च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥१७
परं ब्रह्म परं धाम परमात्मा च देहिनः ।
यस्मिन् गते शवो जीवो संग्रामस्तेन संभवेत् ॥१८
शस्त्रविद्धो महाकाले यथा मूढ़दिशस्तथा ।
तथात्मा च निराकारो देही च ध्यानहेतुना ॥१९
तस्यपुत्रोऽनिरुद्धश्च महाबलपराक्रमः ।
त्रैलोक्यमपि संहर्तुं क्षणेन च क्षमः स्वयम् ॥२०
सर्वे देवाश्च दैत्याश्च बलवन्तो महारथाः ।
ते सर्वे चानिरुद्धस्य कलां नार्हन्तिषोड़शीम् ॥२१
ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं बलम् ।
तयोर्विवाहो मैत्री च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥२२

श्री महादेव ने कहा—हे बाण। तुम श्रवण करो, मैं परम पुरातन एक कथा कहता हूँ। भूमि के भार को उतारने के लिये स्वयं ईश्वर भारत में अवतीर्ण हुए हैं ॥१४॥ इस समय वे समस्त राजेन्द्रों का निहनन करके द्वारकापुरी में विराजमान हैं। जिसके रोम कूपों में विश्व रहा करते हैं। उसी सदीश्वर का द्वारकापुरी में निवास है ॥१५॥ उनका

वासुदेव-यह शुभ नाम प्रसिद्ध है । इससे वह विद्वानों के द्वारा धाता का भी विधाता-चक्र पाणि स्वयं भूमि में अवतीर्ण भगवान कहे जाते हैं ।।१६।। यह ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि के ईश्वर-प्रकृति से भी पर निर्गुण-विना ईहा वाले-भक्तों पर अनुग्रहार्थ ही विग्रहधारी हैं ।।१७।। परमब्रह्म-देहधारी के परमात्मा हैं । जिसके इस शरीर से निकल जाने पर यह शरीर शव तथा जीव भी शव ही कहा जाता है उसके साथ संग्राम कैसे सम्भव हो सकता है ।।१८।। जिस प्रकार महाकाल में शस्त्र विद्ध, उसी तरह मूढ़ दिश है । उसी तरह से यह आत्मा और ध्यान हेतु से देही निराकार है ।।१६।। उसका पुत्र अनिरुद्ध महान बल और पराक्रम वाला है । यह त्रैलोक्य को भी एक ही क्षण में स्वयं संहार करने में समर्थ है ।।२०।। समस्त देवता और सम्पूर्ण दैत्य यद्यपि महान बल तथा पराक्रम वाले हैं किन्तु वे सब भी अनिरुद्ध की सोलहवीं कला के योग्य भी नहीं होते हैं ।।२१।। जिन दो का समान वित्त और जिन दोनों का तुल्य बल होता है उन दो का ही विवाह तथा मैत्री होते हैं कभी पुष्ट और विपुष्ट दो के ये कार्य नहीं हुआ करते हैं ।।२२।।

बलिः पिता ते दैत्यानां सारभूतो महारथः ।
क्षणेन येन नीतश्च सुतलं स हरेः कला ।।२३

सर्वे चांशकलाः पुंसः परिपूर्णतमस्य च ।
वृन्दावनेश्वरस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः ।।२४

ध्यायते ध्याननिष्ठश्च हृत्पद्मे च दिवानिशम् ।
ब्रह्मा महेशः शेषश्च भगवन्तं सनातनम् ।।२५

दिनेशश्च गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।
ध्यायते परमात्मानं भगवन्तं सनातनम् ।।२६

सनत्कुमारः कपिलो नरो नारायणस्तथा ।
ध्यायते हृदयाम्भोजे भगवन्तं सनातनम् ।।२७

मनवश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा योगिनां वराः ।
ध्यानासाध्यञ्च ध्यायन्ते भगवन्तं सनातनम् ।।२८

सर्वादिं सर्वबीजञ्च सर्वेशञ्च परात्परम् ।
ध्यायन्ते ज्ञानिनः सर्वे भगवन्तं सनातनम् ।।२९

तुम्हारा पिता बलि दैत्यों का सारभूत महारथ था उसको भी एक ही क्षण में जिसने सुतल लोक में पहुँचा दिया था वह हरि की कला है ।।२३।। ये सभी तो परिपूर्णतम और वृन्दावन के ईश्वर परमात्मा के अंशकला के अवतार थे ।।२४।। पार्वती ने कहा—ध्यान में निष्ठ होकर अपने हृदय रूपी कमल में अहर्निश सनातन उस भगवान का ब्रह्मा-विष्णु और महेश-शेष ध्यान किया करते हैं ।।२५।। दिनेश-गणेश जो योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु हैं । सनातन परमात्मा भगवान् का ध्यान किया करते हैं ।।२६।। सनत्कुमार-कपिल-नर तथा नारायण भी सनातन भगवान का अपने हृदय कमल में ध्यान करते हैं ।।२७।। मनुगण-मुनीन्द्र मण्डल-सिद्धेन्द्र और योगियों में श्रेष्ठ पुरुष भी ध्यान में असाध्य सनातन भगवान् को ही ध्यान में लाने का बराबर प्रयत्न किया करते हैं ।।२८।। सब का आदि-सबका बीज स्वरूप-सब का ईश-पर से भी पर सनातन भगवान् का सभी ज्ञानी पुरुष ध्यान किया करते हैं ।।२९।।

सुदर्शनेन चक्रेण को वा त्वां रक्षितुं क्षमः ।
कोटरीवचनं श्रुत्वा चुकोप दैत्यपुङ्गवः ।।३०
प्रययौ रथमारुह्य यत्र पौत्रो हरेर्मुने ।
स्कन्दः सेनापतिर्भूत्वा प्रययौ शंकराज्ञया ।।३१
बाणस्वस्त्ययनं चक्रे गणेशश्च शिवः स्वयम् ।
बाणं शुभाशिषं चक्रे पार्वती कोटरी तथा ।।३२
अष्टौ च भैरवाश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते ।
सर्वे युद्धाय हन्तारो बभूवुः शस्त्रपाणयः ।।३३
एतस्मिन्नन्तरे दूतोऽप्यनिरुद्धमुवाच ह ।
पार्वत्या प्रेरितश्चैव बाणपत्न्या च सत्वरम् ।।३४
अनिरुद्धोत्तिष्ठ भद्रं पार्वतीवचनं शृणु ।
भव सान्नाहिको वत्स कुरु युद्धं बहिर्भव ।।३५

भीतोषा रुदती त्रस्ता सस्मार पार्वतीं सतीम् ।
रक्ष रक्ष महामाये मत्प्राणेश्वरमीप्सित ॥३६

उसके सुदर्शन चक्र से तेरी कौन रक्षा करने में समर्थ हो सकता है ? इस कोटरी वचन को श्रवण कर दैत्यों में श्रेष्ठ अत्यन्त कुपित हो गया था। और वह बाण रथ पर समारूढ़ हो कर वहां पहुँच गया था जहां हे मुने ! हरि के पौत्र अनिरुद्ध थे। उसके सेनापति होकर स्कन्द शंकर की आज्ञा से गये थे ॥३०-३१॥ गणेश और स्वयं शिव ने बाण का स्वस्त्ययन किया था तथा कोटरी पार्वती ने बाण को आशीर्वाद भी दिया था ॥३२॥ आठ भैरव और एकादश रुद्र सभी हाथों में हथियार ग्रहण करके युद्ध के लिये मारने वाले तैयार होगये थे ॥३३॥ इसी बीच में दूत ने अनिरुद्ध से कहा जो कि पार्वती के द्वारा तथा बाण की पत्नी के द्वारा अनिरुद्ध के पास भेजा गया था ॥३४॥ दूत ने कहा—हे अनिरुद्ध ! आप अब खड़े हो जाइये और माता पार्वती के वचनों को श्रवण करिये। हे वत्स ! युद्ध करने वाले अब हो जाइये। अब बाहिर आजाइये और युद्ध करिये ॥३५॥ यह सुनकर उमा बहुत भयभीत हो गई थी। उसने सती पार्वती का स्मरण किया था। उषा ने पार्वती जगदम्बा से प्रार्थना की थी—हे महामाये ! मेरे अभीष्ट प्राणेश्वर की आप रक्षा करो—रक्षा करो ॥३६॥

अभयेऽप्यभयं देहि संग्रामे घोरदारुणे ।
त्वमेव जगतां माता स्नेहस्ते सर्वतः समः ॥३७
अथानिरुद्धः सन्नाही शस्त्रपाणिर्बभूव ह !
उषादत्तं रथं प्राप्य चकारारोहणं मुदा ॥३८
वहिः सम्भूत शिवराद्ददर्श बाणमीश्वरः ।
सान्नाहिकं शस्त्रपाणि रक्तास्यलोचनं परम् ॥३९
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं बाणश्च तमुवाच रुषान्वितः ।
घोरसंग्राममध्ये च विषाक्ति प्रज्वलन्निव ॥४०
अये वीर महादुष्ट नीतिशास्त्रविवर्जित ।
चन्द्रवंशकुलाङ्गार पुण्यक्षेत्रेऽयशस्करः ॥४१

पिता ते शंवरं हत्वा जग्राह तस्य कामिनीम् ।
ततो जातो भवानेव निरोधं स्वकुलक्षमम् ॥४२

इस महान् घोर दारुण संग्राम में अभय में भी आप अभय प्रदान करो । आप ही समस्त जगतों की माता हैं और आपका स्नेह तो सभी पर समान ही कहा गया है ॥३७॥ इसके अनन्तर अनिरुद्ध सन्नाह(युद्ध) करने वाला हो गया था और उसने हाथों में हथियार ग्रहण कर लिये थे । उषा के द्वारा दिये हुए रथ पर वह हर्ष पूर्वक रथ पर सवार हो गया था ॥३८॥ शिविर से बाहिर आकर ईश्वर उसने बाण को देखा था कि वह बाण युद्ध को प्रस्तुत था । हाथों में शस्त्र धारण किये हुए था और उसका मुख तथा दोनों नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे ॥३९॥ बाण ने अनिरुद्ध को देख कर बड़े ही क्रोध से उस अनिरुद्ध से कहा था और उस घोर संग्राम के मध्य में प्रज्वलित होते हुए के समान विषोक्ति उसने उगल दी थी ॥४०॥ बाणबोला—हे महावीर ! हे महान् दुष्ट ! तू तो नीति शास्त्र से बिल्कुल ही रहित है । तू चन्द्रवंश के अन्दर कुल में अङ्गार के समान ही उत्पन्न हुआ है । इस पुण्य को तू अयश के करने वाला हो गया है ॥४१॥ तेरे पिता ने शम्बर को मार कर उसकी कामिनी को ग्रहण कर लिया था । उसी से तुम समुत्पन्न हुए हो जो अपने कुल के क्षम निरोध करने वाले हो ॥४२॥

पितामहो वासुदेवो मथुरायाञ्च क्षत्रियः ।
गोकुले वैश्यपुत्रश्च नाम्ना च नन्दनन्दनः ॥४३
वृन्दावने च गोपस्य नन्दस्य पशुरक्षकः ।
साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः ॥४४
जघान पूतनां सद्यो नारीघाती ह्यधार्मिकः ।
आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च ॥४५
दुर्बलं नरक हत्वा स्त्रीसमूहं मनोहरम् ।
जग्राह योनिलुब्धश्च स्वपुत्रमतिनिष्ठुरः ॥४६
भीष्मकं मानवं जित्वा तत्पुत्रञ्चापि दुर्बलम् ।
जग्राह कन्यकां तस्य देवयोग्याञ्च रुक्मिणीम् ॥४७

सत्राजितः सूर्यभृत्यो देवात् प्राप्य मणीश्वरम् ।
घातयित्वा ह्युपायेन जग्राह मणिकन्यकाम् ॥४८
कुरुपाण्डवयुद्धञ्च कारयित्वा च दारुणाम् ।
युधिष्ठिरस्य यज्ञे च शिशुपालं जघान सः ॥४९

तेरे पितामह वासुदेव मथुरा में क्षत्रिय हो गये थे । वह गोकुल में वैश्य के पुत्र के जिनका नाम नन्दनन्दन था । ॥४३॥ और वृन्दावन में गोप नन्द का पशु रक्षक था । वह साक्षात् जार था । गोपियों के साथ ही रहा करता था । वह महान् दुष्ट और परम लम्पट था ॥४४॥ उसने तुरन्त ही पूतना को मार डाला था और नारी का घात करने वाला पूर्ण धर्म से हीन था । मथुरा में आकर भी उसने मैथुन द्वारा विचारी कुब्जा को मार डाला था ॥४५॥ कमजोर नरकासुर को मारकर उसके सुन्दर स्त्रियों के समुदाय को ही उसने ग्रहण कर लिया था । वह बहुत ही योनि लुब्ध है और स्वपुत्र के प्रति भी अत्यन्त निष्ठुर है ॥४६॥ भीष्मक मानव को जीतकर और दुर्बल उसके पुत्र को भी पराजित करके उसकी देवयोग्य कन्या रुक्मिणी का ग्रहण कर लिया था ॥४७॥ सत्राजिय सूर्य का सेवक था । उसने देवता से एक श्रेष्ठ मणि की प्राप्ति की थी । उसका भी उपाय द्वारा घात कराकर उसकी मणि और कन्या दोनों को तेरे पितामह ने हथिया लिया ॥४८॥ कौरव और पाण्डवों का महान् दारुण युद्ध कराकर उसने युधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपाल को मार डाला था ॥४९॥

दन्तवक्रं च शाल्वंच जरासन्धंच दारुणः ।
सञ्जहार भुवो भूपसमूहमतिदारुणम् ॥५०
उपायान्नरकं हत्वा सर्वस्वं तज्जहार सः ।
दुर्बलो राजभीतश्च समुद्रं शरणं गतः ॥५१
जित्वा च भ्रातरं शक्रं भार्याया वचनेन च ।
जग्राह पारिजातञ्च पुष्पञ्च स्वर्गदुर्लभम् ॥५२
कंसं निहत्याधर्मिष्ठो भ्रातरं मातुरेव च ।
जग्राह तस्य सर्वस्वं परं किं कथयामि ते ॥५३

जित्वा च भल्लुकं युद्धे जग्राह तस्य कन्यकाम् ।
तत्पितुर्भगिनी कुन्ती चतुर्णां कामिनी भुवि ॥५४
द्रौपदीभ्रातृपत्नी च पञ्चानां कामिनी तथा ।
गोष्ठीने योनिलुब्धश्च शश्वत् परमलम्पटः ॥५५
तज्ज्येष्ठो बलदेवश्च शश्वत् पिबति वारुणीम् ।
यमुनां भ्रातृपत्नींच करोत्याह्वानमीप्सितम् ॥५६
जहार भगिनीं तस्य कौन्तेयः शक्रनन्दनः ।
सुभद्रां मातुलसुतां सन्निबोध कुलक्रमम् ॥५७
बाणस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप कामनन्दनः ।
उवाच परमार्थञ्च योग्यं प्रत्युत्तरं मुने ॥५८

उसने एक को ही नहीं बहुत से राजाओं का हनन किया था जिनमें दन्तवक्त्र—शाल्व—जरासन्ध आदि हैं। इस तरह से दारुण उसने अतिदारुण राजाओं के समूह को इस भूमण्डल में संहार किया है ॥५०॥ उपाय द्वारा नरक को मारकर उसके सर्वस्व का हरण कर लिया था। वह तेरा पितामह दुर्बल और राजाओं से भीत होकर ही तो समुद्र के शरण में गया था ॥५१॥ अपने ही भाई इन्द्र को जीत कर अपनी भार्या के कहने से स्वर्ग दुर्लभ पारिजात वृक्ष और पुष्पों को ले आया था ॥५२॥ कंस को जो अपनी माता का ही भाई था मारकर महान् अधर्मी ने उसका सभी कुछ ग्रहण कर लिया था। इससे अधिक क्या कहूँ ॥५३॥ भल्लक को युद्ध में जीत कर उसकी भी कन्या को ग्रहण कर लिया था उसके पिता की बहिन कुन्ती चारों की भू मण्डल में कामिनी हुई है ॥५४॥ द्रौपदी भाइयों की पत्नी है जो पाँचों की कामिनी है। गोष्ठीन में योनि लुब्ध है और निरन्तर परम लम्पट रहने वाला है ॥५५॥ उसका बड़ा भाई बलदेव है जो निरन्तर वारुणी ही पान किया करता है वह भाई की पत्नी यमुना का ईप्सित आह्वान करता है ॥५६॥ शत्रु के पुत्र कौन्तेय ने उसकी भगिनी सुभद्रा को ग्रहण कर लिया था जो मामा की पुत्री थी। इस तरह तुम अपने सम्पूर्ण कुल के क्रम को समझ लो कि कैसा तेरा खानदान है ॥५७॥

वाण के ऐसे वचनों का श्रवण कर काम के पुत्र को क्रोध हुआ था। हे मुने ! इसके उपरान्त फिर उसने परमार्थ-योग्य प्रत्युत्तर उसको दिया था ॥५८॥

पिता मे कामदेवश्च ब्रह्मपुत्रः पुरा शुचिः ।
यस्यास्त्रेण वशीभूतं त्रैलोक्यं सततं शृणु ॥५९
शिवकोपानलेनैव भस्मीभूतः स्वकर्मतः ।
कृष्णस्य पुत्रोऽप्यधुना सर्वेषां परमात्मनः ॥६०
पतिव्रता रती माता पतिशोकेन साम्प्रतम् ।
शंबरस्य गृहे तस्थौ हृता तेन बलेन च ॥६१
छायां मायावतीं दत्त्वा मायया शयनेन च ।
रतीं स्वधर्मं संरक्ष्य धर्मसाक्षी च तद्गृहे ॥६२
निहत्यशंवरं शत्रुं गृहीत्वा स्वप्रियांसतीम् ।
आजगाम द्वारकांच चन्द्रसूर्य्यौच साक्षिणौ ॥६३
पितामहं वासुदेवं त्वं किं जानासि मुढ़वत् ।
यंच सन्तो न जानन्ति वेदाश्चत्वार एव च ॥६४

अनिरुद्ध ने कहा—मेरे पिता कामदेव हैं जो पहिले परम पवित्र ब्रह्मा के पुत्र थे जिसके अस्त्र से यह त्रैलोक्य वशीभूत है और निरन्तर ही रहा करता है। इसे सुन लो—फिर वह शिव की क्रोधाग्नि के द्वारा अपने ही कर्म से भस्मीभून हो गया था। अब वही कृष्ण का पुत्र हुआ है जो सबके परमात्मा हैं ॥५९-६०॥ मेरी माता रती परम पतिव्रता है जो कि अपने पति के शोक में शम्बर के गृह में स्थित थी अतः उसको बल पूर्वक ले आये थे ॥६१॥ माया से मायावती छाया को शयन में देकर ही रती ने अपने धर्म का संरक्षण किया था। इसका उसके घर में धर्म साक्षी है ॥६२॥ शम्बर शत्रु का निहनन करके अपनी सती प्रिया को ग्रहण करके वह द्वारका में आ गये थे—इसके साक्षी तो चन्द्र और सूर्य दोनों हो हैं ॥६३॥ मेरे पितामह वासुदेव को तू महामूढ़ होकर क्या जान एवं पहिचान सकता है ? जिसको बड़े२ महापुरुष सन्त तथा चारों वेद भी नहीं पहिचान पाते हैं ॥६४॥

वासुः सर्वनिवासस्य विश्वानि यस्य लोमसु ।
तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतिस्मृतः ॥६५
शंकरं पृच्छ साक्षाच्च यस्य भृत्योऽधुना भवान् ।
कृष्णभृत्यस्य च बलेः पुत्रोऽसि किंकरात्मकः ॥६६
गोकुले वैश्यपुत्र त्वं ब्रूहि त्वं ज्ञानदुर्बल ।
भोजनं वेदविहितं शश्वत् क्षत्रियवैश्ययोः ॥६७
द्रोणः प्रजापतिः श्रेष्ठो घरा तस्य प्रिया सती ।
पुत्रञ्च तपसा लेभे परमात्मानमीश्वरम् ॥६८
द्रोणोनन्दोवैश्यराजो यशोदा सा धरासती ।
वृषभानुसुताराधा सुदाम्नः शापकारणात् ॥६९
त्रिशत्कोटिञ्च गोपीनां गृहीत्वाभर्त्तुराज्ञया ।
पुण्यञ्च भारतं क्षेत्रं गोलोकादाजगामसा ॥७०
ताभिः सार्द्धं स रेमे च स्वपत्नीभिर्मुदान्वितः ।
पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥७१

सर्व निवास अर्थात् जिसमें सबका निवास होता है वह वासु होता है जिसके लोमों के छिद्रों में विश्वों का निवास रहता है। उसका देव परम ब्रह्म है। अतएव इनका वासुदेव—यह नाम कहा गया है ॥६५। तू भगवान् शङ्कर से ही पूछ ले जिसका स्वयं आप सेवक है। तू कृष्ण के सेवक बलि का किंकर स्वरूप वाला पुत्र है ॥६६॥ तू तो ज्ञान से बहुत ही दुर्बल है जो कि गोकुल में वैश्य का पुत्र बोलता है। क्षत्रिय और वैश्य का भोजन तो वेद में विहित है ॥६७॥ द्रोण श्रेष्ठ प्रजापति थे। उनकी धरा परमप्रिया सती थी। उसने तपस्या के द्वारा परमात्मा ईश्वर को अपना पुत्र प्राप्त किया था ॥६८॥ वही द्रोण वैश्यराज नन्द था और धरा सती यशोदा हुई थी। वृषभानु की पुत्री राधा सुदामा के शाप के कारण से भूमण्डल में अवतीर्ण हुई थी ॥६९॥ वही राधा अपने स्वामी की आज्ञा से तीस करोड़ गोपियों को लेकर इस परम पुण्यमय भारत देश में गोलोक से यहाँ आई थीं ॥७०॥ उन अपनी पत्नियों के साथ ही

हर्षान्वित होकर श्रीकृष्ण ने रमण किया था। ब्रह्मा ने स्वयं यहाँ आकर राजा का पाणिग्रहण कराया था जो कि एक पुरोहित के स्वरूप थे ॥७१॥

भीष्मकन्या महालक्ष्मीः श्रीकृष्णस्य प्रिया सती।
वैकुण्ठादागता साध्वी ब्रह्मणोऽनुमतेन च ॥७२
सत्राजितस्य कन्या सा सत्यभामा वसुन्धरा।
ददौ कृष्णाय राजा स तां मणि यौतुकेन च ॥७३
भुवो भारावतरणहेतुनागमनं हरेः।
स जहार भुवो भारं कुरुपाण्डवयुद्धतः ॥७४
शिशुपालो दन्तवक्रो जयो विजय एव च।
द्वारिणो द्वारि षट्के च वैकुण्ठे श्रीहरेरपि ॥७५
जरासन्धश्चशाल्वश्च दुरात्मा कंस एव च।
प्राक्तनात्तस्यबध्यास्ते भुवो भारजिहीर्षया ॥७६
मांधातुः सुतमध्ये च यवनाश्चापि प्राक्तनात्।
लक्ष्मीश्वरस्य कृष्णस्य धनेन किं प्रयोजनम् ॥७७

भीष्म की कन्या रुक्मिणी तो स्वयं महालक्ष्मी थी जो कि कृष्ण की सती प्रिया थी। ब्रह्मा की ही अनुमति से वह वैकुण्ठलोक से यहाँ साध्वी आई थी ॥७२॥ सत्राजित की जो कन्या सत्यभामा है वह तो साक्षात् वसुन्धरा का स्वरूप है। उस राजा ने कृष्ण के लिये उसका दान किया था और वह मणि यौतुक (दहेज) के रूप में उसने स्वयं ही दी थी ॥७३॥ इस भूमण्डल के भार को दूर करने ही के लिये हरि का यहाँ आगमन हुआ है अतएव कौरव और पाण्डवों के युद्ध से उनने इस वसुन्धरा के भार का संहार किया था ॥७४॥ दन्तवक्त्र और शिशुपाल तो जय और विजय नामधारी वैकुण्ठ लोक के द्वार पर रहने वाले भगवान् के ही पार्षद थे जो छै में से दो थे ॥७५॥ जरासन्ध—शाल्व—और कंस ये सब बड़े ही दुरात्मा थे। प्राक्तन कर्म के कारण से ये सभी वध करने के ही योग्य थे। अतएव इस भूमि के भार को दूर करने की इच्छा से ही इनका वध किया गया था ॥७६॥ मांधाता के सुत के मध्य में यवन

अपने पहिले कर्मों के कारण मारा गया था। श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मी के स्वामी हैं उनको किसी के धन से क्या प्रयोजन है ॥७७॥

स्वयंजाम्बवती देवी दुर्गांशा भल्लकात्मजा।
पाणिं जग्राह तस्याश्च तपसा भारते हरिः॥७८
कुन्त्याश्च क्षेत्रजाः पुत्राः केवलं भर्तुराज्ञया।
कलौ निषिद्धं त्रियुगे प्रसिद्धं पलपैतृकम्॥७९
युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो भीमश्च पवनात्मजः।
महेन्द्रपुत्रो धर्मिष्ठः फाल्गुनो विजयी भुवि॥८०
यस्मै पाशुपतं शम्भुः प्रददौ च स्वयं पुरा।
अश्वमेधं गवालम्बं सन्न्यासं पलपैतृकम्॥८१
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत्।
द्रौपद्याः पंच भर्तारो शांकरेण वरेण च॥८२
बलदेवः पुष्पमधु पूतं पिबति नित्यशः।
चकार यमुनाह्वानं स्नानार्थं धार्मिकः शुचिः॥८३
सुभद्रांच ददौ कृष्णः फाल्गुनाय महात्मने।
कन्यकां मातुलानांच दाक्षिणात्यः परिग्रहात्॥८४
देशेष्वन्येषु दोषोऽत्यमित्याह कमलोद्भवः॥८५

जाम्बवती देवी स्वयं भल्लक की पुत्री दुर्गा का अंश है उसकी तपस्या के कारण से ही भारत में हरि ने उसके पाणि का ग्रहण किया है ॥७८॥ कुन्ती के तो केवल भर्त्ता की आज्ञा से क्षेत्रज पुत्र थे। यद्यपि कलियुग में निषिद्ध है किन्तु अन्य तीनों युगों में यह पल पैतृक प्रसिद्ध है ॥७९॥ युधिष्ठिर धर्म का पुत्र था—भीम वायु का पुत्र था—भूमण्डल में विजयी परम धर्मिष्ठ फाल्गुन (अर्जुन) महेन्द्र का पुत्र था। जिसको शम्भु ने स्वयं पहिले पाशुपत अस्त्र दिया था। अश्वमेध—गो का आलभन संन्यास—पल पैतृक और देवर के द्वारा सुत की उत्पत्ति ये पाँच कार्य कलियुग में परिवर्जित होने चाहिए। द्रौपदी के पाँच भर्त्ता जो थे वे शंकर के वरदान से ही हुए थे ॥८०-८२॥ बलदेव परम पुनीत—पुष्पमधु का नित्य पान किया करते हैं। परम धार्मिक एवं शुचि ने स्नान करने के

लिये ही यमुना का आह्वान किया था ॥८३॥ कृष्ण ने स्वयं ही महान् आत्मा वाले अर्जुन के लिये सुभद्रा को दिया था। दाक्षिणात्य लोग मातुलों की कन्या का परिग्रह किया करते हैं उनके यहाँ यह अवैध नहीं है ॥८४॥ अन्य देशों में मातुली कन्या का परिग्रह करना दोष होता है—ऐसा कमलोद्भव ब्रह्माजी ने कहा है ॥८५॥

१०५—बाणानिरुद्धयुद्धवर्णनम्

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुभद्रश्च महाबलः ।
कुम्भाण्डभ्राता बलवान् बाणसेनापतीश्वरः ॥१
निर्भर्त्स्य बाणसमरे शस्त्रपाणर्महारथः ।
श्रीकृष्णपौत्रं शूलञ्च चिक्षेप प्रलयाग्निवत् ।।२
अर्धचन्द्रेण तच्छूलं चिच्छेद कामपुत्रकः ।
शक्ति चिक्षेप भद्रश्च शतसूर्य्यसमप्रभाम् ॥३
वैष्णवास्त्रेण चिच्छेद तां शक्ति कामपुत्रकः ।
नारायणास्त्रं चिक्षेप सुभद्रो रणमूर्धनि ॥४
प्रणम्य शेते निर्भीतो मदनस्य सुतो बली ।
ऊर्ध्वमस्त्रं च बभ्राम शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥५
प्रलीनमस्त्रमाकाशे विश्वसंहारकारणम् ।
अस्त्रे गते सोऽनिरुद्धो गृहीत्वाच महानसिम् ॥६
प्रबभंज भद्ररथं जघानाश्वांश्च सारथिम् ।
जघान तं सुभद्रं च लीलया रणमूर्धनि ॥७
हते सुभद्रे बाणश्च महाबलपराक्रमः ।
बाणानां शतकंचापि चिक्षेप रणमूर्धनि ॥८

इस अध्याय में भी वाणासुर और अनिरुद्ध के सम्वाद का निरूपण किया जाता है। इसी अन्तर में वहाँ पर महान् बलवान् कुम्भाण्ड का भाई और अति बलवान् सुभद्र जो बाण की सेना के अधिपतियों का भी अधिपति था वहाँ आ गया था और इस महारथ ने हाथ में शस्त्र ग्रहण करके बाण के युद्ध में अनिरुद्ध को बड़ी जोर भर्त्सना दी थी और प्रलय

की अग्नि के समान श्रीकृष्ण पौत्र पर शूल का प्रक्षेप किया था ॥१-२॥ काम पुत्र ने उस शूल को अर्ध चन्द्र के द्वारा छिन्न कर दिया था। और भद्र ने सौ सूर्यों के समान प्रभा वाली शक्ति का प्रक्षेप किया था ॥३॥ कामदेव के पुत्र ने वैष्णव अस्त्र के द्वारा उस शक्ति का छेदन कर दिया था। रणभूमि में सुभद्र ने नारायणास्त्र का प्रक्षेप किया था ॥४॥ मदन के पुत्र ने नारायणास्त्र को प्रणाम किया था और निर्भीत होकर वह बली सो गया था और वह सौ सूर्यों की प्रभा के समान प्रभा वाला अस्त्र ऊपर की ओर भ्रमण करने लगा था ॥५॥ विश्व के संहार करने का कारण स्वरूप वह नारायणास्त्र कुछ ही समय में आकाश में प्रलीन हो गया था। जब वह नारायणास्त्र चला गया तो फिर अनिरुद्ध ने अपनी महान् असि को ग्रहण किया था ॥६॥ उस रण क्षेत्र के मध्य में भद्ररथ का भञ्जन कर दिया था। अश्वों को और उसके सारथि को मार दिया था। तथा लीला से ही सुभद्र को मार डाला था ॥७॥ सुभद्र के हत हो जाने पर महान् बल और पराक्रम वाले बाण ने उस रणक्षेत्र के मध्य में सौ बाण एक साथ अनिरुद्ध पर प्रक्षिप्त किये थे ॥८॥

कामात्मजोऽग्निबाणेन बाणौघं प्रददाह सः।
बाणश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सृष्टिसंहारकारणम् ॥९
दृष्ट्वा कामात्मजः शीघ्रं सबीजं मन्त्रपूर्वकम्।
ब्रह्मास्त्रेणैव सहसा संजहारात्रलीलया ॥१०

बाणः पाशुपतं क्षेप्तुं समारेभे च कोपतः।
निषिद्धश्च गणेशेन स्कन्देन शम्भुना तथा ॥११
तद् दृष्ट्वा सोऽनिरुद्धस्तं भनुर्बाणौघसंयुतम्।
मुमोच जृम्भणं युद्धे शीघ्रं तं च महारथम् ॥१२

जड़ो बभूव बाणश्च निश्चेष्टो रणमूर्धनि।
पुनश्चिक्षेप निद्रास्त्रं निद्रितं तं चकार सः ॥१३
बाणं तं निद्रितं दृष्ट्वा गृहीत्वा खड्गमुत्तमम्।
बाणं हन्तुं समुद्यन्तं वारयामास कार्त्तिकः ॥१४

उस कामात्मज ने अपने अग्नि बाण से उन बाण के द्वारा प्रक्षिप्त बाणों के समूह को जला दिया था। फिर बाण ने ब्रह्मास्त्र के द्वारा प्रहार किया था जो कि सृष्टि के संहार का कारण स्वरूप था ॥९॥ फिर कामदेव के पुत्र ने यह देखकर शीघ्र बीज के सहित मन्त्र पूर्वक सहसा ब्रह्मास्त्र के द्वारा ही अवलीला से उसका संहार कर दिया था ॥१०॥ बाण ने कोप करके पाशुपत अस्त्र का क्षेप करने के लिये आरम्भ किया था। गणेश ने उस समय में निषेध किया था—स्कन्द तथा शम्भु ने भी पाशुपत अस्त्र को प्रक्षिप्त करने में पूर्णतया निषेध किया था ॥११॥ यह देख कर उस अनिरुद्ध ने उस धनुष के बाणों के समूह से संयुत जृम्भाण अस्त्र को शीघ्र युद्ध में उस महारथ पर प्रक्षिप्त कर दिया था ॥१२॥ उस अस्त्र का यह प्रभाव हुआ कि बाण वहीं पर युद्ध क्षेत्र में जड़ होकर चेष्टा हीन हो गया था। इसके पश्चात् उस अनिरुद्ध ने निद्रास्त्र छोड़ दिया था और इससे उस बाणासुर को उसने निद्रित कर दिया था ॥१३॥ उस बाण को निद्रित देख कर अनिरुद्ध ने अपना उत्तम खड्ग ग्रहण कर लिया था कि उससे उसका हनन कर दिया जावे किन्तु बाण का हनन करने को समुद्यत अनिरुद्ध को स्वामि कार्त्तिकेय ने वारण कर दिया था ॥१४॥

स्कन्दश्च शतबाणैश्च वारयामास लीलया।
अनिरुद्धं महाभागं बलवन्तं धनुर्धरम् ॥१५
अनिरुद्धश्च सहसा तया शक्त्या दुरन्तया।
बभंजकार्त्तिकरथं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् ॥१६
गदया कार्त्तिकः क्रुद्धोऽप्यनिरुद्धरथं मुदा।
बभंज लीलया तत्र क्षणेन रणमूर्धनि ॥१७
अनिरुद्धोऽर्धं चन्द्रेण क्षुरधारेण लीलया।
चिच्छेद कार्त्तिकधनुर्भल्लास्त्रेण नियोजितम् ॥१८
जघान कार्तिकस्तं च गदया च दुरन्तया।
गदां जग्राह तद्धस्ताज्जवेन मदनात्मजः ॥१९

शूलं गृहीत्वा स्कन्दं च तमेव हन्तुमुद्यतम् ।
अनिरुद्धश्च कोपेन प्रेरयामास दूरतः ॥२०
कार्तिकः पुनरागत्य गृहीत्वा कामपुत्रकम् ।
गृहीत्वा च करेणैव पातयामास भूतले ॥२१
अनिरुद्धो गृहीत्वासिं समुत्तस्थौ महाबलः ।
तयोर्विरोधं दूरञ्च प्रचकार गणेश्वरः ॥२२
कार्तिकः प्रययौ गेहमुषागेहं स्मरात्मजः ।
सर्वं निवेदितुं शम्भुं प्रययौ स गणेश्वरः ॥२३

स्कन्द ने सौ बाणों के द्वारा लीला ही से अनिरुद्ध का वारण कर दिया था वह अनिरुद्ध भी महान् भाग वाले—अत्यन्त बलवान् और धनुर्धारी थे ॥१५॥ अनिरुद्ध ने भी सहसा उस शक्ति से जो कि दुरन्त थी उत्तम रत्नों के द्वारा निर्मित स्वामी कार्त्तिकेय के रथ का भञ्जन कर दिया था ॥१६॥ कार्त्तिकेय ने क्रुद्ध होकर गदा से हर्ष के साथ अनिरुद्ध के रथ का एक ही क्षण में लीला से ही वहाँ रणक्षेत्र में भञ्जन कर दिया था ॥१७॥ अनिरुद्ध ने क्षुर के समान धारा वाले अपने अर्धं चन्द्र अस्त्र से लीला ही से भल्लास्त्र से नियोजित स्वामी कार्त्तिकेय के धनुष का छेदन कर दिया था ॥१८॥ स्वामी कार्त्तिकेय ने अपनी दुरन्ता गदा के द्वारा उसका भी छेदन कर दिया था फिर तो मदन के पुत्र ने वेग के साथ उस कार्त्तिकेय के हाथ से वह गदा ग्रहण करली थी ॥१९॥ स्कन्द ने शूल ग्रहण करके वह फिर उसको ही मारने को उद्यत हुए थे। अनिरुद्ध ने दूर से ही कोप करके प्रेरित कर दिया था ॥२०॥ कार्त्तिक ने फिर वहाँ आकर काम पुत्र को पकड़ लिया था और हाथ से ही पकड़ कर अनिरुद्ध को भूतल में गिरा दिया था ॥२१॥ महान् बलवान् अनिरुद्ध भी अपनी तलवार लेकर सामने खड़ा हो गया। उस समय में गणेश ने वहाँ आकर उन दोनों के विरोध को दूर कर दिया था ॥२२॥ कार्त्तिक तो फिर अपने गृह को चले गये थे और अनिरुद्ध उषा के भवन को चले गये थे। यह सब घटित युद्ध की घटना को निवेदित करने के लिये गणेश भगवान् शम्भु के समीप में चले गये थे ॥२३॥

गणेशस्तु शिवस्थानं गत्वा नत्वा महेश्वरम् ।
सर्वं विज्ञापयामास क्रमेण च पृथक् पृथक् ॥२४
बाणानिरुद्धयोर्युद्ध सुभद्रनिधनं तथा ।
स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धमनिरुद्धस्य विक्रमम् ॥२५
गणेशवचनं श्रुत्वा प्रहस्य भगवान् भवः ।
उवाच श्लक्षणया वाचा सुगुप्तं वेदसम्मतम् ॥२६
गणेश्वर महाभाग श्रूयता वचनं मम ।
हित तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम् ॥२७

गणेश जब भगवान् शिव के आवास स्थान में पहुँच गये तो उन्होंने वहाँ जाकर महेश्वर को प्रणाम किया। फिर गणेश ने क्रम से पृथक्२ समस्त वृत्त भगवान् शिव को बता दिया ॥२४॥ बाण और अनिरुद्ध का युद्ध-सुभद्र की मृत्यु—और स्कन्ध तथा अनिरुद्ध का प्रबल विक्रम का हाल भी भगवान् शंकर को बता दिया था ॥२५॥ गणेश के वचन का श्रवण करके भगवान् शम्भु हँस पड़े थे और परम गुप्त वेद से सम्मत बात को अपनी अति श्लक्षण वाणी से कहने लगे ॥२६॥ श्री महादेव ने कहा—हे महाभाग ! हे गणेश्वर ! तुम मेरे वचन का श्रवण करो जो कि परम हितकर—सत्य—नीति का सार रूप और परिणाम में सुख देने वाला है ॥२७॥

असंख्यविश्वसङ्घञ्च सर्वं कृष्णात्मजं सुतम् ।
कृष्णं जानीहि यत् कार्य्यं कारणानाञ्च कारणम् ॥२८
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं जगत् सव गणेश्वर ।
निबोध सत्यं कृष्णंच भगवन्तं सनातनम् ॥२९
परिपूर्णतमो रामो ब्रह्मशापात् स्वविस्मृतः ।
तस्य पुत्रोऽनिरुद्धश्च महाबलपराक्रमः ॥३०
मया प्रस्थापितः स्कन्दो महायुद्धे सुदारुणो ।
मृतो बाणश्च संग्रामे तेन स्कन्देनरक्षितः । ३१
स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धे समत्वं तु गणेश्वर ।
अष्टौ च भैरवाः सर्वे रुद्राश्चैकादशैव ते ॥३२

अष्टौ च वसवश्चैते देवाः शक्रादयस्तथा ।
तथैव द्वादशादित्याः सर्वे दैत्येश्वरास्तथा ॥३३
देवानामग्रणीः स्कन्दो बाणश्च सगणस्तथा ।
सर्वे ते चानिरुद्धञ्च संग्रामे जेतुमक्षमाः ॥३४॥
अनिरुद्धः स्वयं ब्रह्मा प्रद्युम्नः काम एव च ।
बलदेवः स्वयं शेषः कृष्णश्च प्रकृतेः परः ॥३५
एतत्ते कथितं सर्वं बाणं रक्ष गणेश्वरः ।
भवान् शुभस्वरूपश्च विघ्नखण्डनकारकः ॥३६
आरादायास्यति हरिर्गृहीत्वा च सुदर्शनम् ।
अव्यर्थमस्त्रप्रवरं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३७

असंख्य विश्वों के समुदाय रूप श्रीकृष्ण का पुत्र है । वे कृष्ण कारणों के भी कारण हैं । ब्रह्मादि से तृण पर्यन्त जो जगत् है, उसे हे गणेश्वर ! सत्य, सनातन रूप कृष्ण ही समझो । वह परिपूर्णतम प्रभु ब्रह्मशाप के वशीभूत होकर अपने को भूल गये हैं । उनका पुत्र अनिरुद्ध महाबली और पराक्रमी है । मेरे द्वारा स्थापित जो स्कन्द का सुदारुण महायुद्ध है उसमें मरता हुआ बाण स्कन्द के द्वारा रक्षित हुआ है । हे गणेश्वर ! स्कन्द और अनिरुद्ध का युद्ध समान है आठों भैरव, एकादश रुद्र, अष्टा-वसु, इन्द्रादि देवता, द्वादश आदित्य और सब दैत्यों में जो देवताओं के अग्रणी स्कन्द हैं, वे और बाण तथा सभी गण—ये सभी अनिरुद्ध को जीतने में असमर्थ हैं । क्यों कि अनिरुद्ध स्वयं ब्रह्मा और प्रद्युम्न काम-देव हैं । बलदेव शेषावतार और कृष्ण तो प्रकृति से भी परे हैं । हे गणेश्वर ! तुम शुभ स्वरूप और सब विघ्नों को नष्ट करने वाले हो, बाण की रक्षा करो । इसी बीच, श्रीकृष्ण ने अपने करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाले, अव्यर्थ महास्त्र सुदर्शन को—हाथ में ले लिया ॥२८-३७॥

———

१०५—बाणासुर कृष्ण युद्ध वर्णनम्

अथ कृष्णश्च भगवानुद्धवेन बलेन च ।
दूतं प्रस्थापयामास विधाय मन्त्रणं शुभम् ॥१
शिवो गणपतिर्यत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ।
कार्तिकेयो भद्रकाली चोग्रचण्डा च कोटरी ॥२
आगत्यनत्वा दूतश्चगणेशञ्चशिवं शिवाम् ।
मानवांश्चापि पूज्यांश्च समुवाचयथोचितम् ॥३
बाणमाह्वयते कृष्णः संग्रामार्थं महेश्वर ।
किंवानिरुद्धमूषाञ्चगृहीत्वा शरणं व्रज ॥४
रणे निमन्त्रितो यो हि न याति भयकातरः ।
परत्र नरकं याति सप्तभिः पितृभिः सह ॥५
दूतस्य वचनं श्रुत्वा सभामध्ये यथोचितम् ।
उवाच पार्वती देवी स्वयं शंकरसन्निधौ ॥६

इस अध्याय में बाणासुर के युद्ध का वर्णन है। नारायण ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् कृष्ण ने उद्धव और बलदेव के साथ मन्त्रणा करके दूत को प्रेषित किया ॥१॥ जहाँ पर साक्षात् शिव—गणपति—दुर्गति के नाश करने वाली जगदम्बा दुर्गा—स्वामि कार्तिकेय—भद्रकाली उग्रचण्डा और कोटरी थी वहाँ दूत को भगवान् ने भेजा था ॥२॥ दूत ने वहाँ पहुँच कर शिव—शिवा—गणेश और जो भी पूज्य मानव थे उन सबको प्रणाम करके यथोचित उसने कहा—॥३॥ दूत बोला—हे महेश्वर ! भगवान् कृष्ण संग्राम करने के लिये बाण का आह्वान करते हैं अथवा अनिरुद्ध और उषा को लेकर वह उनकी शरणागति में प्राप्त हो जावे ॥४॥ रणक्षेत्र में निमन्त्रित होता हुआ भी जो क्षत्रिय युद्ध भूमि में भय से कातर होकर नहीं जाया करता है वह अपने सात पितृगण के सहित पत्रक नामक नरक में जाया करता है ॥५॥ उस सभा के मध्य में दूत के वचन को श्रवण कर जो कि यथोचित कहा गया था शङ्कर भगवान् की सन्निधि में देवी पार्वती स्वयं बोली थीं ॥६॥

गच्छ बाण महाभाग गृहीत्वा वद कन्यकाम् ।
सर्वस्वं यौतुकं दत्त्वा श्रीकृष्णं शरणं व्रज ॥७
सर्वेषामीश्वरं बीजं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
वरं वरेण्यं शरणं कृपालुं भक्तवत्सलम् ॥८
पार्वतीवचनं श्रुत्वा तमूचुस्ते सुरेश्वराः ।
प्रशशंसुः सभामध्ये धन्यधन्येति सर्वदा ॥९
कोपाविष्टश्च बाणोऽयमुत्तस्थौसहसाऽसुरः ।
सान्नाहिकोधनुष्पाणिःप्रणम्य शंकरं ययौ ॥१०
सर्वैर्निषिध्यमानश्च कम्पितो रक्तलोचनः ।
सान्नाहिकश्च दैत्यानां त्रिकोटया च महाबलः ॥११
कुम्भाण्डःकूपकर्णश्च निकुम्भःकुम्भः एवच ।
सेनापतीश्वराश्चैते ययुः सान्नाहिकास्तथा ॥१२
उन्मत्तभैरवश्चैव संहारभैरवस्तथा ।
असिताङ्गो भैरवश्च रुरुभैरव एव च ॥१३
महाभैरवसज्ञश्च कालभैरव एव च ।
प्रचण्ड भैरवश्चैव क्रोधभैरव एव च ॥१४

पार्वतीदेवी ने कहा—हे महाभाग ! हे बाण ! तुम जाकर बोलो और कन्या उषा को साथ लेकर चले जाओ । अपना सर्वस्व यौतुक(दहेज) के रूप में समर्पित कर श्री कृष्ण भगवान की शरण में पंहुच जाओ ॥७॥ भगवान कृष्ण सभी के ईश्वर हैं-सबके बीज स्वरूप हैं-सम्पूर्ण सम्पदाओं के प्रदान करने वाले हैं- श्रेष्ठ हैं-वरेण्य हैं-रक्षक कृपालु हैं और अपने भक्तों पर प्यार करने वाले हैं ॥८॥ पार्वती के इस वचन का श्रवण कर समस्त सुरेश्वर जो वहां उपस्थित थे उन्होंने भी उससे यही कहा था । उस सभा के मध्य में सर्वदा धन्य है-धन्य है इस तरह से सब ने पार्वती की बहुत प्रशंसा की थी ॥९॥ कोप में आविष्ट बाणासुर सहसा उठकर खड़ा हो गया था और सान्नाहिक (युद्ध करने के लिये उद्यत) होता हुआ धनुष हाथ में लेकर शंकर को प्रणाम करके चल दिया था ॥१०॥ सबके द्वारा निषेध भी किया गया था किन्तु कम्पित होते हुए उस बाणासुर के नेत्र

रक्त वर्ण के होगये थे । वह साम्राहिक होकर उसने तीन करोड़ दैत्यों की बडी भारी सेना साथ में लेली ॥११॥ कुम्भाण्ड-कूपकर्ण-निकुम्भ और कुम्भ ये सब सेनापति एवं सेना के अध्यक्ष थे । ये सब सान्नाहिक होकर वहां रण भूमि में गये थे ॥१२॥ उस की सेना के साथ में उन्मत्त भैरव-संहार भैरव-असिताभैरव-रुरुभैरव-महाभैरव- कालभैरव-प्रचण्डभैरव और क्रोधभैरवथे ॥१४॥

प्रययुः शक्तिभिः सार्द्धं सर्वे सान्नाहिकाश्च ते ।
कालाग्निरुद्रो भगवान् रुद्रैः सान्नाहिको ययौ ॥१५
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डिका चण्डनायिका ।
चण्डेश्वरी चामुण्डा चण्डी चण्डकपालिका ॥१६
अष्टौ न नायिकाः सर्वाः प्रययुः खर्परान्विताः ।
कोटरीरत्नयानस्था शोणितग्रामदेवता ॥१७
प्रययौ सा प्रफुल्लास्या खड्गखर्परधारिणी ।
चान्द्राणीवैष्णवी शान्ता ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी ॥१८
कौमारी नारसिंही च वाराही विकटाकृतिः ।
माहेश्वरी महामाया भैरवी भीरुरूपिणी ॥१९
अष्टौ च शक्तयः सर्वा रथस्थाः प्रययुर्मुदा ।
रत्नेन्द्रसारयानस्थाः प्रययुर्भद्रकालिका ॥२०
रक्तवर्णा त्रिनयना जिह्वाललनभीषणा ।
शूलशक्तिगदाहस्ता खड्गखर्परधारिणी ॥२१
प्रययौ शूलहस्तश्च वृषभस्थो महेश्वरः ।
स्कन्दश्च शिखियानस्थः शस्त्रपाणिर्धनुर्धरः ।
एवञ्च प्रययुः सर्वे गणेशं पार्वतीं विना ॥२२

ये सब भैरव गण साम्राहिक होते हुए अपनी २ शक्तियों के साथ प्रास्थित हुए थे । रुद्रों के साथ भगवान कालाग्नि रुद्र भी साम्राहिक होकर वहां रण क्षेत्र में गये थे ॥१५॥ उग्र चण्डा-प्रचण्डा-चण्डिका-चण्ड नायिका-चण्डेश्वरी-चामुण्डा-चण्डी-चण्ड कपालिका ये आठों नायिकाएँ भी सब खर्परों से संयुत होकर गई थीं । रत्नों के यान में स्थित कोटरी और

शोणित ग्राम देवता गई थीं ॥१६–१७॥ वह खड्ग और खर्पर को धारण करने वाली प्रफुल्ल मुख से युक्त होकर गई थी। चन्द्राणी-वैष्णवी शान्ता-ब्रह्माणी-ब्रह्म वादिनी-कौमारी-नारसिंही-वाराही-विकटाकृती-माहेश्वरी-माहामाया-भैरवी-भीरु-रूपिणी—ये आठों शक्तियाँ सब रथों में अवस्थित होकर बड़े हर्ष से गई थीं। भद्र कालिका रत्नों के निर्मित यान में समारूढ़ होकर गई थीं ॥१८–२०॥ रक्त वर्ण वाली-तीन नेत्रों वाली-जिह्वा ललन से अत्यन्त भीषण स्वरूप वाली-शूल, शक्ति और गदा हाथों में धारण करने वाली तथा खड्ग और खर्पर को धारण करने वाली वहाँ रण क्षेत्र में पहुँच गई थीं ॥२१॥ महेश्वर भी साक्षात् वृषभ पर समारूढ होकर तथा हाथ में त्रिशूल ग्रहण करके गये थे। अपने शिखी के यान पर संस्थित होकर शस्त्र हाथ में लेकर तथा धनुष धारण करके स्वामी कार्तिकेय भी गये थे। इस प्रकार से वहाँ युद्ध स्थल में सभी गए थे। केवल पार्वती और गणेश नहीं गये थे ॥२२॥

एभिर्युक्तं महादेवं दृष्ट्वा च भद्रकालिकाम्।
प्रचक्रे चक्रपाणिश्च सम्भाषाञ्च यथोचिताम् ॥२३

बाणःशङ्खध्वनिं कृत्वा प्रणम्यपार्वतीश्वरम्।
धनुर्दधार सगुणं दिव्यास्त्रेणनियोजितम् ॥२४

बाणं समुद्यतं दृष्ट्वा सात्यकिः परवीरहा।
निषिध्यमानस्तैः सर्वैः सान्नाही प्रययौ मुदा ॥२५

बाणश्चिक्षेपदिव्यास्त्रमाञ्छलं नामनारद।
अव्यर्थं ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डाभंसुतीक्ष्णकम् ॥२६
दृष्ट्वाऽस्त्रं सात्यकिः साक्षात् किञ्चिन्नम्रो बभूव ह।
किंवा न दग्धः प्रययौ नभोमध्यं सुदारुणम् ॥२७
वह्निं चिक्षेप बाणञ्च सात्यकिर्वारुणेन च।
प्रज्वलन्तं तालमानं निर्वाणञ्च चकारसः ॥२८

इन सबसे युक्त महादेव को और भद्र कालिका को देख कर चक्रपाणि ने यथोचित सम्भाषा की थी ॥२३॥ बाणासुर ने शंख की ध्वनि

का श्रवण करके पार्वतीश्वर को प्रणाम किया था और दिव्यास्त्र से नियोजित सगुण धनुष को उसने धारण किया था ॥२४॥ जब बाण को युद्ध करने को समुद्यत देखा तो पर वीरों के हनन करने वाले सात्यकि भी युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये थे। यद्यपि उन सब के द्वारा वह निषिद्ध किया गया था तो भी वह सात्यकि सन्नाही होकर वहाँ रण भूमि में हर्ष पूर्वक चला गया था ॥२५॥ हे नारद ! बाण ने आच्छल दिव्यास्त्र का प्रक्षेप किया था। वह असत अव्यर्थ था। और ग्रीष्म काल के मार्त्तण्ड की आभा वाला एवं सुतीक्ष्ण था ॥२६॥ सात्यकि ने इस अस्त्र को प्रक्षिप्त हुआ देखकर वह साक्षात् कुछ नम्र हो गया था अथवा दग्ध न हो कर सुदारुण नभोमण्डल के मध्य में चला गया था ॥२७॥ फिर वह्नि बाण का क्षेप किया गया था फिर सात्यकि ने वारुणास्त्र के द्वारा प्रज्वलित तालमान को उसने निर्वाण कर दिया था ॥२८॥

चिक्षेप पावनं बाणःप्रचण्डघोरमुल्वणम् ।
चिच्छेदसात्यकिश्चैव पार्वतास्त्रेण लीलया ॥२९
नारायणास्त्रं चिक्षेप बाणश्च रणभूधनि ।
सात्यकिर्दण्डवद् भूमौ पपातार्जुनशिक्षया ॥३०
माहेश्वरं प्रचिक्षेप बाणः शस्त्रविदां वरः ।
सात्यकिर्वैष्णवास्त्रेण प्रचिच्छेदावलीलया ॥३१
ब्रह्मास्त्रञ्चापि चिक्षेप बाणश्च रणमूर्धनि ।
क्षणंचकार निर्वाण ब्रह्मास्त्रेणच सात्यकिः ॥३२
नागास्त्रञ्चापि चिक्षेप बाणो रणविशारदः ।
सात्यकिर्गरुडेनैव सञ्जहार क्षणेन च ॥३३
जग्राह शूलमव्यर्थं शङ्करस्य सुदारुणम् ।
तुष्टाव सात्यकिर्दुर्गां गले माल्यं बभूव ह ॥३४
जग्राह धनुषा बाणो बाणं पाशुपतं तथा ।
बाणं स बाणं जृम्भञ्च सात्यकिश्च चकार ह ॥३५
बाणं तं जृम्भितं दृष्ट्वा कार्तिकेयोमहाबलः ।
अर्धचन्द्रञ्च चिक्षेप कामश्चिच्छेदलीलया ॥३६

फिर बाण ने पावन अस्त्र का प्रक्षेय किया था जो प्रचण्ड घोर और अत्यन्त उल्वण था। सात्यकि ने उस का पार्वनास्त्र के द्वारा लीला से ही छेदन करा दिया था ॥२६॥ फिर बाण ने रण भूमि में नारायणास्त्र का प्रक्षेप किया था सात्यकि ने अर्जुन की शिक्षा प्राप्त की थी अत एव वह नारायणास्त्र को प्रशिप्त होता हुआ देखकर भूमिमें एक दण्डकी भाँति लेट गया था ॥३०॥ इसके उपरान्त शस्त्रों के ज्ञाताओं में परम कुशल बाण ने माहेश्वर अस्त्र का प्रक्षेप किया था उसका छेदन लीला ही से सात्यकि ने वैष्णवास्त्र के द्वारा कर दिया था ॥३१॥ बाण ने ब्रह्मास्त्र का भी प्रक्षेप किया उसका निर्वाण एक ही क्षण में सात्यकि ने ब्रह्मास्त्र के द्वारा ही करा दिया था ॥३२॥ रण विद्या के महान पण्डित बाणासुर ने फिर नागास्त्र का प्रक्षेप सात्यकि के ऊपर किया उसका संहरण सात्यकि ने गरुड़ास्त्र के द्वारा क्षणमात्र में ही कर दिया था ॥३३॥ इसके अनन्तर जब सभी अस्त्र बाणासुर के विफल हो गये तो फिर उसने शंकर सुदारुण एवं अव्यर्थ शूल को ग्रहण किया था। उस समय सात्यकि नेदुर्गा का स्तवन किया था कि उसके प्रभाव से वह गले में माला के समान हो गया ॥३४॥ फिर बाण ने पाशुपत बाण को ग्रहण किया था। जिसको धनुष के द्वारा छोड़ा था। सात्यकि ने उस बाण को और बाणासुर को जृम्भास्त्र द्वारा प्रभावहीन किया था। जृम्भास्त्र से बाणासुर निद्रित हो गया था। स्वामी कार्त्तिकेय ने जब यह देखा तो उनने अर्धं चन्द्र का प्रक्षेप किया जिसको काम ने लीला से ही छिन्न भिन्न करदिया ॥५३-३६॥

गदांचिक्षेप च स्कन्दः प्रातःसूर्यसमप्रभाम् ।
वैष्णवास्त्रेणकामश्च निर्वाणञ्च चकारसः ॥३७
नारायणास्त्रं स्कन्दश्च प्राक्षिपच्च त्वरान्वितः ।
पपातदण्डवद्भूमौ प्रद्युम्नःकृष्णशिक्षया ॥३८
स्कन्दः शक्तिञ्च चिक्षेप प्रलयाग्निसमप्रभाम् ।
कामो नारायणास्त्रेण निर्वाणञ्च चकार ताम् ॥३९
ब्रह्मास्त्रञ्च प्रचिक्षेप कार्तिको रणमूर्धनि ।
ब्रह्मास्त्रेणापि कामश्च निर्वाणञ्च चकार सः ॥४०

जग्राह कार्तिकः कोपाद्दिव्यं पाशुपतं तथा ।
निद्रास्त्रेणापि मदनो निद्रितञ्च चकार तम् ॥४१
कार्तिकंनिद्रितं दृष्ट्वा बाणंच जृम्भितंतथा ।
कोपात्कामंच सरथं जग्राहभद्रकालिका ॥४२
क्रोड़े कृत्वा च बाणंच स्कन्दंच जगतां प्रसूः ।
रणस्थलांच प्रययौ यत्रैव पार्वतीसती ॥४३

प्रातः काल के सूर्य की प्रभा के तुल्य प्रभा वाली गदा का स्कन्द ने प्रक्षेप किया था उसका निर्वाण कामदेव ने वैष्णवास्त्र के द्वारा करा दिया ॥३७॥ फिर स्कन्द ने त्वरान्वित होकर नारायणास्त्र का प्रक्षेप प्रद्युम्न पर किया । कृष्ण की शिक्षा से प्रद्युम्न नारायणास्त्र को प्रक्षिप्त देखकर भूमि में दण्ड की भाँति गिर गया था ॥३८॥ इसके उपरान्त स्कन्द ने प्रलयकालीन अग्नि के समान प्रभावाली शक्ति का प्रक्षेप किया उसका निर्वाण काम ने नारायणास्त्र के द्वारा ही कर दिया ॥३९॥ कार्त्तिक भेदन भूमि में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था काम ने उसका निर्वाण ब्रह्मास्त्र के द्वारा ही कर दिया ॥४०॥ फिर कोप से कार्तिक ने दिव्य पाशुपतास्त्र को ग्रहण किया था । मदन ने निद्रास्त्र के द्वारा उसको निद्रित कर दिया ॥४१॥ कार्तिक को निद्रित और बाण को जृम्भित देखकर भद्रकालिका ने कोप से रथ के सहित काम को और अपनी गोद में बाणसुर को तथा स्कन्द को जगतों की जननी ने करके वह उस रणस्थल से जहां पर सती पार्वती थी वहां चली गई थी ॥४२-४३॥

कार्तिकं बोधयामास बाणं सुस्थं चकार सा ।
सहसा सरथः कामो नासारन्ध्रेण वर्मना ॥४४
बहिर्बभूव सन्त्रस्तो प्रययौ च रणस्थलम् ।
दृष्ट्वा कामंच सरथं जहसुर्यादवास्तदा ॥४५
सर्वे शैवाश्च तत्रस्थाः शुष्ककण्ठा भयाकुलाः ।
अथ बाणः पुनः क्रुद्धो रथमारुह्य कोपतः ॥४६
कार्तिकेयश्च भगवान् युद्धाय पुनरागतः ।
बाणः पंचशरांश्चैव चिक्षेप रणमूर्धनि ॥४७

अर्धचन्द्रेण चिच्छेद बलदेवो महाबलः ।
रथं बभंज बाणस्य लाङ्गलेन च लाङ्गली ॥४८

जघान सूतमश्वांश्च मुषलेनावलीलया ।
छेत्तुमुद्यमं कुर्वन्तं हालिनंच महाबलम् ॥४९

कालाग्निरुद्रो भगवान् वारयामास लीलया ।
रथं कालाग्निरुद्रस्य बभंज लाङ्गली रुषा ॥५०

उस पार्वतीदेवी ने कात्तिक को प्रबुद्ध किया और वाण को भी सुस्थ कर दिया था । रथ में स्थित काम नासा के छिद्र के मार्ग से सहसा वाहिर हो गया था और सन्त्रस्त होता हुआ रण स्थल में चला गया । जब यादवों ने रथ के सहित प्रद्युम्न को देखा तो सब हंसने लगे थे ॥४४--४५॥ वहां पर स्थित सभी शैव अर्थात् शिव के भक्त सूखे हुए कण्ठ वाले और भय से वेचैन हो गये । इसके उपरान्त वाण ने पुनः क्रुद्ध होकर कोण से रथ में आरोहण किया ॥४६॥ भगवान् कार्तिकेय भी युद्ध करने के लिये फिर आ गये थे । बाण ने रण क्षेत्र में पांच शरों का प्रक्षेप किया था ॥४७॥ महान् बलवान बलदेव ने अर्धचन्द्र के द्वारा उसका छेदन किया और लाङ्गली बलदेव ने अपने हलसे वाणासुर के रथ का भञ्जन कर दिया ॥४८॥ बलदेव ने अपने मुषल से उसके रथके अश्वों और सारथि का लीला से ही हनन कर दिया । फिर महान बलवान हाथी को छिन्न करने को उद्यम करने वाले को भगवान कालाग्नि रुद्र ने लीला से ही वारण किया । फिर लाङ्गली ने कालाग्नि रुद्र का रथ क्रोध से भग्न कर दिया ॥४९-५०॥

हलेन सूतमश्वांश्च जघान रणमूर्धनि ।
कालाग्निरुद्रः कोपेन चिक्षेप ज्वरमुल्वणम् ॥५१

बभूवुर्यादवाः सर्वे ज्वराक्रान्ता हरिं विना ।
तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः ससर्ज वैष्णवं ज्वरम् ॥५२

तं चिक्षेप ज्वरं हन्तुं माहेशं रणमूर्धनि ।
बभूव ज्वरयोर्युद्धं मुहूर्तमतिदारुणम् ॥५३

वैष्णवज्वरनिष्क्रान्तो रणमूर्ध्नि पपात सः।
परं बभूव निश्चेष्टस्तुष्टाव माधवं पुनः ॥५४
प्राणान् रक्ष जगन्नाथ भक्तानुग्रविग्रह।
त्वमात्मा पुरुषः पूर्णः सर्वत्र समता तव ॥५५
ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा संजहार स्वकं ज्वरम्।
माहेश्वरो ज्वरो भीतो रणादेव हि निर्ययौ ॥५६

बलदेव ने जब रणक्षेत्र में हल के द्वारा सूत और अश्वों को मार दिया था तो कालग्निरुद्र ने उल्वण ज्वर नामक अस्त्र का प्रक्षेप किया था ॥५१॥ हरि को छोड़ कर सभी यादव ज्वर से आक्रान्त हो गये थे। इसको देख कर भगवान् कृष्ण ने वैष्णव ज्वर को छोड़ दिया था और माहेश ज्वर के हनन करने को इस वैष्णव ज्वर का सृजन उस रण स्थल में किया था। फिर उन दोनों वैष्णव और माहेश ज्वरों का अति दारुण युद्ध मुहूर्त मात्र तक होता रहा था ॥५२-५३॥ वैष्णव ज्वर से निष्क्रान्त होकर वह माहेश ज्वर रणक्षेत्र में गिर गया था। वह अति निश्चेष्ट हो गया था और फिर उसने माधव का स्तवन किया ॥५४॥ ज्वर ने कहा—हे जगतों के नाथ! मेरे प्राणों की रक्षा करो। आप तो अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही शरीर धारण करने वाले हैं। आप सबकी आत्मा हैं—आप पूर्ण पुरुष हैं और आपको तो सर्वत्र समता का ही भाव रहता है ॥५५॥ ज्वर की इस प्रार्थना के वचन का श्रवण कर माधव भगवान् ने अपने ज्वर का संहरण कर लिया। माहेश्वर ज्वर डरा हुआ उस रणक्षेत्र से ही निकल कर चला गया था ॥५६॥

बाणश्च पुनरागत्य बाणानांच सहस्रकम्।
चिक्षेप मन्त्रपूतंच प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥५७
फाल्गुनः शरजालेन वारयामास लीलया।
चिक्षेप शक्तिबाणश्च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ॥५८
चिच्छेद लीलया तांच सव्यसाची महाबलः।
स जग्राह पाशुपतं शतसूर्यसमप्रभम् ॥५९
अत्यर्थमतिघोरंच विश्वसंहारकारकम्।

तद्दृष्ट्वा चक्रपाणिश्च चक्रं चिक्षेप दारुणम् ॥६०
हस्तानांचा सहस्रंचा स पाशुपतमुल्वणम् ।
चिच्छेद रणमध्ये चा पपाताचलसिंहवत् ॥६१
शस्त्रं पाशुपतंचैव ययौ पशुपतेः करम् ।
अव्यर्थं दारुणंलोके प्रलयाग्नि शिखोपमम् ॥६२
बाणरक्तसमूहेन बभूव चा महानदः ।
बाणः पपात निश्चेष्टो व्यथितो हतचेतनः ॥६३

वाणासूर ने वहाँ पुनः आकर के एक सहस्र वाणों का प्रक्षेप किया जो कि मन्त्रों से पूत किये हुए थे और प्रलय काल की अत्यन्त उल्वण अग्नि की शिखा के समान दाह करने वाले थे ॥५७॥ अर्जुन ने अपने शरों के जाल से लीला ही से उन वाणों का वारण किया। फिर वाण ने शक्ति को छोड़ा था जो ग्रीष्मकाल के सूर्य के तुल्य तीव्रतम प्रभा वाली थी और अत्यन्त दाहक थी ॥५८॥ महान् बलवान् सव्य साची अर्जुन ने लीला से ही उस शक्ति का छेदन कर दिया। फिर उस वाण ने पाशुपत अस्त्र को ग्रहण किया जो कि सौ सूर्यों के समान प्रभावाला था। यह अस्त्र अत्यन्त घोर अव्यर्थ और विश्व के संहार करने का कारण था। यह देख कर चक्रपाणि भगवान् हरि ने अपना परम दारुण चक्र का प्रक्षेप किया ॥५९-६०॥ इस भगवान् के चक्र में सहस्र हस्त थे। उस चक्र ने उस अत्यन्त उल्वण पाशुपत अस्त्र का छेदन कर दिया था और रण के मध्य में अचल सिंह की भाँति गिर पड़ा था। वह पाशुपत शस्त्र फिर पशुपति के हाथ में चला गया। वह इस लोक में अत्यन्त दारुण–अव्यर्थं और प्रलयकाल की अग्नि के तुल्य था ॥६१-६२॥ वाणासुर के रक्त के समूह से वहाँ पर एक महान् नद बन गया था। वाणासुर चेष्टाहीन होकर अत्यन्त व्यथा युक्त एवं चेतना से रहित हो गया ॥६३॥

तत्राजगाम भगवान् महादेवो जगद्गुरुः ।
रुरोदागत्य मोहेन बाणं कृत्वा स्ववक्षसि ॥६४
शिवाश्रुपतनेनैव संबभूव सरोवरम् ।
चेतनं कारयामास करुणासागरः प्रभुः ॥६५

बाणं गृहीत्वां प्रययौ यत्र देवो जनार्दनः ।
चक्रे पद्मार्चिते पादपद्मे बाणसमर्पणम् ।।६६
तुष्टाव जगतां नाथं शक्तीशं चन्द्रशेखरम् ।
बलिना च स्तुतं येन वेदोक्तेन च तेन च ।।६७
हरिर्मृत्युञ्जयं ज्ञानं ददौबाणाय धीमते ।
करपद्मं ददौ गात्रे तं चकाराजरामरम् ।।६८
बाणस्स्तोत्रेण तुष्टाव भक्त्या बलिकृतेन च ।
वरां कन्यां समानीय रत्नभूषणभूषिताम् ।।६९
प्रददौ हरये भक्त्या तत्रैव देवसंसदि ।
गजेन्द्राणां पंचलक्षमश्वानांच चतुर्गुणम् ।।७०
दासीनाञ्च सहस्रञ्च रत्नभूषणभूषितम् ।
सहस्रं कामधेनुनां वत्सयुक्तंच सर्वदम् ।।७१

वहाँ पर जगत् के गुरु भगवान् महादेव आये थे । वहाँ आकर अपने भक्त बाणासुर को अपने वक्षःस्थल में लगाकर मोह से रुदन करने लगे थे ।।६४।। शिव के अश्रुओं के पतन से ही एक सरोवर–सा बन गया । करुणा के सागर प्रभु ने उसको चेतन कराया था ।।६५।। फिर शिव बाण को लेकर वहाँ गये थे जहाँ पर साक्षात् भगवान् जनार्दन विराजमान थे । भगवान् श्रीकृष्ण के पद्मों से चर्चित पाद पद्म में शिव ने बाणासुर का समर्पण किया ।।६६।। जगतों के नाथ—शक्ति के ईश और चन्द्रशेखर की स्तुति की थी । जिस वेद में उक्त स्तुति से बलि राजा ने स्तुति की थी उसी से स्तवन किया ।।६७।। हरि ने बुद्धिमान् बाण के लिये मृत्यु को जीत लेने वाला ज्ञान दिया और कमलोपम हाथ उस बाण के शरीर पर रख कर उसका स्पर्श किया इससे उसे अजर एवं अमर बना दिया ।।६८।। बाण ने बलि के द्वारा किये हुए स्तोत्र से और भक्ति से हरि का स्तवन किया तथा अपनी श्रेष्ठ कन्या उषा को रत्नों के आभरणों से भूषित करके उसी देवों की संसद में वहाँ पर ही भक्ति से हरि को दे दी थी । पाँच लाख हाथी—हाथियों से चौगुने अश्व–एक सहस्र दासियाँ जो रत्नों के भूषणों से भूषित थीं—एक सहस्र कामधेनु जो कि वत्सों से

युक्त और सब कुछ प्रदान करने वाली थीं वाण ने दहेज में दी थीं ॥६९-७१॥

माणिक्यानांच मुक्तानां रत्नानां शतलक्षकम् ।
मणीन्द्राणां हीरकाणां शतलक्षं मनोहरम् ॥७२
जलभाजनपात्राणि सुवर्णनिर्मितानि च ।
सहस्राणि ददौ तस्मै भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥७३
वराणि सूक्ष्मवस्त्राणि वह्निशुद्धांशुकानि च ।
ददौ बाणश्च सर्वाणि स्वभक्त्या शङ्कराज्ञया ॥७४
ताम्बूलानांच चूर्णानां पूर्णपात्राणि नारद ।
सहस्राणि ददौभक्त्या वराणि विविधानि च ॥७५
कन्यां समर्पयामास पादपद्मे हरेरपि ।
रुरोदोच्चैः स्वभक्त्या च परिहारं चकार सः ॥७६
कृष्णस्तस्मै वरं दत्वा वेदोक्तंच सुभाषितम् ।
शङ्करानुमतेनैव प्रययौ द्वारकापुरीम् ॥७७
मत्वा कन्यां नवोढ़ां तां बाणस्यापि महात्मनः ।
रुक्मिण्यै प्रददौ शीघ्रं देवक्यै च हरिः स्वयम् ॥७८
महोत्सवं मङ्गलंच कारयामास यत्नतः ।
ब्राह्मणान् भोजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥७९

माणिक्य—मुक्ता और रत्न सौ—सौ—लक्ष तथा श्रेष्ठ मणि—हीरे सौ लक्ष दिये थे जो बहुत ही मूल्यवान् और मनोहर थे ॥७२॥ सुवर्ण के बने हुए जल के पात्र सहस्रों भक्तिभाव से विनम्र कन्धरा वाला होकर उसने दहेज में दिये थे। श्रेष्ठ सूक्ष्म वस्त्र जो वह्नि के समान शुद्ध थे। वाण ने शङ्कर भगवान् की आज्ञा से अपनी भक्ति-भाव के कारण सभी भगवान् को दिये ॥७३-७४॥ हे नारद ! ताम्बूलों के चूर्णों के पात्र जो परम श्रेष्ठ एवं विविध भाँति के थे सहस्रों की संख्या में भक्ति-भाव से प्रदान किये ॥७५॥ हरि के चरण कमलों में वाण ने स्वयं लाकर अपनी कन्या उषा को समर्पित किया और अपने भक्ति के भाव का उद्रेक होने के कारण वह बड़े ऊंचे स्वर से रुदन करने लगा था। उसने रुदन करके

अपने किये हुए अपराधों का परिहार कर लिया ॥७६॥ भगवान् कृष्ण ने उसे वेदोक्त सुभाषित वरदान प्रदान किया था और फिर शंकर की अनुमति से वह अपनी द्वारकापुरी को चले गये ॥७७॥ महात्मा वाण की उस नवविवाहिता कन्या को हरि ने स्वयं देवकी और रुक्मिणी को ले जाकर दे दी ॥७८॥ इसके उपरान्त वहाँ द्वारकापुरी में हरि ने बहुत बड़ा महोत्सव एवं मङ्गल कराया था तथा ब्राह्मणों का भोजन कराया था और बहुतसा धन ब्राह्मणों को दान दिया ॥७९॥

१०६—शृगालोपाख्यानम्

अथकृष्णः सुधर्मायां निवसन् सगणस्तथा ।
तत्राजगाम विप्रश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥१
आगत्य दृष्ट्वा तुष्टाव भक्त्या च पुरुषोत्तमम् ।
उवाच मधुरं शान्तो भीतोविनयपूर्वकम् ॥२
शृगालो वासुदेवश्च राजेशो मण्डलेश्वरः ।
तमुवाच स यद्वाक्यं सावधानं निशामय ॥३
वैकुण्ठे वासुदेवोऽहं देवेशश्च चतुर्भुजः ।
लक्ष्मीपतिश्च जगतां धाता धातुश्च पालकः ॥
ब्रह्मणा प्रार्थितोऽहंच भारावतारणाय च ।
भुवो भारतवर्षंच तदर्थं गमने मम ॥५
वसुदेवसुतः कृष्णः क्षत्रियश्चाप्यहङ्कृतः ।
जनं जनेन निर्जित्य दुर्बलं बलिना सह ।
बोधयित्वा महाधूर्तो घातयामास भूपतीन् ॥६

इस अध्याय में शृगाल के उपाख्यान का वर्णन किया जाता है। श्रीनारायण ने कहा—इसके अनन्तर श्रीकृष्ण अपने गणों के साथ सुधर्मा में निवास कर रहे थे कि वहां पर एक विप्र जो कि अपने ब्रह्मतेज से प्रज्वलित हो रहा था, आया ॥१॥ उसने वहाँ आकर भक्ति-भाव के साथ भगवान् पुरुषोत्तम का स्तवन किया और भीत होते हुए विनीत होकर एवं शान्त होकर वह मधुर वचन विनय पूर्वक बोला ॥२॥ ब्राह्मण ने कहा—

मण्डलेश्वर राजेश शृगाल और वासुदेव ने उससे जो कुछ कहा था उसका अब आप श्रवण करें ।।३।। शृगाल ने कहा था—मैं ही वैकुण्ठ में वासुदेव हूँ । देवों का स्वामी एवं चार भुजाओं वाला—लक्ष्मी का पति—जगतों का धाता और धातार (ब्रह्मा) का भी पालक मैं ही हूँ ।।४।। ब्रह्मा ने इस वसुन्धरा के भार को दूर करने के लिये मेरी हो प्रार्थना की थी । अतएव भूतल में इसके लिये भारतवर्ष देश में मेरा ही गमन हुआ है ।।५।। वसुदेव का पुत्र कृष्ण तो क्षत्रिय और अहङ्कारी है । बलीजनों के द्वारा दुर्बल मनुष्यों को जीतकर वह महान् धूर्त्त अपने आपको ईश्वर बताकर भूपतियों को मार देता था ।।६।।

दुर्योधनं जरासन्धं भूपमन्यंच दुर्बलम् ।
भीमेन घातयामास बलिनाल्पेन भूतले ।।७
द्रोणं भीष्मंच कर्णंच यं यमन्यंच भूतले ।
बलीयसार्जुनेनैव घातयामास लीलया ।।८
यं यमन्यं दुर्बलंच प्रसिद्धमप्रसिद्धकम् ।
प्रसिद्धेन बलवता घातयामास लीलया ।।९
शिशुपालं दन्तवक्रं कसंच चिररोगिणम् ।
मत्पुत्रं नरकंचौव दुर्बलंनरकं मुरम् ।।१०
स्वयं जघान सङ्केताच्छलेन सहसा वत ।
न धर्मयुद्धे कपटी स च बालो ह्यधार्मिकः ।।११
जघान पूतनां कुब्जां स्त्रीघाती वस्त्रहेतुना ।
जघान रजकं शिष्टमशिष्टश्च प्रतारकः ।।१२
हिरण्यकशिपुं दैत्यं हिरण्याक्षं महाबलम् ।
मधुंच कैटभञ्चैव हत्वाऽहं सृष्टिरक्षकः ।।१३

इस भूतल में उस अल्प बल वाले ने भीम के द्वारा दुर्योधन, जरासन्ध तथा अन्य दुर्बल राजाओं को मरवा दिया ।।७।। द्रोण—भीष्म—कर्ण और अन्य राजाओं तथा बलवान् वीरों को अत्यन्त बल वाले अर्जुन के द्वारा ही लीला से मरवा दिया ।।८।। शिशुपाल—दन्त वक्त्र और कंस को तथा चिररोगी मेरे पुत्र नरक को एवं दुर्बल नरक और मुर को स्वयं

संकेत से छल के द्वारा सहसा मार दिया। बड़ा ही खेद होता है कि धर्म युद्ध में इनको नहीं मारा। यह कपटी—बालक और अधार्मिक है ॥९-११॥ इसने पूतना और कुब्जा को मार दिया। यह स्त्रियों का घात करने वाला है। केवल वस्त्रों के लिये ही विचारे धोबी को मार डाला यह बिल्कुल अशिष्ट है और शिष्ट पुरुषों का प्रतारक है अर्थात् धोखा देने वाला है ॥१२॥ हिरण्यकशिपु दैत्य और महान् बलवान् हिरण्याक्ष को—मधु और कौभ दैत्यों को मैंने ही हनन करके सृष्टि की रक्षा की है ॥१३॥

अहमेव स्वयंब्रह्मा ह्यहमेव स्वयं शिवः।
अहं विष्णुश्च जगतां पाता दुष्टावहारकः ॥१४
अंशेन कलया सर्वे मनवो मुनयस्तथा।
स्वयं नारायणोऽहंच निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥१५
लज्जया कृपया चैव मित्रबुद्धया क्षमाकृता।
यद्गतं तद्गतं भद्र युद्धं कुरु मया सह ॥१६
शृणोमि दूतद्वारेण ह्यर्तीवाच्चौरहङ्कृतम्।
उचितं दमनं तस्थाप्युन्नतानां निपातनम् ॥१७
राज्ञश्च परमो धर्मोऽप्यहं शास्ता भुवोधुना।
शंख चक्रं गदां मद्मं गृहोत्वाऽहं चतुर्भुजः ॥१८
द्वारकां तां गमिष्यामि युद्धाय सगणः स्वयम्।
युद्धं कुरु यदीच्छास्ति मा मांचा शरणं व्रज ॥१९
यदि मा यास्यति मम शरणं शरणागतः।
भस्मीभूतं करिष्यामि द्वारकांच क्षणेन च ॥२०
सबलंच सपुत्रं त्वां सगणंच सबान्धवम्।
क्षणेन दग्धुं शक्तोऽहमसहायश्च लीलया ॥२१
तपस्विनञ्च बृद्धञ्च जित्वा युद्धे च शंकरम्।
शक्रं भग्नाशं जित्वा च रोगिणंब्रह्मशापतः ॥२२

मैं ही स्वयं ब्रह्मा हूं, मैं ही स्वयं शिव हूं और मैं ही जगतों का पालन एवं रक्षण करने वाला एवं दुष्टों का अपहारक विष्णु हूं ॥१४॥

मेरे ही अंश से तथा कला से ये सब मनु और मुनि होते हैं । मैं स्वयं नारायण हूँ जो कि निर्गुण और प्रकृति से पर है ।।१५।। लज्जा से—कृपा से अथवा मित्र की बुद्धि से क्षमा कर देने वाले मेरे साथ हे भद्र ! अब युद्ध कर लो । जो हो गया सो तो हो ही गया है ।।१६।। मैं दूतों के द्वारा सुनता हूँ कि वह बहुत ही अधिक अहङ्कारी है । अतएव उसका दमन करना भी उचित ही है । जो ऊंचा शिर करके किसी को भी कुछ नहीं मानते हैं उनका निपात करना आवश्यक है ।।१७।। यह राजा का परम धर्म है क्यों कि इस समय में इस भूतल का मैं ही शास्ता हूँ । शंख-चक्र-गदा-और पद्म धारण करके मैं चार भुजा वाला हूँ ।।१८।। मैं स्वयं उस द्वारकापुरी में अपने गणों के साथ स्वयं युद्ध के लिये जाऊंगा यदि इच्छा हो तो मेरे साथ युद्ध करो और ऐसा नहीं है तो मेरे शरण में आ जाओ ।।१९।। यदि शरणागत होकर मेरी शरण में नहीं आता है तो एक ही क्षण में द्वारकापुरी को भस्मीभूत कर डालूंगा ।।२०।। बलराम के सहित तथा पुत्रों के सहित एवं गणों के साथ और बन्धु बान्धवों के सहित तुमको क्षण भर में दग्ध कर देने में मैं समर्थ हूँ और लीला से ही बिना किसी की सहायता के कर दूंगा ।।२१।। मैं युद्ध में तपस्वी और वृद्ध शंकर को जीतकर इन्द्र को भग्न आशा वाला करके और ब्रह्मा के शाप वाले रोगी को जीतकर परास्त कर दूंगा ।।२२।।

१०७—राधाम्प्रतिगणेशोक्तिः

राधा संपूज्य विधिना स्तुत्वा लम्बोदरं सती ।
अमूल्यरत्ननिर्माणं सर्वाङ्गभूषणं ददौ ।।१
राधायाः स्तवनं श्रुत्वा पूजां दृष्ट्वा च वस्तु च ।
उवाच मधुरं शान्तः शान्तां त्रैलोक्यमातरम् ।।२
तव पूजा जगन्मातर्लोकशिक्षाकरी शुभे ।
ब्रह्मस्वरूपा भवती कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।।३
यत्पादपद्ममतुलं ध्यायन्ते ते सुदुर्लभम् ।
सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनीन्द्राः सनकादयः ।।४

जीवन्मुक्ताश्च भक्ताश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः ।
तस्य प्राणाधिदेवी त्वं प्रिया प्राणाधिका परा ॥५
वामाङ्गनिर्मिता राधा दक्षिणाङ्गश्च माधवः ।
महालक्ष्मीर्जगन्माता तव वामाङ्गनिर्मिता ॥६
वसोः सर्वनिवासस्य प्रसूस्त्वं परमेश्वरी ।
वेदानां जगतामेव मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥७

इस अध्याय में राधा के प्रति गणेश की उक्ति का निरूपण है। श्री नारायण ने कहा—सती राधा ने लम्बोदर की विधि के साथ भली भाँति पूजा करके तथा उनका स्तवन करके अमूल्य रत्नों से निर्मित समस्त अंगों के भूषण दिये ॥१॥ राधा की स्तुति का श्रवण करके और राधा की पूजा तथा समर्पित वस्तुओं को देख कर परम शान्त स्वरूप वाली त्रिलोकी की माता से स्वयं शान्त होकर गणेश ने मधुर स्वर में कहा ॥२॥ श्री गणेश बोले—हे शुभे ! आप तो जगतों की माता हैं। आपकी जो यह पूजा है वह लोक को शिक्षा के करने वाली है। आप तो स्वयं ब्रह्म के स्वरूप वाली और कृष्ण के वक्षःस्थल में स्थित रहने वाली हैं। समस्त देवगण—ब्रह्मा—ईश और शेष आदि—मुनीन्द्रगण तथा सनक प्रभृति सब जिसके चरण कमल का ध्यान किया करते हैं ॥३-४॥ जीवन्मुक्त—भक्त—कपिल आदि सिद्धेन्द्र जिनके पाद पद्म का ध्यान करते हैं उसकी आप प्राणों से भी अधिक—परा और प्राणों की अधिदेवी हैं ॥५॥ वाम अङ्ग से निर्मित राधा का स्वरूप है और दक्षिणाङ्ग माधव का स्वरूप है। इस तरह से दोनों ही स्वरूप एक ही अंग हैं। महालक्ष्मी जो जगत् की माता है वह आपके ही वामाङ्ग से निर्मित हुई हैं। आप ही परमेश्वरी सर्वनिवास वसु की जनयित्री हैं। वेदों की और समस्त जगतों की भी आप मूल प्रकृति ईश्वरी हैं ॥६-७॥

सर्वाः प्रकृतिका मातः सृष्ट्याञ्चेत्त्वद्विभूतयः ।
विश्वानि कार्यरूपाणि त्वं च कारणरूपिणी ॥८
प्रलये ब्रह्मणः पाते तन्निमेषो हरेरपि ।
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं परात्परम् ॥९

स एव पण्डितो योगी गोलोकं याति लीलया ।
व्यतिक्रमेमहापापीब्रह्महत्यांलभेद्ध्रुवम् ॥१०
जगतां भवती माता परमात्मा पिताहरिः ।
पितुरेव गुरुर्माता पूज्या वन्द्यापरात्परा ॥११
भजते देवमन्यं वा कृष्णं वा सर्वकारणम् ।
पुण्यक्षेत्रे महामूढो यदि निन्दन्ति राधिकाम् ॥१२
वंशहानिर्भवेत्तस्य दुःखशोकमिहैव च ।
पच्यते निरये घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१३
गुरुश्च ज्ञानोद्गिरणाज्ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः ।
स च मन्त्रश्च तत्तन्त्रं भक्तिःस्याद् युवयोर्यतः ॥१४

हे माता ! इस सृष्टि में सभी प्राकृतिक हैं जो कि आपकी विभूतियाँ हैं । ये समस्त विश्व कार्य स्वरूप वाले हैं और आप ही एक इनके कारण स्वरूप वाली हैं ॥८॥ प्रलय काल में ब्रह्माके पात होने पर जो कि हरि भगवान् एक निमेष ही समय होता है वह ब्रह्मा सबसे पहिले आदि में राधा के नाम का उच्चारण करके उसके पश्चात् परात्पर कृष्ण का नाम लेकर वह ही परम पण्डित और योगी लीला से ही गोलोक को चला जाता है । इन दोनों राधा और कृष्ण के नाम का व्यतिक्रम से उच्चारण करने पर महान् पापी हो जाया करता है और उसे निश्चय ही ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥९-१०॥ हे देवि ! आप तो माता हैं और हरि पिता हैं । पिता से भी अधिक बड़ी माता होती है । वह पिता से अधिक पूज्य-वन्दनीय और पर से भी परा हुआ करती है ॥११॥ यदि कोई किसी अन्य देव का भजन करता है अथवा सबके कारण स्वरूप कृष्ण का भजन करता है वह इस पुण्य क्षेत्र में महान् मूढ़ है यदि वह राधिका की निन्दा किया करता है ॥१२॥ उस पुरुष के वंश की हानि होती है और यहाँ पर ही उसे दुःख तथा शोक हुआ करते हैं । अन्त में वह घोर नरक में जब तक चन्द्र और सूर्य रहते हैं उग्रयातनाऐं भोगता है ॥१३॥ ज्ञान के उद्गिरण होने से गुरु है । मन्त्र और तन्त्र में ज्ञान होता है । वही मन्त्र है और वही तन्त्र है जिससे आप दोनों की भक्ति होती है ॥१४॥

निषेव्य मन्त्रं देवानां जीवी जन्मनि जन्मनि ।
भक्तिर्भवति दुर्गायाः पादपद्मे सुदुर्लभे ।।१५
निषेव्यमन्त्रं शम्भोश्च जगतां कारणस्य च ।
तदा प्राप्नोतियुवयोःपादपद्मं सुदुर्लभम् ।।१६
युवयोः पादपद्मञ्च दुर्लभं प्राप्य पुण्यवान् ।
क्षणार्द्धं षोड़शांशञ्च न हि मुञ्चति दैवतः ।।१७
भक्त्या च युवयोर्मन्त्रं गृहित्वा वैष्णवादपि ।
स्तवं वा कवचं वापि कर्ममूलनिकृन्तनम् ।।१८
यो जपेत् परया भक्त्या पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
पुरुषाणां सहस्रञ्च स्वात्मनासार्द्धमुद्धरेत् ।।१९
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ।
कवचं धारयेद् योहि विष्णुतुल्योभवेद्ध्रुवम् ।।२०
यद्दत्तं वस्तु मे मातस्तत् सर्वं सार्थकं कुरु ।
देहि विप्राय मत्प्रीत्या तदा भोक्ष्यामि साम्प्रतम् ।।२१

देवों के मन्त्र को सेवन करके जन्म-जन्म में जीवन बिताने वाला जो पुरुष है उसको दुर्गा के पाद पद्म में भक्ति हुआ करती है ।।१५।। इस जगत् के कारण स्वरूप शम्भु के मन्त्र की उपासना करके तब मनुष्य आप दोनों के सुदुर्लभ चरण कमल की प्राप्ति किया करता है ।।१६।। पुण्यवान् पुरुष आपके परम—दुर्लभ चरण कमल को प्राप्त कर वह दैवत आधे क्षण भी षोडशांश को नहीं त्यागता है ।।१७।। आप दोनों (राधा और कृष्ण) की भक्ति के भाव से किसी वैष्णव से भी मन्त्र की दीक्षा प्राप्त कर स्तन अथवा कवच को ग्रहण करके जो कि कर्म के मूल का निकृन्तन कर देने वाला है जो पराभक्ति से इस पुण्य क्षेत्र भारत में जपता है वह अपने ही साथ अपने पूर्व सहस्र पुरुषों का उद्धार कर देता है ।।१८-१९।। वस्त्र अलंकार और चन्दन के द्वारा श्रीगुरुचरण की अभ्यर्चना करके और विधि-विधान के साथ यजन करके जो पुरुष कवच को धारण करता है वह निश्चय ही विष्णु के समान ही हो जाता है ।।२०।। हे माता ! जो वस्तु मुझे दी है उसे आप सार्थक सब को कर दीजिए । मेरी

प्रीति के लिये आप विप्र को प्रदान करिये तब मैं इस समय भक्षण करूंगा ॥२१॥

देवे देयानि दानानि देवे देया च दक्षिणा ।
तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्तदानन्त्याय कल्पते ॥२२
ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम् ।
विप्रभुक्तञ्च यद्द्रव्यं प्राप्नुवन्त्येव देवताः ॥२३
विप्रांश्च भोजयामास तत् सर्वं राधिका सती ।
बभूव तत्क्षणादेव प्रीतोलम्बोदरो मुने ॥२४
एतस्मिन्नन्तरे देवा ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः ।
आययुर्वटमूलंच देवपूजार्थमेव च ॥२५
तत्रगत्वा शिवचरो देवान् देवीरुवाच सः ।
श्रीकृष्णं शुष्ककण्ठश्च भयभीतश्च रक्षकः ॥२६

देवता के लिये दिये जाने वाले दान और देवों को दी जाने वाली जो दक्षिणा है वह सभी ब्राह्मण को ही दे देनी चाहिये । ऐसा करने से अनन्त फल हुआ करता है ॥२२॥ हे राधे ! ब्राह्मणों का जो मुख होता है वही देवों का मुख्य मुख हुआ करता है । विप्रों के द्वारा जिस द्रव्य का भोग किया जाता है वह देवों को ही प्राप्त होता है ॥२३॥ तब तो सती राधिका ने वह सभी कुछ विप्रों को भोजन करा दिया । हे मुने ! तब तो लम्बे उदर वाले गणेश अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥२४॥ इसी बीच में ब्रह्मा—ईश और शेष नाम धारी देवगण भी वहाँ पर वट के मूल के समीप अभ्यर्चन करने के लिये आ गये ॥२५॥ वहाँ जाकर शिव के दूत ने देवों से और देवियों से वह बोला । वह रक्षक श्रीकृष्ण से भी कहने लगा जिसको बड़ा भारी भय हो रहा था और जिसका कण्ठ सूख गया था ॥२६॥

गणेशं पूजयामास सर्वादौ च शुभक्षणे ।
वृषभानुसुता राधा प्रकृत्य स्वस्तिवाचनम् ॥२७
सहितासा बलवती गोपीत्रिशतकोभिः ।
वारितोऽहं बलिष्ठाभिर्युष्मांश्चकथायामितत् ॥२८

सर्वादौ पूजयेद् यो हि सोऽनन्तं फलमाल्भेत् ।
मध्ये मध्यविधं पुण्यं शेषे स्वल्पमिति स्मृतम् ॥२९
देवेन्द्रेषु मुनीन्द्रेषु देवस्त्रीषु स्थितासु च ।
गोपीभिश्च सह तया राधया पूजित:पर: ॥३०
दूतवाक्यं समाकर्ण्य जहसुः सर्वदेवताः ।
मुनयो मनवश्चैव राजानो देवयोषित: ॥३१
रुक्मिण्याद्या रमण्यश्च या देव्यो विस्मयं ययुः ।
सरस्वतीचसावित्री पार्वतीपरमेश्वरी ॥३२
रोहिणी च सतीसंज्ञा स्वाहाद्या देवयोषितः ।
मुदिता: प्रययुः सर्वा मुनिपत्न्यः पतिव्रता: ॥३३
मुनयो मनव: सर्वे देवाश्चापि नरास्तथा ।
श्रीकृष्ण: सगणैः सार्द्धं ये चान्येप्रययुर्मुदा ॥३४
तेसर्वे विविधैर्द्रव्यैः पूजां चक्रुः शुभक्षणे ।
बलिष्ठा दुर्बलाश्चैवं क्रमेण च पृथक पृथक् ॥३५

रक्षक ने कहा—वृषभानु की पुत्री राधा ने स्वस्ति वाचन करके इस शुभ क्षण में सबके पहिले आदि में गणेश की ही पूजा की ॥२७॥ तीन सौ करोड़ गोपियों के साथ वह अत्यन्त बलवती हो गई है। उन अत्यन्त बलवती गोपियों के द्वारा मुझे वारित कर दिया गया है—यही निवेदन मैं आप सबसे कर रहा हूँ ॥२८॥ सबके आदि में जो इसी प्रकार से अभ्यर्चना किया करता है वह अनन्त फल का लाभ किया करता है। मध्य में जो पूजन करता है उसे मध्यम श्रेणी का पुण्य होता है और अन्त में जो करता है उसको तो अत्यन्त स्वल्प फल एवं पुण्य ही होता है। ऐसा कहा गया है ॥२९॥ सम्पूर्ण देवेन्द्र और मुनीन्द्र तथा देवों की स्त्रियों के स्थित रहते हुए भी गोपियों के सहित उस राधा के द्वारा पर की ही पूजा पहिले की गई है ॥३०॥ दूत के इन वचनों का श्रवण करके समस्त देवगण—मुनिमण्डल—मनु—राजा और देवों की अंगनाऐं हँस पड़ी थीं ॥३१॥ रुक्मिणी आदि जो रमणियाँ और जो देवियाँ थीं उन सबको अत्यन्त विस्मय हुआ था। सरस्वती और सावित्री—परमेश्वरी

पार्वती—रोहिणी तथा संज्ञा वाली एवं स्वाहा आदि देवों की स्त्रियाँ और समस्त पतिव्रता मुनियों की पत्नियाँ परम प्रहर्षित होती हुईं वहाँ पर गईं थीं ॥३२-३३॥ मुनिगण—मनुगण—समस्त देवगण और मनुष्य गणों के साथ श्रीकृष्ण और अन्य लोग सभी परम प्रसन्नता के साथ वहाँ गये थे ॥३४॥ उन सभी ने विविध प्रकार के द्रव्यों के द्वारा शुभ क्षण में पूजा की थी। और दुर्बल तथा बलिष्ठ सभी ने क्रम से पृथक् २ पूजन किया था ॥३५॥

लड्डुकानांच राशीनां शतकोटिर्बभूव ह ।
शर्कराणां तदर्द्धञ्च स्वस्तिकानां तथैव च ॥३६
अन्नानां भव्यवस्तूनां शतकोटिर्बभूव ह ।
असंख्यानि फलान्येव स्वादूनिमधुराणि च ॥३७
मधुकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या घृतस्य च ।
बभूवुः शतसंख्यांच त्रैलोक्यानांच पूजने ॥३८
पूजां कृत्वा तु ते सर्वे समूषुश्च सुखासने ।
पार्वती परमा प्रीत्या राधास्थानंसमाययौ ॥३९
सा राधा पार्वतीं दृष्ट्वा समुत्थाय जवेन च ।
यथायोग्यांच सम्भाषां चकार सादरं मुदा ॥४०
आश्लेषणं चुम्बनंच बभूव च परस्परम् ।
उवाच मधुरं दुर्गा राधां कृत्वा स्ववक्षसि ॥४१

वहाँ पर लड्डुओं की सैकड़ों राशियाँ हो गईं थीं और अगणित फलों के ढेर हो गये थे जो कि फल अत्यन्त मधुर एवं स्वादु थे ॥३६॥ मधुकुल्या—दुग्धकुल्य—दधिकुल्या और घृतकुल्या थीं। ये सब त्रैलोक्यों के पूजन में सैकड़ों की संख्या में थीं। शर्कराओं के डेढ़ करोड़ सौ ढेर थे। स्वस्ति कों के भी इतने ही ढेर लगे हुए थे। अन्नों के तथा अन्य भव्य पदार्थों की राशियाँ भी शतकोटि थीं ॥३७-३८॥ वे सब पूजा करके सुखासनों पर संस्थित होगये थे। इस के अनन्तर पार्वती देवी परमाधिक प्रीति के साथ राधा के स्थान पर आगई थीं ॥३९॥ उस राधा देवी ने जगदम्बा पार्वती को देख कर गात्रोत्थान बड़े ही वेग से

दिया था और फिर पार्वती से यथोचित सम्भाषण परम प्रीति के साथ किया था ॥४०॥ दोनों का परस्पर में आश्लेषण और चुम्बन बड़े ही प्रेम के साथ हुआ था। दुर्गा देवी ने राधा को अपने वक्षःस्थल में लगा कर उनसे मधुर वचन कहने लगीं थीं ॥४१॥

किंवा प्रश्नं करिष्यामि त्वां राधां मङ्गलालयाम् ।
गता ते विरहज्वाला श्रीदाम्नः शापमोक्षणे ॥४२
सततं मन्मनः प्राणास्त्वय्येव मयि ते तथा ।
नह्येवमावयोर्भेदः शक्तिपुरुषयोस्तथा ॥४३
येत्वां निन्दन्ति मद्भक्तास्त्वद्भक्ताश्चापिमामपि ।
कुम्भीपाकेचपच्यन्तेचयातेन्द्रदिवाकरौ ॥४४
राधामाधवयोर्भेदं ये कुर्वन्ति नराधमाः ।
वंशहानिर्भवेत्तेषां पच्यन्ते नरकेच्चिरम् ॥४५
यान्ति शूकरयोनिंच पितृभिः शतकैः सह ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां कृमयस्तथा ॥४६
त्वयैव पूजितः पुत्रो न मया च गणेश्वर ।
सर्वादौ सर्वपूज्योऽयं यथा तव तथामम ॥४७
यावज्जीवनपर्य्यन्तं न विच्छेदो भविष्यति ।
राधामाधवयोर्देवि दुग्धधावल्ययोर्यथा ॥४८

पार्वती ने कहा—हे राधा ! आप तो मङ्गलों की स्वयं आधार ही हैं अतएव कुशल—मङ्गल के विषय में तो आपसे प्रश्न ही क्या करूँ ? अर्थात् राधा ! आपसे मङ्गल के विषय में कुछ भी पूछना तो व्यर्थ ही है। श्री दामा के शाप की मुक्ति हो जाने पर अब आपको जो विरहाग्नि की ज्वालाएं उत्पीड़ित कर रहीं थीं वे समाप्त हो गईं हैं ॥४२॥ मेरे प्राण निरन्तर तथा सर्वदा मेरा मन तुममें ही रहता है वैसा ही तुम्हारा मन भी मुझ में सदा रहा करता है। इस प्रकार से हम दोनों में शक्ति और पुरुष की भाँति कोई भी भेद नहीं है ॥४३॥ जो भी मेरे भक्त होकर तुम्हारी निन्दा किया करते हैं या तुम्हारे भक्त मेरी बुराई करते हैं वे सब कुम्भी पाक नामक नरक में जाकर गिरा करते हैं और वहाँ वे

जब तक सूर्य एवं चन्द्र की स्थिति रहती है तब तक बराबर नारकीय असह्य यातनाऐं भोगा करते हैं ।४४।। वे मनुष्यों में महान् अधम श्रेणी के मनुष्य हैं जो राधा माधव में कुछ भी भेद-भाव की कल्पना किया करते हैं । ऐसे पुरुषों के वंश की हानि हो जाया करती है और वे चिर-काल पर्यन्त नरक में अति दुस्सह यातनाऐं भोगते रहते हैं ।।४५।। ऐसे महान् जीव जन्तु अपने पितरों के साथ जो कि सैकड़ों ही होते हैं, शूकर की योनि में जाकर जन्म ग्रहण किया करते हैं तथा साठ हजार वर्ष तक विष्टा के अन्दर रहने वाले कृमियों की योनियों में जन्म ग्रहण कर निवास किया करते हैं ।।४६।। तुमने ही मेरे पुत्र गणेश का सर्व प्रथम पूजन किया है । अभी तक मैने तो नहीं किया है । यह सब के प्रथम यदि तुम्हारा पूज्य है तो मेरा सबके पहले पूजने के योग्य ही है क्योंकि तुम और हम में कोई अन्तर है ही नहीं ।।४७।। हे देवि ! अब जीवन पर्यन्त कभी भी राधा और माधव का विच्छेद नहीं होगा जिस तरह से दुग्ध और उसमें रहने वाली धवलता कभी भी अलग दूध से नहीं होती है उसी भाँति आप दोनों में भी वैसा ही गुण द्रव्य का सा नित्य सम्बन्ध स्थिर है ।।४८।।

सिद्धाश्रमे महातीर्थे पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
निर्विघ्नं लभ गोविन्दं सम्पूज्यविघ्नखण्डनम् ।।४९
रासेश्वरी त्वं रसिकाश्रीकृष्णोरसिकेश्वरः ।
विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमोगुण ानुभवेत् ।।५०
श्रीदाम्नः शापनिर्मुक्ता शतवर्षान्तरे सती ।
कुरुष्व मद्वरेणाद्य कृष्णेन सह सङ्गमः ।।५१
ममाज्ञया दुर्लभया सुवेशं कुरु सुन्दरि ।
सुदुर्लभः कामिनीनां सत्पुंसा सह संगमः ।।५२
चक्रुः सुवेशं राधायाः प्रियाल्यश्चशिवाज्ञया ।
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम् ।।५३
पुरतो रत्नमाला सा रत्नमालां गले ददौ ।
राधाया दक्षिणे हस्ते क्रीड़ापद्मं मनोहरम् ।।५४

ददौ पद्ममुखी पादपद्मयुग्मेऽप्यलक्तकम् ।
प्रददौ सुन्दरी गोपी सिन्दूरं सुन्दरं वरम् ॥५५
चन्दनेन समायुक्तं सीमन्ताधस्थयोज्ज्वलम् ।
सुचारुकवरीं रम्यां चकार मालती सती ।
मनोहरां मुनीनांच मालतीमाल्यभूषिताम् ॥५६

अब आप भारत जो सिद्धों का आश्रम—महान् तीर्थ और पुण्य का परम क्षेत्र है बिना किसी अड़चन एवं विघ्न बाधा के गोविन्द की प्राप्ति करो क्योंकि आपने अब तो विघ्नों के विनाश करने वाले गणेश का पूजन भली भाँति कर ही लिया है ॥४९॥ हे राधे ! आप तो रास की स्वामिनी हैं और रास लीला की अत्यन्त ही रसिका हैं तथा श्री कृष्ण रास के रसिकों में परम शिरोमणि हैं। विदग्धा नायिका अर्थात् रास के लिये अत्यन्त निपुण का विदग्ध नायक के साथ जो सङ्गम होता होता है वह बहुत ही अधिक गुण वाला हुआ करता है ॥५०॥ हे सति ! अब आप सौ वर्ष के पश्चत् श्री दामा के शाप से निर्मुक्त होगई हैं। आज मेरा वरदान है कि तुम श्री कृष्ण के साथ सुख पूर्वक सङ्गम करो ॥५१॥ हे सुन्दरि ! अब मेरी आज्ञा से जो कि परम दुर्लभ हुआ करती है अपना सुन्दर वेश-भूषा धारण करो अर्थात् अत्यन्त सुरम्य शृङ्गार करो क्योंकि कामिनियों का सत्पुरुष के साथ सङ्गम सुदुर्लभ हुआ करता है ॥५२॥ जगदम्बा पार्वती की आज्ञा से श्री राधा की जो परम प्रिया आलियाँ थी उन्होंने राधा का सुन्दर वेश किया था और फिर रत्नों द्वारा सुनिर्मित सिंहासन पर उस ईश्वरी को विराजमान किया था॥५३॥ उनके सामने कण्ठ में रत्नमाला नाम धारिणी सेविका गोपी ने रत्नों की माला पहिनाई थी और राधा के दाहिने हाथ में परम मनोहर क्रीड़ा पद्म समर्पित किया था ॥५४॥ पद्ममुखी नामक सेविका सहेली ने श्री राधा के कमलोपम चरणों में अलक्तक लगाया था। सुन्दरी नाम वाली गोपी ने राधा के मस्तक में परम श्रेष्ठ सिन्दूर लगाया था ॥५५॥ सीमान्त के अधःस्थल को अति समुज्वल चन्दन से समायुक्त किया था। सती मालती ने परम सुन्दर एवं अति रम्य कवरी की रचना की थी

जो कि मालती लता के पुष्पों से भूषित की गई थी और मुनि गणों के मन को भी हरण करने वाली थी ।।५६।।

कस्तूरीकुंकुमाक्तंच चारुचन्दनपत्रकम् ।
स्तनयुग्मे सुकठिने चाकार चन्दनं सती ।।५७
चारुचम्पकपुष्पाणां मालां गन्धमनोहराम् ।
मालावती ददौ तस्यै प्रफुल्लांनवमल्लिकाम् ।।५८
रतीषु रसिका गोपी रत्नभूषणभूषिताम् ।
तां चकारातिरसिकां गरां रतिरसोत्सुकाम् ।।५९
शरत्पद्मदलाभंच लोचनं कज्जलोज्वलम् ।
कृत्वा ददौ सुललितं वस्त्रञ्च ललिता सती ।।६०
महेन्द्रेण प्रदत्तंच पातिजातप्रसूनकम् ।
सुगन्धियुक्तं तस्याश्च पारिजातं करे ददौ ।।६१
सुशीलं मधुरोक्तंच भर्तुः पार्श्वे यथोचितम् ।
शिक्षांचाकारनीतिंचासुशीलागोपिकासती ।।६२
स्त्रीणांच षोड़शकलां विपत्तौ विस्मृतांतयोः ।
स्मरणं कारयामास राधामाताकलावती ।।६३

कस्तूरी और कुंकुम से अक्त सुन्दर चन्दन के द्वारा पत्रावली की रचना सुकठिन स्तनों के युग्म पर की गई थी तथा सती ने उन पर चन्दन का प्रलेपन किया था ।।५७।। मालावती ने सुन्दर चम्पक के पुष्पों की सुगन्धि से परम मनोहर तथा प्रफुल्ल नव मल्लिका दी थी ।।५८।। रति केलियों में अत्यन्त रसिका को गोपी ने उस राधा को रत्नों के भूषणों से समलंकृत और अत्यन्त रसिका को श्रेष्ठ रतिरस में उत्सुक कर दिया था ।।५९।। सती ललिता ने राधा के शरत्कालीन पद्म के दल की आभा वाले लोचन में उज्ज्वल कज्जल लगाया था और परम सुन्दर वस्त्र पहनने को समर्पित किये थे ।।६०।। महेन्द्र ने पारिजात के पुष्प दिये थे । उस राधा के हस्त में सुगन्धि से युक्त पारिजात के पुष्प समर्पित किये थे ।।६१।। सती सुशीला गोपिका ने अच्छे शील स्वभाव वाली एवं स्वामी के समीप में परम मधुर नीति की

शिक्षा दी थी ।।६२।। वह स्त्रियों में षाड़श कला वाली हैं और विपत्ति में अथवा शाप के कारण वियोग की अवस्था में उन दोनों को भूली हुई है—यह सभी कुछ राधा की माता कलावती ने राधिका को स्मरण कराया था ।।६३

शृङ्गारविषयोक्त ंचा वचनंच सुधोपमम् ।
स्मरणं कारयामास भगिनो च सुधामुखी ।।६४
कमलानांचाम्पकानां दले चन्दनर्चिते ।
चकार रतितल्पंचा कमला चाशु कोमलम् ।।६५
चारुचम्पकपुष्पंच कृष्णार्थं पुटकस्थितम् ।
चकार चन्दनाक्तञ्च स्वयं चम्पावती सतो ।।६६
पुष्पं केलिकदम्बाना स्तवकंच मनोहरम् ।
कदम्बमालां कृष्णार्थं विद्यमानं चकार सां ।।६७
ताम्बूलंच वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ।
कृष्णप्रिया च कृष्णार्थं चकारवासितं जलम् ।।६८
एतस्मिन्नन्तरे सर्वमाश्रमं सजलस्थलम् ।
साक्षाद्गोरोचनाभंच ददृशुर्मुनयः सुराः ।।६९
ते सर्वे विस्मयं गत्वा पप्रच्छुः कृष्णमीश्वरम् ।
उवाच भगवांस्तांश्चसर्वज्ञःसर्वकारणः ।।७०

सुधामुखो भगिनी ने शृंगार के विषय में कहे गये सुधा के समान वचनों का स्मरण कराया था ।।६४।। सती कमला ने बहुत ही कमलों के और चमकों के चन्दन से चर्चित दलों में रतिकेलि करने का कोमल तल्प प्रस्तुत किया था ।।६५।। सती चम्पावती ने कृष्ण के लिए पुटक में स्थित अत्यन्त सुरम्य चम्पक के पुष्पों को स्वयं चन्दन से अक्त किया था ।।६६।। उसने केलि कदम्बों के पुष्पों को और मनोहर स्तवक को तथा कृष्ण के लिये कदम्ब के पुष्पों की माला को विद्यमान किया था ।।६७।। कृष्ण प्रिया ने बहुत ही श्रेष्ठ और कपूर आदि से सुवासित रम्य ताम्बूल प्रस्तुत किया एवं कृष्ण के लिये जल सुवासित किया था ।।६८।। इसी अन्तर में सम्पूर्ण आश्रम को जल एवं स्थल के

सहित साक्षात् गोरोचन की आभा वाला मुनिगण ने तथा सुरों ने देखा था ।।६६।। वे सभी परम विस्मय को प्राप्त हुए थे और उनने ईश्वर कृष्ण से पूछा। सब कुछ के ज्ञाता—सबके कारण स्वरूप भगवान् ने उन सब को कहा था—।।७०।।

अभिशप्ता च श्रीदाम्ना भ्रष्टशोभा च राधिका ।
सर्वं ज्ञानं विसस्मार मद्विच्छेदज्वरातुरा ।।७१
विमुक्ते वर्षशतके ज्ञानं सस्मार सा सती ।
सिद्धाश्रमंच पीताभं रासेश्वर्य्याश्च तेजसा ।।७२
परमाह्लादकं तेजश्चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।
सुखदृश्यंच सुखदं चक्षुषा प्राणिनामपि ।।७३
तच्छ्रुत्वा परमाश्चर्य्यं मुनयो मनवस्तथा ।
देव्यश्च सर्वदेवास्ते ब्रह्मेशाकादयस्तथा ।।७४
जवेन गत्वा तत्स्थानं भक्तिनम्रात्मकन्धराः ।
सर्वे जनास्ते ददृशुस्त्रैलोक्यस्थाश्च राधिकाम् ।।७५
श्वेतचम्पकवर्णाभामतुलां सुमनोहराम् ।
मोहिनीं मानसानांच मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।।७६
सुकेशीं सुन्दरीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् ।
नितम्बकठिनश्रोणीस्तनयुग्मोन्नताननाम् ।।७७

भगवान् ने कहा —श्रीदामा के द्वारा अभिशाप दी हुई राधिका भ्रष्ट शोभा वाली होगई थी। वह मेरे विच्छेद रूपी ज्वर के भाय से अत्यन्त आतुर हो गई थी और ऐसी दशा में उसका सारा ज्ञान विस्मृत हो गया था ।।७१।। इस वियोग की दशा के एक सौ वर्ष विमुक्त हो जाने पर उस सती ने ज्ञान का स्मरण किया और यह सिद्धाश्रम रासेश्वरी राधिका के तेज से इस समय पीत आभा वाला हो गया है ।।७२।। यह रासेश्वरी का तेज परम आह्लाद उत्पन्न करने वाला है और करोड़ों चन्द्रों की प्रभा के तुल्य प्रभा से युक्त है। सुख पूर्वक प्राणियों के चक्षु से देखने के योग्य है तथा हृदय को सुख प्रदान करने वाला है ।।७३ यह भगवान् का कथन श्रवण करके सबको अत्यन्त

आश्चर्य उत्पन्न हुआ था। फिर मुनिगण—मनु—देवियाँ—समस्त देवता और ब्रह्म तथा ईशान प्रभृति सब उस स्थान पर भक्ति के भाव से विनम्र कन्धर वाले होते हुए बड़ी तेजी से गये थे। इन सब ने वहाँ पर त्रैलोक्यस्था राधिका का दर्शन किया था ॥७४-७५॥ वह राधिका श्वेत चम्पक के पुष्प की आभा के समान आभा वाली थी—उसका रूप—लावण्य अतुलनीय था—परम मनोहर थी—ऊर्ध्वरेता मुनियों के भी मानसों को मोहित कर देने वाली थी ॥७६॥ उस राधा के सुन्दर केश थे—वह सुन्दरी—वह न्यग्रोध के परिमण्डल वाली श्यामा थी और वह नितम्ब, कठिन श्रोणी और स्तन युग्मों से उन्नत आनन (मुख) वाली थी ॥७७॥

कोटीन्दुनिन्दितास्यां तां सस्मितां सुदतीं सतीम् ।
कज्जलोज्ज्वलरूपांच शरत्कमललोचनाम् ॥७८
महालक्ष्मीं वीजरूपां परमाद्यां सनातनीम् ।
परमात्मस्वरूपस्य प्राणाधिष्ठातृदेवताम् ॥७९
स्तुतांच पूजिताञ्चैव परांच परमात्मने ।
ब्रह्मस्वरूपां निर्लिप्तां नित्यरूपाञ्च निर्गुणाम् ॥८०
विश्वानुरोधात् प्रकृतिं भक्तानुग्रहविग्रहाम् ।
सत्यस्वरूपां शुद्धाञ्च पूतां पतितपावनीम् ॥८१
सुतीर्थपूतां सत्कीर्तिं विधात्रीं वेधसामपि ।
महाप्रियाञ्च महतीं महाविष्णोश्च मातरम् ॥८२
रासेश्वरेश्वरीं रम्यां रसिकां रसिकेश्वरीम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानां स्वच्छारूपां शुभालयाम् ॥८३
गोपीभि. सप्तभिः शश्वत् सेवितां श्वेतचामरैः ।
चतसृभिः प्रियालीभिः पादपद्मोपसेविताम् ॥८४

सुर और मुनिगण आदि ने देखा था कि वह राधा करोड़ों चन्द्रों को पराजित करने वाले सुन्दर मुख वाली थी—उसके मुख पर मन्द मुस्कराहट खेल रही थी—उस सती के मुख की दंत पंक्ति बहुत ही सुन्दर थी। वह कज्जल से अति उज्वल रूप वाली और शरत्काल के

कमलों के समान लोचनों वाली थी ।।७८।। उन्होंने देखा था कि वह साक्षात् महालक्ष्मी थी—सबके बीज स्वरूप वाली—परम आद्या और सनातनी थी। राधा परमात्मा भगवान् के स्वरूप के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी थी ।।७६।। वह स्तुत—पूजित और परमात्मा के लिये परा थी। वह राधा ब्रह्म के स्वरूप वाली—निर्लिप्त नित्यरूप से संयुक्त और निर्गुण थी ।।८०।। विश्व के अनुरोध के कारण ही प्रकृति रूपिणी तथा अपने भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये ही शरीर को धारण करने वाली थी । वह राधा सत्य स्वरूप—शुद्ध रूप वाली— परम पूत और पतितों को पावन बनाने वाली थी ।।८१।। वह राधिका सुन्दर तीर्थों के तुल्य पूत थी–सत्कीर्ति से युक्त और ब्रह्माओं को भी बनाने वाली। वह महाप्रिया थी—सबसे महान् थी और महा विष्णु की भी जनन करने वाली माता थी ।।८२।। देव तथा मुनि एवं मनुगण ने देखा कि वह राधा रासेश्वर श्री कृष्ण की भी ईश्वरी थीं—अत्यन्त रम्य–रसिक और रसिकों में भी शिरोमणि स्वामिनी थी । वह वह्नि के समान शुद्ध वस्त्रों के परिधान करने वाली—स्वेच्छा ही से रूप को धारण करने वाली तथा शुभ आलय वाली हैं ।।८३।। उस राधा को सात गोपियाँ श्वेत चामरों को धारण करने वाली निरन्तर सेवा कर रही थीं और चार प्रिय आलियों के द्वारा उस राधा के पाद पद्मों की सेवा की जा रही थी ।।८४।।

गोपीश्वरीं गुप्तिरूपां सिद्धिदां सिद्धिरूपिणीम् ।
ध्यानासाध्यां दुराराध्यां वन्दे सद्भक्तवन्दिताम् ।।८५
ध्याने ध्यानेन राधाया ध्यायन्ते ध्यानतत्पराः ।
इहैव जीवन्मुक्तास्ते परत्र कृष्णपार्षदाः ।।८६
दृष्ट्वा ब्रह्मा च सर्वादौ तुष्टाव परमेश्वरीम् ।
स्वयं विधाता जगतां मातरं वेधसामपि ।।८७
षष्टिर्वर्षसहस्राणि दिव्यानि परमेश्वरि ।
पुष्करे च तपस्तप्तं पुण्यक्षेत्रे च भारते ।।८८
त्वत्पादपद्ममधुरमधुलुब्धेन चेतसा ।

मधुव्रतेन लोभेन प्रेरितेन मया सति ।।८९
तथापि न मया लब्धं त्वत्पादपद्मीप्सितम् ।
न दृष्टमपि स्वप्नेऽपि जाता वागशरीरिणो ।।९०

गोपियों की स्वामिनी–गुप्ति के रूप वाली–सिद्ध प्रदान करने वाली सिद्धियों के स्वरूप वाली—ध्यान में न साधन करने के योग्य—सद्भक्तों के द्वारा वन्दित और दुराराध्या उस राधिका की वन्दना करते हैं ।८५। ध्यान में जो लोग निरन्तर तत्पर रहा करते हैं वे ध्यान में ध्यान के द्वारा राधा का ध्यान किया करते हैं और ऐसे लोग जीवित अवस्था में ही मुक्त हो जाया करते हैं फिर मृत्यु के पश्चात् परलोक में वे भगवान् श्री कृष्ण के पार्षद होते हैं ।।८६।। सबके आदि ब्रह्मा ने दर्शन करके उस परमेश्वरी का स्तवन किया था जो समस्त जगतों की रचना करने वाला तथा वेधाओं का भी विधाता है उस विधाता ने राधा की स्तुति की ।।८७।। ब्रह्मा ने कहा—हे परमेश्वरी ! मैंने साठ सहस्र वर्षों तक जो कि वर्ष भी दिव्य थे परम पुष्करराज में तपस्या की जो पुष्कर—पुण्यों का क्षेत्र भारतवर्ष में है ।।८८।। हे सति ! यह तपस्या आपके ही चरण रूपी कमल के मधुर मधु केलों की चित्त से प्रेरित होकर की जो कि मधुव्रत के लालच से ही मुझे प्रेरणा उत्पन्न हुई ।।८९।। तो भी मैंने अपने परम अभीष्ट पाद पद्म का दर्शन प्राप्त नहीं किया ! मुझे साक्षात् तो क्या स्वप्न में भी आपके स्वरूप के दर्शन नहीं हो सके । उस समय जब मुझे खिन्नता हो रही थी तो आकाश वाणी हुई ।।९०।।

वाराहे भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने ।
सिद्धाश्रमे गणेशस्य पादपद्मञ्च द्रक्ष्यसि ।।९१
राधामाधवयोर्दास्यं कुतो विषयिणस्तव ।
निवर्त्तस्व महाभाग परमेतत् सुदुर्लभम् ।।९२
इति श्रुत्वा निवृत्तोऽहं तपसे भग्नमानसः ।
परिपूर्णं तदधुना वाञ्छितं तपसः फलम् ।।९३
पादपद्मार्चितं पादपद्मं यस्थ सुदुर्लभम् ।
ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाश्च शश्वद् ब्रह्मादयः सुराः ।।९४

मुनयो मनवश्चैव सिद्धाः सन्तश्च योगिनः ।
द्रष्टुं नैव क्षमाः स्वप्ने भवती तस्य वक्षसि ॥९५
वेदाश्च वेदमाता च पुराणानि च सुव्रते ।
अहं सरस्वती सन्तः स्तोतुं नालञ्च सन्ततम् ॥९६
अस्माकं स्तवने यस्य भ्रभङ्गञ्च सुदुर्लभम् ।
तवैव भर्त्सने भीतश्चावयोरन्तरं हरिः ॥९७
एवं देवाश्च देव्यश्च चान्ये ये च समागताः ।
प्रणतास्तुष्टुवुः सर्वे मुनिमन्वादयस्तथा ॥९८
लज्जया नम्रवक्त्राश्च रुक्मिण्याद्याश्च योषितः ।
मलीमसञ्च चक्रुस्ताः श्वासेन रत्नदर्पणम् ॥९९
मृततुल्या सत्यभामा निराहारा कृशोदरी ।
मनसोऽप्यभिमानञ्च सर्वं तत्याज नारद ॥१००

वाराह कल्प में भारत वर्ष में परमपूज्य वृन्दावन के वन में गणेश के पाद पद्म का दर्शन प्राप्त करेगा—ये आकाश वाणी के वचन थे ॥९१॥ राधा माधव का दास्य भाव विषयी तुझे कैसे हो सकता है। अतएव हे महाभाग ! इस घोर तप से निवृत्ति करो—यह अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है ॥९२॥ आकाश वाणी के इस वचनावली का श्रवण कर मेरी आशाएं एकदम भग्न हो गईं और मैं तपस्या करने से निवृत्त हो गया अब मेरी तपस्या का परिपूर्ण वाञ्छित फल प्राप्त हुआ है ॥९३॥ श्री महादेव ने कहा—पाद पद्मार्चित जिसका पाद पद्म सुदुर्लभ है जिसका ध्यान में निष्ठ होकर ब्रह्मा आदि समस्त देव निरन्तर ध्यान किया करते हैं ॥९४॥ मुनिगण—मनु—सिद्ध—सन्त और योगी लोग उसके वक्षःस्थल में आपका दर्शन करने में असमर्थ होते हैं ॥९५॥ अनन्त ने कहा —हे सुव्रते ! वेद—वेदों की माता—पुराण—मैं स्वयं और सरस्वती देवी निरन्तर आपका स्तवन करने में असमर्थ हैं ॥९६॥ हमारे स्तवन में जिसका भ्रू भङ्ग सुदुर्लभ है वह हरि आपकी ही भर्त्सना से भयभीत रहा करते हैं इतना हममें अन्तर है ॥९७॥ इस प्रकार से देव

—देवी और अन्य जो वहाँ आये, वे सब मुनि एवं मनु आदिक प्रणत हुए तथा सब ने स्तवन किया ॥६८॥ रुक्मिणी आदि योषित सब लज्जा से विनम्रमुख वाली थीं । वे सब अपने निःश्वास से रत्न दर्पण को मलीन कर रही थीं ॥६६॥ आहार न करने वाली तथा कृश उदर से युक्त सत्यभामा मृतक तुल्य हो गई थी । हे नारद ! अपने मन का सम्पूर्ण अभिमान उस सत्यभामा ने त्याग दिया था ॥१००॥

१०८—श्रीकृष्णस्य गोलोकगमनवर्णनम्

श्रीकृष्णो भगवांस्तत्र परिपूर्णतमः प्रभुः ।
दृष्ट्वा सालोक्यमोक्षञ्च सद्यो गोकुलवासिनाम् ॥१
उवास पञ्चभिर्गोपैर्भाण्डीरे वटमूलके ।
ददर्श गोकुलं सर्वं गोकुल व्याकुलं तथा ॥२
अरक्षकञ्च व्यस्तञ्च शून्यं वृन्दावनं वनम् ।
योगेनामृतवृष्ट्या च कृपयाचकृपानिधिः ॥३
गोपीभिश्च तथा गोपैः परिपूर्णं चकार सः ।
तथावृन्दावनञ्चैव सुरम्यञ्च मनोहरम् ॥४
गोकुलस्थांश्च गोपांश्च समाश्वासं चकार सः ।
उवाच मधुरं वाक्यं हितं नीतञ्च दुर्लभम् ॥५
हे गोपगण हेबन्धो सुखं तिष्ठत स्थिरो भव ।
रमणं प्रियया सार्द्धं सुरम्यं रासमण्डलम् ॥६
तावत्प्रभृति कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने वने ।
अधिष्ठानञ्च सततं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥७

इस अध्याय में भगवान् श्री कृष्ण के गोलोकधाम की यात्रा का वर्णन किया जाता है । नारायण ने कहा—वहाँ पर परि पूर्णतम प्रभु भगवान् श्री कृष्ण ने गोकुल ग्राम के निवास करने वालों का सद्यः सालोक्य मोक्ष्य को देखा ॥१॥ फिर भाण्डीर वन में वट के मूल में पाँच गोपों के साथ निवास किया और सम्पूर्ण गोकुल को देखा तथा व्याकुल गोकुल का दर्शन किया ॥२॥ वृन्दावन के निकुञ्जों के वन

को बिना रक्षा करने वाला देखा और उसे बिल्कुल अस्त-व्यस्त दशा में स्थित देखा जो कि उस समय एकदम शून्य-सा हो रहा था। कृपा के निधि ने पूर्ण कृपा करके योग के द्वारा अमृत की वृष्टि से उसे भगवान् श्री कृष्ण ने गोपियों और गोपों से परिपूर्ण कर दिया और वृन्दावन को अत्यन्त सुरम्य एवं मनोहर कर दिया ॥३-४॥ उन्होंने गोकुल में रहने वाले गोपों का समाश्वासन किया और अत्यन्त मधुर—हितपूर्ण एवं नीति से भरे हुए वचन बोले जो कि बहुत ही दुर्लभ थे ॥५॥ श्री भगवान् ने कहा—हे गोपों के समुदाय ! हे बन्धो ! आप सब सुख पूर्वक रहते हुए स्थिर हो जाओ। इस परम पुण्य स्थल वृन्दावन के निकुञ्जों के वन में कृष्ण का प्रिया के साथ रमण तथा सुरम्य रासमण्डल और अधिष्ठान तब तक निरन्तर ही रहेगा जब तक इस जगती तल में चन्द्र और दिवाकर रहेंगे ॥६-७॥

तथा जगाम भाण्डीरं विधाता जगतामपि ।
स्वयं शेषश्च धर्मश्च भवान्या च भवः स्वयम् ॥८
सूर्यश्चापि महेन्द्रश्च चन्द्रश्चापि हुताशनः ।
कुबेरो वरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा ॥९
ईशानश्चापि देवाश्च वसवोऽष्टौ तथैव च ।
सर्वे ग्रहाश्च रुद्राश्च मुनयो मनवस्तथा ॥१०
त्वरिताश्चाययुः सर्वे यथास्ते भगवान् प्रभुः ।
प्रणम्य दंडवद्भूमौ तमुवाच विधिः स्वयम् ॥११
परिपूर्णतम ब्रह्मस्वरूप नित्यविग्रह ।
ज्योतिःस्वरूप परम नमोऽस्तु प्रकृतेः पर ॥१२
सुनिर्लिप्त निराकार साकार ध्यानहेतुना ।
स्वेच्छामय परं धाम परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥१३
सर्वकार्यस्वरूपेश कारणानां च कारण ।
ब्रह्मेशशेषदेवेश सर्वेश ते नमो नमः ॥१४

इसके अनन्तर सम्पूर्ण जगतों के विधाता वहाँ भाण्डीर वन में आगये स्वयं शेष-धर्म और भवानी जगदम्बा के साथ स्वयं साक्षात् शिव—सूर्य-

देव—महेन्द्र—चन्द्रमा—अग्निदेव—कुवेर—वरुण—पवनदेव—यमराज —ईशान—आठों वसुदेव—समस्तग्रह—सब रुद्र—मुनि गण और मनु-वर्ग सब बड़ी ही शीघ्रता से वहाँ आगये जहाँ कि भगवान् प्रभु श्रीकृष्ण विराजमान थे। सब ने भूमि में पतित होकर दण्ड की भांति प्रभु को प्रणाम किया और इसके अनन्तर ब्रह्मा स्वयं प्रभु से कहने लगे। ॥८-११॥ ब्रह्मा ने कहा—हे प्रभो ! आप तो परिपूर्णतम हैं—ब्रह्म के स्वरूप वाले हैं और नित्य विग्रह धारण करने वाले हैं। हे प्रभो ! आप ज्योति के स्वरूप वाले हैं—सबसे परम एवं प्रकृति से भी पर हैं। आपको मेरा नमस्कार है ॥१२॥ हे प्रभो ! आप भली भाँति निर्लिप्त हैं—बिना आकार वाले हैं और ध्यान करने के कारण से ही साकार भी हैं। आप स्वेच्छा से परिपूर्ण पर धाम हैं। हे परमात्मन् ! मेरा आपका आपकी सेवा में प्रणाम निवेदित है ॥१३॥ आप समस्त कार्यों के स्वरूप वाले ईश हैं और आप कारणों के कारण हैं। आप ब्रह्मा—ईश—शेष —देवेश और सर्वेश हैं आप को मेरा बार-बार प्रणाम है ॥१४॥

सरस्वतीश पद्मेश पार्वतीश परात्पर ।
हे सावित्रीश राधेश रासेश्वर नमोऽस्तु ते ॥१५

सर्वेषामादिभूतस्त्वं सर्वः सर्वेश्वरस्तथा ।
सर्वपाता च संहर्ता सृष्टिरूप नमोऽस्तु ते ॥१६

त्वत्पादपद्मरजसा धन्या पूता वसुन्धरा ।
शून्यरूपा त्वयि गते हे नाथ परमं पदम् ॥१७

यत् पञ्चविंशत्यधिकं वर्षाणां शतकं गतम् ।
त्यक्त्वेमां स्वपदं यासि रुदन्तीं विरहातुराम् ॥१८

ब्रह्मणा प्रार्थितस्त्वञ्च समागत्य वसुन्धराम् ।
भूभारहरणं कृत्वा प्रयासि स्वपदं विभो ॥१९

त्रैलोक्ये पृथिवी धान्या सद्य.पूता पदाङ्किता ।
वयञ्च मुनयो धन्याः साक्षाद् दृष्ट्वा पदाम्बुजम् ॥२०

ध्यानासाध्यो दुराराध्यो मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
अस्माकमनघश्चेशः सोऽधुना चाक्षुषो भुवि ॥२१

आप स्वयं सरस्वती के ईश हैं—लक्ष्मी के स्वामी हैं—पार्वती के पति हैं और आप पर से भी पर हैं। हे सावित्री के स्वामिन्! आप राधा के पति हैं—रासमण्डल के स्वामी हैं आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥१५॥ हे प्रभो! आप सब के आदि स्वरूप हैं। आप सबका स्वरूप तथा सबके ईश्वर हैं। आप सबके पालन एवं रक्षण करने वाले हैं—सबके संहार करने वाले और आप सृष्टि के स्वरूप वाले हैं। ऐसे आपको बारम्बार प्रणाम है ॥१६॥ हे प्रभो! आपके चरण कमल की रज के स्पर्श से यह वसुन्धरा परम पवित्र एवं परम भाग्य शालिनी धन्य हुई है। हे नाथ! आपके यहाँ से पधार जाने पर जबकि परमपद को आप प्राप्त होंगे तो यह भूतल एक दम शून्य ही हो जायगा। हे प्रभो! एक सौ पच्चीस वर्ष समाप्त हो गये हैं। आप इस विरह से आतुर वसुन्धरा का त्याग करके इसे रोती हुई छोड़ कर अपने स्थान पर जाते हैं ॥१७-१८॥ श्री महादेव ने कहा—हे विप्रो! आपसे जब ब्रह्मा ने प्रार्थना की तो आप यहाँ भूतल में पधारे हैं। अब इस भूमि के भार का हरण करके आप अपने नित्य गोलोक धाम को जा रहे हैं। तीनों लोकों में यह पृथिवी परम धन्य है जो आपके चरणों के स्पर्श को प्राप्त कर तुरन्त पूत होगई है। हम मुनि लोग भी परम धन्य तथा भाग्यशाली हैं जिन्होंने आपके चरण कमलों का साक्षात् दर्शन यहाँ पर प्राप्त किया है ॥१९-२०॥ जो ऊर्ध्वरेता मुनियों के ध्यान में भी असाध्य एवं दुराराध्य हैं वह परमेश अनघ इस समय भूतल में चक्षुओं के सामने प्रत्यक्ष विराजमान हो रहे हैं ॥२१॥

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु।
देवस्तस्य महाविष्णोर्वासुदेवो महीतले ॥२२

सुचिरं तपसा लब्धं सिद्धेन्द्राणां सुदुर्लभम्।
यत्पादपद्ममतुलं चाक्षुषं सर्वजीविनाम् ॥२३

त्वमनन्तो हि भगवान्नाहमेव कलांशकः।
विश्वैकस्थे क्षुद्रकूर्मे मशकोऽहं गजे यथा ॥२४

असंख्यशेषाः कूर्मश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।
असंख्यानि च विश्वानि तेषामीशः स्वयं भवान् ।।२५
अस्माकमीदृशं नाथं सुदिनं क्व भविष्यति ।
स्वप्नादृष्टश्च यश्चेशः स दृष्टःसर्वजीविनाम् ।।२६
नाथ प्रयासि गोलोकं पूतां कृत्वा वसुन्धराम् ।
तामनाथां रुदन्तीञ्च निमग्नां शोकसागरे ।।२७
वेदास्स्तोतुं न शक्ता यं ब्रह्मेशानादयस्तथा ।
तमेव स्तवनं किंवा वयं कुर्मो नमोऽस्तु ते ।।२८

सबका निवास वासु है जिसके रोमों के विवरों में अनेक विश्व रहा करते हैं उस महा विष्णु का भी देव इस महीतल में वासुदेव है ।।२२।। बड़े २ सिद्धों के शिरोमणियों को सुदुर्लभ आप हैं जो चिरकाल पर्यन्त तपस्या करके प्राप्त किये हैं । इस समय सम्पूर्ण जीवों के नेत्रों के सामने उनका चरणकमल का युगल संस्थित है ।।२३।। अनन्त ने कहा— भगवान् और अनन्त तो आप ही स्वयं हैं मैं तो एक कलांश हूँ । विश्वैकस्थ क्षुद्र कूर्म में हाथी के साथ में एक मशक की भाँति मेरी स्थिति आपके सामने है ।।२४।। ऐसे मुझ जैसे अगणित शेष हैं और असंख्यों ही कूर्म—ब्रह्मा—विष्णु तथा शिव हैं । ऐसे अनगिनती विश्व हैं उन सबके ईश आप स्वयं हैं ।।२५।। हम सबका वह सुन्दर दिन कब होगा जबकि स्वप्न में भी अदृष्ट ईश समस्त जीव धारियों को देखा गया होगा ।।२६।। हे स्वामिन् ! अब तो आप इस वसुन्धरा को परम पवित्र बनाकर गोलोक नित्यधाम में पधार रहे हैं । इस भूतल का रुदन करता हुआ और एक अनाथ जैसा बना कर जो कि इस समय शोक के सागर में निमग्न हो रहा है आप जारहे हैं ।।२७।। देवों ने कहा— जिस सर्वेश्वर का स्तवन वेद भी करने में असमर्थ होते हैं तथा ब्रह्मा और ईशान आदि भी स्तुति करने की क्षमता नहीं रखते हैं उसी भगवान् का स्तवन हम क्या और किस प्रकार से करें ? हे प्रभो ! आपको प्रणाम है ।।२८।।

इत्येवमुक्त्वा देवास्ते प्रययुर्द्वारकां पुरीम् ।
तत्रस्थं भगवन्तञ्च द्रष्टुं शीघ्रं मुदान्विताः ।।२९

अथ तेषांञ्च गोपाला ययुर्गोलोकमुत्तमम् ।
पृथिवी कम्पिता भीता चलन्तःसप्तसागराः ॥३०
हतश्रियं द्वारकाञ्च त्यक्त्वा च ब्रह्मशापतः ।
मूर्त्तिं कदम्बमूलस्थां विवेश राधिकेश्वरः ॥३१
ते सर्वे चैरकायुद्धे निपेतुर्यादवास्तथा ।
चितामारुह्य देव्यश्च प्रययुः स्वामिभिः सह ॥३२
अर्जुनःस्वपुरं गत्वा तमुवाच युधिष्ठिरम् ।
स राजा भ्रातृभिःसार्धं ययौ स्वर्गञ्चभार्यया ॥३३
दृष्ट्वा कदम्बमूलस्थं तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
देवा ब्रह्मादयस्ते च प्रणेमुर्भक्तिपूर्वकम् ॥३४
तुष्टुवुः परमात्मानं देवं नारायणं प्रभुम् ।
श्यामं किशोरवयसं भूषितं रत्नभूषणैः ॥३५
वह्निशुद्धांशुकाधानं शोभितं वनमालया ।
अतीवसुन्दरं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥३६
व्याधास्त्रसंयुतं पादपद्मं पद्मादिवन्दितम् ।
दृष्ट्वा ब्रह्मादिदेवांस्तानभयं सस्मितं ददौ ॥३७
पृथिवीं तां समाश्वास्य रुदन्तीं प्रेमविह्वलाम् ।
व्याघ्रं प्रस्थापयामास परं स्वपदमुत्तमम् ॥३८

इतना कह करके वे सब देवगण द्वारकापुरी को चले गये । वे सब बड़े ही हर्ष युक्त थे और वहां पर स्थित भगवान् का दर्शन करने के लिये हो गये थे ॥२९॥ इसके अनन्तर उनके गोपाल उत्तम गोलोक को चले गये । यह भूमि बहुत ही भीत होकर कम्पित होने लगी और सातों समुद्र चलायमान हो गये ॥३०॥ ब्रह्म शाप से श्री से हत द्वारकापुरी को त्याग कर राधिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण कदम्ब मूल में स्थित मूर्त्ति में प्रवेश कर गये ॥३१॥ वे समस्त यादवगण चैरका युद्ध में मर गये । सम्पूर्ण देवियाँ अपने स्वामी के साथ चिता में समारूढ़ होकर प्रयाण कर गईं ॥३२॥ अर्जुन ने अपने नगर में पहुँच कर राजा युधिष्ठिर से कहा ।

वह राजा युधिष्ठिर भी अपने भाइयों के साथ तथा भार्या द्रौपदी को साथ में लेकर स्वर्ग को चले गये ॥३३॥ कदम्ब के मूल में संस्थित परमेश्वर का दर्शन करके ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने बड़े ही भक्ति-भाव के साथ उनको प्रणाम किया ॥३४॥ उनने परमात्मा-नारायण—प्रभु—देव—श्याम स्वरूप से युक्त—किशोर अवस्था वाले तथा रत्नों के भूषणों से समलंकृत—वह्नि के समान परम शुद्ध वस्त्रधारी—वनमाला से सुशोभित अत्यन्त सुन्दर—परम मनोहर—लक्ष्मी के स्वामी—पद्मा आदि से वन्दित एवं व्याध के अस्त्र से संयुत पाद पद्म वाले प्रभु ने ब्रह्मादि देवों का दर्शन करके उन्हें मन्द मुस्कान के सहित अभय का दान दिया ॥३५-३७॥ प्रभु श्रीकृष्ण ने प्रेम से अत्यन्त विह्वल रुदन करती हुई वसुन्धरा का समाश्वासन किया और उस व्याध को जिसने अस्त्र का प्रयोग किया था, परमोत्तम अपने पद को भिजवा दिया ॥३८॥

बलस्य तेजः शेषे च विवेश परमाद्भुतम् ।
प्रद्युम्नस्य च कामैके वानिरुद्धस्य ब्रह्मणि ॥३९
अयोनिसम्भवा देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी ।
वैकुण्ठं प्रययौ साक्षात् स्वशरीरेणनारद ॥४०
सत्यभामा पृथिव्याञ्च विवेश कमलालया ।
स्वयं जाम्बवतीदेवी पार्वत्यां विश्वमातरि ॥४१
या या देव्यश्च यासाञ्चाप्यंशरूपाश्च भूतले ।
तस्यां तस्यां प्रविविशुस्ता एव च पृथक् पृथक् ॥४२
साम्बस्य तेजः स्कन्दे च विवेश परमाद्भुतम् ।
कश्यपे वसुदेवश्चाप्यदित्यां देवकी तथा ॥४३
रुक्मिणी मन्दिरं त्यक्त्वा समस्तां द्वारकां पुरीम् ।
स जग्राह समुद्रश्च प्रफुल्लवदनेक्षणः ॥४४
लवणोदः समागत्य तुष्टाव पुरुषोत्तमम् ।
रुरोद तद्वियोगेन साश्रुनेत्रश्च विह्वलः ॥४५
गङ्गा सरस्वती पद्मावती च यमुना तथा ।
गोदावरी स्वर्णरेखा कावेरी नर्मदा मुने ॥४६

शरावती बाहुदा च कृतमाला च पुण्यदा ।
समाययुश्च ताः सर्वाः प्रणेमुः परमेश्वरम् ।।४७
उवाच जाह्नवी देवी रुदन्ती परमेश्वरम् ।
साश्रुनेत्रातिदीना सा विरहज्वरकातराः ।।४८

बलराम का परम तेज जो अत्यन्त अद्‌भुत था शेष में प्रवेश कर गया था । प्रद्युम्न का ब्रह्म में और अनिरुद्ध का काम में तेज प्रविष्ट हो गया ।।३९।। अयोनि से सम्भव होने वाली महालक्ष्मी देवी रुक्मिणी हे नारद ! साक्षात् अपने शरीर से ही वैकुण्ठलोक को चली गईं । कमलालया सत्य-भामा ने पृथिवी में प्रवेश कर दिया और स्वयं जाम्बवती देवी ने विश्व की माता पार्वती के तेज में प्रवेश किया ।।४०-४१।। जो-जो देवी इस भूतल में जिनका भी अंश स्वरूपा थीं, वे सब उन-उनमें ही पृथक्-पृथक् प्रवेश कर गईं ।।४२।। साम्ब के तेज ने जो कि परम अद्‌भुत था, स्वामी कार्तिकेय में प्रवेश किया । वसुदेव ने कश्यप ऋषि में और देवकी ने अदिति में प्रवेश किया ।।४३।। रुक्मिणी का मन्दिर समस्त द्वारकापुरी का त्याग करके प्रस्थान को प्रस्तुत था और प्रफुल्ल मुख तथा नेत्रों वाले समुद्र ने उस अपने स्वरूप में ग्रहण कर लिया ।।४४।। लवण सागर ने वहाँ आकर भगवान् पुरुषोत्तम का स्तवन किया । वह भगवान् के वियोग से आँखों में आँसू भर कर तथा अत्यन्त विह्वल होकर रुदन करने लगा ।।४५।। हे मुने ! उस समय में जबकि भगवान् इस भूमि का त्याग कर परम पद को प्रस्थान कर रहे थे समस्त पवित्र नदियाँ वहाँ पर आईं—गंगा—सरस्वती—पद्मावती—यमुना—गोदावरी—स्वर्णरेखा-कावेरी, नर्मदा—शरावती—वाहुदा—कृतमाला—पुण्यदा—आदि सबने वहाँ उप-स्थित होकर परमेश्वर प्रभु को प्रणाम किया ।।४६-४७।। जाह्नवीदेवी रुदन करते हुए परमेश्वर से कहा । वह उस समय अत्यन्त दीन दशा में स्थित थी और उसके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था । वह विरह के ज्वर से अत्यन्त कातर हो रही थी ।।४८।। भागीरथी देवी ने कहा—

हे नाथ रमणश्रेष्ठ यासि गोलोकमुत्तमम् ।
अस्माकं का गतिश्चात्र भविष्यति कलौयुगे ।।४९

कलेः पंचसहस्राणि वर्षाणि तिष्ठ भूतले ।
पाप.नि पापिनो यानि तुभ्यं दास्यन्ति स्नानतः ॥५०
मन्मन्त्रोपासकस्पर्शाद्भस्मीभूतानितत्क्षणात् ।
भविष्यन्तिदर्शनाञ्च स्नानादेव हि जाह्नवि ॥५१
हरेर्नामानि यत्रैव पुराणानि भवन्ति हि ।
तत्र गत्वा सावधानमाभिःसार्द्धञ्च श्रोष्यसि ॥५२
पुराणश्रवणाच्चैव हरेर्नामानुकीर्तनात् ।
भस्मीभूतानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥५३
भस्मीभूतानि तान्येव वैष्णवालिङ्गनेन च ।
तृणानि शुष्ककाष्ठानि दहन्ति पावका यथा ॥५४
तथापि वैष्णवा लोके पापानि पापिनामपि ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवि ॥५५
मद्भक्तानां शरीरेषु सन्ति पूतेषु सन्ततम् ।
मद्भक्तपादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा ॥५६

हे नाथ ! हे रमण श्रेष्ठ ! आप तो इस समय अपने अत्युत्तम गोलोक धाम को पधार रहे हैं । अब इस घोर कलियुग में हमारी क्या गति होगी? ॥४६॥ भगवान् ने कहा—इस कलियुग के पांच सहस्र वर्ष पर्यन्त तो तुम इस भूतल में स्थित रहो । पापी लोग स्नान करके जो उनके पाप हैं वे तुमको दे दिया करेंगे ॥५०॥ जो मेरे मन्त्र के उपासक मेरे परम भक्त गण हैं वे भी तुम्हारे अन्दर आकर स्नान करेंगे तो उनके स्पर्श से वे समस्त पाप उसी समय भस्मीभूत हो जांयगे । हे जाह्नवि ! उन भक्तों के दर्शन और स्नान से ही समस्त पाप भस्म हो जाया करते हैं ॥५१॥ हरि के नामों का उच्चारण जहाँ होता है और पुराणों का पाठ जिस स्थान पर होता है वहां पर तुम जाकर इन सबके साथ सावधानी के साथ श्रवण करना ॥५२॥ जहाँ पर हरि के शुभ नामों का कीर्त्तन तथा पुराणों का पाठ होता है । इनके श्रवण करने से ब्रह्महत्या आदि महान् समस्त पाप भी भस्मीभूत हो जाया करते हैं ॥५३॥ जिस तरह पावक तृणों को और शुष्क काष्ठों को जला कर भस्म कर दिया करता है उसी भाँति समस्त

महापाप भी वैष्णव के आलिंगन मात्र से ही नष्ट हो जाया करते हैं ।।५४।। हे जाह्नवि ! तथापि लोक में वैष्णवगण—पापियों के पाप और पृथिवी में जो भी परम पुण्य तीर्थ हैं वे सब मेरे भक्तों के परम पवित्र शरीरों में विद्यमान रहा करते हैं । मेरे भक्तों के चरण की रज से यह वसुन्धरा तुरन्त पवित्र हो जाया करती है ।।५५-५६।।

सद्यःपूतानि तीर्थानि सद्यःपूतं जगत्तथा ।
मन्मन्त्रोपासका विप्रा ये मदुच्छिष्टभोजिनः ।।५७
मामेव नित्यं ध्यायन्ते ते मत्प्राणाधिकाः प्रियाः ।
तदुपस्पर्शमात्रेण पूतो वायुश्च पावकः ।।५८
कलेर्दशसहस्राणि मद्भक्ताः सन्ति भूतले ।
एकवर्णा भविष्यन्ति मद्भक्तेषु गतेषु च ।।५९
मद्भक्तशून्या पृथिवी कलिग्रस्ता भविष्यति ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णदेहाद्विनिर्गतः ।।६०
चतुर्भुजश्च पुरुषः शतचन्द्रसमप्रभः ।
शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः ।।६१
सुन्दरं रथमारुह्य क्षीरोदं स जगाम ह ।
सिन्धुकन्या च प्रययौ स्वयं मूर्त्तिमती सती ।।६२

तुरन्त पूत तीर्थ—शीघ्र ही पवित्र होने वाला यह जगत् और मेरे मन्त्र के उपासक विप्रगण जो मेरे उच्छिष्ट का भोजन करने वाले हैं तथा मेरा ही नित्यध्यान किया करते हैं वे मेरे प्राणों से भी अधिक मेरे प्रिय होते हैं उनके उपस्पर्शन मात्र से ही यह वायु और पावक पूत हो जाता है ।।५७-५८।। कलियुग के जब तक दस सहस्र वर्ष होंगे तब तक इस भूमण्डल में मेरे ऐसे परम प्रिय भक्त रहेंगे । जब मेरे भक्त चले जाँयगे तब कलियुग में सभी एक वर्ण वाले लोग हो जाँयगे ।।५९।। जिस समय यह पृथ्वी मेरे भक्तों से बिलकुल शून्य हो जायगी तब पूर्णतया यह कलियुग के प्रभाव से ग्रस्त हो जायगी । इसी अन्तर में वहाँ पर कृष्ण देह से निकल गये ।।६०।। चार भुजाओं वाला पुरुष जो सौ चन्द्रमाओं के समान प्रभा से संयुत थे और शंख–चक्र–पद्म तथा गदा को धारण करने वाले

थे एवं श्रीवत्स का चिह्न जिनके वक्षःस्थल पर था वह सुन्दर रथ पर समारूढ़ होकर क्षीर सागर में चले गये। फिर स्वयं मूत्तिमती सती सिन्धु कन्या भी चली गई ॥६१-६२॥

श्रीकृष्णमानसा जाता मर्त्यलक्ष्मीर्मनोहरा ।
श्वेतद्वीपं गते विष्णौ जगत्पालनकर्तरि ॥६३
शुद्धसत्वस्वरूपे च द्विधारूपो बभूव ह ।
दक्षिणाङ्गश्च द्विभुजो गोपबालकरूपकः ॥६४
नवीनजलदश्यामः शोभितः पीतवाससा ।
श्रीवंशवदनः श्रीमान् सस्मितः पद्मलोचनः ॥६५
शतकोटीन्दुसौन्दर्यः शतकोटिस्मरप्रभाम् ।
दधानः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः ॥६६
परं धाम परब्रह्मस्वरूपो निर्गुणः स्वयम् ।
परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६७
नित्यदेही च भगवानीश्वरः प्रकृतेः परः ।
योगिनो यं विदन्त्येवं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥६८
ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यरूपं भक्त्या विदन्ति यम् ।
वेदा वदन्ति सत्यं यं नित्यमाद्यं विचक्षणाः ॥६९
यं वदन्ति सुराः सर्वे परं स्वेच्छामयं प्रभुम् ।
सिद्धेन्द्रमुनयः सर्वे सर्वरूपं वदन्ति यम् ॥७०

श्रीकृष्ण के मानस से समुत्पन्न मर्त्य लक्ष्मी मनोहर हो गई। जगतों के पालन करने वाले विष्णु के श्वेत द्वीप में चले जाने पर जो कि शुद्ध सत्त्वरूप वाले थे, उनके दो रूप हो गये। जो उनका दक्षिण अंग था, वह तो दो भुजाओं वाला गोपाल स्वरूप से संयुत हो गया था ॥६३-६४॥ उनका स्वरूप नवीन जलद के समान श्याम था और पीताम्बर से परम शोभित हो रहा था। उनका मुख श्री से सम्पन्न और नन्द स्मित से युक्त था तथा पद्म के तुल्य सुन्दर उनके नेत्र थे ॥६५॥ सैकड़ों करोड़ चन्द्रों के सौन्दर्य के समान उनका अत्यद्भुत सौन्दर्य था और शत कोटि कामदेवों की प्रभा को धारण करने वाले थे। उनका परम आनन्दमय स्वरूप

था और वे परिपूर्णतम प्रभु थे ॥६६॥ स्वयं निर्गुण–परम धाम और परम ब्रह्म के स्वरूप वाले थे। वे सबके परमात्मा तथा अपने भक्तों पर कृपा करके ही शरीर धारण करने वाले थे ॥६७॥ भगवान् नित्य देह-धारी ईश्वर और प्रकृति से भी पर हैं। योगीगण जिनको सनातन ज्योति रूप जाना करते हैं ॥६८॥ योगी लोग जिसको अपने अन्दर में नित्य रूप ज्योति भक्ति की भावना से जानते हैं। वेद जिसका स्वरूप परम सत्य कहते हैं और विचक्षण लोग उसे नित्य एवं आद्य कहा करते हैं ॥६९॥ समस्त देवगण जिसको परम स्वेच्छामय प्रभु कहा करते हैं। सिद्धेन्द्र तथा मुनिगण जिसको सर्वरूप कहते हैं ॥७०॥

यमनिर्वचनीयञ्च योगीन्द्रः शङ्करो वदेत्।
स्वयं विधाता प्रवदेत् कारणानाञ्च कारणम् ॥७१
शेषो वदेदनन्तं यं नवधारूपमीश्वरम्।
धर्माणामेव षण्णाञ्च षड्विधं रूपमीप्सितम् ॥७२
वैष्णवानामेकरूपं वेदानामेकमेव च।
पुराणानामेकरूपं तस्मान्नवविधं स्मृतम् ॥७३
न्यायोऽनिर्वचनीयञ्च यं मतं शङ्करो वदेत्।
नित्यं वैशेषिकाश्चायं तं वदन्तिविचक्षणाः ॥७४
सांख्यो वदति तं देवं ज्योतीरूपं सनातनम्।
ममांश सर्वरूपञ्च वेदान्तः सर्वकारणम् ॥७५
पातञ्जलोऽप्यनन्तञ्च वेदाः सत्यस्वरूपकम्।
स्वेच्छामयं पुराणञ्च भक्ताश्च नित्यविग्रहम् ॥७६
सोऽयं गोलोकनाथश्च राधेशो नन्दनन्दनः।
गोकुले गोपवेशश्च पुण्ये वृन्दावने वने ॥७७
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे महालक्ष्मीपतिः स्वयम्।
नारायणश्च भगवान् यन्नाम मुक्तिकारणम् ॥७८

योगीन्द्र भगवान् शङ्कर जिनके स्वरूप को अनिर्वचनीय कहते हैं और विधाता स्वयं जिनका स्वरूप समस्त कारणों का भी कारण बताते हैं ॥७१॥ शेष जिसको अनन्त कहते हैं। वह नवधारूप वाला ईश्वर है

श्रीर छै धर्मों का छै प्रकार का ईप्सित स्वरूप वाला है ।।७२।। वही वैष्णवों का एक रूप-वेदों का एक रूप और पुराणों का एक रूप नौ प्रकार का कहा गया है ।।७३।। यह न्याय (दर्शन) शास्त्र हैं और शङ्कर जिस मत को कहते हैं वह अनिर्वचनीय है वेशेषिक विचक्षण उसको नित्य कहते हैं ।।७४।। साँख्य शास्त्र (दर्शन) उस देव को ज्योतिस्वरूप वाला सनातन कहता है । मेरा अंश वेदान्त (दर्शन) उसके सर्व रूप और सबका कारण बताता है ।।७५।। पातञ्जल भी उसको अनन्त और वेद सत्य स्वरूप वाला स्वेच्छामय तथा पुराण पुरुष कहते है । भक्त लोग नित्य विग्रह धारी बताते हैं ।।७६।। वह ही गोलोक धाम के नाथ—राधा के ईश ——नन्द के नन्दन——गोकुल में गोप के वेश को धारण करने पुण्य वृन्दा-वन के निकुञ्जवन में हैं ।।७७।। वैकुण्ठ लोक में यही चार भुजाओं के धारण करने वाले स्वयं महालक्ष्मी के पति हैं और भगवान् नारायण हैं जिनका नाम ही मुक्ति के करने का कारण होता है ।।७८।।

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम् ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति नारद ।।७९

सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिवारितः ।
शंखचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः ।।८०

कौस्तुभेन मणीन्द्रेण भूषितो वनमालया ।
वेदैः स्तुतश्च यानेन वैकुण्ठं स्वपदं ययौ ।।८१

गते वैकुण्ठनाथे च राधेशश्च स्वयं प्रभुः ।
चकार वंशीशब्दञ्च त्रैलोक्यमोहनं परम् ।।८२

मूर्च्छां प्रापुर्देवगणा मुनयश्चापि नारद ।
अचेतना बभूवुश्च मायया पार्वतीं विना ।।८३

उवाच पार्वती देवी भगवन्तं सनातनम् ।
विष्णुमाया भगवती सर्वरूपा सनातनी ।।८४

परब्रह्मस्वरूपा या परमात्मस्वरूपिणी ।
सगुणा निर्गुणा सा च परा स्वेच्छामयी सती ।।८५

एकाहं राधिकारूपा गोलोके रासमण्डले ।
रासशून्यञ्च गोलोकं परिपूर्णं कुरु प्रभो ।।८६

हे नारद ! एक बार नारायण—इस नाम का उच्चारण करके पुरुष तीन सौ कल्प पर्यन्त गङ्गा आदि परम पवित्र तीर्थों में स्नान किया हुआ हो जाता है ।।७९।। सुन्दर—नन्द और कुमुद नाम धारी पार्षदों से परिवारित होकर—शंख, चक्र, गदा और पद्म इन आयुधों को धारण करके श्री वत्स के चिह्नधारी—कौस्तुभमणि से समलंकृत होते हुए तथा वनमाला से विभूषित होकर एवं समस्त वेदों के द्वारा स्तवन किये गये भगवान् यान के द्वारा आपने पद धाम वैकुन्ठ को पधार गये ।।८०-८१।। वैकुण्ठ नाथ के चले जाने पर राधा के ईश स्वयं प्रभु ने त्रैलोक्य के मोहन करने वाला परम उत्तम मुरली को ध्वनि की थी ।।८२।। हे नारद ! पार्वती के अतिरिक्त समस्त देवगण—मुनिगण उस वंशी के नाद से मूर्छा को प्राप्त होकर अचेतन हो गये ।।८३।। पार्वती देवी सनातन भगवान् से बोली । जो कि भगवती सर्वारूपा—सनातनी पर ब्रह्म के स्वरूप वाली तथा परमात्मा के रूप से युक्त—सगुण—निर्गुण—परा—स्वेच्छामयी और सती विष्णु माया थी ।।८४-८५।। पार्वती ने कहा था—हे प्रभो ! गोलोक में रासमण्डल मध्य में मैं एक ही राधिका के स्वरूप वाली हूँ । वह गोलोक का रासमण्डल इस समय रास से सर्वथा शून्य हो रहा है । अतएव आप वहाँ पदार्पण कर उसे परिपूर्ण करिये ।।८६।।

१११—पुराण पठन श्रवणादि माहात्म्यम्

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।१
एतदुपपुराणानां लक्षणञ्च विदुर्बुधाः ।
महतांच पुराणानां लक्षणं कथयामि ते ।।२
सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्चेत् स्थितिस्तेषाञ्च पालनम् ।
कर्मणां वासनावार्ता चामूनांच क्रमेण च ।।३

वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम् ।
उत्कीर्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक् ।।४
दशाधिकं लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम् ।
संख्यानञ्च पुराणानां निबोध कथयामि ते ।।५
परं ब्रह्म पुराणञ्च सहस्राणां दशैव तु ।
पञ्चोनषष्टिसाहस्रं पाद्ममेव प्रकीर्तितम् ।।६
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवञ्च विदुर्बुधाः ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं शैवञ्चैव निरूपितम् ।।७

इस अध्याय में पुराणों का लक्षण--श्रवण तथा पठन आदि के माहात्मय का वर्णन किया जाता है । हे विप्र ! पुराण के पाँच लक्षण होते हैं—इसमें सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश—मंवन्तर और वंशों का अनुचरित होता है ।।१।। विद्वान् लोग यह उप पुराणों का लक्षण कहते हैं ! जो महान् पुराण होते हैं उनका लक्षण मैं तुमको अब बतलाता हूँ ।।२।। महा पुराणों में सृष्टि--विसृष्टि और स्थिति तथा उनका पालन का वर्णन भी होता है । कर्मों की वासना की चर्चा होती है और क्रम से इनका वर्णन किया जाता है ।।३।। महापुराणों में प्रलयों का वर्णन तथा मोक्ष का निरूपण होता है । वहाँ हरिभगवान् का उत्कीर्तन होता है तथा देवों का भी पृथक २ कीर्तन किया जाता है ।।४।। महान् पुराणों के दश से अधिक लक्षण कहे गये हैं । अब पुराणों की संख्या बतलाता हूँ उसका तुम श्रवण एवं निबोधन करो ।।५।। सबसे पर ब्रह्म पुराण है जिसके अनुष्टुप् छन्दों के हिसाब से दश सहस्र संख्या होती है । इसके पश्चात् पद्म पुराण है जिसकी संख्या पचपन सहस्र कही गई है ।।६।। वैष्णव पुराण की संख्या तेईस सहस्र है । शिवपुराण की संख्या चौबीस सहस्र होती है ।।७।।

मात्स्यं चतुर्दश प्रोक्तं पुराणं पण्डितैस्तथा ।
ऊनविंशतिसाहस्रं गारुडं परिकीर्तितम् ।।८
पर द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् ।
एवं पुराणसंख्यानं चतुर्लक्षमुदाहृतम् ।।९

अष्टादशपुराणानामेवमेव विदुर्बुधाः ।
एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः ॥१०
इतिहासो भारतञ्च वाल्मीकं काव्यमेव च ।
पञ्चकं पञ्चरात्राणां कृष्णमाहात्म्यपूर्वकम् ॥११
वाशिष्ठं नारदीयञ्च कपिलं गौतमीयकम् ।
परं सनत्कुमारीयं पंचरात्रञ्च पञ्चकम् ॥१२
पञ्चकं संहितानाञ्च कृष्णभक्तिसमन्वितम् ।
ब्रह्मणश्च शिवस्यापि प्रह्लादस्य तथैव च ॥१३
गौतमस्य कुमारस्य संहिताः परिकीर्तिताः ।
इति ते कथितं सर्वं क्रमेण च पृथक् पृथक् ॥१४

पण्डित गण ने मत्स्य पुराण को चौदह सहस्र संख्या वाला कहा है। गरुड़ पुराण उन्नीस सहस्र संख्या से युक्त है ॥८॥ ब्रह्माण्ड महापुराण की संख्या बारह सहस्र होती है। इस प्रकार से समस्त पुराणों की संख्या कुल मिलाकर चार लाख बताई गई है ॥९॥ इस प्रकार से बुधगण अष्टादश पुराण कहते हैं। इसी प्रकार से अष्टादश उपपुराण भी कहे जाते हैं ॥१०॥ इतिहास महाभारत—वाल्मीक आदि एवं महाकाव्य—कृष्ण के माहात्म्य के सहित पञ्च रात्रों का पञ्चक है ॥११॥ वे पञ्चरात्र—वाशिष्ठ पञ्चरात्र—नारद पञ्चरात्र—कपिल पञ्चरात्र—गौतम पञ्चरात्र और सनत्कुमार पञ्चरात्र हैं ॥१२॥ इसी प्रकार से संहिताऐं भी पाँच होती हैं जो कि कृष्ण की भक्ति से समन्वित हैं। ब्रह्मा—शिव—प्रह्लाद—गौतम और कुमार की पाँच संहिताऐं कही गई हैं। यह सब हमने क्रमसे पृथक् २ तुमको बतला दिया है ॥१३-१४॥

अत्येवं विपुलं शास्त्रं ममापि च यथागमम् ।
उवाचेदं पुराणंच गोलोके रासमण्डले ॥१५
श्रीविष्णुर्भगवान् साक्षाद् ब्रह्माणञ्च स्वभक्तकम् ।
ब्रह्मा धर्मञ्च धर्मिष्ठं धर्मोनारायणं मुनिम् ॥१६
नारायणो नारदञ्च नारदो मां च भक्तकम् ।
अहं त्वांच मुनिश्रेष्ट वरिष्ठं कथयामि तत् ॥१७

सुदुर्लभं पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ।
यद्वृणोत्येव विश्वौघं जीविनां परमात्मकम् ॥१८
तद्ब्रह्म साक्षिरूपञ्च कर्मणामेव कर्मिणाम् ।
तद्ब्रह्म विवृतं यत्र तद्विभूतिमनुत्तमम् ॥१९
तेनेदं ब्रह्मवैवर्त मित्येवञ्च विदुर्बुधाः ।
पुण्यप्रदं पुराणञ्च मङ्गलं मंगलप्रदम् ॥२०

इस प्रकार से यह अत्यन्त विपुल शास्त्र है । जो कि मुझको भी यथागम प्राप्त हुआ है । इस पुराण को गोलोक धाम में रास मण्डल में कहा था ॥१५॥ श्री विष्णु भगवान् ने साक्षात् अपने भक्त ब्रह्मा को कहा था । ब्रह्मा ने धर्म से कहा जो कि परम धर्मिष्ठ हैं । धर्म ने नारायण से कहा ॥१६॥ नारायणने इस पुराण शास्त्र को नारद को कहा । नारद मुनि ने अपना भक्त समझकर मुझसे कहा । हे मुनि श्रेष्ठ ! मैं अब सबसे अच्छे आपसे यह कहता हूँ ॥१७॥ यह ब्रह्मवैवर्त्त महापुराण परम अभीष्ट और सुदुर्लभ महापुराण है जो जीवियों के परमात्मा विश्वौघ का कारण करता है ॥१८॥ वह ब्रह्म कर्मणों के कर्मों का साक्षी रूप है । वह ब्रह्म जहाँ पर विवृत है वह सबसे महान् उत्तम विभूति वाला होता है ॥१९॥ इसी कारण से वुध लोग इसको 'ब्रह्मवैवर्त्त'—इस पवित्र एवं शुभ नाम से कहा करते हैं । यह ब्रह्मवैवर्त्त महापुराण परम पुण्य का प्रदान करने वाला—मङ्गलमय और मंगलों को देने वाला है ॥२०॥

सुगोप्यञ्च रहस्यञ्च यत्र रम्यं नवं नवम् ।
हरिभक्तिप्रदञ्चैव दुर्लभं हरिदास्यदम् ॥२१
सुखदं ब्रह्मदं सारं शोकसन्तापनाशनम् ।
सरिताञ्च यथा गंगा सद्योमुक्तिप्रदा शुभा ॥२२
तीर्थानां पुष्करं शुद्धं यथा काशी पुरीषु च ।
सर्वेषु भारतं वर्षं सद्योमुक्तिप्रदं शुभम् ॥२३
यथा सुमेरुः शैलेषु पारिजातञ्च पुष्पतः ।
पत्रेषु तुलसीपत्रं व्रतेष्वेकादशीव्रतम् ॥२४

यह महापुराण भली भाँति गोपनीय है जिसमें कि नये-नये अत्यन्त रम्य रहस्य भरे हुए हैं। यह पुराण हरि की भक्ति को देने वाला दुर्लभ और हरि भगवान् के दास्य भाव को प्रदान कराने वाला है ॥२१॥ यह परम सौख्य का दाता—ब्रह्म का ज्ञान कराने वाला—सार स्वरूप और सब प्रकार के शोक एवं सन्तापों का नाश करने वाला है। यह ऐसा कल्याण प्रद है जैसे समस्त नदियों में भागीरथी गङ्गा परम शुभ एवं तुरन्त मुक्ति के प्रदान करने वाली होती है ॥२२॥ जिस प्रकार से सम्पूर्ण तीर्थों में पुष्कर परम शुद्ध तीर्थ माना जाता है और समस्त पावन पुरियों में काशी पुरी सर्व श्रेष्ठ पुरी कही जाती है। सब वर्षों में जिस तरह भारत शुभ एवं तुरन्त ही मुक्ति का प्रदाता कहा गया है।२३। सम्पूर्ण पर्वतों में अति श्रेष्ठ पर्वत सुमेरु कहा गया है और पुष्पों में पारिजात वृक्ष का पुष्प अत्युत्तम माना गया है। पत्रों में सर्वोत्तम तुलसी का दल कहा जाता है तथा सब व्रतों में एकादशी के व्रत का सबसे अधिक महत्व होता है। ॥२४॥

वृक्षेषु कल्पवृक्षश्च श्रीकृष्णश्च सुरेषु च।
ज्ञानीन्द्रेषु महादेवो योगीन्द्रेषु गणेश्वरः ।।२५
सिद्धेन्द्रेष्वेककपिलो सूर्यस्तेजस्विनां यथा।
सनत्कुमारो भगवान् वैष्णवेषु यथाग्रणीः ॥२६
भूपेषु च यथा रामो लक्ष्मणश्च धनुष्मताम्।
देवीषु च यथा दुर्गा महापुण्यवती सती ॥२७
प्राणाधिका यथा राधा कृष्णस्य प्रेयसीषु च।
ईश्वरीषु यथा लक्ष्मीः पंडितेषु सरस्वती ॥२८
तथा सर्वपुराणेन ब्रह्मवैवर्त्तमेव च।
नातो विशिष्टं सुखदं मधुरं च सुपुण्यदम् ॥२९
सन्देहभञ्जनञ्चैव पुराणं परिकीर्तितम्।
इहलोके च सुखदं सुप्रदं सर्वसम्पदाम् ॥३०
शुभदं पुण्यदञ्चैव विघ्ननिघ्नकरं परम्।
हरिदास्यप्रदञ्चैव परलोके प्रहर्षदम् ॥३१

यज्ञानामपि तीर्थानां व्रतानां तपसां तथा ।
भुवः प्रदक्षिणस्यापि फलं नास्य समानकम् ॥३२
चतुर्णामपि वेदानां पाठादपि वरं फलम् ।
शृणोतीदं पुराणञ्च संयतश्चेह पुत्रक ॥३३

सम्पूर्ण वृक्षगणों में कल्प वृक्ष सर्व शिरोमणि वृक्ष होता है और जिस तरह से सुरगणों में सर्वाधिक पूज्य श्रीकृष्ण हैं । ज्ञानियों के शिरोमणियों में महादेव ही सब से श्रेष्ठ ज्ञानी है तथा योगीन्द्रों में गणेश्वर सर्व शिरो-भूषण योगीन्द्र हैं ॥२५॥ सिद्धेन्द्रों में एक कपिल ही परम सिद्ध माने जाते हैं और जिस तरह से तेज धारियों में भुवन भास्कर सूर्यदेव महान् तेजस्वी होते हैं । भगवान् सनत्कुमार वैष्णवों में सबके अग्रणी माने जाते हैं ॥२६॥ मानवों में मर्यादा पुरुषोत्तम रघुकुल भूषण श्रीराम सर्वश्रेष्ठ मानव हुए हैं तथा धनुर्धारियों में सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सर्वश्रेष्ठ है । जिस प्रकार से समस्त देवियों में महान् पुण्य वाली परम सती दुर्गा मानी गई हैं । निकुञ्ज विहारी श्रीकृष्ण की प्रेयसियों में रासेश्वरी राधा सर्व श्रेष्ठ कही गई हैं । ईश्वरियों में समस्तैश्वर्याधिष्ठात्री लक्ष्मी होती हैं तथा पण्डितों में सर्वाधिक विदुषी सरस्वती देवी हैं उसी प्रकार से समस्त पपुराणों में ब्रह्मवैवर्त्त महापुराण सर्व श्रेष्ठ पुराण होता है इस महापुराण से विशिष्ट—सुख प्रदाता—मधुर और सुपुण्यों के प्रदान करने वाला दूसरा कोई भी पुराण नहीं है ॥२७-२९॥ यह महापुराण समस्त समुत्थित स्वाभाविक सन्देहों के भञ्जन कर देने वाला कहा गया है । यह ब्रह्मवैवर्त्त महापुराण इस लोक में सुख देने वाला और साथ ही समस्त सम्पदाओं के भी प्रदान करने वाला है ॥३०॥ यह महापुराण शुभों का देने वाला है अर्थात् अनेक भलाइयाँ प्राप्त होती हैं—पुण्यों के प्रदान करने वाला है अर्थात् इसके पठन—श्रवण से महान् पुण्य होता है । यह सभी अड़चनों और रुकावटों के हनन करने वाला परम श्रेष्ठ पुराण है । हरि भगवान् का जो अत्यन्त दुर्लभ दास्य पद है उसे भी यह दिला देता है । इसके पठन श्रवण एवं मनन से परलोक में भी परम हर्ष होता है । तात्पर्य यह है कि सुगति होने से वहाँ पर स्वाभाविक हर्षातिरेक हो जाता

है ।।३१।। समस्त प्रकार के किये गये यज्ञ—यागादि—सभी किये गये महान्—से महान् तीर्थ—महा व्रत—अत्युग्र कठिन तप और समस्त भूमण्डल की कीगई प्रदक्षिणा भी इसके पठन श्रवण और मनन के फल के समान नहीं हैं ।।३२।। हे पुत्र ! चारों वेदों के पठन से भी अत्यधिक श्रेष्ठ फल संयत होकर इस महा पुराण के श्रवण से प्राप्त होता है ।।३३।।

गोलक्षदानपुण्यं च लभते नात्र संशयः ।
चतुःखण्डं पुराणञ्च शुद्धकाले जितेन्द्रियः ।।३४
संकल्पितो यः शृणोति भक्त्या दत्त्वा च दक्षिणाम् ।
यद् बाल्ये यच्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने ।।३५
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।
रत्ननिर्माणयानेन धृत्वा श्रीकृष्णरूपकम् ।।३६
नित्यं गत्वा च गोलोकं कृष्णदास्यं लभेद् ध्रुवम् ।
असंख्यब्रह्मणः पाते न भवेत्तस्य पातनम् ।।३७

इस ब्रह्मवैवर्त्त महा पुराण के चार खण्ड हैं उसको शुद्ध काल में इन्द्रियों को संयम में रखकर जो श्रवण करता है वह एक लाख गौओं के दान का महान् पुण्य प्राप्त किया करता है । इसमें तनिक भी सशय नहीं है ।।३४।। हृदय में पूर्णतया सङ्कल्प करके बड़े ही भक्ति के भाव से जो पुरुष इस ब्रह्मवैवर्त्त महापुराण का श्रवण करता है और यथा शक्ति पुष्कल दक्षिणा देता है उसके बाल्यकाल में किये हुए—कौमारावस्था में बेसमझी से हो जाने वाले—यौवन में प्रमत्त दशा में किये जाने वाले तथा वार्द्धक्य अवस्था में किये गये समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है ।।३५।। कहाँ तक इसका माहात्म्य वर्णित किया जावे एक-दो क्या करोड़ों जन्मों के किये गये भी पाप दूर भाग जाया करते हैं और यह परम निष्पाप हो जाता है—इसमें कुछ भी संसय नहीं मानना चाहिए । वह इस पुराण का श्रवण कर्त्ता पुरुष श्रीकृष्ण के तुल्य चतुर्भुज दिव्य किरीट कुण्डल धारी महान् तेजस्वी स्वरूप धारण कर रत्नों द्वारा विरचित यान के द्वारा नित्य एवं सर्वोपरि विराजमान गोलोक धाम में पहुँच कर श्रीकृष्ण गोलोकाधीश्वर के दास्य पद को निश्चय ही प्राप्त किया

करता है। असंख्य ब्रह्माओं का पतन होजाने पर भी ब्रह्मवैवर्त्त के उपासक, श्रोता या पाठक का पतन गोलोक से नहीं होता ॥३६-३७॥

समोपे पार्षदो भूत्वा सेवाञ्च कुरुते चिरम्।
श्रुत्वा च ब्रह्मखण्डंच सुस्नातः संयतः शुचिः॥ ३८
पायसं पिष्टकञ्चैव फलं ताम्बूलमेव च।
भोजयित्वा वाचकंच तस्मै दद्यात् सुवर्णकम्॥३९
चन्दनं शुक्लमाल्यंच सूक्ष्मवस्त्रं मनोहरम्।
निवेद्य वासुदेवञ्च वाचकाय प्रदीयते॥४०
श्रुत्वा च प्रकृतेः खण्डं सुश्रवंच सुधोपमम्।
भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च कांचनम्॥४१
सवत्सां सुरभीं रम्यां दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम्।
श्रुत्वा गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय संयतः॥४२
स्वर्णयज्ञोपवीतंच श्वेताश्वच्छत्रमाल्यकम्।
प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिललड्डुकम्॥४३

वह तो वहां गोलोकधाम में गोलोक विहारी श्रीकृष्ण के समीप में पार्षद होकर चिरकाल पर्यन्त उनकी सेवा-सुख का उपभोग किया करता है। सुस्नात होकर तथा संयत एवं शुचि बनकर जो इस पुराण के ब्रह्म खण्ड का श्रवण करता है तथा इसके वाचक व्यास को पायस, पिष्टक, फल और ताम्बूल खिला कर सुवर्ण की दक्षिणा उसे देनी चाहिए ॥३८॥ चन्दन, शुक्ल पुष्पों की माला–सूक्ष्म वस्त्र जो परम सुन्दर हो, वासुदेव को निवेदित करके पुराण के वक्ता को दी जानी चाहिए ॥३९॥ इस पुराण के प्रकृतिखण्ड का जो कि बड़ा ही सुश्रव और सुधोपम है, श्रवण करके वक्ता को दध्यन्न भोजन करावे और उसे काञ्चन की दक्षिणा देनी चाहिए ॥४०॥ इसके गणपतिखण्ड का श्रवण करके जो कि संयत होकर श्रवण करने से विघ्नों का नाशक होता है, वाचक को भक्तिपूर्वक परम रम्य सवत्सा सुरभी का दान कर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सुवर्ण का यज्ञोपवीत—श्वेत अश्व—छत्र—माल्यक–स्वस्तिक और तिलों के मोदक, देश और ऋतु में होने वाले परिपक्व फल भी दे ॥४१-४३॥

परिपक्कफलान्येव कालदेशोद्भवानि च ।
श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च श्रुत्वा भक्तश्च भक्तितः ॥४४
वाचकाय प्रदद्याच्च परं रत्नाङ्गुलीयकम् ।
सूक्ष्मवस्त्रञ्च माल्यंच स्वर्णकुण्डलमुत्तमम् ॥४५
माल्यञ्च वरदोलाञ्च सुपक्कं क्षीरमेव च ।
सर्वस्वं दक्षिणां दद्यात् स्तवनं कुरुते ध्रुवम् ॥४६
शतकं ब्राह्मणानाञ्च भोजयेत्परमादरम् ।
ब्राह्मणं वैष्णवं शास्त्रनिष्णातं पिण्डतंवरम् ॥४७
कुरुते वाचकं शुद्धमन्यथा निष्फलं भवेत् ।
श्रीकृष्णविमुखान् दुष्टान्नोपदेष्टा च ब्राह्मणः ॥४८
कायेन मनसा वाचा परं भक्त्या दिवानिशम् ।
भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ॥४९

भक्त को भक्ति पूर्वक श्रीकृष्ण के जन्म खण्ड का श्रवण करके वाचक को रत्नों की अँगूठी—सूक्ष्म वस्त्र—माल्य—स्वर्ण के कुण्डल माल्य—सुपक्व क्षीर—श्रेष्ठ दोला और सर्वस्व की दक्षिणा देनी चाहिये और उसका स्तवन करे ॥४४-४६॥ इसके अनन्तर एक सौ ब्राह्मणों को अत्यन्त आदर के साथ भोजन करवावे । जो भी कोई ब्राह्मण इस महापुराण का वाचक हो वह परम वैष्णव होना चाहिए तथा समस्त शास्त्रों का परम निष्णात श्रेष्ठ पण्डित भी होना चाहिए । ऐसे ही ब्राह्मण को वक्ता बनावे जो कि अत्यन्त शुद्ध एवं सरल हो तभी इस महापुराण का यथार्थ कथित फल प्राप्त होता है अन्यथा सब निष्फल हो जाता है । उपदेश करने वाले ब्राह्मण को भी चाहिए कि वह इस महापुराण की कथा कभी भी श्रीकृष्ण से विमुख रहने वाले दुष्ट पुरुषों को नहीं सुनावे ॥४७-४८॥ अब अहर्निश परम भक्ति की भावना से शरीर, मन, वाणी के द्वारा परम सत्य स्वरूप ब्रह्म त्रिगुण से पर श्री राधिकेश श्रीकृष्ण का भजन करो । इसी से सब प्रकार का कल्याण होगा ॥४९॥

※ ब्रह्मवैवर्त्तपुराण द्वितीय खण्ड समाप्त ※